

दिव्य भाव स्वरूपा

श्री रूक्मिणी बाई (जीवन लीला)

दिव्य भाव स्वरूपा
श्रीरुक्मिणी बाई
जीवन चरित्र

: निर्देशन :

चन्दा देवी ढानढनियाँ

: संकलन :

सावित्री बाई सुन्दरका

: प्रस्तुतीकरण :

राधेश्याम बंका

प्रकाशक

श्रीमहिला संघ,

रा. ब. देवीप्रसाद ढानढनियाँ लेन, भागलपुर-८१२००२२

मो.: ०९४७२५०६०४२

वितरक

योगेन्द्रनाथ बंका,

गोरखपुर मशीनरी स्टोर, गोलघर, गोरखपुर-२७३००१.

मो. ०९४१५८२३९५१.

प्रमुख विक्रेता

खण्डेलवाल एण्ड संस,

अठखम्भा बाजार, वृन्दावन-२८११२१.

फोन: (०५६५) २४४२१००/२४४३१०१.

मूल्य

एक सौ पचास रुपये (१५० रु.)

प्रकाशन तिथि

सं. २०७५ वि. वैशाख शुक्ल ३ (अक्षय तृतीया)

१८ अप्रेल, २०१८

द्वितीय संस्करण

२००० (दो हजार)

मुद्रक

न्यु जैक प्रिंटिंग प्रेस प्रा. लि.

बिल्डिंग न. ५-बी, गाला न. १३०, मित्तल इन्डस्ट्रियल स्टेट,

मरोल नाका, अँधेरी (पूर्व), मुंबई-४०० ०५९.

फोन . ०२२ ६७७२१०००

॥ श्रीहरि: ॥

दिव्यभावस्वरूपा रुक्मिणी बाईकी
जीवन गाथाका यह पुष्प
उनके द्वारा स्थापित भागलपुर स्थित
श्रीमहिला संघ रूपी नव-वृन्दावनकी
परमाराध्या श्रीबरसानेवालीके
श्रीचरणोंपर
श्रद्धा सहित समर्पित है।

॥ श्रीहरि: ॥

॥ श्रीकृष्णकान्तायै नम: ॥

श्रीराधिका-प्रभृतयो नितरां जयन्ति।
गोप्यो नितान्त-भगवत्प्रियता प्रसिद्धा: ॥
यासां हरौ परम-सौहृद-माधुरीणां।
निर्वक्तुभीषदपि जातु न कोऽपि शक्त: ॥

श्रीराधिका सहित उन ब्रज-गोपियोंकी सर्वतोभावेन जय हो, जिनकी भगवान्‌के प्रति एकान्त प्रीति पूर्ण रूपसे सिद्ध है तथा जिनकी कृष्णके साथ प्रेम-माधुरीका किञ्चित् भी वर्णन करनेमें कभी भी कोई समर्थ नहीं। अनेक सिद्ध संतोंकी अनुभूति है कि श्यामसुन्दर यमुना तटपर कदम्बके नीचे बैठकर अपनी मुरलीके मधुर स्वरमें राधा नाम उच्चरित कर प्रियतमाका आवाहन करते हैं।

विद्यापतिकी यह विनय सिद्ध भक्तोंके हृदयमें रस सिञ्चन कर गूँजती रहती है—

नन्दक-नन्दन कदम्ब तरू तरे धिरे-धिरे मुरली बजाव।
समय संकेत निकेतन बइसल बेरि-बेरि बोलि पठाव॥

किन्तु हमलोगोंके समान प्राणी उस उच्च स्तरकी अनुभूतिकी छायाको स्पर्श करनेमें असमर्थ हैं। इस करुणामयी सिद्धा भक्तिमती रुक्मिणी बाईने अपने प्रेमीजन भक्तोंको इस दिव्य अनुभूतिको ग्रहण करानेकी कृपा की। उन्होंने अपने एक भक्तको लिखवाया था—‘अब जीवनके क्षण ही कितने हैं? अब तो उस शय्याकी तैयारी है, जिसपर जाकर फिर नहीं लौटना है। कुमुद वन लहरा रहा है, पवन झकोरे ले रहा है। पपीहा पिउ-पिउकी रट लगाये बैठा

है। कोयल कुहक रही है। अब आम मञ्जरी नहीं; अब तो आम पककर गिरने ही वाला है।' और वैशाख शुक्ल पञ्चमी गुरुवार, दिनांक ४ मई, १९९५ को वृन्दावनमें उनकी देह ब्रज रजमें मिल गयी।

ललित किशोरीका सपना साकार हुआ—

चूर चूरै ह्वै ब्रज रज मिलिये, यह ही शोभा सारी है।

एक बार वृन्दावनमें कान्ता-भाव-सिद्ध भक्तिमती गिरिजादेवी रमण रेतीमें बाबा गौरांगदासजीके दर्शनोंके लिये गयीं। अनेक भक्तगण उपस्थित थे। जब गिरिजादेवी दर्शन कर लौटीं, तो उस स्थानकी रजको, जहाँ वे बैठी थीं, बाबाने अपने माथेपर लगा लिया।

किसीने पूछा—बाबा! आपने ऐसा क्यों किया?

बाबाने कहा—मैंने वही किया जो उद्धव, नारद, ब्रह्मा आदि करते आये हैं; जो स्वयं श्रीकृष्णने किया है। वह कोई साधारण स्त्री नहीं थी।

ऐसी ही परम असाधारण दिव्य-भावस्वरूपा कृष्णकान्ता रुक्मिणी बाईकी जीवन-धाराकी मधुर लहरियोंका उच्छलन इस पुस्तकके पृष्ठोंपर है। जो सभीको प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्णके दिव्य रसका आस्वादन करायेगा।

मङ्गलमय भगवान्से विनीत प्रार्थना है कि हम सभी आर्तजनोंको दिव्य भावस्वरूपाका यह वृत्त राधाकृष्णके दिव्य रसका आस्वादन कराये।

डॉ० विश्वम्भर शरण पाठक

॥ श्रीराधा ॥

वृन्दावन कलानाथौ, हृदयानन्दवर्धनौ।
सुखदौ राधिका कृष्णौ भजेऽहम् कुँजगामिनौ॥

श्रीमहिला संघ भागलपुरको सजाने सँवारने तथा महिलाओंकी अध्यात्मिक उन्नतिका पथ प्रशस्त करनेवाली उनकी प्राणसर्वस्व विभूति बहन रुक्मिणी बाईके जीवनको प्रकाशित करनेका अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य संस्थाने किया है। इस अलौकिक देवीके आविर्भावसे लेकर स्वधाम गमन पर्यन्ततकको विविध घटनाओंका संकलन करके उसे क्रमसे सजाया भी है। परन्तु इनके आश्रित साधकजन तथा निकटवर्ती सभी लोग यह स्वीकार करते हैं कि वह इस जगतकी वस्तु ही नहीं थीं। इनकी स्वरूप-स्थिति तथा उपलब्धियोंका वाणी या लेखनीसे यथावत् आँकलन कर पाना सम्भव नहीं है।

जिस प्रकार समुद्रमें तैरनेवाले बृहद आकारके विशाल हिमखण्डका एक दशांश मात्र तलपर दिखायी देता है और शेष भाग जलमें डूबे रहनेके कारण दृष्टिगोचर नहीं हो पाता, वैसे ही भगवदीय लीला-रस-सागरमें आकण्ठ निमज्जित इस विलक्षण विभूतिके रहस्यमय जीवनमें ज्वारके समान उठनेवाली भाव-तरंगोंके उद्वेलनको देखकर कुछ अनुमान भले ही लगा लिये जायें, पर समग्र स्वरूपको हृदयंगम कर पाना सहज नहीं है। शाखा चन्द्र न्यायसे इंगित कर चन्द्रको दिखा भले ही दिया जाये, पर चन्द्रमा है अत्यन्त दूर।

पूज्या रुक्मिणी बहनके जीवन चरित्रकी भूमिका मुझसे ही लिखवानेका बहन मीराका बार-बार आग्रह रहा है। मेरी शुरूसे ही लेखन आदिमें विशेष रुचि नहीं रही है और मनको बहुत समझा-बुझाकर संयत करके ही मैं लेखनीको उठा पा रहा हूँ। बहन मीराकी पूज्या बाईके प्रति निष्ठा, अपार श्रद्धा व प्रत्येक सद्कार्यमें मेरी रायका आदर करनेकी उसकी सहज प्रवृत्ति देखकर मैं कुछ लिखूँगा अवश्य, पर यह सर्वथा आवश्यक नहीं है कि अध्यात्मिक विभूतियोंकी जीवनीकी भूमिका तदनुरूप ही हो। फिर भी कुछ लिखूँ इसके पीछे मेरा मात्र इतना मनोरथ है कि ''प्रिया-प्रियतम'' के दिव्य भाव राज्यमें

विचरनेवाली सहचरीके मधुर स्मरण-चिंतनसे स्वयंको पवित्र कर लूँ।

परम रसिक सिद्ध संत गीतावाटिकाकी विभूति द्वय परम पूज्य बाबूजी (भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) एवं परम पूज्य राधा बाबा (स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराज) जिनको बाई क्रमशः अपना गुरुदेव व सगा भाई मानती थी; साथ ही इन्हें अपनी साधना व अध्यात्मिक पथका पथ-प्रदर्शक भी मानती थीं। इन्हीं संत द्वयकी गोदमें खेलकर मैं बड़ा हुआ हूँ। अपने गोरखपुर प्रवासके समय मैंने इन महापुरुषोंके पास बाईको अनेक बार आते-जाते तथा चर्चा करते देखा है तथा वहाँके साधक भाई-बहनोंसे भी इनके विषयमें बहुत कुछ सुना है। यद्यपि पुरुषोंसे मिलने-जुलने व सत्संग चर्चा न करनेके इनके कठोर नियमके कारण साथ बैठकर इष्ट गोष्ठीके प्रसंग नहीं आये, तो भी बाईके श्रीवृन्दावन धाम वासके समय इनको और अधिक निकटसे देखने-सुनने व वार्तालापके अवसर प्राप्त हुए। पुरुषोंसे न मिलनेके इनके कठोर नियमका अपवाद थे ब्रज-भूमिके श्रेष्ठ संत, जिनके दर्शनोंको ये यदा-कदा जाया करती थीं। उन रसिक संत विभूतियोंमें हमारे पूज्य श्रीमहाराजजी भी थे। पूज्य श्रीमहाराजजीका चरणाश्रित व छायाकी तरह नित्य उनके साथ रहनेके कारण सत्संग चर्चा व परस्परके स्नेहालाप सुननेका सौभाग्य भी मुझे सहज रूपसे मिलता रहता था। परम पूज्य बाबा एवं परम पूज्य श्रीमहाराजजीके प्रगाढ़ भाव सम्बन्धोंके कारण बाईसे और अधिक निकटता बढ़ी और समय-समयपर उनसे विचार-विमर्श भी होने लगा। ब्रजवासकी उनकी अवधिमें उनकी दिव्य रहनी तथा भाव-गरिमाका मैं साक्षी हूँ। उनके अंतिम क्षणोंमें मैंने उन्हें निकटसे देखा है। इसके अतिरिक्त उनके लीला-संवरणके पश्चात् उनके विषयमें प्रकाशित साहित्यको भी पढ़नेका सुअवसर प्राप्त हुआ है। इन सबसे मैंने उनके दिव्य जीवनके सम्बन्धमें कुछ धारणाएँ बनाई है, जिनकी पुष्टि भी इस जीवनीमें यत्र-तत्र दिखायी देती है; पर यह सब देख-पढ़कर भी यही लगता है कि बहन रुक्मिणीके अलौकिक जीवनको व्यक्त करनेकी सामर्थ्य भाषामें नहीं है। श्रीराधामाधवके मधुर भाव-राज्यमें विचरने वाली हंसिनी, रसिकनी बहन रुक्मिणीका सम्पूर्ण जीवन, अनेक-विध रहस्योंसे आच्छादित है। इसकी स्वरूप स्थितिको समझ पाना सहज कार्य नहीं है। इनके अनेक परस्पर विरोधी गुणोंकी

गणना या उल्लेख करते समय वाणी लड़खड़ाने लगती है तथा 'तदपि तव गुणानाम् पारं न याति' कहकर अपना पिण्ड छुड़ा लेती है।

इनकी करुणा, प्रेमभाव तथा औदार्यकी गाथाओंकी चर्चाको विराम देनेमें कठिनाई होती है, क्योंकि बहुत कुछ कहने-सुननेको शेष रह ही जाता है। इनके अद्भुत सामर्थ्यकी थाह ही नहीं मिलती है। अनेकानेक असाध्य कार्योंको इन्होंने अपनी इच्छा शक्ति व संकल्प शक्तिसे चुटकी बजाते-बजाते सम्पन्न कर दिया था। इनके निजी जीवनमें साधनाका कोई विशिष्ट इतिहास न रहनेपर भी इनको उच्च कोटिके साधकोंकी गंभीर समस्याओंका समाधान करते तथा उनका मार्ग दर्शन करते देखकर आश्चर्य होता था। उपरोक्त सभी विषयोंपर इस जीवनीमें पर्याप्त प्रकाश डालनेपर भी यह कहे बिना नहीं रहा जाता कि इस विलक्षण व्यक्तित्वका इतिवृत इतना मात्र नहीं है अभी इनके विषयमें और भी बहुत कुछ कहा-लिखा जा सकता है।

यह शील तथा मर्यादाकी साक्षात् प्रतिमा श्वेत वस्त्रोंमें नमित नयन होकर जब श्रीमन्दिर-दर्शन, संत-मिलन अथवा श्रीयमुनाजी-आँचवन करने जाया करती थीं, तो अपने चहुँ ओर सर्वत्र पवित्रता तथा श्रद्धाका वातावरण सृष्ट करते हुए चलती थीं। यमुना पुलिनपर इनकी शान्त तथा सौम्य मुद्रा सहज ही आगन्तुकोंके मनमें आदरका उन्मेष कर देती थी। इनका निश्चल तथा निष्पन्द कलेवर एक ही आसनपर घण्टोंतक निर्निमेष रह जाता था और बाई अपने लीला राज्यमें प्रविष्ट हो इतनी दूर निकल जाती थीं कि देशकालकी सीमाओंका भान ही नहीं रहता था। ये समाधि लगाती नही थी, समाधि स्वयं इन्हें लग जाती थी। भाव व तल्लीनताकी इस स्थितिमें देहका निर्वाह कौन करे, भाव सागरमें उठनेवाली उत्ताल तरंगोंसे कम्पित देहके सम्बन्धमें कई बार यह आशंका होने लगती थी कि देह इस भावोद्दीपनको सह भी पायेगा अथवा नहीं! घोर शीतकालमें भी श्रीयमुनाजीके ठंडे जलमें अत्यन्त सुखपूर्वक घण्टों-घण्टों आकण्ठ पूर्ण डूबे हुए स्नान करते रहना उनका सहज स्वभाव था।

प्रस्तुत जीवनीमें यह भी वर्णित है कि यह सौम्य आकृति जब प्रियतम श्रीकृष्ण, प्रियाजी अथवा सखियोंके भावसे भावित होकर भावके अनुसार वस्त्रालंकारोंसे स्वयंको सुसज्जित करनेके लिये निर्देश देती थीं और उस सरस

वेशमें उनके पगोंकी पायल झनक उठती थी, तो रूप-लावण्यकी वह थिरकती हुई प्रतिमा अपने हाव-भाव कटाक्षसे एक अभिनव मादकताका वातावरण सृष्ट करती हुई अपने साथ-साथ सभीको नृत्य करनेके लिये विवश कर देती थी। कुञ्ज-निकुञ्ज, रास आदि सरस लीलाओंका अनुकरण सहज रूपमें होने लगता था। यह क्रम कई-कई रात्रियोंतक चलता रहता था। नित नये-नये आवेशोंके कारण लीलाओंकी नूतनता सदा बनी रहती थी, जिसकी मस्ती उनके मन-प्राणपर छायी रहती थी। ये देह सुधि भूली-सी चलते-फिरते, उठते-बैठते आगामी लीला सुख स्फुरणमें रहती थीं।

श्रीमहिला संघ, भागलपुरके परिसरका 'नव वृंदावन' नामकरण कर तथा वहाँ लीला-स्थलियों, कुञ्ज-निकुञ्जों, श्रीविग्रहोंकी प्रतिष्ठा कर बाईने ऐसा दिव्य वातावरण सृष्ट किया है जिससे वहाँपर रहनेवाली प्रत्येक बहनके मनमें यह भाव सुदृढ़ रूपसे अंकित हो गया है कि 'हम भी उसी लीला-जगतकी हैं तथा भविष्यमें हमारा पर्यवसान भी सखी-स्वरूपमें होना सुनिश्चित है।'

युगलकी इस नित्य सहचरीके विशुद्ध सत्वमय कलेवरमें दिव्य-लोककी कितनी ही सहचरियोंके भावों-अनुभावोंकी अभिव्यक्तिके साथ-साथ सरस, सुललित ब्रज भाषाके प्रयोगकी बात भी जीवनीके पृष्ठोंपर अंकित है। इनके शैशवसे लेकर स्वधाम पधारनेतक प्रियतम नंदनंदनकी इनके साथ छेड़-छाड़, लाड़-प्यार तथा सँभालके विषयमें भी बहुत कुछ लिखा गया है। ब्रजभाव, ब्रजभूमि, ब्रजरज, ब्रजवासियों, ब्रजके भक्तों एवं ब्रजकी अधिष्ठात्री श्रीराधारानीके नामके प्रति बाईके सहज अनुरागको शब्दोंमें व्यक्त नहीं किया जा सकता है। यह बात भी सर्वांशमें पुष्ट हो जाती है कि दिव्य निकुञ्ज राज्यकी सहचरी इस धराधामपर वर्तमान कालके ब्रजरस सिद्ध संतोंके दर्शनोंका लोभ सँवरण न कर सकी और श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीके अनुग्रह प्राप्त कुलकी बालिकाके रूपमें हमारे दृष्टि पथपर आयी। यह भी दृष्टव्य है ही कि इन संतों (परम पूज्य श्रीभाईजी एवं परम पूज्य बाबा) के स्वधाम गमनके कुछ समय बाद ही यह भी निजलोकको गमन कर गयीं।

ब्रजकी इस अपूर्व निधिके प्राण ब्रजमें ही बसे रहते थे। श्रीबाँकेबिहारी एवं श्रीराधावल्लभलालको मुग्ध भावसे निहारनेकी मुद्रा और रसलीन भंगिमा

संगकी सखियोंको गुदगुदा देती थी। बरसाना जातीं तो अपने पीहर आनेकी बात कहकर प्रफुल्ल और चंचल हो उठती थीं। जब नन्दगाँव पहुँचतीं तो परिवर्तन होते देर नहीं लगती थी। वहाँ कुछ गम्भीर हो जातीं नेत्रोंमें सकुचाहट और मनमें ललचाहट लिये नन्दगाँवकी पावन भूमिको दोनों अँजलि बाँधकर प्रणाम करती थीं, वे देह-सुधि भूल किसी अप्राकृत चिन्मय राज्यमें खो जाती थी। गोवर्धन जानेपर स्वयं भी आनन्दित होतीं और साथके अन्य मिलने-जुलनेवालोंको परिक्रमा करनेकी प्रेरणा देती थीं। मानसी गंगाके तटपर घण्टों बैठी रहती थीं। ऊँचे गाँव (श्रीललिता जूका गाँव) में एक बार बिना अन्य किसीको सूचना दिये चुपचाप पहुँच गयीं। वहाँ अकेली ही ब्रजवासिनी महिलाओंके साथ नृत्यगानमें मग्न हो गयीं। इनके ब्रज प्रेमके विषयमें बहुत कुछ लिखा जा सकता है।

बहिन रुक्मिणीके स्वरूप स्थितिकी भूरि-भूरि प्रशंसा परम पूज्य श्रीभाईजी एवं परम श्रीबाबाके अतिरिक्त स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज जैसे दिग्गज संतोंने भी की है। परम पूज्य श्रीमहाराजजीके श्रीमुखसे भी मैंने बाईके विषयमें बहुत कुछ सुना है। यह सभी संत ब्रजभावके निभ्रान्त एवं रस मर्मज्ञ संत माने जाते हैं। इस जीवनीमें पूज्य श्रीभाईजीके हाथसे लिखे गये पत्रको यथावत उद्धृत करके किसी प्रकारके छिद्रान्वेषणकी संभावनाको ही समाप्त कर दिया गया है। परम पूज्य भाईजीके आदेशको शिरोधार्य करके इन्होंने अपने स्वरूपका गोपन करके, केवल महिलाओंमें ही भगवद्भाव वितरण करके तथा मधुर भाव, रस-चर्चा व लीला अनुकरणकी नीतिका अवलम्बन करके स्तुत्य कार्य किया है। पूज्य श्रीभाईजीकी भाव सम्पदाको सहेज कर उसके उन्मुक्त वितरणका कार्य महिलाओंमें करनेका श्रेय बहिन रुक्मिणीको है। इन्होंने अपने दृढ़ संकल्प और प्रबल आत्म विश्वाससे अपने अद्भुत सामर्थ्यका परिचय देते हुए महिलाओंमें शक्ति संचार करके उनमें निर्भीकता, कार्य क्षमता व उत्साह भरकर इनसे बड़े-बड़े आयोजनोंको सम्पन्न कराया है। जिसे देखकर कर्तृत्त्व अभिमानी श्रेष्ठ व्यक्तियोंका अभिमान भी गलित होकर उन महिलाओंकी श्रेष्ठताको बरबस स्वीकार कर लेता है। ये शक्ति संचारके द्वारा लोगोंका रोग निवारण कर देती थीं, परन्तु स्वयं रुग्ण होनेपर शारीरिक कष्ट सहती रहती

थीं; अपने स्वास्थ्यके लिये किसी प्रकारका संकल्प-विकल्प नहीं करती थीं। यहाँतक किसी डॉक्टर वैद्यसे अपना नाड़ी परीक्षण भी नहीं कराती थीं। इतनी सहनशीलता व नियमोंमें दृढ़ता शायद ही कहीं देखनेको मिले।

बहन रुक्मिणी इस धराधामपर मात्र ५६ वर्षतक रहीं, परन्तु निज धाम पधारनेके पूर्व अपनी अनुगामिनी भोली-भाली बहनोंकी भाव-लताको सदैव सरसाये रखनेका पूरा बानक बना गयी हैं। विभिन्न व्रत-उत्सवोंको उल्लासके साथ मनाने और भोग-राग तथा पूजा अनुष्ठानका विधिवत् संस्कार डालकर एक स्वस्थ परम्पराका निर्माण कर गयी हैं। तुमुल ध्वनिसे नाम संकीर्तनके चमत्कारोंकी साक्षी तथा सहभागिनी बहनोंको उसका स्वाद भी लगा गयी है। स्वपूजित अर्चा विग्रह देकर अनेक परिवारोंको जीवनका आधार दे दिया है। उनके संकटोंका निवारण कर उन्हें भगवदोन्मुखी बनाया है।

करुणामयी बहन रुक्मिणीके प्यार व करुणाकी कथाएँ सुनकर नेत्र नम हो जाते हैं, हृदय भर आता है। राह चलते हुए मार्गमें नालीमें पड़ी हुई अनजान रुग्ण बुढ़िया माईको उठाकर उसकी सब प्रकारसे सँभाल करनेवाली, एक अपंग, हताश, निराश, अपरिचित बालाको अपनाकर उसके जीवनमें अमृत घोलकर आत्मविश्वासका सृजन करनेवाली, एक कैंसर रोगग्रस्त पति परित्यक्ता बालिकाको रोगमुक्त करके उसका सुहाग लौटानेवाली तथा आश्रमके एक सामान्यसे भृत्य तकको सद्गति देनेवाली इस अनूठी विभूतिकी करुणा व उदारताकी घटनाओंकी तालिकाका विवरण देना बहुत ही कठिन है। यह सब तो उसके कोमल स्वभावकी एक झलक मात्र है।

कृपा एवं प्यारकी विग्रह वह करुणामयी देवी! क्या उसके नामका अलख जगानेवाली, छायाकी तरह उसके साथ लगी रहनेवाली, उसकी प्रसन्नता और सान्निध्य सुखके लिये अपने लौकिक हितोंको अनदेखी करनेवाली, उसके कुँज-निकुँज तथा लीला स्थलको स्वच्छ तथा हरा-भरा रखनेके लिये तत्पर, उसके प्रिय राधा नामको उसे सतत् श्रवण करानेवाली उसकी कीर्ति पताकाको जगतमें फहरानेके लिये उद्यमशील रहनेवाली बहनोंको भुला पायेगीं? श्रीवृन्दावन धाममें उसकी अन्तिम इच्छाका सम्मान करनेके लिये अपने कंधोंपर उसकी निर्जीव देहको ढोकर सभीको चकित कर श्रीयमुनाके तटपर संस्कार

करनेवाली उन अपनी अनुगता बहनोंकी अनदेखी क्या वे कभी कर पायेगी? उनपर आश्रित अपनी अनुगता बहनोंको क्या वे अपने संग नहीं ले जायेगी? नहीं-नहीं! अवश्य ले जायेगी। इन अनुगता अपनी बहनोंकी मधुर प्रीति उसे इनका संग करनेको विवश कर ही देगी। अवश्य-अवश्य वह सभीको अपने प्रेम साम्राज्यकी संगिनी बनायेगी और मृदुल स्नेह-रस-धारासे सराबोर कर देगी।

प्रस्तुत जीवनीके रूपमें बाई स्वयं ही विराजमान है, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। समग्र साधक जगत इनके जीवन चरित्रके अनुशीलनसे अवश्य ही लाभान्वित होगा।

पूज्या बाईके सम्बन्धमें दो शब्द लिखकर मैंने अपने आपको पवित्र किया है। किम बहुना—

'जिहिं तिहिं भाँति गदाधर रसना करौं पवित्र'

घनश्याम ठाकुर

वेणु विनोद कुँज, (वृन्दावन)

॥ श्रीहरि: ॥

दो शब्द

आसेतु हिमालय-विस्तृत भारतवर्ष धर्म देश है और इस धर्म भूमिमें प्राचीनकालसे लेकर अबतक संतों-भक्तोंकी शृंखला अखण्ड है। संतत्वकी अखण्ड धाराके कारण ही भारतवर्षका आध्यात्मिक दृष्टिसे विश्वमें एक विशिष्ट स्थान है। भारतवर्षमें संतोंकी शृंखला अखण्ड अवश्य है, परन्तु उन संतोंकी साधना एवं सिद्धिके स्वरूपमें सीमातीत विविधता भी भारतीय अध्यात्मकी एक उल्लेखनीय विशेषता है। निराकारोपासना और साकारोपासना, साकारोपासनामें पंचदेवोपासना, पंचदेवोपासनामें श्री रामोपासना और श्रीकृष्णोपासना, इस प्रकार साधना-जगतमें अनेकानेक भेद-प्रभेद-उपभेद पाये जाते हैं।

साध्यकी प्राप्तिके लिये सर्वस्वार्पण कर देनेवाले संत-समुदायमें कुछ संत जन्मजात सिद्ध होते हैं, परन्तु वे साधनाके विभिन्न सोपानोंका आश्रय केवल इसीलिये लेते हैं कि शास्त्र-वाणीका महत्त्व जन मानसमें प्रतिष्ठित रहे और कुछ संत ऐसे होते हैं जो ज्ञानयोग-कर्मयोग-भक्तियोग-अष्टांगयोग आदि-आदि योगमतोंके द्वारा उपदिष्ट साधना-प्रणालीका आश्रय लेकर साधना करते-करते परमोच्च साध्यकी उपलब्धि कर लेते हैं।

इन सभी सिद्ध संतोंके व्यक्तित्वमें सीमातीत विविधता दिखलायी देती है। इन सिद्ध संतोंमें कुछका उत्कर्ष ऐसा क्रमिक और सहज होता है कि उनकी उपलब्धि जन साधारणके लिये सहज बुद्धि-गम्य होती है, परन्तु कुछ संतोंके जीवनमें ऐसे चमत्कार पूर्ण प्रसंग होते हैं, उन प्रसंगोंको साधारण तर्कसे प्रमाणित कर सकना नितान्त कठिन है। जिनका जीवन चमत्कारपूर्ण प्रसंगोंकी पुञ्ज है, ऐसे संतोंकी परम्परामें महिला भक्त दिव्यभावस्वरूपा रुक्मिणी बाईका नाम लिया जा सकता है। रुक्मिणी बाईके जीवनकी अनेक घटनाओंपर सहज विश्वास शीघ्र नहीं हो पाता, परन्तु वे घटनाएँ उनके जीवनमें घटी हैं। संतोंके जीवनमें पायी जानेवाली तर्कातीत घटनाओंकी चर्चा स्वयं पूज्य श्रीराधा बाबाने की है। अग्रलिखित उदाहरण दृष्टव्य है।

दक्षिणमें एक संत हुए थे ज्ञानदेवजी। उन्हींके समय एक योगी थे

चाँगदेव। वे सिंहपर सवारी करते थे। चौदह सौ वर्षकी उनकी आयु थी। प्रत्येक सौ वर्षपर जब मृत्युका समय आता, तब योगबलसे समाधिमें बैठ जाते और फिर सौ वर्षके लिये नया जीवन बना लेते। उनमें इतनी शक्ति थी। ज्ञानदेवजीके दो भाई थे तथा एक बहिन थी। सभी भगवत्प्राप्त पुरुष थे।

चाँगदेवके पास उनकी खबर पहुँची। बहुत लोग उनकी प्रशंसा करते। चाँगदेवको अभिमान था। वे सिंहपर चढ़कर उनसे मिलने चले। लोग तो बाहरकी देखते हैं। बाप रे! कितना बड़ा महात्मा है कि सिंहपर सवारी करता है। ज्ञानदेवजीसे लोगोंने बहुत कहा—महाराज! बहुत भारी महात्मा आ रहे हैं, अगवानीके लिये चले चलिये।

उस समय तीनों भाई-बहन एक टूटी हुई दीवालपर बैठे थे। भगवच्चर्चा हो रही थी। ज्ञानदेवजीने कहा—ठीक है। फिर वे दीवालसे बोले—री दीवाल! तू चल।

कहनेकी देर थी कि वह दीवाल जमीनसे उखड़कर चल पड़ी। चाँगदेवने देखा—बाप रे! आज तक योगके द्वारा मैं चेतन प्राणीको ही वशमें करके इच्छानुसार नचा सकता था, पर यह तो जड़पर भी शासन करता है।

उसी क्षण अभिमान टूट गया और चरणोंमें जा गिरा। उसी समय ६४ (अभंग) छन्दोंमें उनको ज्ञानदेवजीने संदेश दिया तथा राम नामकी महिमा बतायी कि भगवान्‌के नामके सामने ये सभी बातें तुच्छ है।

* * * *

इसी प्रकार चमत्कार पूर्ण जीवन था ग्वारिया बाबाका। वृन्दावनमें ग्वारिया बाबा थे। कुछ ही वर्ष पहले शरीर छूटा है। उनका विचित्र ढंग था। वे अपनेको श्यामसुन्दरका सखा मानते थे और सचमुच थे भी। उनकी विचित्र-विचित्र बातें सुननेमें आती है। दिनभर, पता नहीं, कहाँ-कहाँ घूमते रहते थे।

एक दिन रास्तेमें पड़े थे। रात्रिका समय था। कई चोर उस रास्तेसे जा रहे थे। चोरोंने पूछा—कौन हो?

वे बोले—तुम कौन हो?

उन सबने कहा—हम तो चोर हैं।

इन्होंने कहा—हम भी चोर हैं।

उन्होंने कहा—चलो, तब चोरी करें।

इन्होंने कहा—चलो।

सब एक ब्रजवासीके घरमें चोरी करने गये। वे सब तो चोर थे ही। उन सबने सामान बाँधना आरम्भ किया। ये कुछ देर तो खड़े रहे। फिर वहीं एक ढोलक पड़ी थी। उसे वे लगे जोरसे ढम-ढमा-ढम बजाने। घरके आदमी जाग गये। वे सब तो भागे, पर ये ढोल बजाते रहे। घरवालोंने आकर चार-पाँच डण्डे बाबाको लगाये। अन्धकार था। रोशनी जलायी तो देखा कि ग्वारिया बाबा है। उन सबको बड़ा दुःख हुआ कि महात्माको डण्डे मार दिये। घरवालोंने पूछा—बाबा! तुम आये?

वे बोले—चोरी करवे ताँई आये।

उन सबने पूछा—और कौन-कौन हते।

बाबा बोले—श्यामसुन्दरके सखा सब हते।

अब देखिये इन लोगोंको कैसी चेष्टाएँ होती हैं। ग्वारिया बाबा मरनेके कुछ दिन पहले बोले—अब नोटिस आ गयी है, अब नहीं रहूँगो।

मरनेके दो दिन बाद वहाँसे कुछ दूर एक भक्त था, उसके यहाँ गये और दूध पीया। बाबाका एक भक्त था। वह बड़ा बीमार था। वह रोने लगा—बाबा! या तो आप अच्छा कर दो या पास बुला लो।

बाबा स्वप्नमें आये। मरनेके दूसरे दिनकी यह बात है। उससे कहा—रोता क्यों है? चल हमारा उत्सव मनाया जा रहा है। चल देख।

फिर स्वप्नमें ही उसे ले गये। जो-जो था, दिखलाया। फिर उसे स्वप्नमें ही कहा—अमुक दिन तुम्हें ले जायेंगे।

नींद खुलनेपर उसने जाँच की। ठीक-ठीक जैसे उत्सव हुआ था, वैसे ही उसने स्वप्नमें देखा था और फिर उसी बतायी हुई तिथिको मर गया।

उपर्युक्त प्रसंग उद्धृत है 'प्रेम-सत्संग-सुधा-माला' पुस्तकसे, जिसको गोरखपुरके गीताप्रेसने प्रकाशित किया है और जो परम सिद्ध संत महाभावनिमग्न श्रीराधा बाबाकी एक उल्लेखनीय कृति है।

सिद्ध स्तरके संतों-महात्माओंके ये जीवन प्रसंग भले बुद्धि-ग्राह्य न हो, परन्तु वे हैं सर्वथा सत्य। आश्चर्यको भी आश्चर्य होता है यह जानकर कि इन्हीं श्रीज्ञानदेवजीने एक भैंसेसे वेद मंत्रोंका उच्चारण कैसे करवा दिया। इसी प्रकार भक्तिमती मीरा बाईको दिया गया विष कैसे अमृत बन गया; वैष्णव सम्प्रदायाचार्य स्वामी श्रीरामानन्दजी महाराजके प्रभावसे उपद्रवकारी

महात्माओंके कण्ठ-स्वर अजानके समय कैसे अवरुद्ध हो गये; भक्त नरसी मेहताकी हुण्डीका भुगतान साधुओंको कैसे मिल गया; श्रीचैतन्य महाप्रभु अपने आराध्य श्रीजगन्नाथके काष्ठ विग्रहमें सशरीर कैसे समा गये; ये अनेक प्रसंग सर्वथा अलौकिक और अद्भुत होते हुए भी भगवद्‌विभूतिके साकार स्वरूप महात्माओंके जीवनमें घटित हुए हैं। संत-साहित्य इस प्रकारके लोकोत्तर प्रसंगोंसे भरा पड़ा है। परम विस्मयमें डूबा देनेवाले इन सत्य प्रसंगोंको पढ़कर-सुनकर इन सिद्ध संतों-महात्माओंके सम्बन्धमें बस यही कहा जा सकता है 'सकल अमानुष करम तुम्हारे।' दिव्यभावस्वरूपा रुक्मिणी बाईके जीवन-प्रसंगोंके बारेमें भी यही कहा जा सकता है।

प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवके नित्य निकुञ्ज धामकी एक परमानुरागिणी स्नेहास्पदा अनुचरीका रुक्मिणी बाईके रूपमें सहैतुक अवतरण जितना विस्मयपूर्ण है उतना ही विस्मयपूर्ण है मातृ-सन्धिके विछिन्न हो जानेसे उनका तिरोभाव। अवतरणसे लेकर तिरोभाव तककी उनकी अनेक अद्‌भुत घटनाएँ ही इस पुस्तकके आगामी पृष्ठोंपर वर्णित है।

'जड़-चेतन गुण-दोषमय' जगतके मध्य रहकर भी जिनका तन-मन-जीवन अनुमानातीत अनघताका साकार स्वरूप था, जिनके गौर अंगकी कनक-कान्ति प्रिया-प्रियतम श्रीराधा माधवके प्रति होनेवाली अहैतुक अनन्य प्रीतिकी सतत संदेशवाहिनी प्रभा थी, नारी शरीर पाकर भी जिनका आद्यन्त अनाघ्रात यौवन वृन्दाविपिनविहारिणी कृष्णाह्लादिनी नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधारानीकी बिहारवाटिकाका मुस्कुराता हुआ परम पवित्र और परम प्रफुल्ल पुष्प था और जिनके द्वारा आजीवन और अनवरत भगवदीय भावोंकी सुरभिका प्रसार होता रहा ऐसी परमामलात्मा अनन्यानुरागिणी नित्यानन्दमयी दिव्यभावस्वरूपा रुक्मिणी बाईके जीवनके कुछ स्मरणीय-वन्दनीय चित्र इस पुस्तकके आगामी पृष्ठोंपर अंकित है।

॥ श्रीहरिः ॥

'श्रीरुक्मिणी बाई लीला-लहरियाँ' का निवेदन

इस पुस्तकके आन्तिम भागमें 'श्रीरुक्मिणी बाई लीला-लहरियाँ' प्रकाशित है। तुकबन्दियोंकी यह खिचड़ी, साहित्यिक रचना नहीं है। इसमें न तो छन्दों अथवा भाषाकी एक रूपता है और न ही मात्राओंकी समानता। खड़ी बोली, ब्रजभाषा, अवधी आदि सभीका प्रयोग किया गया है। वस्तुतः यह विज्ञजनों, साहित्यकारों एवं अन्यान्य श्रेष्ठ साधकोंके लिये लिखी भी नहीं गयी है, और न ही प्रचार-प्रसार ही इसका उद्देश्य है। यह तो हमारी (रुक्मिणी) बाईसे जुड़ी बहिनोंको बाईकी विविध प्रकारकी लीलाओंकी स्मृति दिलानेकी भावनासे प्रकाशित की गयी है। यदि इसे पढ़कर, गा-गुनगुनाकर प्यारी बाईकी मीठी याद फिरसे हरी हो जाय, उनके प्यार वात्सल्यकी चर्चासे आँखें कुछ गीली हो जायँ, भक्ति लताका जो बीज बाईने बोया है, उसे पनपाने-सरसानेके लिये यह जलका काम कर दे, मधुर प्रसंग पढ़कर प्रिया-प्रियतमके मधुर प्रेमराज्यमें, बाईके संग-संग अपने मनमें भी रमने लगे, पुरानी स्मृतियाँ, थिरकने-नाचनेकी प्रेरणा दें, मुँह लटकाये चेहरोंपर मुस्कान छा जाये, करूण-विदाईका प्रसंग पढ़कर नेत्र झर पड़े, मन गुहार लगे कि अब तेरे बिना जीवनमें रस नहीं रहा, अब तो पास बुला लो प्यारी। बाईने भगवान्‌की ओर जानेके जिस पथको हमारे लिये सुगम बनाया है उसपर बढ़ चलें, नाम-गान और सेवा-अर्चामें रुचि बढ़ी तो किसीका लिखना और छापना सार्थक हो जाय।

इसका नाम भी रखा गया 'श्रीरुक्मिणी बाई लीला-लहरियाँ'। नामसे ही स्पष्ट है कि यह अधिकृत जीवनी नहीं है। भाव भरी लीला है। 'लीला' शब्द ही—ध्वनित करता है कि इसका सम्बन्ध भगवान्‌से है। यह किसी हाड़-माँसकी पुतली, किसी मानवीका इतिवृत्त नहीं है। यह श्रीभगवानके

किसी अत्यन्त प्रिय निजजनके अलौकिक जीवन तथा सद्कार्योंकी गाथा है।

हमारी आस्था है कि हमारी बाई इस भूतलकी नहीं थीं। प्रिया-प्रियतमके दिव्य निकुंजकी सहचरी ही हमारे उद्धारके लिये यहाँ पधारी थीं। इसका प्रमाण केवल है हमारा विश्वास। परन्तु प्रश्न यह है कि निकुंजका लीला-सुख छोड़कर वे धरा-धामपर आयी ही क्यों और कैसे? निकुंजकी सखियोंको उनका साथ छूटना कैसा लगा? वे रस लम्पट, उनकी प्रिया और सखियाँ बाईके शैशवसे लेकर अन्ततक उनके आगे पीछे क्यों डोलती रहीं? बाईने हमसे लिया क्या? और हमें दिया क्या? इन्हीं प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिये निकुंजमें प्रेम कलहकी मौलिक उद्भावनाकी गयी है। इससे लीलाकी सरसता और माधुर्यमें भी अभिवृद्धि हुई है और यह कल्पना सर्वथा आधार रहित भी नहीं है। समय-समयपर बाईने स्वयं इस तथ्यकी पुष्टि भी की है।

प्रत्येक छंद नित्य प्रति एक नवीन लीला चिंतनके लिये आधार उपलब्ध कराता है। हम इन लीलाओंमें सम्मिलित रही हैं। इनको प्रत्यक्ष इन आँखोंसे देखा है इसमें मनका रमना सहज है, क्योंकि यह आप-बीती है। प्रत्येक प्रसंग बाईकी मधुर स्मृति दिलाता ही है। विशेष अंशोंको गीत-संगीतकी धुनमें गाया भी जा सकता है। उल्लास हो तो मिल जुलकर अनुकृति भी की जा सकती है।

इसे चोपड़ा भैया (श्रीभीमसेनजी चोपड़ा) ने हमारे पास लिख कर भेजा है, वे बाईके अपने ही हैं। हम उनके आभारी हैं। उनपर बाई एवं राधा-माधवकी कृपा बरस पड़े, यही मंगल कामना है।

भवदीया

मीरा

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूचि

'श्रीरुक्मिणी बाई लीला लहरियाँ' की विषय-सूचि



दिव्य भाव स्वरूपा श्री रूक्मिणी बाई

॥ श्रीराधा ॥

श्रीरुक्मिणी बाई जीवन-चरित्र

श्रीशुक्ल परिवारमें आविर्भाव

बिहार प्रान्तके भागलपुर जिलेमें नाथनगर नामक एक ग्राम है। वहाँ श्रीछेदीप्रसादजी शुक्ल नामक पण्डित निवास करते थे। वे दो बहिन और तीन भाई थे। बचपनसे ही पण्डितजी अत्यन्त सात्त्विक प्रकृतिके थे। संसारके प्रति अत्यन्त विरक्ति उनके स्वभावगत थी। आजीवन ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए साधनामय आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करनेका उनका दृढ़ संकल्प था। इसी संकल्पका सहज परिणाम था कि सोलह वर्षकी आयुमें ही वे घरसे बाहर चुपचाप निकल पड़े और तीर्थ यात्राके लिये चल दिये। कई वर्षोंतक वे भारतके सभी तीर्थोंमें भ्रमण करते रहे। भ्रमणके अन्तिम चरणमें कलकत्तेकी श्मशान भूमि 'भूतनाथ घाट' पर निवास करते हुए आप मातृ-उपासनामें तल्लीन हो गये। छः मासके पश्चात् इन्हें स्वप्नमें आदेश हुआ—कालीघाट पर स्थित माँ कालीके मन्दिरमें जाकर मातृ-अर्चना करो।

कालीघाट पहुँचकर इन्होंने गंगा स्नान किया और एक डाली खरीदी,

जिसमें पूजाकी सब सामग्री थी। ज्यों ही वे गर्भगृहके पास अर्चनाके लिये पहुँचे, उसी समय एक श्वेतकेशी, परमतेजस्वी, श्यामवर्णा एवं रक्ताम्बरा वृद्धा माताजी इनके पास आयी और इनकी डालीमेंसे दो रसमुनिया (छोटी-छोटी आकृतिका लाल रसगुल्ला) उठाकर अपने मुखमें रख लिया। इन्होंने उसका कोई प्रतिकार तो नहीं किया, परन्तु मनमें यह भावना तो आ ही गयी कि यह डाली अब उच्छिष्ट हो चुकी है। उन्होंने उस उच्छिष्ट डालीको गंगाजीमें प्रवाहित कर दिया। पुनः गंगा स्नान करके उन्होंने नवीन डाली खरीदी और डाली अपने हाथमें लिये-लिये वे गर्भ गृहके पास आये। अबकी बार भी वही वृद्धा माताजी आयीं और पुनः दो रसमुनिया उठाकर मुखमें डाल दिया। इन्होंने उस डालीको भी पहले की तरह गंगाजीमें प्रवाहित कर दिया। तीसरी बार गंगा-स्नानोपरान्त फिर एक डाली लेकर दृष्टि नीचे किये हुए ये गर्भ गृहकी ओर बढ़ रहे थे, उसी समय वे वृद्धा माताजी पुनः इनके पास आयीं और इनके गालपर जोरसे एक चपत लगाकर झिड़कते हुए स्वरमें बोली—मैं बार-बार तुम्हारे सामने आती हूँ, तुम्हारी पूजा स्वीकार करती हूँ और तुम मुझे पहचान नहीं रहे हो। जाओ, घर जाकर विवाह करो और गृहस्थाश्रम धर्मका पालन करो।

इस आदेशको सुनते ही इनकी दृष्टि ऊपर उठी तो उन्हें उन पूज्या वृद्धा माताजीके स्थानपर साक्षात् भगवती माँ कालीके पावन दर्शन हुए। उनके परम पावन शुभ दर्शनके आनन्दमें चपत लगनेकी झुँझलाहट सर्वथा खो गयी और दर्शनके आनन्दमें निमग्न हो गये। तभी इनके कानमें शब्द पड़ा 'विवाह'। इन्होंने चौकते हुए प्रश्न पूर्ण स्वरमें पूछा—क्या कहा? विवाह?

माँ कालीने अपनी दृष्टि द्वारा विवाहका अनुमोदन किया और आश्वासन देते हुए कहा—वत्स! मैं हमेशा तुम्हारे साथ रहूँगी।

इस आश्वासनको सुनकर ये विभोर हो उठे और भावाधिक्यमें संज्ञा-शून्य होकर वहीं गिर पड़े। बहुत देर बाद ये प्रकृतिस्थ हुए। ये नित्यवन्दनीया माँ कालीके आदेशानुसार नाथनगर अपने घरपर आ गये एवं आपने गृहस्थ जीवन स्वीकार किया।

आजीविकोपार्जनके लिये इन्होंने अमर औषधालयके नामसे एक दवाखाना खोल लिया। चिकित्सा कार्यसे जो द्रव्यार्जन होता, उसीसे परिवारका भरण-पोषण होता। इसके अतिरिक्त आप समय-समयपर श्रीमद्भागवत महापुराणकी सप्ताह

कथा भी कहने लगे। एक बार वे चम्पानगरकी महारानीके निमन्त्रण पर उनके स्टेटमें भी कथा कहने गये थे। उसमें इन्हें आशातीत द्रव्यकी प्राप्ति हुई।

आपकी सहधार्मिणी हिमाञ्चला देवी भी अत्यन्त सरला, भक्त हृदया और शीलवती थीं तथा पतिदेवकी रुचिका सर्वथा अनुमोदन-अनुगमन करनेवाली थीं। गृहस्थ जीवन स्वीकार कर लेनेके कई वर्षों बाद सं० १९९६ वि० भाद्र कृष्ण ४, शनिवार २ सितम्बर १९३९के शुभ दिन प्रथम संतानके रूपमें जिस कन्याका जन्म हुआ, उसका नाम रुक्मिणी रखा गया और वह बालिका ही भविष्यमें दिव्यभावस्वरूपा रुक्मिणी बाईके रूपमें विख्याति पाकर सर्ववन्द्या हो गयी।

पारिवारिक ज्योतिषीजीने इनकी जन्म कुण्डलीमें स्थित ग्रहोंको देखकर यही बतलाया—ग्रहोंकी उच्च स्थितिको देखकर यही लगता है कि यह बालिका अवश्य ही योगच्युत है। यह लगभग बारह-तेरह वर्षकी आयुतक माता-पिताके पास रहेगी। विधिके विधानसे इसके विवाहका संयोग अपने आप ही संघटित हो जायेगा। यह बड़ी भक्तिमति होगी। सेवा-निष्ठा होनेसे इसका जीवन सराहनीय होगा। इससे माता-पिताको सुकीर्ति मिलेगी। अनेक गुणोंसे युक्त होनेके कारण यह बहुत यशस्विनी होगी। समाजमें इसका बड़ा आदर होगा।

जन्मांग विचार

नाम—रुक्मिणी

पिता—पं० छेदीप्रसादजी शुक्ल

माता—श्रीमती हिमाञ्चला देवी

जन्मतिथि—सं० १९९६ वि० भाद्र कृष्ण ३ उपरान्त ४
शनिवार तदनुसार २ सितम्बर १९३९ ई०

जन्मस्थान—नाथनगर (भागलपुर) बिहार
भागलपुर—क-अक्षांश-२५°-१५' उत्तर
ख-देशान्तर-८६-५८' पूरब

सूर्योदय—५/४०'/३०'' स्थानीय समयानुसार

सूर्यास्त—१८/१९'/४५'' स्थानीय समयानुसार

भारतीय मानक समयसे स्थानीय समयका अंतर—(+१७'-५२'')

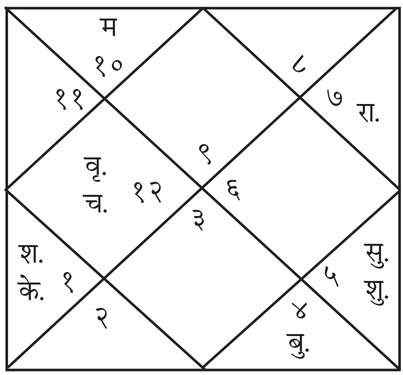
जन्म समय—प्राप्त जन्म कुण्डलीके अनुसार—

सूर्योदयादिष्टम्—२१/५७/३०

गर्भ कुण्डलीसे शोधित जन्म समय—दोपहर-१३/२०'/००''I.S.T

दोपहर-१३/३७'/५२''L.M.T

जन्मांग चक्रम्



इस कुण्डलीका विवेचन ज्योतिषके सर्वमान्य प्रकाण्ड विद्वान् श्रीमार्कण्डेय भट्टाद्रि (उपनाम मन्त्रेश्वर) द्वारा प्रणीत ग्रंथ फलदीपिकाके अनुसार हुआ है। इस ग्रन्थका ग्यारहवाँ अध्याय 'स्त्री जातक' विशेष रूपसे सहायक सिद्ध हुआ है। वैसे दसवाँ अध्याय तथा छठवाँ अध्याय भी बड़ा उपयोगी रहा है।

१. *शुभक्षेत्रांशेऽस्ते सुभगजघना मङ्गलवती,*
विधाः सत्संबन्धेऽप्युदयसुखयोः साध्व्यतिगुणा।
त्रिकोणे सौम्याश्चेत्सुखसुतसंपद्गुणवती,
बलोना: क्रूराश्चेद्यदि भवति बन्ध्या मृतसुता॥

(फलदीपिका अ० ११ श्लोक० ५)

यदि स्त्री जातककी कुण्डलीमें लग्न, चतुर्थ और चन्द्रमाका शुभ ग्रहोंसे सम्बन्ध हो तो वह सच्चरित्रा, अनेक गुणोंसे युक्त होती है। इस कुण्डलीमें लग्न शुभ ग्रह बृहस्पतिकी राशिका है। चतुर्थ भी बृहस्पतिकी राशिका है, जिसमें बृहस्पति बैठे हैं। चन्द्र भी चतुर्थमें बृहस्पतिकी राशिमें बृहस्पतिके साथ है। इस कुण्डलीमें यह योग है।

२. त्रिकोण (५, ९) में निर्बल या क्रूर ग्रह हो तो स्त्री संततिहीन होती है। पाँचवे घरमें शनि और केतु हैं और नवममें सूर्य और शुक्र है, जिसमें शुक्र अस्त है। नवांश कुण्डलीमें भी पंचममें सूर्य तथा अस्त शुक्र है और नवममें राहु है। यहाँ यह योग भी है।

३. *चन्द्रे भौमगृहे कुजादिकथितत्रिंशाशकेषु क्रमात्,*
दुष्टा दास्यसती सुशीलविभवा मायाविनी दूषणी।
शुक्रर्क्षे बहुदूषणान्यपतिगा पूज्या सुधीर्विश्रुता,
क्षेंछद्मवती नपुंसकसमा साध्वी गुणाढ्योत्सुका॥
स्वच्छन्दा भर्तृघातिन्यतिमहितगुणा शिल्पिनी साधुवृता,
चान्द्रे जैवे गुणाढ्या विरतिरतिगुणा ज्ञात शिल्पातिसाध्वी।
मान्दे दास्यन्यसक्ताश्रितपतिरसती निष्प्रजार्थार्किभे स्याद्,
दुर्भाया दीनवृता धरणिपतिवधूः पुंविचेष्टान्यसक्ता॥
शशिलग्नसमायुक्तैः फलं त्रिंशांशकैरिदम्।
बलाबलविकल्पेन तयोरेवं विचिन्तयेत्॥

(फल दीपिका अ० ११ श्लो० ६ से ८)

बली चन्द्रमा मीन राशिमें है और शनिके त्रिंशांशमें है, जो स्त्रीको पुरुष-संगकी इच्छासे सर्वथा रहित बनाता है। बृहस्पति स्वराशिमें और स्व त्रिंशांशमें है, जो स्त्रीको गुणशालिनी बनाता है। यह योग है।

४. *चन्द्रास्तोदयभाग्यपाः सह शुभैः सुस्थानगा भास्वराः,*
पूज्या बन्धुषु पुण्यकर्मकुशला सौन्दर्यभाग्यान्विता।
भर्तुः प्रीतिकरी सुपुत्रसहिता कल्याणशीला सती,
तावद्भाति सुमङ्गली च सुतनुर्यावच्छुभाढ्येऽष्टमे॥

(फल दीपिका अ० ११ श्लो० १०)

यदि लग्नेश, सप्तमेश, नवमेश और चन्द्राधिष्ठित राशियोंके स्वामी शुभ ग्रहोंके उत्तम स्थानोंमें हों और अस्त न हो तो स्त्री भाग्यशालिनी, सुन्दरी, बन्धुओंमें पूज्य और पुण्य कर्म करनेमें कुशल, कल्याणशीला, सच्चरित्रा होती है। इस कुण्डलीमें लग्नेश बृहस्पति है, सप्तमेश बुध है, चन्द्रमा भी बृहस्पतिकी राशिमें है। कोई भी ग्रह अस्त नहीं है। यह योग है।

५. स्त्रीकी कुण्डलीमें अष्टम भावपर जितने अधिक शुभ ग्रहोंकी दृष्टि

होगी वह उतने ही अधिक कालतक सौभाग्यवती रहेगी। इसके विपरीत होनेपर विपरीत फल होता है।

इस कुण्डलीमें शनि प्रभावित मंगलकी पूर्ण नीच दृष्टि अष्टम भाव पर है। साथ ही अष्टम भाव राहु एवं केतुसे केन्द्रस्थ है। चलितमें बुध भी अष्टम भाव छोड़ देता है। इस प्रकार जातिकाको बलवान वैधव्य योग बनता है, जो शीघ्र पतिसे वियुक्त करना है। साथ ही अष्टमेश चन्द्रयुक्त बली बृहस्पतिकी पूर्ण दृष्टि भी अष्टम पर है, जो आध्यात्मिक दृष्टिसे उसे सौभाग्यवती भी बनाती है। दोनों ही योग घटित है।

६. *शुभाधिपयुतेक्षिते सुतकलत्रभे लग्नतो,*
विधोरपि तयोः शुभं त्वितरथा न सिद्धिस्तयोः।
सिताव्ययसुखाष्टगैः खरखगैरसन्मध्यगे,
सितेऽप्यथ शुभेतरेक्षितयुते च जायावधः॥

(फल दीपिका अ० १० श्लो० १)

शुक्र यदि पाप ग्रहोंसे युक्त या दृष्ट हो तो वैधव्य योग बनता है। इस जातिकाका नवमस्थ शुक्र सूर्यसे युक्त तथा अस्त भी है, साथ ही द्वितीयस्थ मंगलसे भी दृष्ट है। यह योग है।

७. *अस्ते वास्तपतावसद्ग्रहयुते दृष्टेऽप्यसन्मध्यगे।*
नीचारातिगृहेऽर्ककान्त्यभिहते ब्रूयात्कलत्रच्युतिम्।
कामे वा सुतभाग्ययोर्विकलदारोऽसौ सपापे भृगौ।
शुक्रे वा कुजमन्दवर्गसहिते दृष्टे परस्त्रीरतः॥

(फल दीपिका अ० १० श्लो० ४)

यदि सप्तम घर या सप्तमका स्वामी पाप ग्रहसे युक्त या दृष्ट हो तो वैधव्य योग बनता है। सातवें घरपर केतु प्रभावित शनिकी पूर्ण दृष्टि है और सातवें घरके स्वामी शत्रु राशिस्थ बुधपर पाप ग्रह मंगलकी पूर्ण दृष्टि है। यह योग है।

८. *भार्यानाशस्त्वशुभसहितौ वीक्षितौ वार्थकामौ,*
तत्र प्राहुस्त्वशुभफलदां क्रूरदृष्टिं विशेषात्।
एवं पत्न्या अपि सति मदे चाष्टमे वास्ति दोषः,
सौम्यैर्दृष्टे सति शुभयुते दंपती भाग्यवन्तौ॥

(फल दीपिका अ० १० श्लो० ७)

यदि स्त्रीकी कुण्डलीमें सप्तम और अष्टम दोनों भाव अशुभ ग्रहोंसे युक्त या दृष्ट हों तो पतिके लिये अनिष्ट कारक होता है। सप्तम भाव राहु केतु प्रभावित शनिसे तथा अष्टम भाव मंगलसे पूर्ण दृष्ट है। अतः यह योग है। इसीके साथ द्वितीय भाव भी पाप ग्रह मंगलसे युक्त है, जो वैधव्य योगको शीघ्र फलदायी बनाता है।

९. कलत्रनाथे रिपुनीचसंस्थे, मूढेऽथवा पापनिरीक्षितेवा।
कलत्रभे पापयुतेऽथदृष्टे, कलत्रहानिं प्रवदन्ति सन्तः॥

(फल दीपिका अ० १० श्लो० १५)

सातवें घरका स्वामी बुध शत्रु राशि कर्कमें है तथा पाप ग्रह मंगलसे दृष्ट है। साथ ही सप्तम भाव भी पापग्रह राहु केतु प्रभावित शनिसे पूर्ण दृष्ट है। इस कारण शीघ्र पति-वियोगकी सम्भावना है।

१०. कामस्थकामाधिपभार्गवाना, मृक्षं दिशं शंसति तस्य पत्न्याः।
शुक्रोऽस्तपो वा तनुनाथभांश-त्रिकोणमायाति तदा विवाहः॥
कलत्रसंस्थस्य कलत्रदृष्टे, र्दशागमेवाथ कलत्रपस्यः।
यदा विलग्नाधिपतिः प्रयाति, कलत्रभं तत्र कलत्रलाभः॥
कलत्रनाथस्थिभांशकेशयोः, सितक्षपानायकयोर्बलीयसः।
दशागमे द्यूनपयुक्तभांशक-त्रिकोणगे देवगुरौ करग्रहः॥

(फल दीपिका अ० १० श्लो० १२ से १४)

लग्नेश जिस राशि या नवांशमें हो उससे त्रिकोण राशिमें जब गोचर वश शुक्र या बुध (सप्तमेश) आता है तब विवाह होता है।

(क) लग्नेश बृहस्पति १२ (मीन) राशिमें है जिसकी त्रिकोण राशियाँ ४, ८, १२ होती है। फिर लग्नेश बृहस्पतिकी नवमांश राशि ८ (वृश्चिक) है। इससे भी त्रिकोण १२, ४, ८ राशियाँ होती हैं।

(ख) सप्तमेश बुध ४ (कर्क) राशिमें तथा १२ (मीन) नवांशमें है। जब गोचरका बृहस्पति ४ या १२ राशियोंमें अथवा इनकी त्रिकोण राशियोंमें आवे तब विवाह हो। इन दोनों राशियोंकी त्रिकोण राशियाँ भी ४, ८, १२ ही होती हैं। अतः अल्पायु विवाहका योग है।

११. रूचकभद्रकहंसकमालवाः सशशका इति पञ्च च कीर्तिताः।
स्वभवनोच्चगतेषु चतुष्टये, क्षितिसुतादिषु तान् क्रमशो वदेत्॥
हंसे सद्भिरभिष्टुतः क्षितिपतिः शङ्खाब्जमत्स्याङ्कुशै-
श्चिह्नैः पादकराङ्कितः शुभवपुर्मृष्टान्नमुग्धार्मिकः।

पुष्टाङ्गो धृतिमान्धनी सुतवधूभाग्यान्वितो वर्धनो,
मालव्ये सुखभुक्सुवाहनयशा विद्वान्प्रसन्नेन्द्रियः॥

(फल दीपिका अ० ६ श्लो० १, ३)

इस कुण्डलीमें बृहस्पति लग्नसे केन्द्रमें स्वगृही है तथा चन्द्रमासे केन्द्रमें भी स्वगृही है, अतः दोनों ही प्रकारसे 'हंस' योग बनता है। हंस योग पंच महापुरुष योगमेंसे एक होता है। हंस योगमें उत्पन्न व्यक्तिके हाथ पैरोंमें शंख, कमल, मत्स्य और अंकुशके चिह्न होते हैं। शरीर देखनेमें बहुत शुभ, सुन्दर होता है और सज्जन लोग उसकी प्रशंसा करते हैं।

१२. *ओजेष्वर्केन्दुलग्नान्यजनि दिवि पुमांश्चेन्महाभाग्ययोगः,*
स्त्रीणान्तद्व्यत्ययेस्याच्छशिनि सुरगुरोः केन्द्रगे केसरीति।
जीवान्त्याष्टारिसंस्थे शशिनि तु शकटः केन्द्रगे नास्ति लग्ना-
च्चन्द्रे केन्द्रादिगेऽर्कादधमसमवरिष्ठाख्ययोगाः प्रसिद्धाः॥
केसरीव रिपुवर्गनिहन्ता प्रौढवाक् सदसि राजसवृत्तिः।
दीर्घजीव्यतियशाः पटुबुद्धिस्तेजसा जयति केसरियोगे॥

(फल दीपिका अ० ६ श्लो० १४, १६)

शुभ ग्रह बृहस्पति स्वराशि मीनका है साथमें मीनका चन्द्रमा भी है, जिससे गज-केशरी योग बनता है। ऐसे योगमें उत्पन्न व्यक्ति शेरकी तरह साहसी, गम्भीर विषयपर अधिकारसे बोलनेवाला, तीव्र बुद्धि और यशस्वी होता है। वह अपने तेजसे ही औरोंको जीत लेता है।

टिप्पणी—यह योग चौथे घरमें-जो माताका घर होता है, बन रहा है अतः ऐसेको जन्म देकर माता कृतार्थ होती है—'जननी कृतार्था'। यह योग पूर्ण दृष्टिसे दशम भावको देखता है। दशम घर पिताका स्थान माना जाता है। इस योगके प्रभावसे पिता भगवद्-विश्वासी, साधु चरित्र एवं सद्गुणी संत सेवी होता है। इस प्रकार रामायणमें माता पार्वतीके लिये कही गयी नारदजीकी यह उक्ति पूरी तरहसे लागू होती है—*'एहि तें जसु पैहहिं पितु माता।'*

दशमके अतिरिक्त इसकी दृष्टि अष्टम तथा द्वादश भावपर भी है। अष्टम भावपर दृष्टि इसको अध्यात्मकी दृष्टिसे सौभाग्यवती बनाती है तथा द्वादश भावपर दृष्टि सत्कार्योंमें खर्च कराती है।

(फल दीपिका अ० ६-योग)

१३. 'पुष्कल योग', 'लक्ष्मी योग', 'सरस्वती योग', 'श्रीकंठ योग',

'श्रीनाथ योग', 'विरञ्ची योग', 'धनेश' पंचममें और 'पंचमेश' धनमें परस्पर स्थान परिवर्तन करके बैठे हैं जिससे 'महायोग' बनता है। ऐसे अनेक शुभ योग इस अकेली कुण्डलीमें बनते हैं।

१४. मध्याह्न कालमें जन्मे लोगोंके जीवनमें सूर्यके बलाबल अनुसार कुछ विशेषता रहती है, ऐसी ज्योतिषकी मान्यता है। इसका जन्म भी मध्याह्न कालमें ही हुआ है। सूर्य स्वगृही नवम धर्म स्वगृही नवम धर्म भावमें बैठा है, जो इस जातिकाको धर्मिष्ठा बनाता है।

ऊपर लिखा गया फलादेश 'फल दीपिका' गअ्रन्थके अनुसार है। उपर्युक्त विवरणका सार यही है कि यह स्त्री जातिका सच्चरिता, बहुसद्‌गुण विभूषिता, कार्य-कुशला, भाग्यशालिनी, तेजस्विनी, धर्मिष्ठा, कल्याणशीला, पुण्यवती, परम भक्तिमती होगी। इससे इसके माता-पिताको यश मिलेगा। आध्यात्मिक जीवन सर्ववन्द्य होगा। कुशाग्र बुद्धि, वाक्‌पटुता, धैर्य, ओजस्विता, साहससे जीवनमें विविध कार्य करते समय विपुल सफलता मिलेगी। सत्कार्यमें प्रवृत्ति, परहितैषिता, सेवा-परायणता होनेसे सदैव स्नेह एवं सम्मान मिलेगा। इस कुण्डलीमें कुछ निर्वार्य कुयोग हैं, अतः इसका शीघ्र विवाह होकर शीघ्र पति-वियोग होगा। कुयोग ऐसे कठिन है कि वैधव्य और संततिहीनता अवश्यम्भावी है। अल्पायुमें विवाह एवं शीघ्र वैधव्यके फलस्वरूप यह स्त्री जातिका बालब्रह्मचारिणी, तपस्विनीके रूपमें परम पवित्र संतोचित जीवन व्यतीत करेगी। सांसारिक दृष्टिसे कुछ कठिन कुयोग होते हुए भी अन्य अनेक अति शुभ सुयोग इसे आध्यात्मिक दृष्टिसे महान यशस्वी बनायेंगे।

* * * * *

सर्वप्रिय शैशव

नवजात कन्याका वर्ण गौर था। नासिका अतीव सुघर थी। नेत्र बड़े विशाल थे। नेत्रोंकी विस्मयकारी चमकमें आभ्यन्तरिक दिव्यता झमक रही थी। उठने-गिरनेवाली पलकोंके पीछे बार-बार छिपकर छविकी छटा छिटकाने वाली पुतलियोंकी चंचलतामें भी एक मनोहारी लास्य था। अरूणिम अधरोंके हास्यमें एक मोहिनी शक्ति थी। एक ऐसा सम्मोहन था कि युगल कपोलोंकी गौर कान्तिके मध्य कुछ-कुछ उभरी हुई लुभावनी लालिमाको बस लगातार देखते ही रहो। उसके मुखमण्डल पर एक विचित्र दैवी आभा थी, एक अद्भुत अमानवीय लावण्य था, जो सभीको अपनी ओर बरबस आकृष्ट कर लेता था। स्त्री हो या पुरुष, परिचित हो या अपरिचित, कोई भी हो, वह इस बालिकाको देखकर एक बार तो ठिठक जाता था और इसकी ओर एकटक निहारने लगता था। पूज्य श्रीवैद्यजीकी बालिकाके एक अप्रतिम लावण्यका यह जादू था ही बड़ा अनोखा और प्रभावकारी। किसीके लिये भी बालिकाकी ओर एकटक निहारने लगना सर्वथा स्वाभाविक था और उस बालिकाके इस अमन्द-अनुपम लावण्यका एक विशेष हेतु था। इस हेतुकी कुछ-कुछ झलक मिल पायी दिव्य भावस्वरूपा रुक्मिणी बाईके जीवनके उत्तर कालमें, जब मर्त्यलोकसे पैठ उठनेवाली थी।

वस्तुतः वे थीं नित्य-निकुञ्जमें नित्य-विहार-परायण प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवकी एक अत्यन्त स्नेहास्पदा अनुचरी, जिसने मातृ-सन्धिका आश्रय लेकर पावन पाञ्चभौतिक कलेवरको एक आवरणके रूपमें स्वीकार किया था। सन्धिका अर्थ है संयोग, सम्बन्ध। प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवकी वह परमस्नेहास्पदा एक विशिष्ट उद्देश्यसे प्रेरित होकर इस मृत्युलोकमें अवतिरत होना चाहती थीं, परन्तु लीला-सूत्रधारिणी सर्वसंभवकारिणी अघटनघटनापटीयसी भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी माँके सहयोग बिना यह सुयोग संघटित नहीं हो पाता। अवतरणका संयोग संघटित हो पाया मातृ कृपासे संधित होनेपर ही।

अपने मानव-शरीर धारणके कारण पर प्रकाश डालते हुए एक दिन भावावेशमें श्रीरुक्मिणी बाईने अपने नित्य साथ रहनेवाली श्रीचन्दा बाई एवं श्रीनर्मदा बाईको बतलाया था—निकुञ्जमें युगल सरकार बैठे हुए थे। मैं उनके

समीपमें थी। सखियाँ और मञ्जरियाँ सेवामें संलग्न थीं। श्रीप्रिया-प्रियतमके मध्य पृथ्वी लोकके कुछ ऐसे विशेष संतोंकी चर्चा चल पड़ी, जिनके द्वारा जन-जनमें भक्ति भावको प्रतिष्ठित करनेका महान भगवदीय कार्य हो रहा है। उस संत-चर्चामें पूज्य श्रीसेठजी (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयनका), पूज्य श्रीभाईजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) एवं पूज्य श्रीबाबा (श्रद्धेय श्री राधाबाबा) का विशेष रूपसे गुणगान हो रहा था। उस सरस चर्चाको सुनकर मेरे हृदयमें उन संतोंके दर्शनकी उत्कट लालसा जाग्रत हो गयी। इसीका यह मंगलमय परिणाम था कि मुझे यह मानव शरीर मिला।

दूसरा प्रंसग तो और भी विशद है। निकुञ्ज गमनसे पूर्व १५ मार्च, १९९५ की बात है। वे दिनमें बारह बजकर पैंतालीस मिनटपर अपने कक्षसे बाहर आयीं और श्रीचन्दा बाईसे लिपट करके रोनी लगीं। वहाँ श्रीनर्मदा बाई, श्रीसावित्री बाई और मीरा बाई भी थीं। भावोद्वेलनके कुछ शान्त होनेके बाद उन्होंने बतलाया—आज प्रातःकालसे मेरे सिरहानेकी तरफ श्रीमाँ खड़ी हैं। तीन-चार घण्टे देखते रहनेपर भी मैं कुछ समझ नहीं पा रही हूँ। फिर लगभग बारह बजे (अपने शरीरकी ओर इशारा करके) इस शरीरके जन्मसे पूर्वका दृश्य मुझे दिखलाया गया। इस बालिकाका जन्म मातृ-संधिको लेकर हुआ। इसके पिताजी बाल्यकालमें मातृ-उपासना करनेके लिये कलकत्तेमें निवास कर रहे थे। साधना चल रही थी। वहाँ श्रीश्री माँका आदेश हुआ कि तुम गृहस्थ आश्रम स्वीकार करो। वे वहाँसे घर आ गये और फिर आदेशानुसार उने सारे वैवाहिक कृत्य सम्पन्न हुए।

विवाहोपरान्त उसी मातृ-सन्धिको लेकर प्रथम बालिकाके रूपमें इसका जन्म हुआ। इसीलिये इसका मातृ-पूजापर सदा इतना झुकाव रहता है। आज माँने संधि छोड़ दी है। अब यह शरीर कभी भी निष्प्राण होकर गिर सकता है।

मृत्युलोकसे विदा होनेके कुछ दिन पूर्व ही इस अद्भुत रहस्यका उद्घाटन हुआ और यह उद्घाटन हो पाया एक मात्र मातृ-कृपाके फलस्वरूप ही। जो भी हो, यह तो सर्वथा सत्य है कि रुक्मिणी बाईके नामका और रूपका आवरण स्वीकार करके प्रिया-प्रियतमके नित्य-निकुञ्जकी एक परम अमलात्मा ही अवतरित हुई थी। जिस दिव्यभावस्वरूपा-दिव्यात्माका अवतरण मातृ-संधिके आश्रयसे हो, उस बालिकाका वह पाञ्चभौतिक कलेवर, जिसका लावण्य असीम हो, जिसका सौन्दर्य अमर्त्य हो और जिसकी कान्ति अपूर्व हो, उस बालिकाके प्रति सभीका स्वतः आकृष्ट हो जाना सहज स्वभाविक है।

संस्कार और शिक्षा

कुल पुरोहित द्वारा नवजात शिशुके नामकरण अन्नप्राशन इत्यादि सभी संस्कार एक-एक करके समय-समयपर विधिवत् सम्पन्न हुए। नवजात बालिकाका नाम रुक्मिणी बाई रखा गया। यह बालिका बचपनसे ही सबको बड़ी प्यारी लगती थी।

इनकी भक्तिमती माँ हिमाञ्चला देवी बड़े भक्ति-भावसे नित्य प्रति तुलसी-सिंचन, सूर्य-वन्दन, ठाकुर-अर्चन, कुलदेवी-पूजन किया करती थीं। प्रात:काल जब वे तुलसी-पूजनके लिये जातीं तो वह छोटी सी बालिका रुक्मिणी, जिसने अभी चलना ही सीखा था, अपनी माँका आँचल पकड़कर साथ चल देतीं और पूजा करते समय बड़े ध्यानसे तुलसीजीकी ओर एकटक देखती रह जातीं। माँ तो पूजा करके चली जातीं, पर वे वहाँ बहुत देरतक नाचती रहतीं और कुछ गुनगुनाती रहतीं। बादमें श्रीरुक्मिणी बाईने अपने निजजनोंके मध्य बचपनकी चर्चा करते हुए स्वयं बताया—उस समय मुझे वृन्दारानीके प्रत्यक्ष दर्शन होते थे। वे मेरी ओर देखती थीं, मुस्कुराती थीं।

बाईके ये उद्‌गार और उनके बचपनकी यह घटना भले अन्योंके लिये विस्मयकारिणी हो, परन्तु है यथार्थ और यथार्थका कारण भी स्पष्ट है। बाईके रूपमें जो आत्मा वैद्यराज श्रीशुक्लाजीके आँगनमें शिशु-सुलभ क्रीड़ा कर रही थी, वह चौरासी लाख योनियोंका आवागमनात्मक चक्कर काटकर शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगनेके लिये नहीं आयी थी, अपितु उसका अवतरण श्रीप्रिया-प्रियतमके निकुञ्जधामसे हुआ था और संत दरसकी उत्कट लालसा ही अवतरणका हेतु बन गयी थी। उस नित्य निकुञ्जमें भगवती वृन्दा, जो श्रीप्रिया-प्रियतमकी लीला भूमि श्रीवृन्दावनकी अधिष्ठात्री देवी है, उनसे बाईका जो 'पूर्व परिचय' था, उसीके फलस्वरूप बाईके शिशु जीवनमें भी यह परस्परावलोकन हो रहा था। अपनी निकुञ्जात्मक भावनाके अनुरूप बाई सदैव कहा करती थीं-प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-कृष्णकी लीला स्थली श्रीवृन्दावन है। उस वृन्दावनमें प्रवेश पानेके लिये वृन्दावन अधिष्ठात्री देवीकी आज्ञा आवश्यक है। प्रत्येक साधिका और साधकको भगवती वृन्दाको प्रणाम करके आज्ञा लेनी

चाहिये। इसके बाद स्थलीमें प्रवेश करना चाहिये।

दशहरा, दीपावली इत्यादि पर्वोंपर इनके पिताजी इन्हें साथ लेकर मेला देखने जाया करते थे। वहाँसे ये प्राय: श्रीराधा-कृष्णके मृणमय श्रीविग्रह ही लेकर आतीं। मेलेमें खिलौनोंकी दुकानपर तरह-तरहकी मूर्तियाँ थीं। पशु-पक्षी, मानवी-मानव, देवी-देवता, आदि-आदिकी अनेक मूर्तियाँ दुकानमें सजायी हुई थीं। उन सभीके मध्यसे राधा-कृष्णकी मूर्तिका ही जो चुनाव हुआ, उसके पीछे एक विशेष प्रेरणा-बिन्दु सक्रिया रहा है। बाई थी श्रीप्रिया-प्रियतमकी परम स्नेहास्पदा अनुचरी और उस अनुचरीका जो गहरा लगाव श्रीप्रिया-प्रियतमके प्रति अवतरणके बाद है और देश कालकी सीमातीत दशामें सदैव रहेगा। वही अटूट लगाव तो इस चुनावके रूपमें प्रतिफलित हुआ था। मेलेसे लाये हुए श्रीराधा-कृष्णके उस विग्रहको एक आलेमें विराजित कर बाई उनको धूप देतीं, भोग लगातीं, पूजा-आरती करतीं। उनके समक्ष नाचतीं, गातीं और प्रसन्न होतीं। यह तो उनके 'पूर्व निकुञ्जात्मक जीवन' की कुछ-कुछ अनुकृति थी। मनोरञ्जनकी दृष्टिसे यही इनका बाल्यकालीन खेल था। आरम्भसे ही ये बहुत कुशाग्र बुद्धि, स्वच्छता-प्रिय एवं विवेकवती बालिका थीं।

इनके परिवारमें यह प्रथा है कि बालक-बालिकाओंकी प्रारम्भिक शिक्षा अल्पायुमें ही घरपर प्रारम्भ कर दी जाती है। प्रथानुसार इन्हें भी शिक्षा दी जाने लगी। इनके एक चचेरे भाईको और इनको एक दिन घरके बरामदेमें शिक्षक पढ़ा रहा था। उस समय इनकी आयु लगभग साढ़े तीन वर्षकी ही थी। इनके भावी श्वसुर श्रीसिद्धनारायणजी मिश्र किसी दैवी प्रेरणावशात् बरामदेके सामने वाली सड़कसे जा रहे थे। उनके साथ उन्हींके बौसी गाँवके श्रीबूटी लाल पाठक नामक व्यक्ति भी थे, जो वैद्यजीके सम्बन्धी भी होते थे। जैसे ही श्रीमिश्रजीकी दृष्टि इस बालिकापर पड़ी, वे एकाएक चौंके और पाठकजीसे पूछा—वह किसकी बालिका है?

पाठकजीने बताया—यह मेरे सालेकी लड़की है।

सुनते ही श्रीमिश्रजी निश्चयपूर्ण स्वरमें बोल पड़े—मैं अपने छोटे लड़के यदुका विवाह तो इसी कन्याके साथ करूँगा, यह मेरा दृढ़ निश्चय है।

पाठकजी द्वारा यह समाचार वैद्यजीको मिलनेपर उन्होंने कहा—अभी तो विवाहका प्रश्न ही नहीं है। समय पर जैसा होगा, देखा जायेगा।

इनकी माताजी सदा प्रदोषका व्रत करके पार्वतीजी, शंकरजी तथा लक्ष्मी-नारायणजीकी पूजा किया करती थीं। रसगुल्ला, पेड़ा तथा कई प्रकारके फल भोग लगाती थीं। एक बार पूजा करते समय जब माँने भोग अर्पण किया, तब भावाविष्ट अवस्थामें बाई अर्पित भोगको आरोगने लगीं। माँ तो यह देखकर घबड़ा गयीं और इन्हें वर्जित करते हुए कहने लगीं—बेटी! यह तुम क्या कर रही हो?

बाईने उत्तर दिया—माँ! मेरे प्राणपतिने कहा है, मैं तो खा ही रहा हूँ, तुम भी खाओ। क्या तुम देख नहीं रही हो कि श्रीकृष्ण यहाँ बैठे हैं?

इनके इतना कहते ही माँको अपनी लाडली बेटी बाईके पार्श्वमें भगवान् श्रीकृष्णके प्रत्यक्ष दर्शन हुए। उस समय इनकी आयु लगभग सात वर्ष थी। इन्हीं दिनों दशहराके अवसरपर रात्रिके समय होनेवाली रामलीलामें इनके पिताजी इन्हें लीला दिखानेके लिये साथ ले जाते थे। एक दिन जब श्रीसीताहरणका प्रसंग आया तो उस दृश्यको देखकर ये फूट-फूटकर रोने लगीं और अचेत हो गयीं। उसी अवस्थामें उन्हें घर लाया गया और कई घण्टों बाद ही ये सामान्य स्थितिमें आ पायीं। इस सम्बन्धमें आगे चलकर एक बार बाईने स्वयं अपने श्रीमुखसे बतलाया था उस दिन अचेतावस्थामें उन्हें सखियोंसहित श्रीसीताजीके दर्शन हुए। उन्होंने इनका सिर सहलाते हुए कहा कि तुम व्याकुल क्यों होती हो? देखो! ये (श्रीरामचन्द्रजी) तो मेरे पार्श्वमें ही बैठे हुए हैं। उन दोनोंको प्रसन्न देखकर ही मेरी व्यथा दूर हो पायी। फिर मुझे चेत हो पाया।

पाठशालामें भी बाई अपनी सहपाठियोंमें अग्रगण्या थीं। ये अपनी कक्षाकी बालिकाओंके दो दल बनाकर अन्ताक्षरीका खेल घण्टों खेला करती थीं और बहुत प्रसन्न होती थीं। अन्ताक्षरीमें श्रीरामचरितमानसके दोहे-चौपाइयोंको ही बोलनेका नियम था। एक पक्षके हार जानेपर दूसरे पक्षकी बालिकाएँ खूब ताली बजातीं और हँसती थीं और उनमें ये अग्रगण्या थीं। विजय प्राय: इन्हींके पक्षकी होती थी। ऐसी ही अन्ताक्षरी प्रतियोगिता जब घरमें होती तब इनके पिताजी अन्ताक्षरीमें भाग लेनेवाली सभी बालिकाओंको बाजारसे विभिन्न प्रकारकी मिठाई लाकर खिलाया करते थे। स्कूलमें समय-समयपर होनेवाले विभिन्न नाटकों, कार्यक्रमोंमें इनका मुख्य भाग रहता था और इन्हें हमेशा प्रथम पुरस्कार ही मिलता था।

* * * * *

मंगल-परिणय एवं पति वियोग

इसी प्रकार वर्षपर वर्ष बीतते चले गये। उधर श्रीसिद्धनारायणजी मिश्र बीच-बीचमें पाठजीके द्वारा वैद्यजीको अपने पूर्वकृत निश्चयकी स्मृति दिलाते रहते थे। जब श्रीरुक्मिणी बाईकी आयु दस वर्षकी हुई तो मिश्रजीने पाठकजीके द्वारा वैद्यजीको बौंसी बुलवाया और कहा—वैद्यजी! अब आप अपनी बालिका रुक्मिणीका विवाह करनेके लिये शीघ्र तैयार हो जाइये। मैं अपनी कन्याका विवाह होनेके तुरन्त बाद ही यदुनन्दनका विवाह करूँगा, ऐसा मैंने निश्चय कर लिया है।

वैद्यजीने कहा—अभी तो बेटी केवल दस ही वर्षकी हुई है। इतनी छोटी आयुमें विवाह करनेका मेरा विचार नहीं है।

इसपर बहुत ही प्यार भरे स्वरमें, जिसमें अधिकार पूर्ण स्वरका मिश्रण था, मिश्रजी हँसते हुए बोले—आप प्रसन्नतापूर्वक विवाह कर दीजिये, अन्यथा मैं बिना विवाह किये ही मन्दिरमें माला पहना कर बलपूर्वक अपनी वधूको ले जाऊँगा।

श्रीमिश्रजीने जैसा कहा था, उसके अनुसार उनकी बेटीका विवाह होनेके तीन-चार दिन बाद ही उनके सुपुत्र श्रीयदुनन्दनजीके लिये वैद्यजीको भी लाडिली बेटी रुक्मिणीका कन्यादान करना पड़ा। १४ जुलाई १९५१ (आषाढ़ शुल्क दशमी, सं. २००८) के दिन विवाह सम्पन्न हुआ। सुहागरातकी मंगल बेलामें जब दोनोंका प्रथम मिलन हुआ तो परस्परकी वार्तालापके मध्य प्रथम प्रश्न पतिदेव श्रीयदुनन्दनजी मिश्रने यही पूछा—तुम्हारे भगवान् कौन हैं?

उत्तरमें बाईने कहा—जो आपके भगवान् हैं, जो सबके भगवान् हैं, वही श्रीकृष्ण मेरे भी भगवान् हैं।

इसी प्रसंगमें श्रीयदुजीने कहा—मैं तो श्रीकृष्णके चरणोंके नुपूरका घुँघरूँ हूँ! तुम क्या बनोगी?

बाईने मनमें सोचा कि मैं घुँघरूँ क्यों बनूँ और फिर तुरन्त उत्तर दिया—मैं तो श्रीराधारानीके हृदय-हारका लॉकेट बनूँगी।

इसी प्रकारकी सरस चर्चामें ही सम्पूर्ण रात्रि व्यतीत हो गयी। तीन दिन श्वसुरालयमें रहनेके बाद बाई पितृगृह लौट आयीं। मार्गशीर्ष शुक्ल पञ्चमी

(२२ नवम्बर १९५२) को बाईका द्विरागमन हुआ। इस बार भी वे केवल एक सप्ताह ही वहाँ रही। यह स्मरण रहे कि बाईका पतिके साथ सांसारिक कहलाने वाला शारीरिक सम्पर्क कभी भी नहीं हुआ। जन्मांगके अनुसार ग्रहोंकी कठोर वक्र दृष्टिके फलस्वरूप यह योग सम्भव था ही नहीं। ग्रहोंकी दृष्टिकी वक्रताके कारण अवश्यम्भावी यह अ-योग बाईके भावी आध्यात्मिक जीवनके लिये वरदान बन गया। सम्पूर्ण रात्रि श्रीराधा-कृष्णकी लीला-चर्चामें व्यतीत हो जाती थी।

कभी-कभी न चाहते हुए भी जीवनके कटु और विकट प्रसंग सामने आते ही हैं। दो मास बाद ही सन् १९५३ के फरवरी मासमें बाईके चाचा श्वसुर बहुत अधिक बीमार हो गये, इसलिये उनको पीहरसे ससुराल बुला लिया गया। बाईके आनेके तीन-चार दिन बाद ही उनकी मृत्यु हो गयी। उनके कोई सन्तान नहीं थी, इसलिये उनकी अन्त्येष्टि श्री यदुनन्दनजीको ही करनी पड़ी। अब संयोग कहें अथवा दुर्भाग्य, दिवंगत चाचाकी चितामें अग्नि देते समय श्रीयदुनन्दनजीकी धोतीका छोर जल गया। यह तो बड़ा बुरा हुआ। वस्तुतः यह बड़ा भारी अपशकुन था। इस अमंगल सूचक अपशकुनको देखकर परिवारके सभी लोग गम्भीर रूपसे आतंकित हो गये। न चाहते हुए भी सभीका मन अनेक प्रकारकी कुशंकाओंके भँवरमें फँसा हुआ था।

श्राद्धके सम्पूर्ण क्रिया-कर्म सम्पन्न होनेके बाद भजन-कीर्तन एवं श्रीकृष्ण-लीला-अभिनयका कार्यक्रम था, जिसमें श्रीयदुनन्दनजीको ही भगवान् श्रीकृष्णका अभिनय करना था। इससे पूर्व भी इस प्रकारके अभिनय-कार्यक्रमोंमें वे श्रीकृष्णका ही अभिनय किया करते थे। अभिनय-कार्यक्रममें जानेसे पूर्व बाईने उनसे कहा—आप श्रृंगार धारण किये हुए अपने स्वरूपका प्रिय दर्शन मुझे भी करवाइयेगा।

बाईके द्वारा ऐसा निवेदन किया जाना सहैतुक था। बाईको भावीका आभास मिल गया था। ऐसा भी कहा जा सकता है कि जिस अपशकुनसे सभीका अन्तर आतंकित था, उस अशुभके काले बादलोंकी काली छायाको बाईकी भीतरी आँखोंने देख लिया था।

यदुनन्दनजी श्रृंगार धारण कर लेनेके बाद अपनी सहधर्मिणीके पास आना चाहते थे, परन्तु मनमें बड़ा संकोच हो रहा था। श्रीयदुनन्दनजीके हृदयमें बाईके प्रति असीम प्यार था, परन्तु वह प्यार पारिवारिक मर्यादासे अवगुण्ठित था। घरके बड़े-बड़े लोग वहाँ उपस्थित थे, अतः शीलका अंकुश होनेके कारण

कुछ कर पाना सहज नहीं था। जो भी हो, बाईकी उस पवित्र चाहका सम्मान तो करना ही था। श्रीकृष्ण-शृंगार धारण किये हुए श्रीयदुनन्दनजी बाईके पास आये। श्रीयदुनन्दनजीका श्रीकृष्ण शृंगार बाईके नेत्रोंको बड़ा प्रिय लगा। उस समय श्रीकृष्ण-भाव-भावित हुए वे बाईसे इतना अवश्य कह बैठे—अब तुम श्रीकृष्णका भजन किया करो।

यह बाईके लिये मनचाहा आदेश था। इसके बाद श्रीयदुनन्दनजी मञ्चपर जाकर श्रीकृष्ण लीलाका अभिनय करने लगे। अभिनयका सारा कार्यक्रम भली प्रकारसे पूर्ण हो गया। मञ्चसे लौटकर घर आनेपर वे उदर शूल और तीव्र ज्वरसे ग्रस्त हो गये। रातके तीन बजे थे। बाईने घरवालोंको इसकी सूचना दी। वे लोग आये। समयोचित उपचार तत्काल होने लगा, परन्तु जो होना था वह हो ही गया। सात दिनों तक शारीरिक कष्ट भोगनेके बाद अनचाहा प्रसंग सामने आ ही गया। प्रातःकाल लगभग सात बजेके आसपास उन्होंने अपने पाञ्चभौतिक कलेवरका परित्याग कर दिया। उस छोटी अवस्थामें पूज्या श्रीरुक्मिणी बाईको एक कुशंकाके रूपें जो आभास हो गया था कि अब ये मुझसे सदाके लिये विदा ले रहे हैं, वह एक यथार्थके रूपमें घटित हो ही गया।

श्रीयदुनन्दनजीके निधनका समाचार बौसी ग्राममें आगकी तरह फैल गया। परिवारकी कौन कहे, गाँवके एक-एक व्यक्तिके अधरोंपर आह थी और आँखोंमें आँसू थे कि यह कैसा वज्रपात हो गया। जन-जनका अन्तर इस कच्ची मौतसे अत्यधिक मथित और व्यथित था। जिस यदुनन्दनकी कुशल अभिनय कलाने सबको कल मोह लिया था, वह मोह आज सभीको बुरी तरह रुला रहा था। केवल कुशल अभिनय ही नहीं, उनके सरल व्यवहारकी मधुर स्मृति सूईकी तरह चुभ रही थी। सबके मनमें सबसे बड़ी चुभन थी, उनकी सहधर्मिणी रुक्मिणी बाईके जीवनके अन्धकारमय भविष्यको सोचकर, जिसकी सुहाग-रेखाको कराल कालने अकालमें ही कवलित कर लिया था। जिसका विवाह बाल्यावस्थामें ही हो गया था और जिसके तन-मनपर अभीतक बाल-सुलभ भोलापन छाया हुआ था, उस अल्पवयस्का सहधर्मिणीके जीवनके भावी दिन किस प्रकार कट पायेंगे? अभी-अभी उभरती हुई किशोरावस्थाकी कमनीय देहरीपर जो अपने पैरोंकी अँगुलियाँ रख भी नहीं पायी थी, उस रुक्मिणी बाईके जीवनका भविष्य एक बार सर्वथा अन्धकारमय हो गया। बाईके उस अन्धकारमय भविष्यको सोच-सोच करके परिवार करके परिवारमें, पड़ोसमें, घरमें, ग्राममें यत्र-तत्र हाहाकार मचा हुआ था। जन-जनकी भावनाएँ

अत्यधिक शोकाकुल थीं। सारा वातावरण आँसुओंसे भीगकर करुणार्द्र हो रहा था। पर पूज्या श्रीरुक्मिणी बाई तो इस सांसारिक स्तरके साधारण सुख-दुखात्मक धरातलसे बहुत ऊपर थीं। क्या वह चौरासीके चक्करमें फँसी हुई कोई साधरण जीवात्मा थी, जिसने अपने भले-बुरे प्रारब्धानुसार नाथनगरके शुक्ल परिवारमें जन्म लिया था और जो विवाहित होकर बौसीके मिश्र परिवारमें आयी थी? वस्तुतः वह श्रीप्रिया-प्रियतमके नित्य-निकुञ्ज धामकी एक दिव्यात्मा थी, जो मातृ-कृपासे संधित होकर अवतरित हुई थी। उसका विवेक सतत सजग था। उसका चिन्तन सर्वथा पारमार्थिक था। उसकी भावनाएँ लोककी लीकसे लिपटी हुई नहीं थी। सतीत्वके शीर्ष धरातल पर आरूढ़ श्रीरुक्मिणी बाईने अपने पतिका निधन होते ही तुरन्त मन ही मन एक सर्वथा स्वतन्त्र निश्चय किया और यह निश्चय था सहगमनका। सतीत्वका यही आदर्श है कि सहधर्मिणीको पतिके शवके साथ सहगमन करना चाहिये और बाईने मन ही मन सहगमनका निर्णय ले लिया।

इधर तो परिवार-पड़ोस वाले कुंचित-कुंठित मनसे शव-यात्राकी तैयारी कर रहे थे और उधर बाई भगवती त्रिपुरसुन्दरी माँके मन्दिरमें गयीं। मन्दिर घरके भीतर ही था। जाकर बाईने जगज्जननी माँको श्रद्धा-भक्ति सहित प्रणाम किया और कृपा की याचना की, जिससे सहगमनका निश्चय भली प्रकारसे पूर्ण हो सके। मन्दिरसे लौटकर बाईने स्नान किया, सुन्दर और स्वच्छ वस्त्र धारण किये, अपने सारे गहने पहन लिये, आँखोंमें काजल आँजा और भालपर सिन्दूरकी बिन्दी लगायी। इस समय अपना सुन्दर शृंगार करके बाई भय-शून्य रीतिसे वहाँ आयीं, जहाँ श्रीयदुनन्दनजीका शव था। सुन्दर वस्त्राभरणोंसे सुसज्जित बाईको देखकर सभीके विस्मयकी सीमा नहीं रही। ब्राह्मण और उसमें भी वैष्णव परिवारकी वधू होनेसे सभीको यह समझनेमें देर नहीं लगी कि बाईने पतिके साथ सती होनेका निश्चय करके ही ऐसा सुन्दर शृंगार धारण किया है और उसी निश्चयको लेकर वह वहाँ खड़ी है। भव्य-वसना, दिव्य-वदना बाईको खड़ी देखकर वहाँके वातावरणका रंग ही बदल गया। लोगोंका क्लान्त मन अब शान्त हो गया। अब क्रन्दनका स्थान वन्दन ने ले लिया। लोगोंकी आँखोंमें अब आँसू नहीं, आश्चर्य था। जो पहले विकलित थे, वे लोग अब सचकित होकर बाईके प्रति मन ही मन भाव-सुमन चढ़ा रहे थे। नवकैशोर्याभान्विता बाईके व्यक्तित्त्वमें अभिव्यक्त दैवी आवेशकी सुदीप्त कान्तिसे सभी अभिभूत थे।

ज्यों ही शव-यात्रा आरम्भ हुई, बाई भी शान्त भावसे भूमिपर दृष्टि गड़ाये हुए और अर्थीका अनुगमन करते हुए चलने लगीं। तत्स्थानीय सामाजिक प्रथाके अनुसार स्त्रियाँ शव-यात्रामें सम्मिलित नहीं हुआ करती थीं, पर अब तो बात ही दूसरी थी। जन-जनके मनमें कौतुहल जगा हुआ था। पुरुषोंके साथ अनेक माताएँ-बहनें मनमें श्रद्धाका भाव लिये हुए शव-यात्रामें बाईके साथ-साथ चल पड़ीं।

शवको लिये हुए लोग श्मशान भूमिपर पहुँचे। चिताको सजाया गया और शवको चितापर लिटा दिया गया। सती होनेका मनमें निश्चय किये हुए पूज्या बाईने चिताकी परिक्रमा लगायी। परिक्रमा कर चुकनेके बाद पूज्या बाई ज्यों ही चितापर आरोहण करने वाली थीं, वे एकदम ठिठक गयीं। बाईके नेत्र नभके शून्यमें किसीको एकटक देखते हुए पूर्णतः स्थिर हो गये। बाई चिताके पार्श्वमें पाषाणवत् खड़ी हो गयीं। लोग बाईको एकटक देख रहे थे और बाई एकटक निहार रही थीं किसीको शून्य नभमें। लोगोंको आकाशमें कुछ दिखलायी नहीं दिया, परन्तु बाईने स्पष्ट देखा कि एक गैरिक वस्त्रधारी तेजस्वी संन्यासी हाथमें कमण्डलु लिये हुए आये हैं और उनसे कह रहे हैं—तुमको अपने पतिके शवके साथ सती नहीं होना है। नारीका सती होना श्रेष्ठ आदर्श है, परन्तु तुम्हारे द्वारा समाजमें इससे भी श्रेष्ठतर आदर्शकी प्रतिष्ठा होनेवाली है। इसके लिये तुमको अपने जीवनकी रक्षा करनी चाहिये।

बाई पहचान नहीं पायीं कि ये तेजस्वी संन्यासी कौन हैं? बाईके लिये ये सर्वथा अपरिचित थे, परन्तु उनका आदेश भली प्रकारसे श्रवण-गोचर हो रहा था और यह आदेश सर्वथा समयोचित था। बाईका मातृ-कृपासे संधित होकर नित्य-निकुञ्ज धामसे नारी शरीरका आश्रय लेकर इस भूतलपर अवतरण हुआ था, ऐसी बाईके समक्ष उन तेजस्वी संन्यासीका अचानक प्रकट होना, वह भी ठीक चितारोहणके अत्यन्त संवेदनशील समय प्रकट होना और प्रकट होकर आदेशके रूपमें संदेश देना, यह सारा स्वयंमें एक विशेष महत्त्व रखता है। कई बार ऐसा होता है कि अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य भविष्यके गर्भमें छिपे रहते है, जिनको भगवान् या त्रिकालदर्शी संत ही देख और जान पाते हैं। भविष्यमें बाईका वह श्रेष्ठतर आदर्श जीवन क्या होगा, उसीको देखकर यह समयोचित संतादेश हुआ था और उस भावी श्रेष्ठतर आदर्शको समाजके समक्ष प्रस्तुत करनेके लिये बाईके जीवनकी रक्षा आवश्यक थी। बाईके रूपमें वह दिव्यात्मा न तो एक साधारण स्त्रीकी भाँति अपना पुत्र-पौत्रात्मक संसार बसानेके लिये और सुखैश्वर्य पूर्ण

सांसारिक जीवन व्यतीत करनेके लिये आयी थी और न एकमात्र सतीत्वके महान आदर्शकी प्रतिष्ठा करना उसके जीवनका लक्ष्य था। जन्म देनेवाले माता-पिताका मन-मस्तिष्क कन्याके क्वारीपनकी चिन्ताके भारसे बोझिल न रहे, इसीलिये किशोरावस्थाके आगमनके पहले-पहले ही सांसारिकता-पारिवारिकता आदिकी दृष्टिसे जो संक्षिप्त नाट्य होना था, वह मातृ-कृपासे पूर्णता की ओर अग्रसर हो रहा था और अब वही मातृ-कृपा बाईकी जीवन धाराको एक विशेष मोड़ दे देना चाहती थीं। यही कारण था कि उन तेजस्वी संन्यासीने चितारोहणके समय प्रकट होकर वैसा आदेश दिया था।

उन तेजस्वी संन्यासीका दर्शन हो रहा था एक मात्र बाईको, अन्योंको नहीं, परन्तु अन्य लोगोंने इतना अवश्य देखा कि बाईमें अचानक परिवर्तन आया है। जिस रीतिसे बाई अचानक ठहर करके ठिठक गयी थीं, जिस रीतिसे वे एकटक शून्यमें निहार रही थीं, जिस रीतिसे वे चिता-पार्श्वमें पाषाणवत् खड़ी हो गयी थीं, जिस रीतिसे उनकी भाव-भंगिमा बदल रही थी, जिस रीतिसे उनके भालपर गाम्भीर्य की रेखाएँ उभर रही थी और जितनी देरतक बाई चुपचाप गुमसुम अन्तर्मुखी रही थीं, इन सब बातोंको देखकर समीपस्थ लोगोंने इतना अनुमान तो लगा ही लिया कि कोई अनोखी और अनहोनी बात अकस्मात् घटित हुई है, जो सूझ-बूझसे परे है। बाईको यह तो बतलाना था नहीं कि अभी अचानक क्या घटित हुआ है, पर उन्हें तो अब वही करना था, जैसा उन्हें संतादेश मिला था। लोककी निन्दा-स्तुतिसे सर्वथा निरपेक्ष तथा जगतके जन-जल्पसे पूर्णतः निर्भय होकर बाईने अपना निर्णय पूर्णतः बदल दिया और उन्होंने अपने सारे स्वर्णाभूषण उतार दिये। कण्ठका मंगलसूत्र उतारकर चितामें शवके ऊपर रख दिये। तदुपरान्त स्नान करके बाईने श्वेत साड़ी पहन ली। फिर बाईने ही चितामें अग्नि दी।

इसके बाद तेरह दिनोंतक जो-जो शास्त्रोचित और्ध्वदैहिक कृत्य दिवंगत आत्माकी शुभ गतिके लिये किये जाते हैं, वे सारे कार्य परिवारवालोंने बाईसे ही करवाये। इन तेरह दिनोंतक बाईने अत्यधिक तितिक्षा पूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए अति कठोर तप किया और इस अवधिमें ही बाईके जीवनकी और चिन्तनकी धारामें विशेष मोड़ परिलक्षित होने लगा।

* * * * *

भक्ति-भावकी धारा

श्रीयदुनन्दनजीके असामयिक आकस्मिक निधनसे सभी सगे-सम्बन्धी, बन्धु-बान्धव अति व्यथित थे। सभीके व्यथित हृदयमें बाईके लिये बड़ी ममता और सहानुभूति उमड़ रही थी। बाईके ननदोई थे श्रीसत्यव्रतजी मिश्र। उनका घर आलमशाही ग्राममें था। वे प्राय: श्रीवृन्दावन जाते रहते थे। श्रीराधा-कृष्णकी अष्टयामीय लीला-चिन्तनमें ही उनका अधिकांश समय व्यतीत होता था। वे भी श्रीयदुनन्दनजीके निधनका शोक समाचार पाकर बाईसे मिलनेके लिये आलमशाहीसे बौसी आ गये। वे अपने साथ श्रीराधा-कृष्णका विग्रह और श्रीगिरिराजकी शिला भी लेते आये थे। उन्होंने वह युगल विग्रह और वह श्रीगिरिराज शिला बाईको दे दी। ये दोनों अभी भी बाईके पितृ-गृहमें सेवित है।

श्रीसत्यव्रतजी बाईके पास प्रतिदिन बैठकर बहुत-बहुत देरतक श्रीराधा-कृष्णकी मधुर लीलाओंकी चर्चा किया करते थे। अष्टयामीय लीलाओंका चिन्तन ही उनकी रसात्मक साधनाका मुख्य अंग था और ये सरस लीलाएँ ही उस सच्चर्चाका विषय रहती थीं। उन्होंने बाईका पथ प्रदर्शन भी इसी पद्धतिसे किया। प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-कृष्णकी मधुर लीलाओंके वर्णन द्वारा जो पथ-प्रदर्शन मिला, उसे और भी सही रूपमें यह कहना चाहिये कि उससे बाईके अन्तरमें आत्मस्वरूपकी स्मृति कौंध उठी। पाञ्चभौतिक शरीरमें रहते हुए भी वे स्वयंको प्रिया-प्रियतमकी स्नेहास्पदा अनुचरीके रूपमें देखने लगीं। श्रीसत्यव्रतजी तो रसिक संतोंकी वाणीके आधारपर लीलाका वर्णन करते थे, परन्तु तथ्य यह था कि वे जिस लीलाका वर्णन जैसे-जैसे करते जाते थे, वैसे-ही-वैसे वह मधुर लीला बाईको प्रत्यक्ष दिखलायी देती जाती थी। इस तथ्यको बाईने अपने मुखसे स्वयं ही बतलाया है।

बाई द्वारा श्वेत वस्त्र धारण कर लिये जानेके बाद उनके मानसमें तीव्र विरक्तिकी जो भावना लहरा रही थी, उस भावधाराको श्रीराधा-कृष्णकी सरस और मधुर भक्तिकी दिशाकी ओर मोड़ देनेमें तथा आत्मस्वरूपकी स्मृति करा देनेमें यह सच्चर्चा बड़ी सहायक सिद्ध हुई।

श्रीयदुनन्दनजीके दिवंगत होनेका शोक समाचार जब नाथनगर पहुँचा, तब बाईके माता-पिताके मनपर क्या बीती होगी, इसका अनुमान तो कोई भुक्त-

भोगी माँ-बाप ही लगा सकता है। माँके रूदनकी सीमा नहीं थी कि कब अपनी बेटीको अपने आँचलमें छिपा लूँ और वैद्यराज श्रीशुक्लजी यद्यपि साधु जीवन थे, परन्तु एक बार उनके आस्तिक मनका भी धैर्य डिग गया। वे नाथनगरसे बौंसी आये। श्रीयदुनन्दनजीके पधारनेके बाद चौथे दिन श्रीशुक्लजी बौसी पहुँचे। पहुँचते ही उनको बेटीके घरके द्वारपर ही एक छोटा सा सुन्दर और सलोना बालक दिखलायी दिया। उस साँवले बालकके मुखपर अनोखी आभा थी। वह बालक आदेशात्मक स्वरमें श्रीशुक्लजीसे कहने लगा—बाबूजी! आप बाईको यहाँ छोड़कर मत जाइयेगा। आप उसे अपने साथ लेकर ही वापस जाइयेगा।

श्रीशुक्लजीने उस सलोने साँवरे बालकके कथनको भगवदाज्ञाके समान मानकर तत्क्षण यह निश्चय कर लिया कि किसी भी परिस्थितिमें बाईको साथ लेकर ही जाना है। और्ध्वदेहिक क्रिया ज्यों ही सम्पन्न हुई, उसके अगले चौदहवें दिन श्रीशुक्लजीने बाईको अपने साथ नाथनगर ले जानेके लिये समधी श्रीमिश्रजीसे आज्ञा माँगी। न चाहते हुए भी श्रीमिश्रजीको आज्ञा देनी पड़ी। आज्ञा मिलते ही श्रीशुक्लजी बाईको साथ लेकर चल पड़े। चलते समय श्वसुरजीने बाईको श्रीराधा-कृष्णका युगल विग्रह देकर वात्सल्यसे सने हुए करूण स्वरमें कहा—दुल्हिन! यही मेरा बेटा है।

घरसे विदा होनेके पहले बाईने अपने सब आभूषण-वस्त्र आदि सास-ननद-जेठानीके मध्य वितरित कर दिये। सम्पन्न घराना होनेके कारण वस्त्राभूषणोंकी कमी नहीं थी, पर अब इनसे बाईको क्या लेना-देना था। वे तो अपने परम धन श्रीयुगल विग्रह और श्रीगिरिराज शिलाको साथ लेकर पिताजीके साथ प्रसन्न मुद्रामें बौंसीसे चल पड़ीं।

श्रीशुक्लजी बौंसीसे सीधे अपने घर नाथनगर जाना चाहते थे, परन्तु बाईकी रूचि कुछ और थी। घर जानेके पहले बाई गंगा स्नान करना चाहती थीं। बाईकी इच्छाको देखकर श्रीशुक्लजी गंगा स्नानके लिये सुल्तानगंज गये। वहाँ भगवती गंगाके तटपर उस छोटी-सी बक्सको खोला गया, जिसको सासूजीने बौंसीसे चलते समय बाईके साथ दे दिया था। उस बक्समें सासूजीने कुछ वस्त्र, कुछ आभूषण और कुछ रूपये रख दिये थे। बाईने वे सारी चीजें सुल्तानगंजमें बाँट दी।

बाई गंगाजीमें स्नान कर चुकनेके बाद जब कपड़े पहन रही थीं, उसी समय एक छोटा सा सुन्दर साँवला बालक आया और वह बाईके शरीरसे उतरे हुए भींगे वस्त्रोंको उठाकर बोला—इन वस्त्रोंको मैं धोऊँगा।

श्रीशुक्लजी चटसे बोले—अरे! क्या कर रहे हो? इन कपड़ोंको क्यों छू रहे हो? इन्हें तो मैं ही धो लूँगा।

वह बालक आग्रहपूर्वक कहने लगा—नहीं, नहीं, इन्हें तो मैं ही धोऊँगा।

इतना कहकर वह बालक उन वस्त्रोंको लेकर अदृश्य हो गया। यह तो बड़ी विचित्र बात घटित हो गयी। तत्क्षण चारों ओर उस बालकको देखा और खोजा गया, पर वह कहीं भी नहीं मिला। फिर श्रीशुक्लजी बाईको लेकर अपने घर नाथनगर आ गये।

माँ तो अपनी बेटीको देखनेके लिये तड़प रही थीं। जिसने अपनी बेटीको वस्त्राभूषणोंसे सजा करके ससुराल भेजा था, अपनी उस लाडिलीको सुहागकी सिन्दूरी रेखासे शून्य और सफेद साड़ीमें सिमटी हुई देखकर माँका हृदय फट पड़ा, रोदन फूट पड़ा। उसके आँसुओंकी धारा बरसाती नदीकी तरह बह चली। बेटीको छातीसे चिपका करके उसने जो विलाप किया, उसका वर्णन सम्भव नहीं।

'बरनि न जाहिं बिलाप कलापा'

जब अवसरी मिला, तब श्रीशुक्लजी बड़े दर्द भरे करुण स्वरमें कहने लगे—बेटी! यह सब क्या हो गया? कैसे हो गया? क्या सोचा था और क्या देखना पड़ रहा है। 'विधि करतबु कछु जाई न जाना'।

बाईने सन्त्वना देते हुए कहा—बाबूजी! जो कुछ हुआ है, वह भगवान्‌की इच्छासे हुआ है। हमलोगोंपर श्रीश्यामसुन्दरकी बड़ी कृपा है। जो भी हुआ है, हम भले समझ न पायें, परन्तु इसमें हित ही छिपा हुआ है।

नाथनगर आकर बाई पूर्ण रूपसे त्यागमय जीवन बिताने लगीं। वे पन्द्रह-पन्द्रह दिनों तक अपने बालमें कंघी नहीं करती थीं। जब श्वेत वस्त्र धारण कर लिया, तब वस्त्रोंमें विशेष रूचिके लिये स्थान ही कहाँ रह गया? उन्हें किसीसे व्यर्थ बातें करना बड़ा अप्रिय लगता था। उनके खान-पान, शयन-स्नानका समय बहुत अनिश्चित रहने लगा। अब बाईको कमरेका एकान्त ही प्रिय लगता था। एकान्तमें उनकी विभोर स्थितिको देखकर यही लगता था कि वे किसी अन्य लोकमें है। घरमें जब-जब श्रीठाकुरजीकी सेवा पूजा करनेका अवसर मिलता, तब बाईकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं रहती। ठाकुरकी सेवाके लिये बाईके मनमें सदा ललक बनी रहती थी। ठाकुर-सेवामें समयके बीतनेका पता ही नहीं रहता था।

* * * * *

मंत्र दीक्षा

नाथनगरमें एक महिला थीं, जो निर्गुण उपासक संत श्रीनारायण हरिजीकी शिष्या थीं। इन माताजीको पता चला कि वैद्यराज श्रीशुक्लजीकी पुत्री रुक्मिणी बाईके जीवनमें इस प्रकार दुःख पड़ गया है। बाईके प्रति माताजीके मनमें सहानुभूति उमड़ने लगी। दैनिक सत्संगमें नित्य चलनेकी प्रेरणा देनेके उद्देश्यसे वे माताजी बाईसे मिलीं और श्रीनारायण हरिजीके सत्संगमें जानेके लिये बाईको राजी कर लिया। अपने पिताजीसे आज्ञा लेकर बाई उन माताजीके साथ सत्संग लाभके लिये चल पड़ीं।

श्रीनारायण हरिजी सभीको पुत्तर कहकर सम्बोधित किया करते थे। सत्संग हेतु आयी हुई बाईको देखकर वे कहने लगे—यह बालिका बहुत सीधी है, सरल है। मैं इसे दीक्षा दूँगा।

अल्पावस्थाके कारण बाईको दीक्षा इत्यादिका कोई ज्ञान तो था नहीं। संतोंके प्रति सहज श्रद्धा होनेके कारण मनमें किसी प्रकारके प्रतिकारकी भावनाका उद्भव हुआ ही नहीं। दीक्षाका दिन तथा समय निर्धारित किया गया। जिस दिन दीक्षा होनेवाली थी, उससे पूर्व रात्रिमें बाईको स्वप्नमें एक संत दिखलायी पड़े। वे श्वेत वस्त्रधारी थे। उन्होंने बाईके कानमें एक मन्त्र दिया। मंत्र दान करनेवाले ये श्वेत वस्त्रधारी संत कौन थे, इसका स्पष्टीकरण बहुत दिनों बाद भविष्यमें हुआ।

दूसरे दिन निर्धारित समयपर हवन-कुण्ड बना करके दीक्षा देनेकी पूरी तैयारी होने लगी। उनके बहुतसे शिष्य भी वहाँ उपस्थित थे। दीक्षा समारोहका शुभारम्भ बड़े धूमधामसे हुआ। दीक्षा-पद्धतिके अनुसार पूजन-हवन इत्यादि होनेके बाद मन्त्र-प्रदान करनेका समय आया। मंत्र-प्रदान करनेसे पहले दीक्षाभिलाषीसे कुछ संकल्प करवाये जानेकी परम्परा है। एतदर्थ गुरुजीने बाईसे कहा—बोलो! मैं ब्रह्म हूँ (अहं ब्रह्मास्मि)।

बाईकी बचपनसे ही भगवान् श्रीकृष्णके प्रति प्रगाढ़ प्रीति थी। बौसीमें सम्मान्य श्रीसत्यव्रतजीसे भगवच्चर्चा करते समय आत्मस्वरूपकी जो स्फूर्ति हुई थी, उसकी स्मृति जाग उठी। यह संकल्प तो उनको बड़ा ही प्रतिकूल लगा,

पर बोलना आवश्यक था। वे मन ही मन 'मैं' के स्थान पर बोलीं—'श्रीकृष्ण ही' और फिर प्रकट रूपमें बोलीं—ब्रह्म हैं।

उन गुरुजीने फिर संकल्प लेनेके लिये कहा—आजसे मेरा श्रीकृष्णसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

बाईने अस्फुट स्वरोंमें मन्द रीतिसे उच्चारण करते हुए कहा—आजसे मेरा सम्बन्ध केवल-केवल श्रीकृष्णसे ही होगा।

यह संकल्प तीन बार दुहराया गया। गुरुजीने फिर दुहरानेके लिये कहा—आजसे हम तुलसी पूजन नहीं करेंगे और भगवच्चरणामृत नहीं लेंगे।

गुरुजीको यह ज्ञात हो गया था कि बाई भगवान् श्रीकृष्णकी उपासिका है, अत: वे बाईके हृदयमें प्रतिष्ठित सगुण साकार भगवान् श्रीकृष्णके स्थानपर निर्गुण निराकार अद्वय ब्रह्मको स्थापित करना चाहते थे और इसीलिये ऐसे संकल्प बाईसे करवा रहे थे, परन्तु बाईकी तुलसीजीके प्रति बचपनसे ही अगाध श्रद्धा थी। तुलसीजीके प्रति बाईके मनमें जो लगाव था, वह जीवन भर उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। वह लगाव आजीवन अत्यन्त घनिष्ठ रहा। बाईके निवास स्थानपर तुलसीजी अवश्य रहती थीं और बाई उनका प्रतिदिन सभक्ति अर्चन-वन्दन करती थीं। वे तुलसी पूजनके बिना रह ही नहीं सकती थीं और इसी प्रकार भगवच्चरणामृतके बिना जल ग्रहण करना भी उनके लिये असम्भव था। अब अपनी निष्ठाके अनुसार बाईने गुरुजी द्वारा कथित संकल्पको ही बदल दिया और कहा—आजसे हम नित्य तुलसी पूजन करेंगे और नित्य भगवच्चरणामृत लेंगे।

दीक्षा दिये जानेका सारा कार्य पूर्ण हो जानेके बाद बाई अपने घर आयीं। घरपर आकर बाईकी स्थिति बड़ी विचित्र हो गयी। मनमें बड़ा वैचारिक संघर्ष छिड़ा हुआ था। बाई गम्भीर विचारमें पड़ गयीं कि श्रीकृष्ण भक्तिका निषेध होनेके कारण मैं गुरुजीकी आज्ञाका पालन नहीं कर सकती, किन्तु गुरुकी आज्ञाकी अवहेलना भी तो एक अपराध है। इस अन्तर्द्वन्द्वमें समय व्यतीत होने लगा। श्रीनारायण हरिजीके सत्संगमें श्रीकृष्ण भक्तिका प्रतिपादन-परिपोषण नहीं होनेसे अब वहाँ होनेवाले दैनिक सत्संगमें बाईके जानेका तो प्रश्न ही नहीं उठता था। लोगोंके बहुत आग्रह करनेपर भी बाई उनके सत्संगमें नहीं गयीं। भले बाई उस दैनिक सत्संगमें नहीं जाती थीं, किन्तु गुरु-अवहेलनाका भय भी मनमें छाया हुआ था। इन दिनों बाई अत्यधिक खिन्न और उदास रहने लगीं।

इस घटनाके पश्चात् बाईके जीवनमें एक जीवनमें एक और नया मोड़ आया और इस नये मोड़ने बाईको श्रीमहिला संघसे जोड़ दिया। भागलपुरकी प्रमुख संस्था श्रीमहिला संघका भी एक संक्षिप्त इतिहास है। इस संस्थाकी स्थापनाका श्रेय संतसेवी और सर्वप्रिय श्रीलोकनाथ प्रसादजी ढाढनियाँको है। अपनी अत्यन्त लाडिली पुत्रवधू श्रीमती चन्दा देवी ढानढनियाँके प्रति अपना अपार वात्सल्य था। नख-शिख सात्त्विक स्वभाववाली श्रीचन्दा बाईके मनमें सत्संग करनेकी बहुत चाह रहा करती थी। सम्भ्रान्त कुलकी परम्परागत श्रेष्ठ मर्यादाओंकी परिधिमें रहनेके कारण उनका कहीं भी सत्संगमें जाना सम्भव नहीं हो पाता था। अपनी लाडिली पुत्रवधूकी प्रबल इच्छा जानकर श्रीलोकनाथजी एक ऐसी संस्थाका निर्माण चाहते थे, जहाँ केवल महिलायें ही बैठकर सत्संग किया करें। पूज्य श्रीसेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) से श्रीलोकनाथजीका घनिष्ठ सम्बन्ध था और इस घनिष्ठताके नाते वे प्रायः सत्संगके लिये भागलपुर आया करते थे। श्रीसेठजीके मनमें चन्दा बाईके लिये भी बहुत स्थान था। चन्दा बाईकी भावनाको आदर देनेके लिये श्रीलोकनाथ प्रसादजीके आग्रपर श्रीसेठजी द्वारा श्रीमहिला संघकी स्थापना सम्वत् २००५ विक्रमी (तदनुसार सन् १९४८) में हुई।

फिर श्रीलोकनाथजीने भूमि खरीदकर भवनका निर्माण करवाया और भवनका उद्घाटन भी श्रीसेठजीके कर कमलोंसे हुआ। इन्हीं पूज्य श्रीसेठजी द्वारा पधराये गये श्रीराधा-कृष्णके युगल विग्रह श्रीमहिला संघमें आज भी विराजित है। माताओं-बहिनोंके कल्याणार्थ यह श्रीमहिला संघ आज भागलपुरकी एक विख्यात संस्था है।

इस संस्थासे आदरणीया श्रीनर्मदा बाई खेतान बहुत जुड़ी हुई थीं। श्रीनर्मदा बाईका ससुराल नाथनगरमें था। सत्संगके प्रति उनका अत्यन्त अनुराग था। वे पूज्य श्रीसेठजी और श्रीभाईजीके सत्संगमें आया-जाया करती थीं। वे भगवत्प्रेरित होकर एक दिन बाईके पास आयीं। प्रथम मिलनमें ही नर्मदा बाईको ऐसा लगा कि यह तो मेरी बेटी है और उनके हृदयमें बाईके प्रति सहज वात्सल्यका एक प्रबल प्रवाह बहने लगा। इधर ऐसा हुआ तो उधर बाईको भी ऐसा लगा कि ये तो मेरी माँ है। बाई अपने भाव प्रवाहको रोक न सकीं और नर्मदा बाईको माँ कहकर सम्बोधित करने लगीं। इस सम्बन्धका निर्वाह जीवनके अन्तिम क्षणतक होता रहा।

अगले दिन नर्मदा बाई स्वर्गाश्रम स्थित गीताभवन पूज्य श्रीसेठजी और पूज्य श्रीभाईजीके सत्संगके लिये नाथनगरसे जाने वाली थीं। गीताभवन ऋषिकेशसे लगभग तीन मील गंगाजीके उस पार स्वर्गाश्रममें स्थित है। यह भवन भगवती गंगाजीके तटपर एक अत्यन्त रमणीय स्थान है, जहाँ सत्संगकी बड़ी सुन्दर व्यवस्था है। यह गीता भवन गोरखपुरके गीताप्रेसकी एक सह-संस्था है और पूज्य श्रीसेठजी और पूज्य श्रीभाईजीका प्रतिवर्ष ग्रीष्म ऋतुमें वहाँ सत्संग हुआ करता था। नर्मदा बाईकी आन्तरिक इच्छा थी कि मैं बाईको भी अपने साथ गीताभवन ले जाऊँ और वहाँ श्रीसेठजी तथा भाईजीसे मिला दूँ, परन्तु बाईके पिताजी वैद्यराज श्रीशुक्लजीने वहाँ जानेके लिये आज्ञा नहीं दी। नर्मदा बाई जब गीताभवनके लिये जाने लगीं, तब बाईने अपने दिवंगत पति श्रीयदुनन्दनजीका चित्र उनको दे दिया। यह चित्र बाई बौसीसे अपने साथ लेती आयी थी। नर्मदा बाईने वह चित्र अपने पास रख लिया और गीताभवन जाकर एक दिन श्रीसेठजीको दे दिया। चित्र देकर उन्होंने श्रीरुक्मिणी बाईका सारा वृत्त भी सुनाया। श्रीसेठजीने वह चित्र तो अपने पास रख लिया और भगवान् श्रीकृष्णका एक चित्र देकर नर्मदा बाईसे कहा—रुक्मिणीको यह चित्र दे देना और कह देना कि वे भगवान् श्रीकृष्ण ही उसके वास्तविक पति हैं।

गीताभवनसे नाथनगर आकर नर्मदा बाईने वह चित्र बाईको देकर पूज्य श्रीसेठजीका कथन भी सुना दिया। इस कथनने भी उनके उस निकुञ्जात्मक आत्मस्वरूप की स्मृतिकी जागृति करा दी, जो प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-कृष्णके निकुञ्ज विहारसे सम्बन्धित है। बाईको सतत यही लगने लगा कि मैं प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-कृष्णकी एक प्राण प्यारी सेवा परायणा अनुचरी हूँ। इसके पश्चात् बाई मञ्जरी भावसे भावित रहते हुए साधन-भजनमें संलग्न रहने लगीं। वे नित्य प्रति प्रात:काल चार बजे उठकर और स्नान आदिसे निवृत्त होकर पूजा-पाठ, जप-ध्यानमें तल्लीन हो जातीं।

पूज्य श्रीसेठजीने भगवान् श्रीकृष्णका जो चित्र भिजवाया था, वह चित्रात्मक श्रीविग्रह पूजाघरमें पधरा दिया गया। वैद्यराज श्रीछेदीप्रसादजी शुक्ल इसे अपना जँवाई मानकर दुल्हा बाबू सम्बोधित करने लगे। ये दुल्हा बाबू आजतक शुक्ल परिवारमें विराजित है और भली प्रकार सुपूजित हो रहे हैं।

* * * * *

दिव्य अनुभव

बाईने अपने साधन-भजनके लिये जो नियम ले रखे थे, उसके लिये अरूणोदयसे पहले उठ जाना आवश्यक था। बहुत सबेरे उठ करके तथा स्नानोपरान्त शुचि वस्त्र धारण करके बाई साधन-भजनके लिये आसनपर बैठ जाया करती थीं। एक दिन नित्य नियमानुसार प्रात:काल उठकर स्नानार्थ जल निकालनेके लिये बाई कुएँपर गयीं। कुआँ घरके पिछवाड़े ही था। कुएँपर पुरानी लकड़ीका एक पटरा रखा हुआ था। बाईने उस पटरेपर ज्यों ही अपना पाँव रखा, त्यों ही वह टूट गया और इसके फलस्वरूप बाई कुएँमें गिर पड़ी। कुआँ बहुत गहरा था। उसमें तेरह फीट जल था। कुएँके गहरे जलमें गिरनेका अर्थ है जीवन-लीलाकी समाप्ति, पर वहाँ तो नितान्त विस्मयकारिणी एक अनहोनी बात घटित हो गयी। बाईको ऐसा पूर्ण रूपसे अनुभव होने लगा कि वह कुएँके जलसे पर्याप्त ऊपर किसीकी गोदमें आनन्दसे बैठी हुई है। कुएँका जल उन्हें रञ्च मात्र भी स्पर्श नहीं कर रहा है। कुएँके उस एकान्तमें भी बाई अपने आराध्य युगल सरकारके बिना बेचैन हो उठीं। वे जोर-जोरसे अपने पिताजीको बाबूजी कहकर पुकारने लगीं।

उनकी तेज आवाज घरवालोंको सुनायी देती थी, पर कोई समझ नहीं पा रहा था कि वह आवाज कहाँसे आ रही है। कोई कल्पना कर भी कैसे सकता था कि बाई कुएँमें गिर पड़ी हैं। खोजते-खोजते घरवाले कुएँके पास आये। ज्यों ही पिताजी कुएँके पास पहुँचे, त्यों ही उच्च स्वरसे बाईने कहा—बाबूजी! मेरे युगल सरकार मुझको यहाँ दे दीजिये। मैं यहाँ बड़ी आनन्दसे हूँ।

बेटीको कुएँमें गिरी हुई देखकर पिता श्रीशुक्लजी अत्यधिक चिन्ताकुल हो उठे। बाईकी बातपर तनिक भी ध्यान न देते हुए सान्त्वनाके स्वरमें बोले—बेटी! घबराओ नहीं मैं अभी तुमको निकालता हूँ।

श्रीशुक्लजीने उसी समय दो-तीन व्यक्तियोंको सहायताके लिये बुलाया और रस्सीके सहारे एक पीढ़ा कुएँमें लटका कर बोले—बेटी! तुम इसपर बैठ जाओ।

क्या ही आश्चर्य है कि बाई तो कुएँसे बाहर आना ही नहीं चाह रही थीं। किसीकी सुखद गोदमें बैठे रहनेसे प्राप्त होनेवाले उस दिव्य आनन्दसे वञ्चित होना उन्हें तनिक भी प्रिय नहीं था। सच्ची बात तो यह थी कि प्रियतम

श्रीकृष्णने बाईको अपने अङ्क ले रखा था और जलकी सतहसे पर्याप्त ऊँचे होनेके कारण उनके वस्त्र बिल्कुल सूखे थे। पिताजीने जब बहुत आग्रहपूर्वक आदेशात्मक स्वरमें उनसे कहा, तब वे पीढ़ेपर बैठी और उन्हें ऊपर खींच लिया गया। कुएँमें गिरनेसे बाईको रञ्च मात्र भी न तो कहीं चोट आयी और न ही खरोच लगी।

लगभग इन्हीं दिनोंके आसपासका एक और दिव्य प्रसंग है। प्रत्येक वर्ष आश्विन मासके कृष्णपक्षमें दिवंगत माता-पिता-पितरों आदिके लिये श्राद्ध निधन-तिथिपर किया जाता है। नाथनगरमें बाईके पिताजीने पितृपक्षमें निधन-तिथिपर श्राद्ध किया। ब्राह्मण-भोजन हो जानेके पश्चात् माताजी बाईको बुलानेके लिये गयी जिससे वे भी प्रसाद ले लें। बाई उस समय शान्त लेटी हुई थीं। दो-चार बार पुकारनेके बाद भी जब वे नहीं उठीं तो माँने उनको हिलाया-डुलाया। उस समय बाई पूणरूपेण बाह्य चेतना शून्य थीं। तभी वे एकाएक उठकर और पालथी मारकर बैठ गयीं तथा माँसे बोलीं—श्रीश्यामसुन्दर हूँ। मैं यह सब प्रसादी-वस्तुएँ नहीं खाऊँगा। आपके पास और कुछ खानेकी वस्तु हो तो दीजिये।

मञ्जरी भाव-भाविता बाईके व्यक्तित्वमें उस समय कुछ क्षणके लिये श्रीकृष्णावेश हो आया था। बाईका यह रंग-ढंग माँके लिये कल्पनातीत था। माँको विस्मय तो हो ही रहा था, पर मनमें अशुभ शंकाओंके उदय होनेसे वे भयभीत भी हो रही थीं। वे घबड़ा करके बाबूजीको बुला लायीं। बाबूजीसे भी बाईने उसी दिव्यावेशमें वही बातें दुहरायीं। तब माँने किञ्चित साहस बटोर कर कहा—यदि आप भगवान् श्री श्यामसुन्दर है तो आप हमें अपने दिव्य स्वरूपमें दर्शन दीजिये।

इतना कहते ही उनका दिव्य स्वरूप प्रकट हो गया। मुरली-मोरमुकुट-पीताम्बर धारण किये हुए भगवान् श्रीश्यामसुन्दरका दिव्य दर्शन होने लगा और यह भी दिखलायी दिया कि उनके पार्श्वमें बाई भी विराज रही हैं। अब तो श्रीशुक्ल दम्पतिके आनन्दकी सीमा नहीं थी। इसके बाद बाबूजी बाजार जाकर बहुत सी नैवेद्य-सामग्री ले आये और उन्हें समर्पित किया। इस प्रकारकी अनेक दिव्य घटनाओंकी लम्बी शृंखलाको देखकर श्रीशुक्लजीके मनमें यह धारणा अधिकाधिक बद्धमूल हो रही थी कि बेटीके रूपमें किसी परम दिव्यात्माका शुभागमन हमारे घरमें हुआ है।

* * * * *

श्रीमहिला संघमें आगमन

सं० २०१५ वि० के चैत्र मासकी शुक्ला नवमी (२९ मार्च १९५८) के दिन जगह-जगह भगवान् श्रीरामका जन्मोत्सव मनाया जा रहा था। इसी दिन श्रीरुक्मिणी बाईका श्रीमहिला संघमें सर्वप्रथम शुभागमन हुआ, जिससे वे आजीवन संबद्ध रहीं। नर्मदा बाई पूज्य श्रीसेठजी और पूज्य श्रीभाईजीके सत्संग-लाभके लिये नाथनगरसे गीता भवन (स्वर्गाश्रम, ऋषिकेष) चली जा चुकी थीं। उनकी अनुपस्थितिमें इसी रामनवमीके दिन भागलपुर स्थित श्रीमहिला संघकी मंत्रिणी आदरणीया फूल बाई नाथनगरसे श्रीरुक्मिणी बाईको साथ लेकर श्रीमहिला संघ आयी। उदारमना फूल बाईके मनमें भी श्रीरुक्मिणी बाईके प्रति बहुत सहानुभूति थी। वे श्रीरुक्मिणी बाईको साथ लेकर श्रीचन्दाबाईसे मिलीं। श्रीचन्दाबाई ढानढनियाँ श्रीमहिला संघमें भाभीजीके नामसे विख्यात है। श्रीचन्दाबाईसे मिलकर फूलबाई बोलीं—यह बाई नाथनगरके वैद्यराज श्रीशुक्लजीकी होनहार लड़की है। इससे तुम थोड़ी देर बात करो।

बातचीत करनेके पश्चात् भाभीजीको दृढ़ विश्वास हो गया कि यह तो किसी दिव्य लोककी असाधारण विभूति है। कुछ दिनों बाद नर्मदा बाई गीताभवनसे लौट आयीं।

भाभीजीके श्वसुर श्रीलोकनाथ प्रसादजी ढाढनियाँकी पूज्य श्रीसेठजीके प्रति बहुत श्रद्धा थी। उनके आग्रहसे श्रीसेठजी प्रवचन करनेके लिये कभी-कभी भागलपुर आया करते थे। इस बार जब श्रीसेठजी भागलपुर पधारे, तब नर्मदा बाई श्रीरुक्मिणी बाईको पूज्य श्रीसेठजीका दर्शन करानेके लिये अपने साथ लेती आयी। एकान्तमें श्रीसेठजीने एक डेढ़ घण्टे तक बाईसे बात की। इसी बातचीतके प्रवाहमें बाईने सेठजीको कुएँमें गिरनेवाली घटना सुनायी। इस घटनाको सुन चुकनेके बाद श्रीसेठजी बाईको कुएँवाली बाईके नामसे ही पुकारने लगे। बाईसे मिलकर पूज्य श्रीसेठजी बहुत प्रसन्न और प्रभावित हुए। वे प्रभावित हुए मात्र उस अनोखी घटनासे नहीं, अपितु उस अनोखी घटनाके साथ बाईके अनोखे व्यक्तित्वसे। बाईके मुखमण्डलपर एक दैवी आभा छायी हुई थी। उन्होंने भाभीजीसे कहा—या बाई तो एक प्रकार स आपनी ही है।

तू इन महिला संघमें राख्या कर ओर इक्की बाँता सुन्या कर।

भाभीजीसे ऐसा कहकर तुरन्त उसी समय उन्होंने नर्मदा बाईसे कहा—तू भी महिला संघमें रहा कर ओर इन्न भी साथ रख।

इसपर नर्मदा बाई बोली—सेठजी! यह तो नाथनगरके वैद्यराज श्रीशुक्लजीकी लड़की है। उनकी आज्ञाके बिना यह महिला संघमें कैसे रह सकती है?

श्रीसेठजी तुरन्त हँसते हुए बोले—वैद्यजी सँ तो म्हें माँग लाँवागाँ।

श्रीसेठजी उसी दिन नाथनगर श्रीवैद्यजीके घरपर गये। पूज्य श्रीसेठजीको अपना घरपर आया हुआ देखकर श्रीशुक्लजीको अपार आनन्द हुआ। वे मन-ही-मन अपने भाग्यकी रह-रह करके सराहना कर रहे थे कि यह कितना शुभ दिवस है, जो श्रीसेठजी जैसे सिद्ध संतकी पावन पग धूलिसे यह घर पवित्र हो गया। कुशल समाचार पूछनेके बाद श्रीवैद्यजीके सामने अपनी चादर फैलाकर श्रीसेठजी बोले—वैद्यजी! ई बाई न म्हान दे दो।

श्रीवैद्यजी इस याचनाको सुनकर गद्‌गद हो गये और अपने हाथमें अपनी जनेऊ लेकर वे खड़े-खड़े बोले—यह तो आपकी ही बेटी है। आप निःसंकोच भावसे इसे सहर्ष ले जाइये।

कुछ देर बातचीत करनेके पश्चात् जब श्रीसेठजी जाने लगे तो श्रीरुक्मिणी बाई भी उनके पीछे-पीछे चलने लगीं। बेटीको जाते हुए देखकर श्रीशुक्लजीने उससे कही—बेटी! तुम कहाँ जा रही हो?

बाईने विनम्र स्वरमें अपने पिताजीसे कहा—बाबूजी! आपने ही तो अभी-अभी मुझे श्रीसेठजीके हाथमें सौप दिया है और सौप देनेकी बात कही है हाथमें जनेऊ लेकर।

यह सुनकर श्रीशुक्लजी फूट पड़े। वे रोने लगे और विकल स्वरमें कहने लगे—बेटी! ऐसा तो सम्मानमें स्वाभाविक ही बोला जाता है। मेरे कहनेका तात्पर्य यह थोड़े ही था कि वे मैंने सदाके लिये तुमको दे दिया है।

कथनका तात्पर्य क्या था, शब्दोंका अर्थ क्या था, इस ओर बाईका ध्यान था ही नहीं। अपने पिताजीके शब्दोंका सीधा-सादा अर्थ लगाने और समझने वाली बाई भला अब कब रुकनेवाली थी? आँखोंमें आँसू, अधरोंपर आह और अन्तरमें कराह लिये हुए विकल और विवश वैद्यजी अपनी बेटीको रोक नहीं पाये। अपने माता-पिताजीको सादर प्रणाम करके बाई उसी दिन उसी समय पूज्य श्रीसेठजीके साथ चल पड़ीं। बाई श्रीमहिला संघमें आ गयीं और उसी दिनसे श्रीमहिला संघमें रहने लगीं। बाईका त्याग-तपस्यामय

शान्त-निर्मल जीवन श्रीमहिला संघकी अन्य साधिका बहिनोंके लिये आदर्श स्वरूप था।

श्रीमहिला संघमें रहते समय बाईको कलेवामें रातकी ठण्डी रोटी और नमक मिलाया हुआ मट्ठा दिया जाता था, परन्तु बाईने यह कभी नहीं कहा कि मैं यह नहीं खाऊँगी। जो भी और जब भी उन्हें दिया जाता, वे प्रसन्न मनमें स्वीकार कर लेती थीं। किसी वस्तुके प्रति असद्भाव व्यक्त करना उनकी प्रकृतिमें नहीं था।

कुछ दिनोंके बाद बाईने प्रातःकाल कलेवामें अन्न नहीं खानेका नियम ले लिया। यह सुनकर भाभीजीने उनके लिये एक पाव दूध भेजना आरम्भ कर दिया। बाई वह दूध कभी किसी बहनको और कभी किसी माताजीको पिला देती थीं। स्वयं एक दिन भी नहीं पीया। यह बात कब तक छिपती? धीरे-धीरे इसकी खबर भाभीजी तक पहुँच गयी। भाभीजीने बाईसे पूछा—बाई! तुम दूध दूसरोंको क्यों पिला देती हो?

अपनी भावात्मक लाचारीको बतलानेके लिये बाईने विनम्र स्वरमें कहा—भाभीजी! दूध सभीको मिलेगा, तभी तो मैं पी पाऊँगी। मैं अकेले दूध कैसे पी सकती हूँ?

श्रीमहिला संघकी तत्कालीन व्यवस्थाके अनुसार कुछ माताएँ आश्रममें केवल रहती भर थीं। वे अपने भोजनका प्रबन्ध स्वयं करती थीं। बाईके श्रीमहिला संघमें आनेसे पहले गौतमी नामक एक माताजी थीं। इन गौतमी माताजीके प्रति बाईकी बहुत श्रद्धा थी। बाई बराबर कहा करती थीं कि इन मैयाने हाथ पकड़कर मुझे चन्दन घिसना और तुलसी तोड़ना सिखाया है। गौतमी माताजीके पास स्वयंकी कोई व्यवस्था नहीं थी। वे बालब्रह्मचारिणी ब्राह्मणी थीं। इनके अलावा बाईने जिन दो बहिनोंको श्रीमहिला संघमें रख लिया था, उनका भी भोजन आश्रमकी ओरसे होता था। भाभीजीने प्रसन्नतापूर्वक सभीके लिये दूधकी व्यवस्था कर दी, तभी बाईने दूध पीना स्वीकार किया।

सभीके प्रति बाईका बड़ा आत्मभाव था। उनके मनमें सभीके प्रति निश्छल और निर्मल प्रीति थी। उनके शील और दैन्यने उनको सर्वप्रिय बना दिया था। उनके जीवनमें यदि एक ओर कठोर संयम और तितिक्षा थी तो दूसरी ओर था सहज स्नेह और सेवा। इन सद्गुणोंके कारण बाईके निखरते-उभरते व्यक्तित्वके प्रति सभीका मन अधिकाधिक झुकता चला जा रहा था।

* * * * *

मञ्जरी भावमें तन्मयता

पूज्य श्रीसेठजीके निर्देशानुसार रुक्मिणी बाई तो श्रीमहिला संघमें स्थायी रूपसे रहने लगीं, परन्तु नर्मदा बाईने नित्य-वास का व्रत नहीं लिया। वे दिनभर बाईके साथ श्रीमहिला संघमें रहतीं और सूर्यास्त होनेपर अपने घर नाथनगर चली जाया करती थीं। बाई स्वभावसे बहुत ही संकोची थीं। किसीसे बात करना या कोई चीज माँगना उनके स्वभावमें ही नहीं था। उन्हें बाईकी सँभालकी चिन्ता सदा बनी रहती थी। घर जाते समय वे दो गिलास जल बाईके सिरहाने इसलिये रख जाती थीं कि रातको प्यास लगनेपर बाई पी लेगी।

एक दिन नर्मदा बाई अपने घर नाथनगर जानेके पहले जलका गिलास रखना भूल गयी। घर जाकर जब उन्हें जल न रखनेकी बात याद आयी तो उन्हें बहुत दु:ख हुआ। वे मनमें बड़ा खेद मानने लगीं कि बाईको तो पानीके बिना कष्ट हुआ होगा। उधर नर्मदा बाईको खेद हो रहा था और इधर एक दूसरी ही लीला हो गयी। रातको जब बाईको प्यास लगी, तब नर्मदा बाईके रूपमें प्रियतम श्रीकृष्ण आये और बोले—लो पानी पी लो। इतना कहकर और पानी पिलाकर वे चले गये।

निकुञ्ज धामकी वह स्नेहास्पदा अनुचरी ही तो अब रुक्मिणी बाईके रूपमें यहाँ निवास कर रही थी। उनकी सँभाल प्रियतम श्रीकृष्णको करनी ही थी। सबेरे जब नर्मदा बाई आयीं तो पश्चात्तापके स्वरमें बोलीं—बाई! मैं तो कल रातमें पानीका गिलास रखना ही भूल गयी थी। तुमको बहुत कष्ट हुआ होगा।

बाईने उत्तरमें कहा—माँ! आप यह क्या कह रही हैं? आपने ही तो रातमें पानी पिलाया था। देखिये! यह गिलास अभीतक यहीं रखा है।

परस्पर बात करनेपर जल पिलानेका रहस्य खुला और फिर उसका यथार्थ सत्य सामने आया। इस घटनाका नर्मदा बाईके मनपर बहुत ही प्रभाव पड़ा। वे सोचने लगीं कि मेरी तनिक सी भूलका सुधार करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णको मेरा रूप धरकर आना पड़ा। अब भूलका अवसर भविष्यमें आये ही नहीं, ऐसा सोचकर नर्मदा बाई भी बाईके साथ श्रीमहिला संघमें रहने लगी।

इस घटनासे यदि नर्मदा बाईके बाहरी जीवनमें परिवर्तन आया तो रुक्मिणी बाईके भीतरी जीवनमें 'श्याम रंग' और गहरा होने लगा। इन दिव्य

प्रसंगोंने बाईकी भावमयताको और भी सघन बना दिया। जिसने कुएँके गहरे जलमें डूबनेसे बचाया और जिसने रातको छद्म रूपसे आकर जल पिलाया, उन सतत सँभाल करने वाले प्राण-प्रियतम श्रीकृष्णके ध्यानमें बाई अधिकाधिक निमग्न रहने लगीं। बाई प्रायः मञ्जरी भावसे भावित रहतीं। पहले यह भावावेश कभी-कभी उभरता था। अब स्थिति दूसरी थी। भावावेश तो सदा बना रहता, परन्तु उसकी सघनता कभी-कभी अधिक हो जाती। बाईका पल-पल प्रयास यही रहता था कि मैं अपने मनसे और अपने तनसे उनका सदैव सुख-संवर्धन करूँ। बाईकी सहज चेष्टा हो गयी कि मेरे चिन्तनका एक-एक बिन्दु, मनकी एक-एक वृत्ति, भावकी एक-एक लहर, वाणीका एक-एक शब्द, शरीरका एक-एक अंग, क्रियाका एक-एक सोपान, जीवनकी एक-एक श्वास प्राण-प्रियतम श्रीकृष्णके सुखका साधन बना रहे।

बाईको अपने तन-मन-वचन-जीवनमें कहीं भी किञ्चित् अशुभ या अभद्र दिखलायी देता तो उन्हें सूईकी तरह चुभने लगता। श्रीमहिला संघके रसोई घरकी एक घटनासे उनके अनोखे मधुर श्रीकृष्णानुरागकी बड़ी सरस झलक मिलती है। बाई श्रीमहिला संघमें स्थायी रूपसे रहती ही थीं। आश्रमवासी बहिनें मिल-जुल करके सेवाका कार्य किया करती थीं। बाईको भी यदा-कदा रसोई घरके काममें हाथ बँटाना पड़ता था। रामप्यारी बाई सुबहकी रसोई बनाया करती थीं। रामप्यारी बाईसे फूल बाईने कहा—रामप्यारी! रुक्मिणीसे बर्तन मँजवाया कर। काम करनेसे धीरे-धीरे सीख जायेगी।

रामप्यारी बाईने कहा—मैं बर्तन माँज ही लेती हूँ। यह क्या करेगी?

फूल बाईने प्रश्नके रूपमें कहा—फिर यह कैसे सीखेगी? इससे काम करवाया कर।

फूल बाईका आग्रह देखकर रामप्यारी बाईने कहा—ठीक है। मैं बर्तन माँज लूँगी और ये धो लेगी।

रसोई घरमें लकड़ीके चूल्हेपर रसोई बना करती थी। इससे चूल्हेपर चढ़े हुए बर्तन अधिक काले हो जाते थे। बर्तनोंको माँजनेके बाद उनको धोनेके समय हाथमें कालिखका लग जाना स्वाभाविक ही था। बाईने माँजे हुए बर्तनोंको धोया। धोनेकी प्रक्रियामें उनके हाथमें कालिख लग गयी। बाई अपने हाथकी कालिख देखकर बुरी तरह फूट-फूटकर रोने लगीं और बोली—इन कालिख लगे हाथोंको श्रीकृष्ण देखेंगे तो उनको कितना कष्ट होगा?

रामप्यारी बाईने बाईको समझाते हुए कहा—रुक्मा! तू ऐसा मत रो। मैं

तेरा हाथ साफ कर दूँगी। आजके बाद कभी भी तेरेसे बर्तन नहीं धुलवाऊँगी।

रामप्यारी बाईने बहुत समझाना चाहा, पर वे तो चुप होनेका नाम ही नहीं ले रही थीं। फूल बाई आ गयी, मणी बाई आ गयी, एक-एक करके सब जमा हो गयी, पर बाई तो चुप हो ही नहीं रही थीं। बस, एक ही रट थी—कालिख लगे हाथोंको देखकर श्रीकृष्णको कितना कष्ट होगा?

साथकी बहिनें बाईके भावको, गरिमाको समझ ही नहीं पा रही थीं। मञ्जरी भाव भाविता बाईकी तो आन्तरिक आस्था थी कि मेरा तन-मन जीवन सारा-का-सारा प्रियतम श्रीकृष्णके सुखका साधन है और हाथोंकी इस कुरूपताको देखकर प्रियतमको कितना कष्ट होगा। यही सोचकर उनका रोदन बढ़ता ही जा रहा था। बहुत तरहसे समझाने-बुझानेके बाद वे शान्त हुई।

बाई तो चुप हो गयी, पर अन्य बहिनोंके मन चुप नहीं हुए। उन सबके मनमें एक संदेह उभर आया कि क्या सचमुच भगवान् श्रीकृष्णको बाईके अंगकी गौरकांति इतनी प्रिय है? आपसमें कानाफूसी चलने लगी। तभी एक बहिनने अपनी आस्थाके अनुरूप कह भी दिया—वह रोदन नाटक नहीं था। रुक्माके मनमें सच्ची व्यथा थी। रुलाईकी सच्चाई सिद्ध कर रही है कि उसके रोनेका कारण पूर्णतः सही है।

अब श्रीमहिला संघमें बाईको आदरकी दृष्टिसे देखा जाने लगा। जब वे रसोई घरका काम नहीं कर सकतीं तो यह सोचा गया कि उन्हें पूजा घरका काम देना चाहिये। श्रीमहिला संघमें श्रीबरसानेवालीका, अर्थात् श्रीराधा-कृष्णका मन्दिर है। बाईको श्रीबरसानेवालीकी पूजा-आरतीका काम सौंपा गया। सबका विश्वास था कि बाई ब्राह्मण परिवारकी है, अतः वे ठाकुर सेवा भली प्रकारसे कर सकेंगी, परन्तु यहाँ भी बाईके द्वारा सेवा-कार्य ठीक प्रकारसे नहीं हो सका। वे बत्ती प्रज्वलित करके आरती करनेके लिये खड़ी होती, पर होता यह था कि वे आरती-पात्र हाथमें लिये खड़ी-की-खड़ी रह जातीं।

मञ्जरी-भाव भाविता बाईको जीवनाराध्यका अनोखा सौन्दर्य आत्मविस्मृत बना देता। प्राण-प्रियतम श्रीकृष्णके ध्यानमें लीन होते ही आरती करनेकी स्मृति रहती ही नहीं। बाईकी यह स्थिति देखकर मंदिरकी पूजा-सेवाका कार्य भी छुड़वाना पड़ा।

बाई न बर्तन माँज सकती थीं और न ठाकुर सेवा कर पाती थीं, यहाँतक कि वे झाड़ू लगानेमें भी अयोग्य ही रहीं। कहाँतक कहें, सिखलाने-बतलानेके

बाद भी उन्हें चाकू पकड़ना नहीं आया। वे श्रीमहिला संघकी कोई भी सेवा-कार्य उचित प्रकारसे कर ही नहीं पा रही थीं। श्रीनारायण स्वामीजीके शब्दोंमें 'रही न काहू कामकी।' अब बाईके लिये भला क्या सेवा-कार्य शेष रह गया? जैसी उनकी मन:स्थिति थी, उस प्रेम-दशामें उनके द्वारा आश्रमकी बाह्य सेवाके विविध कार्योंको सम्पन्न करना सम्भव नहीं हो पा रहा था।

सच्ची बात यह है कि उनके प्राण-प्रियतम श्रीकृष्ण ही बाईसे एक विशेष कार्य करवानेकी योजना बना रहे थे और वह कार्य था भागवती प्रीतिकी पाठशाला खोलना तथा सम्पर्कमें आनेवालोंको उस भागवती प्रीतिके पाठ पढ़ाना। बस, इसीकी यह पृष्ठ भूमि थी। जगत्के लोग बाईकी भागवती प्रीतिसे संसिक्त मन:स्थितिको भले न समझ पायँ अथवा न भाँप पायँ, परन्तु जीवनसर्वस्व प्राण-प्रियतम श्रीकृष्णकी योजनानुसार बाईके चरण उस दिशाकी ओर बढ़े चले जा रहे थे। श्रीमहिला संघमें रहते समय कुछ और भी ऐसी घटनाएँ सामने आयीं, जो इस तथ्यको पुष्ट करती हैं।

गीताप्रेसकी स्थापना द्वारा श्रीमद्भगवद्गीताका प्रचार करनेवाले पूज्य श्रीसेठजीके प्रति सभीकी प्रगाढ़ श्रद्धा थी। श्रीसेठजी महासिद्ध संत थे। वे जिस बाईकी सराहना करें, उनके प्रति सभीके मनमें सहज आदरका हो जाना स्वाभाविक है। श्रीसेठजीने भाभीजीसे कहा ही था कि तुम इससे भगवत्त्वचर्चा किया करो। श्रीसेठजीका यह सुझाव मानो भाभीजीके लिये संजीवन-मन्त्र था। वे स्वयं चाह रही थीं कि पारस्परिक चर्चाके लिये कोई सुन्दर ढंग बन जाये। भागलपुरमें श्रीमहिला संघकी स्थापना भी तो इसी पावन उद्देश्यको लेकर हुई थी।

भगवत्प्रेरणासे एक दिन बाईने स्वयं ही भाभीजीसे सुझावके रूपमें कहा—भाभीजी! यदि हमलोग एक घण्टा आपके घरपर बैठकर भगवच्चर्चा किया करें तो कैसा रहेगा?

यह तो भाभीजीके लिये मन चाही बात थी। उसी दिनसे भाभीजीकी हवेलीमें सत्संग होने लगा। आसपासकी बहिनें भी आ जाती थीं। मञ्जरी भावमें लहराती-डूबती हुई बाईको प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-कृष्णकी जो लीलाएँ अनुभवमें आती, उनका वर्णन वे बड़ी सरस रीतिसे करतीं। एक घण्टा किस प्रकार बीत जाता था, पता ही नहीं रहता था। बाईकी कथन शैली ऐसी थी कि सभीको मोह लेती थी। सभीकी स्मृतिसे जगत निकल जाता था। बस, एक आकांक्षा रह जाती थी, कब हमलोगोंका जीवन भक्ति-भाव पूर्ण होगा?

चौथे दिन सत्संगने एक नया ही रूप धारण कर लिया। बाई श्रीमहिला संघसे लगभग एक बजे हवेलीमें आयीं। आज आनेका ढंग निराला था; चाल भी निराली थी और चेष्टा भी निराली थी। जिसे लीला-राज्यकी कुछ भी झलक या भनक होगी, वह यही कहेगा कि आज किसी उत्सवोल्लास-उन्मत्ता मञ्जरीने बाईके तन-मनपर अधिकार कर लिया है। वे भाभीजीसे न मिलकर, बिना कुछ कहे सीधे ठाकुरबाड़ीमें चली गयीं। ठाकुरबाड़ीमें रखी हुई जो पुष्प-मालाएँ थीं, उन सबको चटसे उठा लिया और ठाकुरबाड़ीसे बाहर आकर भाभीजीसे उत्फुल्ल हृदयसे उमंग भरे स्वरमें बोलीं—भाभीजी! आइये! आइये! आइये, आज कीर्तन करें। आइये, शीघ्र आइये।

आज बाईकी उमंग-धारा अनोखी थी। उस समय वहाँपर बाईके अतिरिक्त तीन जनी और थी, भाभीजी, नर्मदा बाई और सुमित्रा बाई। आगे-आगे बाई षोड़शनामात्मक महामन्त्र बोल रही थीं और पीछेसे तीनों बहिनें उच्च स्वरमें उनका अनुसरण कर रही थीं। हवेलीके वायुमण्डलमें

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे॥

यह महामंत्र गुञ्जायमान हो रहा था। प्रतिपल सभी बहिनोंकी उमंग धारा बढ़ती ही चली जा रही थी। चारोंमेंसे एकने हाथमें पुष्पमाला ले ली, एकने हाथमें गुलदस्ता ले लिया, एक हाथसे ताली बजाने लगीं और कभी-कभी भावावेशमें हाथ ऊँचे भी उठ जाते थे। कीर्तन करते-करते नृत्य आरम्भ हो गया, नाचते जाना और कीर्तन करते जाना। अनोखा समा बँध गया। बहुत देर तक हरिनाम-संकीर्तनका रस उछलता रहा, बहता रहा।

वह तो एक दिनके उमंगका दिग्दर्शन मात्र है। ऐसे उमंग भरे कार्यक्रमकी एक प्रकारसे धारा बह चली। एक दिन इस कीर्तनने एक और भावात्मक चमत्कार दिखलाया। बाईमें श्रीगौरांग महाप्रभुका भावावेश अवतरित हो उठा और सुमित्रा बाईमें श्रीयवन हरिदासजीका। भावावेशमें बाई और सुमित्रा बाई इस प्रकार अति तीव्रगतिसे नृत्य कर रही थीं, मानो चाक अपनी धुरीपर तेजीसे घूम रहा हो। नृत्यकी गति इतनी तीव्र थी कि उनके पाँव जमीनपर पड़ते हुए दिखलायी नहीं दे रहे थे। भाभीजी इस प्रकारके नृत्योन्मादको देखकर चकित और चिन्तित हो रही थीं। बाई बहुत देरतक नाचती रहीं और साथमें नाचती रही सुमित्रा बाई। नृत्योन्मादमें बाईकी आकृतिने, थिरकनने और चेष्टाओंने एक

नया मोड़ लिया। बाईने अपने हाथमें अपना आँचल थाम लिया और भाभीजीके सामने फैलाकर कहने लगी—'भिक्षां देहि, भिक्षां देहि।'

इसीकी अनुकृति उतर आयी सुमित्रा बाईमें। सुमित्रा बाईने भी अपना आँचल फैला दिया। भाभीजीके लिये यह एक कल्पनातीत दृश्य था। बाईको अपने सामने आँचल फैलाये हुए देखकर, इससे भी अधिक उनकी भावमयी मुद्रा देखकर भाभीजीकी मति कुंठित हो रही थी। वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो गयीं कि फैले हुए आँचलमें क्या भिक्षा दूँ? भगवत्प्रेरणासे बाईको भाभीजीकी मानसिक उलझनका आभास मिल गया। बाई तुरंत बोल पड़ीं—हमें भगवन्नामकी भिक्षा दो। भगवन्नाम संकीर्तनकी भिक्षा दो। हरिनाम संकीर्तनकी भिक्षा दो।

भाभीजीने तत्काल अपनी ओरसे स्वीकृति देते हुए कहा—हाँ बाई! बस केवल कीर्तन ही कर सकूँ ऐसा आशीर्वाद दे। तू कीर्तन करवाती रह और हमलोग कीर्तन करती रहें।

भाभीजीके लिये बाईकी कोई भी इच्छा विचारका स्थान नहीं रखती थी। ऐसा भी कह सकते हैं कि बाईकी रुचि ही भाभीजीका जीवन था। बहुत देर बाद नृत्यमय कीर्तनको विराम मिल पाया। प्रकृतिस्थ होनेपर बाई श्रीमहिला संघ चली गयी।

हरिनाम संकीर्तनको जीवन-का-जीवन और प्राणों-का-प्राण माननेवाली बाई तो मञ्जरी भावसे सदा भावित रहती थीं। अब वह भाव-सरिता समीपमें आनेवाली बहिनोंको सरसता और शीतलता प्रदान करने लगीं। बाईके सामीप्यमें 'निमिष निमिष उपजत सुख नये।' सरसतामें पगी उन बहिनोंको बाई बड़ी प्यारी लगने लगीं। उन्हें भला क्या पता कि बाई किस भावमें निमग्न है। वे तो इतनी ही समझसे सन्तुष्ट थीं कि बड़े सौभाग्य से बाईका सानिध्य हमलोगोंको मिला है। सानिध्यके सुखको भगवन्नाम संकीर्तन बहुत अधिक बढ़ा देता है। बाईके जीवनमें भगवन्नाम संकीर्तनका बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रहा है। सम्पर्कमें आनेवाली सभी बहिनों और माताओंको भगवन्नामके जप और संकीर्तनके लिये बाई प्रेरणा देती रहती थीं। भगवन्नाम संकीर्तनके सदा ही अल्पकालीन या दीर्घकालीन आयोजन होते ही रहते थे, जिनका सरस विवरण आगे चलकर पुस्तकके अनेक पृष्ठोंपर मिलेगा।

* * * * *

मञ्जरियोंके भावावेश

बाई स्वयंको बहुत छिपा करके रखना चाहती थीं, परन्तु लीलाधरकी लीला विचित्र है। उस छिपावका निर्वाह वे होने दें, तभी तो वैसा हो पायेगा।

एक बारकी बात है। जाड़ेकी रात थी। रामप्यारी बाई पूजा करके ठाकुरके मंदिरसे बाहर आयीं। उन्होंने देखा कि बाई मीरा शर्मा नामकी लड़कीसे बात कर रही हैं और मणी बाई उन दोनोंको डाँट रही है। मणी बाईने मीराको जबरदस्ती उसके घर भेजकर श्रीमहिला संघके फाटकमें ताला लगा दिया और फिर अपने कमरेमें आकर सो गयीं।

रामप्यारी बाई भी अपने सोनेके कमरेमें चली आयीं और कमरेको अन्दरसे बन्द करके सो गयीं। बाई और रामप्यारी बाई एक ही कमरेमें सोया करती थीं। बाईका बिस्तर भी कमरेके अंदर था। यह मात्र संयोग था कि उस दिन नर्मदा बाई श्रीमहिला संघमें नहीं थीं। उस कमरेके बाहर एक तख्त रहता था। बाई उसी तख्तपर बैठ गयीं। वे कभी तख्तपर लेट जातीं, परन्तु ठंडके मारे लेटा नहीं जाता। वे अब कभी पीछेकी ओर चली जातीं और कभी आकर तख्तपर बैठ जातीं। इस प्रकार सारी रात बीत गयी।

प्रातःकाल रामप्यारी बाई उठकर कमरेके बाहर आयीं तो देखा कि बाई गुड़मुड़ी मारकर बैठी हुई है। बाईको इस स्थितिमें देखकर वे सन्न रह गयीं और बाईसे बोलीं—रुक्मा! तुम रातभरसे यहीं बैठी हो क्या? यदि तुम कमरा खटखटा देती तो मैं खोल देती। इस जाड़ेमें तुम रातभर बाहर रही। मेरी बुद्धिको क्या हो गया, जो मैंने देखा नहीं?

उन्हें इस प्रकार बोलते हुए देखकर बाईने कहा—रामप्यारी बाई! यदि मैं बाहर रह गयी तो क्या हुआ?

खिन्न शब्दोंमें रामप्यारी बाई बोलने लगीं—तुमको कमरा खुलवा लेना चाहिये था।

अब रामप्यारी बाईको डर यह था कि अब भाभीजीको इसका पता लगेगा, तब वे मुझे क्या कहेंगी? इसी बातसे डर करके वे बार-बार बाईसे कुछ उलाहना, कुछ व्यथा और कुछ खिन्नताके स्वरमें बोल रही थीं। सान्त्वना देकर

रामप्यारी बाईको सन्तुष्ट करना आवश्यक था, अतः रहस्य खोलते हुए बाई बोलीं—रामप्यारी बाई! मुझे तो रातमें श्रीकृष्णके दर्शन हुए। पीछेकी तरफ हार शृंगारके पेड़पर मैंने श्यामसुन्दरको देखा। वे पाँव लटका कर बैठे हुए मंद-मंद मुस्कुरा रहे थे। रामप्यारी बाई! मुझे तो श्यामसुन्दरके दर्शन हो गये, अतः आप इतना पश्चात्ताप क्यों कर रही हैं?

रामप्यारी बाईके मनकी क्लान्ति दूर हो गयी, केवल दूर ही नहीं हुई, अपितु उनका मन विस्मयसे भर गया। उन्होंने टिप्पणी करते हुए कहा—तुम्हारे लीलाधरने अपना दर्शन देनेके लिये यह लीला रची थी क्या, जो तुमको जाड़ेकी रातमें कमरेसे बाहर रखा?

रामप्यारी बाईके विस्मयसे भरे हुए मनकी क्लान्ति तो मिट गयी, परन्तु अभी भ्रान्ति ज्यों-की-त्यों थी। केवल रामप्यारी बाईको ही नहीं, आस-पास नित्य साथ रहनेवाली बहनें यही समझती थीं कि यह भी हमारी जैसी ही है। किसीकी दृष्टिमें भाव-गरिमा अभीतक आ नहीं पायी थीं। बाई अपनी भाव-गरिमाको छिपाये रखनेके लिये सदा प्रयत्न करती रहती थीं।

एक रात उसका आभास नर्मदा बाईको कुछ-कुछ मिल गया। ऐसा कहना चाहिये कि यह रहस्योद्घाटनका श्रीगणेश था। श्रीमहिला संघमें बाईके साथ नर्मदा बाई सदा रहती थीं। रात-दिन साथ रहते-रहते नर्मदा बाईके ध्यानमें यह आने लगा कि रातमें सोते समय बाई अस्पष्ट स्वरमें स्फुट रूपसे कुछ-न-कुछ बड़बड़ाया करती है। उन्होंने यह बात भाभीजीको बतलायी। इस बातकी जाँच करनेके लिये भाभीजीने इन दोनोंको रात्रिमें हवेलीमें अपने पास बुलाकर सुला लिया। ध्यानपूर्वक सुननेपर यह ज्ञात हुआ कि बाई किसी मञ्जरीके भावमें आविष्ट होकर श्रीराधा-कृष्णके नित्य धामकी लीला परिकर मञ्जरियोंसे वार्तालाप करती हैं। वे कभी नाचती हैं, कभी गाती हैं और कभी बातचीत करती हैं। भाभीजी इन बातोंको छिप-छिपकर करके चुपचाप सुनती थीं। कई बार भाभीजीने गुपचुप रूपसे उस बातचीतको टेपरेकार्डरमें भर लेनेका प्रयास किया, परन्तु विचित्र लीला यह थी कि रेकार्डिंग करनेके प्रयासमें एक बार भी सफलता नहीं मिली। रातमें सोते समय बाई कभी-कभी स्फुट स्वरमें तो बोलती ही थीं, इसके अतिरिक्त साधारण बातचीतके प्रवाहमें भी बाई कई बार दिव्य नित्य-धामकी बहुत-सी बातें बोल जाया करती थीं। इस प्रकार बाईका

दिव्य स्वरूप धीरे-धीरे प्रकट होने लगा और उनके प्रति माताओं-बहनोंकी श्रद्धा भावना उत्तरोत्तर बढ़ने लगी।

श्रावण मासका प्रसंग है। श्रीमहिला संघमें शुक्ला एकादशीसे पूर्णिमातक प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्णको अत्यधिक भक्तिभावपूर्वक झूला झुलाया जाता था। प्रतिदिन नयी-नयी सजावटकी जाती थी। एक दिन झूलेको बिजलीके बल्वोंसे सजाया गया। सजावटके समय बिजलीके तारोंको साधारण रूपसे जोड़ दिया गया था। यह सजावट मात्र कुछ घण्टोंके लिये होती थीं, अतः जगह-जगहपर तारोंके जोड़को टेप लगाकर ढक देना आवश्यक नहीं समझा गया। सारी सजावट हो चुकी थी। कुछ फूल-पत्ती आदि यहाँ-वहाँ गिरी पड़ी थी। बस, इतना सफाईका काम बाकी था। इस ओर ध्यान जाते ही एक बहिनने बाईसे कहा—झूला सज गया है। तू झाड़ू लगा दे तो आरती कर दी जाय।

निर्देश मिलते ही बाईने तार उठाकर ज्यों ही झाड़ू लगानी चाही, वहाँ तो कुछ और ही संकट आ पड़ा। जगतकी व्यावहारिकतासे सर्वथा शून्य होनेके कारण बाईको भला क्या पता कि इन तारोंके खुले जोड़ोंको छूना नहीं चाहिये। बाईने ज्यों ही उसे पकड़ा, त्यों ही बहुत जोरसे बिजलीका झटका लगा। वे तत्काल भूमिपर गिर पड़ी। यह सौभाग्यकी बात थी कि वह खुला तार बाईसे अलग हो गया था। बाईको उठाकर तख्तपर सुलाया गया। भाभीजीने उनको कम्बल उढ़ा दिया। सभी लोग चिन्ताकुल हो रहे थे। डॉक्टरको बुलवाया गया। देखकर डॉक्टरने कहा—घबरानेकी कोई बात नहीं है, करेण्टका झटका जोरसे लगा है। इन्हें तख्तपर ही लेटे रहने दीजियेगा।

आवश्यक उपचार बतलाकर डॉक्टर साहब चले गये। बाई अचेतनावस्थामें तख्तपर लेटी रहीं। उनको सोया हुआ जानकर छेड़-छाड़ नहीं गयी। इधर बाई तख्तपर लेटी हुई थीं और उधर झूलनोत्सव मनानेके लिये श्रीप्रिय-प्रियतमको झूलेपर विराजित कर दिया गया। अब अचेतनावस्थामें ही बाई तख्तसे उठीं और झूलनकी ओर चल पड़ीं। बाईको झूलेकी ओर जाते हुए देखकर सावित्री बाईने उनका हाथ इस डरसे थाम लिया कि ये कहीं गिर न पड़ें। बाई मौन और प्रसन्न मुद्रामें चलती-चलती हॉलमें आयी और वहाँ झूलनपर श्रीप्रिया-प्रियतमके दर्शन किये। थोड़ी देर बाद वहाँसे वापस आकर बाई तख्तपर लेट गयीं।

अगले दिन प्रात:काल सावित्री बाईने गत रात्रिमें घटित सारी बातें बाईको बतलायीं। बाईने उनसे कहा—मुझे तो श्यामसुन्दर ही झूलेके पास ले गये थे।

वास्तविकताका स्पष्टीकरण करनेके लिये सावित्री बाईने कहा—बाई! आपका हाथ तो मैंने पकड़ रखा था।

बाईने प्रतिवाद करते हुए कहा—नहीं! नहीं! मेरा हाथ तो श्रीकृष्णके हाथमें था। वे ही मेरा हाथ थामे हुए थे। वे ही मुझे वहाँ तक ले गये थे। क्या तुमने मुझे तख्तपरसे उठाया था? श्रीकृष्णने ही बतलाया कि अब झूलनोत्सव आरम्भ होनेवाला है, चलो, दर्शन कर लो। इतना कहकर उन्होंने ही मुझे उठाया, वे ही मुझे ले गये और उन्होंने ही वापस लाकर सुला दिया।

सावित्री बाई मौन थीं। वर्णनके अनुसार अविश्वासके लिये स्थान ही नहीं था। सावित्री बाईने स्वयंको समझानेके लिये मन-ही-मन मान लिया कि एक ओरसे मैंने पकड़ रखा था और दूसरी ओरसे प्रियतम श्रीकृष्णने। प्रियतम श्रीकृष्ण जिसका इतना ध्यान रखते हो, उन बाईके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है।

धीरे-धीरे बाईके अन्तरंग ऐकान्तिक जीवनके सुगुप्त रहस्य प्रकट होते जा रहे थे। प्रकट होनेका आशय यह नहीं लेना चाहिये कि साथमें रहनेवाली सभी बहिनोंको उनके अन्तरंग लीलाओंकी जानकारी हो गयी। चन्दा बाई, नर्मदा बाई, सावित्री बाई आदि कुछ चार-पाँच बहिनें ही ऐसी थीं, जिनके सामने यह रहस्य खुल पाया। जब-जब जो-जो रहस्य प्रकट होता, उसकी परस्परमें चर्चा करते समय सभीके हृदयमें श्रीप्रिया-प्रियतमके निकुञ्ज-राज्यका आह्लाद हिलोरे लेने लगता। आह्लाद-सिन्धुकी लहरोंपर बिलसते हुए समयका ज्ञान नहीं रहता था। इन दिनों बाईमें कभी किसी मञ्जरीका और कभी किसी मञ्जरीका भावावेश होता रहता। जिन मंजरियोंका भावावेश होता उनमें कुछके नाम इस प्रकार है—कुन्दन मञ्जरी, सौभाग्य मञ्जरी, केलि मञ्जरी, मदन मञ्जरी, फूल मञ्जरी, पुष्प मञ्जरी, मधु मञ्जरी, मधुकरी मञ्जरी और कमल मञ्जरी। जब जिस मञ्जरीका भावावेश होता, उस मञ्जरीके भावानुसार-सेवानुसार-अधिकारानुसार-पात्रानुसार बाईकी बोलन-हिलन-डुलन-चलन-खेलन-विलसन-विहसन-विहरन होने लगती। श्रीकृष्णके नाम पत्र भी लिखतीं।

श्रीमहिला संघमें आनेके बाद बाईके जीवनका रंग कुछ और ही हो गया। वह रंग लोकोत्तर था, पूर्णत: अलौकिक था। श्रीप्रिया-प्रियतमके प्यारका वह

सुरंग सम्पर्कमें आनेवाली बहिनों और माताओंमें भी उमंग भर देता था। बाई कभी किसी मञ्जरी भावसे और कभी किसी मञ्जरी भावसे आविष्ट रहतीं। भावाविष्ट बाई कभी एकान्तमें निश्चेष्ट पड़ी रहतीं और कभी स्वजनोंके मध्य वह सुरंग बहाती रहतीं। उसी सुरंगमें वे कभी पत्र लिखतीं, कभी गुनगुनाती, कभी नृत्य करतीं, कभी स्वयं कीर्तन करतीं, कभी अन्योंसे कीर्तन करवातीं तथा कभी प्रिया-प्रियतमकी मधुर लीलायें सुनाया करतीं। साथकी अन्तरंग बहिनों-माताओंको ज्ञान नहीं रहता कि कब कितना समय निकल गया।

गुण-दोष-मय संसृतके प्रवाहमें बहे जाते हुए त्रिदोष ग्रस्त सांसारिक प्राणियोंकी उस दिव्य लीला-राज्यतक पहुँच नहीं थीं। यदि किसी प्रकार उस राज्यकी कुछ आहट उन प्राणियोंको मिल जाय तो वे उस दिव्य रसकी ऐसी-वैसी टीका-टिप्पणी ही करेंगे। यही कारण था कि जगतकी दृष्टिसे स्वयंको अत्याधिक सावधानीपूर्वक बचाते हुए साथकी अन्तरंग बहिनें-माताएँ उस लोकोत्तर मधुर-रसका आस्वाद लेती रहती थीं।

यही स्थिति बाईकी होकर भी उनके युगल-नयन सदा और सर्वत्र कुछ खोजते रहते थे, जिसकी जानकारी संगकी अन्तरंग बहिनोंको भी नहीं थी। बाईके भीतर सदा एक जिज्ञासा बनी रहती थी कि वे महापुरुष कौन थे जिन्होंने चितारोहण करनेसे मना किया था और वे महापुरुष कौन थे जिन्होंन मन्त्र प्रदान किया था? बाईकी आँखोंमें सदा प्रतीक्षा बनी रहती थी कि इन दोनों महापुरुषोंके दर्शन कब होंगे? इसी मूक प्रतीक्षामें बाईके दिन श्रीमहिला संघमें व्यतीत हो रहे थे।

* * * * *

संत-द्वयसे मिलन

समय पाकर ही बोया हुआ बीज अंकुरित और पल्लवित होता है। पल्लवित वृक्षमें पुष्प भी समय पाकर ही लगते हैं। पल्लवित-पुष्पित वृक्षका सुफलित होना भी समुचित समयकी अपेक्षा रखता है। ऐसा अनुमान होता है कि बाईकी सुललित लालसाके सुफलित होनेका समुचित समय आ गया था।

नित्य निकुञ्ज धामके विहारिणी-विहारी श्रीराधाकृष्णकी एक परम स्नेहास्पदा अनुचरीके अन्तरमें जग उठी तीन परम महाभाग संतोंके दर्शनकी उत्कण्ठा। वे महाभाग संत ऐसे थे, जिनकी चर्चा श्रीप्रिया-प्रियतम परस्परमें कर रहे थे। उन महाभाग संतोंके दर्शनकी यह सुललित लालसा ही हेतु बन गयी उस स्नेहास्पदाके अवतरण की। वह परमामलात्मा स्नेहास्पदा अनुचरी ही संत-दर्शनके लिये बाईके रूपमें भूतलपर अवतरित हुई।

जिन महाभाग संतोंके महत्कर्तृत्वकी चर्चा प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-कृष्ण अपने परस्परिक संलापमें करें, उनका व्यक्तित्व क्या साधारण होगा? भगवदीयताके साकार विग्रह वे महाभाग संत धरा-धामपर आये ही थे भगवदीय योजनाके अनुसार दैवी भावकी प्रतिष्ठा करनेके लिये। अध्यात्म जगतमें यह एक सर्व सम्मत तथ्य है कि जब-जब धर्मकी ग्लानि और असुर भावका प्राबल्य होता है, तब-तब साधु-साधक-सज्जनोंको संरक्षण प्रदान करते हुए आस्तिकता-सात्त्विकताकी संस्थापना द्वारा धर्मका अभ्युत्थान करनेके लिये भगवान् स्वयं अवतरित होते हैं अथवा उपर्युक्त लक्ष्य-सिद्धिके लिये अपने परमभागवत महज्जनोंको भेजते हैं। इन्हीं परम भागवत महज्जनोंकी सुदीर्घ शृंखलामें पूज्य श्रीसेठजी, श्रीभाईजी, पूज्य श्रीराधाबाबाके अतिरिक्त पूज्य श्रीगयाप्रसादजी महाराज, पूज्या आनन्दमयी माँ, ब्रह्मर्षि देवरहवा बाबा, पूज्य श्रीबालकृष्णदासजी महाराज, पूज्य स्वामी श्रीशरणानन्दजी जैसे संतोंके नाम भी परिगण्य है, जिनसे बाईका किसी-न-किसी रूपमें विशेष सम्बन्ध रहा है। इन संतोंके अथक और अकथ प्रयाससे वर्तमान कलि-कलुषित कराल युगमें नास्तिकतापर आस्तिकताकी विजय हो पायी।

आरम्भमें जिन तीन महाभाग संतोंका उल्लेख किया गया है, वे हैं श्रीसेठजी, श्रीभाईजी और श्रीराधाबाबा। श्रीसेठजीने श्रीमद्‌भगवद्‌गीताके प्रचारके

लिये अपना सारा जीवन लगा दिया। भगवान् श्रीकृष्णकी दिव्य-वाणी श्रीमद्भगवद्गीताका नगर-नगर प्रचार करनेके लिये, इसीके साथ-साथ परमानन्द-प्रदायक ज्ञान-कर्म-भक्ति-योगका संदेश घर-घर पहुँचानेके लिये और मानवोचित दैवी सद्गुणोंसे जन-जनके जीवनको सुसंस्कारित बनानेके लिये श्रीसेठजीने ऐसे अनेक महान् कार्य किये, जो ऐतिहासिक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण हैं और रहेंगे। इन अनेक महत्त्वपूर्ण कार्योंमें सर्वाधिक उल्लेखनीय है गोरखपुरमें गीताप्रेसकी स्थापना। गीताप्रेसके द्वारा धर्म-जागरणका ऐसा सुगठित और सुविस्मृत कार्य हुआ कि गोरखपुर नगर हिन्दू मात्रके लिये वन्दनीय और दर्शनीय बन गया। श्रीसेठजीने गीताप्रेसके माध्यमसे हिन्दू धर्मके आर्ष ग्रन्थोंको, मुख्यतः गीता-रामायणको नाममात्रके मूल्यपर सभीके लिये अति सुलभ बना दिया।

इन्हींके प्रयाससे ऋषिकेशसे लगभग तीन मील दूर भगवती गंगाके उस पार स्वर्गाश्रममें गीताभवनका निर्माण हुआ, जो आध्यात्मिक सत्संगका एक महान प्रेरणा केन्द्र बन गया। गीताभवनका ऐसा और इतना अधिक विकास हुआ कि वह संत-समागमकी चाह रखनेवालोंके लिये एक तीर्थ बन गया और भारतके कोने-कोनेसे साध्य-तत्त्व और साधन-पथसे सम्बन्धित पिपासा और जिज्ञासा रखनेवाले लोग संत-सानिध्यकी लालसा लिये हुए ग्रीष्म-ऋतुमें वहाँ आने लगे और अब भी आया करते हैं। श्रीसेठजी आत्मसंगोपन प्रिय थे। उनकी सुदृढ़ मान्यता थी कि नाम-रूपात्मक मल-मूत्रमय इस पाञ्चभौतिक शरीरका परिचय प्राप्त करनेकी दृष्टिसे चर्चा करना कोई हितप्रद कार्य नहीं है। वे यही कहा करते थे कि यदि चर्चा हो तो एकमात्र भगवत्तत्त्वकी चर्चा हो। वे भले अपने जीवनको और अपनी गरिमाको छिपायें, परन्तु उनके ये महान धर्म-कार्य उनकी उज्जवल कीर्तिके स्थायी स्तम्भ है।

आत्मसंगोपन प्रिय तो श्रीभाईजी भी थे, परन्तु परिस्थितिवशात् कभी-कभी उन्हें अपने बारेमें कुछ बोलना भी पड़ता था। भागवती शक्ति और दैवी ज्योतिसे सुदीप्त उनका जीवन न जाने कितने-कितने साधकों लिये, संतोंके लिये, यहाँतक कि सिद्धोंके लिये प्रेरक एवं पोषक रहा है। भक्ति-प्रचार, हरिनाम-संकीर्तन, मन्दिर-जीर्णोद्धार, राम-जन्म-भूमि, कृष्ण-जन्म-भूमि, तीर्थ-यात्रा, आर्ति-निवारण, साधु-सेवा, गौ-संवर्द्धन, शास्त्र-संरक्षण, पत्रिका-सम्पादन, काव्य-रचना, साहित्य-प्रकाशन आदि-आदि विशद कार्य उनके द्वारा विशेष

रूपमें हुए हैं और इन्हीं विशिष्ट कार्योंको करनेके लिये उनका आविर्भाव हुआ था। अपने आविर्भावके सम्बन्धमें वे अपनी लेखनीसे अपने वसीयतनामेमें स्वयं जो लिख गये हैं, वह इस प्रकार है—वास्तवमें इस पाञ्चभौतिक शरीरसे अपने कर्मके अतिरिक्त मेरे द्वारा कुछ 'विशेष कार्य' करवानेकी योजना थी। उनकी कृपा एवं शक्तिसे उनका काम बहुत अंशमें पूरा हो गया। यद्यपि मैंने जितना चाहा था, जैसा चाहा था, वैसा नहीं हो पाया। यों तो जितने लोग मेरे सम्पर्कमें आये हैं, उनका कुछ-न-कुछ कल्याण तो अवश्य ही हुआ है, और होगा.....। यद्यपि जगतके मंगलके लिये जो कुछ हुआ है, वह बहुत दूर-दूरतक हुआ है तथा उसका प्रभाव व्यापक तथा दीर्घकाल तक रहेगा। 'वह क्या है, कैसा है'—यह न मैं पूरा जानता हूँ, न जाननेकी इच्छा है। हाँ, इतना जानता हूँ कि वह प्रभुका कार्य है और महान है।

इतना ही नहीं, २० जून, १९६९ को एक आत्मीयजनके पास भेजे गये एक गोपनीय पत्रमें उन्होंने लिखा है—'जिस कार्यके लिये पाञ्चभौतिक शरीरके माध्यमसे मुझे भेजा गया था उनका यह कार्य पूरा हो गया। जो कुछ मेरे द्वारा होना अभीष्ट था, वह हो गया। उसका फल निश्चय ही बहुत ही श्रेयस्कर 'उनके' इच्छानुसार हुआ है, पर वह क्या है, आगे क्या होगा, यह जाननेकी न मुझे आवश्यकता है, न इच्छा।'

अब श्रीभाईजी द्वारा सम्पादित एवं सम्पन्न इस 'विशेष कार्य' के सम्बन्धमें हमलोग अपने रज-तमाच्छादित मन-बुद्धिके द्वारा कितनी ही कल्पना करें, फिर भी हमलोग उसकी गरिमाकी छायाका भी स्पर्श नहीं कर पायेंगे।

इन्हीं श्रीभाईजीके नित्य-निरन्तर साथ रहनेवाले श्रीराधाबाबाके सम्बन्धमें भी क्या बतलाया जाय? उनका परिचय बड़ा अद्भुत है। निखिल-सौन्दर्य-माधुर्य-मूर्ति प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवके दिव्य भावोदधिमें सदा निमग्न रहते हुए जो नित्य-सिद्ध-स्थितिके धरातलपर सदैव आरूढ़ रहे और आदि-अन्त-रहित रसानन्दसे सदाप्लावित रहते हुए जो सदैव भगवत्प्रेमको ही देखते रहे, सुनते रहे और कहते रहे, ऐसे महाभाव निमग्न श्रीराधाबाबाके रसार्द्र व्यक्तित्वको शब्दोंकी सीमामें सीमित कर लेना बड़ा कठिन है। उन जैसे परम प्रेमी रसिक संत भूतलपर कभी-कभी ही आते हैं।

श्रीराधाबाबाके बारेमें श्रीभाईजीने अपने प्रवचनमें कहा था—'महाभावकी

जो अगले स्तरकी चीज है, जिसकी रूपरेखा गोस्वामी प्रभृति रस मर्मज्ञोंने भी नहीं खींची, वैसी चीज बाबामें व्यक्त हुई है। इनका काष्ठ मौन असलमें इनका रस समुद्रमें निमज्जन है।'

परम पूज्या श्रीआनन्दमयी माँके कथनानुसार राधाबाबा प्रेम, भक्ति और सत्यका प्रतीक, भक्ति मार्गकी जीवन्त मूर्ति, एक स्थिति है, जहाँ ब्रह्म सिवाय और कुछ भी नहीं। द्वैत, अद्वैत, ज्ञान, भक्ति; सब एक ही है, वही है, जो स्थिति राधा बाबाकी है।

श्रीयोगराज ब्रह्मर्षि देवरहवा बाबाने कहा—श्रीराधाबाबा मणी है, प्रकाश है, शोभा है। श्रीराधाबाबा मेरी आत्मा हैं।

श्रीप्रिया-प्रियतमके समीप जिन तीन महाभाग संतोंकी सरस और सुन्दर चर्चाको सुनकर परम स्नेहास्पदा अनुचरीके अन्तरमें उनके दर्शनकी चाहका उद्भव हो गया था, वे थे ये ही पूज्य श्रीसेठजी, श्रीभाईजी और पूज्य श्रीराधाबाबा। ये तीनों महाभाग संत उस भगवदीय महत्कार्यकी दृष्टिसे वर्षमें एक बार स्वर्गाश्रममें आया ही करते थे। श्रीसेठजी तो ग्रीष्म-ऋतुमें गीताभवनके सत्संग-सत्रमें लगातार लगभग चार मास रहा करते थे, परन्तु श्रीभाईजी श्रीराधाबाबाको साथ लेकर मात्र एक-दो सप्ताहके लिये गोरखपुरसे स्वर्गाश्रम आया करते थे। गीताभवनके सत्संगमें नर्मदा बाई ग्रीष्म-ऋतुमें हर साल स्वर्गाश्रम जाया करती थीं। वहाँ संतोंके सत्संगसे उन्हें बड़ा आध्यात्मिक लाभ हुआ करता था।

पतिदेवके निधनके बाद रुक्मिणी बाई जब ससुरालसे सदाके लिये विदाई लेकर अपने पिता शुक्लजीके घर सदैव रहनेके लिये आ गयी थीं, तब उनके जीवनकी अँधेरी रातको पूर्णिमाकी चाँदनी रातके रूपमें बदल देनेकी भावनासे नर्मदा बाईने चाहा था कि रुक्मिणी बाई मेरे साथ स्वर्गाश्रम चले। इसके लिये उन्होंने प्रयास भी किया था और पिता शुक्लजीसे अनुरोध भी किया था कि मेरे साथ बाईको गीताभवन भेज दीजिये। उस समय भी शुक्लजीने गीताभवन जानेके लिये आज्ञा नहीं दी।

भगवत्कृपासे धीरे-धीरे परिस्थितिके स्वरूपमें परिवर्तन आया। पूज्य श्रीसेठजी जब भागलपुर गये थे, तब उन्होंने आध्यात्मिकताके प्रसारके लिये शुक्लजीसे बाईको माँग लिया था। श्रीसेठजीके प्रति शुक्लजीकी प्रगाढ़ श्रद्धा थी, अतः उन्होंने अपनी सुपुत्री बाईको सदाके लिये दे भी दिया। देते ही

शुक्लजीके अनुशासनका रूप बदल गया। वह अनुशासन अब आदेशात्मक नहीं रहा, अपितु आदेशका स्थान परामर्शने ले लिया। परामर्शके रूपमें यह परिवर्तन आवश्यक था, जिससे संत-दर्शन-लालसाकी परिपूर्ति हो सके। अनुशासनके स्वरूपमें परिवर्तन आ जानेसे गीताभवन जानेमें कोई बाधा नहीं रही। गीताभवनकी यात्रा करनेमें जो बाधा थी, उसको परिस्थितियोंके क्रमिक विकासने अथवा इस तथ्यको और भी अधिक सही रूपमें इस प्रकार कहा जा सकता है कि उस समर्थ दैवी तन्त्रके संचालन सूत्रने पूर्णतः दूर कर दिया।

नर्मदा बाई चैत्र माससे आषाढ़ मासतक स्वर्गाश्रमके गीताभवनमें रहा करती थीं। सन् १९५८ के चैत्र मासमें बाई श्रीमहिला संघमें आयी थीं और अगले वर्ष सन् १९५९ के चैत्र मासमें भाभीजीसे आज्ञा लेकर बाई भी उनके साथ गीताभवन गयीं। गीताभवनमें श्रीसेठजीका दर्शन करके बाईको बड़ी प्रसन्नता हुई। श्रीसेठजीसे तो बाई पहले मिल ही चुकी थीं।

श्रीभाईजी जब गोरखपुरसे गीताभवन आये, तब बाईको अपने साथ लेकर नर्मदा बाई उनके पास गयीं। बाई तो श्रीभाईजीको देखते ही अवाक् रह गयीं। भागलपुरमें मन्त्रकी दीक्षा मिलने वाला प्रसंग आँखोंके सामने तैरने लगा। श्रीनारायण हरिजी जिस दिन दीक्षा देनेवाले थे, उससे पहली वाली रात्रिमें श्वेत वस्त्रधारी एक संतने स्वप्नमें आकर मन्त्र-दान दिया था। बाईकी प्रबल चाह थी कि कभी इन मन्त्र-प्रदाता संतका पावन दर्शन मुझे मिले। जीवनके विविध कार्योंको करते हुए बाईकी दोनों आँखें मन्त्र-दीक्षा देनेवाले उन संतको सदा खोजती रहती थीं। बाईका वह चिर प्रतीक्षित क्षण आज और अब आया। बाईके आश्चर्य और इसीके साथ आनन्दकी सीमा नही थी। बाई मन-ही-मन उन्हें बार-बार प्रणाम कर रही थीं।

श्रीभाईजीने नर्मदा बाईको और बाईको अपने समीप बैठाया। लगभग एक डेढ़ घण्टे तक बहुत प्यारपूर्वक बात-चीत होती रही। नर्मदा बाईके द्वारा उकसाये जानेपर स्वयं बाईने श्रीभाईजीको अपने जीवनकी प्रमुख-प्रमुख घटनाएँ सुनायी। मन्त्र प्रदाता ही जब रूचि पूर्वक जीवनकी बातें सुन रहे हैं, तब कैसा छिपाव या दुराव? बाईने विभिन्न मञ्जरी-भाव वाली अपनी आवेश-दशाओंकी भी कुछ बातें संक्षेपमें बतला दी। उन प्रसंगोंको और भाव-दशाओंको सुन-सुन करके श्रीभाईजीको ऐसा लग रहा था कि बाईका जीवन भगवत्कृपा और भगवत्प्रेमका मूर्तिमान स्वरूप है। सिद्ध संतोंको भी ऐसे सरस प्रसंगोंको सुननेका

चाव बना रहता है। श्रीभाईजीका बाईके प्रति बड़ा स्नेह उमड़ रहा था। उसी उमड़ते प्यारमें श्रीभाईजीने बाईसे कहा—चल, तुमको बाबासे मिला दूँ।

बाईको लेकर श्रीभाईजी बाबाके पास आये और बाबाको बाईका परिचय देते हुए कहने लगे—बाबा! यह वही बिहार वाली बाई है।

श्रीभाईजीके इस कथनका तात्पर्य क्या था और बाबाने क्या अर्थ लिया, इसे तो वे दोनों संत ही जाने, परन्तु इस प्रथम मिलनमें ऐसा नहीं लग रहा था कि सर्वथा अपरिचितका परिचय दिया और लिया जा रहा हो। दोनों पक्षोंमें पूर्व-परिचय अपने-अपने ढंगसे उभर रहा था। 'यह वही बिहार वाली बाई है' इस वाक्यका सीधा-सादा अर्थ यह है कि यह बाई भागलपुरकी रहनेवाली है और भागलपुर बिहार प्रदेशमें है, अतः यह बाई बिहार प्रदेशकी है। इस साधारण अर्थके अतिरिक्त इसी वाक्यसे एक अर्थ यह भी ध्वनित होता है कि विहारिणी-विहारी प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-कृष्णके नित्य विहारमें सहयोग देते हुए उनके आगे-पीछे विहार करनेवाली वह परम स्नेहास्पदा अनुचरी ही यह बाई है। संतोंकी सर्वज्ञ दृष्टिको भूत-भविष्य अज्ञात नहीं रहता। इन संतोंके एक शब्द कभी-कभी एक साथ अनेक अर्थोंकी ओर संकेत कर दिया करते हैं, जिस तक साधारण जनकी पहुँच नहीं हो पाती।

'खग जाने खग ही की भाषा'। बाईका परिचय देते हुए 'यह बिहार वाली बाई है।' केवल इतना भी कह देनेसे काम चल सकता था, परन्तु श्रीभाईजीने बीचमें 'वही' शब्दका प्रयोग किया और इस 'वही' शब्दका प्रयोग एक विशेष महत्त्व रखता है। विशेष महत्त्व यही है कि उस मर्म भरे रहस्यकी ओर धीरेसे इशारा कर देना श्रीभाईजीको अभीष्ट था और उन्होंने वह कर भी दिया। इसीलिये ऐसा कहा जाता है कि सुविज्ञ संत जन शब्दोंके प्रयोगमें बड़े ही कुशल होते हैं। वे मर्म भरे रहस्यात्मक तथ्यको ढके हुए ढंगसे सांकेतिक शैलीमें इस चतुराईके साथ कह देते हैं कि जिसे वह गम्भीर तथ्य समझाना है, वह सहज रूपसे हृदयंगम कर ले, भले वह रहस्यात्मक तथ्य अन्योंके लिये रहस्य ही रह जाये।

जो हो, श्रीभाईजी और श्रीबाबाके बीच साधारण-सा दिखलायी देनेवाला जो संलाप हुआ, उसका मर्म वे दोनों संत जानें; परन्तु बाईको तो आज पदे-पदे क्षणे-क्षणे विस्मय हो रहा था। जिन्होंने स्वप्नमें आकर मन्त्र प्रदान किया था, उनका दर्शन अभी कुछ क्षण पहले मिला और जिन्होंने चितारोहण करनेसे

निषेध किया था, उन संन्यासी संतका दर्शन भी आज ही कुछ क्षणोंके अन्तरसे अभी मिल गया। संन्यासी वेषमें ये ही श्रीराधाबाबा थे जिन्होंने उस समय प्रकट होकर चितारोहण-निषेधका निर्देश दिया था। बाईके मनकी स्थिति अद्‌भुत-से-अद्‌भुत थी। उनके आनन्दकी सीमा नहीं थी। उनके आनन्दको परमानन्द कहें या महानन्द कहें या अद्भुतानन्द कहें, कुछ कह पाना कठिन हो रहा है।

श्रीभाईजी बाईको साथ लेकर जब श्रीबाबाके पास आये तब 'यह वही बिहार वाली बाई है' कहकर बाईका परिचय दिया था और बाईको देखते ही श्रीराधाबाबा भी उमड़ पड़े। बाईको पास बैठा लिया और साथ बैठे श्रीभाईजी भी। श्रीभाईजीने बाईके सम्बन्धमें जितना सुना था, उतना उन्होंने सुनाना आरम्भ किया। आरम्भ किया ही था कि फिर श्रीभाईजी बोल उठे—बाई! तू ही सुना।

श्रीभाईजीका आदेश सिर माथे था। अब बाईने सुनाना आरम्भ किया। हाँ, बीच-बीचमें श्रीभाईजी वर्णनका स्पष्टीकरण करनेके लिये कभी-कभी कुछ-कुछ बोलकर सहारा लगा दिया करते थे। यह सारा वर्णन श्रीबाबाने सुना। बाईके जीवनकी घटनाको सुनकर श्रीबाबाके नेत्र छलक आये। सजल नेत्रोंसे श्रीबाबाने श्रीभाईजीसे कहा—यह तो मेरी सहोदरा छोटी बहिन है। मैं इसका सिर सहलाऊँगा।

चतुर्थाश्रमी संन्यासी होनेके कारण श्रीबाबाका यह कठोर नियम था कि स्त्री और रुपयेका स्पर्श नहीं करना है। यदि भूलसे भी स्पर्श हो जाये तो चौबीस घण्टोंका उपवास करना पड़ता था। श्रीभाईजीने श्रीबाबाको उनके यति धर्मकी कठोरताकी स्मृति दिलाते हुए कहा—यह स्त्री शरीरमें है। आप इसका स्पर्श कैसे कर सकेंगे? दिव्य-भावसे भावित हुए श्रीबाबा अपनी सहोदरा बहिनके सिरको सहलानेके लिये अत्यधिक उत्सुक हो रहे थे। उन्होंने श्रीभाईजीके कथनकी और यति धर्मके नियमकी रक्षा करनेके लिये एक मध्यम मार्ग सोच लिया। उन्होंने श्रीभाईजीके हाथको अपने हाथसे पकड़ लिया और श्रीभाईजीके कर पल्लवसे बाईके शीशको भीगे मन और भीगी आँखोंसे कुछ क्षणोंतक सहलाते रहे।

निमित्त चाहे श्रीबाबा ही बने, परन्तु यह बानक तो बन ही गया कि उन मंत्र-प्रदाता संतका वरद-हस्त बाईके शीशपर था। श्रीभाईजीका कर-पल्लव बाईके शीशपर तो था ही, प्रकारान्तरसे श्रीबाबाका कर-पल्लव भी बाईके शीशपर था। प्रत्यक्ष रूपसे दिखलायी यह दे रहा था कि बाईके शीशपर केवल

एकका ही कर-पल्लव था, परन्तु आभ्यन्तरिक स्तरपर परोक्ष तथ्य यह है कि एक ही क्रियामें दोनों संतोंके कर-पल्लव बाईके शीशपर थे। बाईके उत्फुल्ल मनमें अमित उल्लस लहरा रहा था। उल्लसित भावोंकी लहरियोंपर कभी लहराती हुई, और कभी उनमें डूबती हुई बाईके मनकी स्थिति अवर्णनीय थी।

घटनाओंके विकासने एक लोकोत्तर भव्यताका आलोक पूर्ण लोक सृष्ट कर दिया। श्रीसेठजीने प्रथम मिलनमें ही बाईको आध्यात्मिकताके प्रसारके लिये माँग लिया, श्रीभाईजीने प्रथम मिलनमें ही सांकेतिक शैलीका आश्रय लेकर बाईके जीवनके एक निकुञ्जात्मक रहस्यकी ओर इशारा कर दिया और श्रीबाबाने प्रथम मिलनमें ही प्रकारान्तरसे अपना वरद-हस्त सहोदरा बाईके शीशपर रख दिया, ये प्रसंग स्वतः प्रमाणित करते हैं कि बाईके रूपमें निकुञ्जधामकी उस परम स्नेहास्पदा अनुचरीका ही अवतरण हुआ था।

उसी दिन बाई पूज्य स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराजसे भी मिलीं और उनके भाव भरे उद्गारोंने इस तथ्यपर एक गहरी छाप लगा दी थी। वृन्दावनके मानव सेवा संघके संस्थापक पूज्य स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराजके नेत्र-ज्योति नहीं थी। नेत्र-ज्योतिके अभावमें पठन-पाठन होता ही कैसे, परन्तु उन प्रज्ञाचक्षु स्वामीजी महाराजकी स्थिति इतनी उच्च थी कि आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शनकी प्राप्तिके लिये अच्छे-अच्छे वैरिस्टर, प्रोफेसर, डॉक्टर, आफिसर उनके शिष्य थे। राष्ट्रपति श्रीराजेन्द्र बाबूकी उनके प्रति अगाध श्रद्धा थी। वे प्रतिवर्ष उनके सत्संगका लाभ उठाया करते थे। स्वामीजी महाराजको श्रीसेठजी बड़े आदरके साथ गीताभवन आमन्त्रित किया करते थे और आप प्रतिवर्ष एक मासके लिये गीताभवनमें सत्संगी भाई-बहिनोंके मध्य प्रवचन देनेके लिये आया करते थे। स्वामीजी महाराजके पास भी बाईको लेकर नर्मदा बाई गयीं। प्रज्ञाचक्षु स्वामीजीकी पैनी दृष्टिने प्रथम मिलनमें ही बाईके वास्तविक स्वरूपको पहचान लिया। बाई ज्यों ही स्वामीजीके पास आयीं, उन्होंने पूर्णिमाके सिन्धुकी भाँति उमड़कर बाईको अपनी गोदमें खींच लिया और वात्सल्यसे नहला दिया। बाईपर उनका पुत्रीवत् प्यार बह पड़ा और बाई भी उन्हें पिता तुल्य मानने लगीं। स्वामीजी महाराजकी परम कृपा पात्रा भाव-सुपुत्री श्रीमुक्तेश्वरी बहिन है। बाईसे प्रथम मिलन होते ही बहिन मुक्तेश्वरीसे स्वामीजीने उमंग भरे स्वरमें कहा— मुक्ते! देखो!! तुम्हारी सहेली आयी है।

बाईके प्रति उनका वात्सल्य दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा था। इस

प्रथम मिलनके बाद जब-जब बाई स्वामीजीसे मिलने जाती थीं, तब-तब उन्हें देखकर स्वामीजी महाराज गद्‌गद् हो जाया करते थे। एक बार स्वामीजी अपने भावोंका संगोपन नहीं कर पाये और मुस्कुराते हुए विभोर वाणीमें बोले—बाई! तुम्हारा श्रीराधारानीके निज महलमें नित्य वास है। मैं तो भगवान् कृष्णका सखा हूँ। मेरी पहुँच तो केवल उनके द्वारतक ही है। तुम कृपा करके मुझे भी उनके महलमें प्रवेश करा देना। पूज्य स्वामीजीके इन भाव भरे उद्‌गारोंको सुनकर बाई सकुचा गयीं। कुछ उत्तर देते बना नहीं।

बाईको विस्मृत न हो पाया वह पावन दिवस, जब श्रीभाईजी और श्रीबाबाका दर्शन मिला था। यह निश्चित रूपसे बतला सकना कठिन है सन् १९५९ के उस चतुर्मासीय अवधिमें वह कौन-सी तिथि थी और वह कौन-सा वार था। अस्तु, जो भी दिवस रहा हो, वह बाईके जीवनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दिवस था। बाई रह-रह करके अपने भाग्यकी सराहना कर रही थीं। दीक्षाके समय मन्त्र-प्रदाता संत और चितारोहणके समय निषेधकर्ता संत, इन दोनों संतोंका दर्शन उसी एक दिन हुआ और इन दोनों संतोंके साहचर्यका स्वरूप भी अभूतपूर्व था। वे दोनों संत कभी अलग होते ही नहीं, सदा साथ रहते हैं। ऐसा नित्य साहचर्य अभूतपूर्व ही है। जब बाईको चितारोहणके लिये निषेध किया था और जब उन्हें मन्त्र-दीक्षा मिली थी, इन दोनों दिवसोंके मध्यमें कालका पर्याप्त अन्तर था और इस अन्तरके आधारपर अनुमान होता था कि ये दोनों संत अलग-अलग रहते होंगे। ऐसा चिन्तन भी होता रहता था कि अलग-अलग रहनेवाले ये दोनों संत न जाने कब मिलेंगे, कहाँ मिलेंगे और कैसे मिलेंगे, परन्तु उस दैवी-तन्त्रकी अचिन्त्य-महिमाकी बार-बार बलिहारी है। वास्तविक तथ्यके सामने अति ही वह अनुमान अस्तित्व हीन हो गया। इन दोनों संतोंसे एक ही दिन मिलन हो गया। एक ही दिन इन दोनों संतोंसे मिलना, फिर इन दोनों संतोंका सदा साथ रहना और इन दोनों संतोंका दर्शन पुनः-पुनः अवसरानुकूल भविष्यमें होता रहेगा, ऐसे विश्वासका स्थिर होना; इस यथार्थसे बाईके मनमें अपार और अगाध आनन्द उद्वेलित हो उठा।

* * * * *

रंगभरे प्रसंग

श्रीभाईजी और श्रीबाबासे मिलन होना बाईके जीवनका एक अति महत्त्वपूर्ण प्रसंग है। इन विभूति-द्वयसे मिलकर बाईका मन आनन्दमें डूबा रहता था। वह अधिक समय अपने कमरेके एकान्तमें ही रहा करती थीं। जन-संसर्ग अरुचिकर लगता था।

इसी सालकी एक घटना है। एक बार बाई गीताभवनके अपने कमरेमें बिल्कुल अकेली थीं। नर्मदा बाई श्रीसेठजीके सत्संगमें गयी हुई थीं। बाईने अपना कमरा अन्दरसे बन्द कर लिया। सत्संग समाप्त होनेपर नर्मदा बाई वापस आयीं। आकर उन्होंने देखा कि कमरेका दरवाजा बन्द है। नर्मदा बाईको बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि बाईने दरवाजा कैसे बन्द कर लिया। उन्होंने दरवाजा खटखटाया, परन्तु बाईने दरवाजा नहीं खोला। कौतुहलवशात् नर्मदा बाई दरवाजेपर कान लगाकर टोह लेने लगीं कि कमरेके अन्दर क्या हो रहा है। दरवाजेसे घुँघरूके बजनेकी हल्की-हल्की आवाज आ रही थी, परन्तु बात बहुत स्पष्ट नहीं हो सकी। कुछ देर बाद बाईने दरवाजा खोल दिया। कमरेके भीतर जाकर नर्मदा बाईने पूछा—रुक्मा! तूने इतनी देरतक दरवाजा क्यों नहीं खोला?

प्रश्न सुनकर भी बाईने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। वे मौन बैठी रहीं। तभी नर्मदा बाईको कमरेमें एक ओर छोटे-छोटे घुँघरू पड़े हुए दिखलायी दिये। नर्मदा बाईने तत्काल दूसरा प्रश्न किया—बाई! घुँघरू कहाँसे आये? जब मैं बाहर बैठी थी, तब कमरेमेंसे नृत्यकी हल्की-हल्की आवाज आ रही थी। तुम्हारे पास कौन था?

अब बाईने बतलाना आरम्भ किया—माँ! क्या बतलाऊँ? 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई'—यह जिन्होंने गाया है, वे ही मीरा बाई प्यारमें भरी-भरी आयी थीं। ज्यों ही आपने दरवाजा खटखटाया, त्यों ही वे अदृश्य हो गयीं। हड़बड़ाहटमें उनके दो घुँघरू गिर गये।

नर्मदा बाईने उन दोनों घुँघरूओंको उठाकर अपने मस्तकसे लगाया और मन-ही-मन बड़ी आह्लादित हो रही थीं।

अब इसी गीताभवनकी एक वर्षके बादकी एक और रोचक घटना है।

उस समय गीताभवनकी व्यवस्थाके अनुसार एक व्यक्ति प्रतिदिन प्रातःकाल प्रत्येक कमरेमें आकर हर सत्संगी भाई-बहिनसे पूछता कि आपके लिये बाजारसे क्या सामान लाना है। वह व्यक्ति गंगाजीके उस पार जाकर ऋषिकेशके बाजारसे सामान खरीदकर लाता और सायंकाल कमरेमें पहुँचा देता। सामान देकर वह व्यक्ति हिसाबके पैसे ले लेता। श्रीसेठजीने यह व्यवस्था इसलिये कर रखी थी कि सत्संगमें आनेवाले भाई-बहनोंको किसी प्रकारकी असुविधा न झेलनी पड़े। गीताभवनमें रहनेवाले सत्संगी भाई-बहिनोंको अधिक-से-अधिक सुविधा प्रदान करनेके लिये श्रीसेठजी सदैव तत्पर रहते थे।

वह व्यक्ति रोज नर्मदा बाईसे भी पूछने आया करता था और वे उसे आवश्यक सामान लानेके लिये कह दिया करती थीं। एक दिन वह व्यक्ति बतलाये हुए सामान लेकर शामके समय नर्मदा बाईके पास आया और साथमें आधा सेर काला जामुन भी लेते आया। वे जामुन खूब बड़े-बड़े थे और उनमें गुठली नहीं थी। ऐसे बढ़िया काले जामुन वह नर्मदा बाईको देने लगा। नर्मदा बाईने उस व्यक्तिसे पूछा—जामुन लानेके लिये तो मैंने कहा ही नहीं था।

वह व्यक्ति बोला—आपने तो नहीं कहा, पर आपके यहाँका एक छोरा कहनेके लिये आया था। मैं अपने कमरेमें पूजा कर रहा था। तभी वह लड़का आया। वह छः-सात सालका था। पूजा करते-करते यूँ ही नजर उठाकर मैंने उसकी ओर देखा। वह सफेद हाफ पैंट और गंजी पहने हुए था। उस लड़केने मुझसे कहा कि नर्मदा बाईने मुझे आपके पास यह कहनेके लिये भेजा है कि आप बाजारसे आधा सेर काला जामुन बढ़िया-बढ़िया देखकर लेते आइयेगा; भूलियेगा मत, अवश्य लाइयेगा। मैं पूजा करते समय मौन था, अतः सिर हिलाकर हाँ कर दिया। फिर वह चला गया, परन्तु जाते-जाते एक बार फिर बोला—बढ़िया काला जामुन लाना भूल मत जाइयेगा।

उसकी बात सुनकर नर्मदा बाईको बड़ा विस्मय हो रहा था। नर्मदा बाईने उससे कहा—मेरे यहाँ तो कोई लड़का है ही नहीं, न पास-पड़ोसके कमरेमें है, फिर भला मैं किसे भेजती?

उस व्यक्तिने कहा—जो लड़का आया था, उसने आपका नाम लेकर ही जामुन लानेके लिये कहा था।

बातको आगे बढ़ाना उचित न समझकर नर्मदा बाईने उस व्यक्तिको हिसाबके पैसे देकर विदा कर दिया। फिर रुक्मिणी बाईके पास आकर उन्होंने

पूछा—ऐ रुक्मा! तुमने किसी लड़केको गीताभवन वाले व्यक्तिके पास बाजारसे जामुन लानेकी बात कहनेके लिये भेजा था क्या?

बाईने कहा—माँ! मैंने तो किसीको भी नहीं भेजा। परन्तु एक बात है, आज प्रात:कालसे ही युगल सरकारको जामुनका भोग लगानेकी चाह मनमें रह-रहकर उठ रही थी। मैं आपको जामुन मँगवानेके लिये कहनेवाली थी। अब जामुन आ गया है तो उसका भोग लगा दिया जायेगा।

नर्मदा बाईके मनमें एक प्रश्न खड़ा था कि वह बालक कौन था, पर मनने ही उसका समाधान दे दिया—होगा वही छोरा, जो गाय चराता है, गोबर उठाता है, घड़े उँचवाता है और अपने निज जनोंके लिये न जाने क्या-क्या करता रहता है। बाईके मनमें उठी हुई चाहको तुरन्त पूर्ण करनेके लिये ही उस छोरेने यह खेल रचा है। वह तो अवसर ढूँढ़ता रहता है बाईकी सेवा करनेका। अब तो ऐसी घटनाओंका सिलसिला चल पड़ा।

पुन: एक घटना गीताभवनकी ही है, जो सन् १९६१ में हुई थी। इसी वर्ष बहिन कमलजी सर्वप्रथम रुक्मिणी बाईसे मिलीं। बहिन कमलजी दो नम्बरवाले गीताभवनमें ठहरी हुई थीं। वे अपने कमरेमें कुछ भजन बड़े मधुर स्वरसे गाया करती थीं। बाईने उन भजनोंको सुनकर नर्मदा बाईसे कहा—माँ! वह बहिन, जो भजन गा रही है, वह मेरी सहेली है। आप उसे यहाँ बुलाइये ना!

नर्मदा बाई कमलजीको बुला लायीं। प्रथम मिलनमें ही कमलजीको बाईमें कुछ दिव्यताकी झलक मिली। कमलजी और मुक्तेश्वरीजी, इन दोनोंको बाई अत्यन्त प्रिय सहेली मानती थीं। ये मुक्तेश्वरीजी वही हैं, जो स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराजकी भाव-सुपुत्री हैं। मुक्तेश्वरीजी और कमलजी, ये दोनों बाईके पास बैठकर कई-कई घण्टे तक बात किया करती थीं। बाई उन दोनोंको विलक्षण-विलक्षण वे लीलाएँ सुनाया करती थीं, जो मञ्जरी-भाव-भावित दशामें अनुभूत थीं। वह चर्चा बड़ी सरस होती थीं कुछ समयके लिये यह जगत सर्वथा विस्मृत हो जाता था।

उस समय बाईके युगल-सरकारको अपराह्न कालके समय उत्थापन भोग नहीं लगा करता था। अचानक एक दिन अपराह्न कालके चार बजे ठाकुरके सामने किशमिस, हलुआ, पकौड़ी आदि स्वादिष्ट पदार्थ रखे हुए मिले। बाईने अपने साथ रहनेवाली बहिनोंसे पूछा—यह भोग किसने पधराया है?

सभी बहिनें मौन थीं। किसीने भी भोगके लिये वे सुन्दर पदार्थ नहीं

पधराये थे। सभीसे नकारात्मक उत्तर मिलनेपर बाई ही बोल पड़ी—मेरे मनमें ही यह बात आती थी कि मैं ठाकुरको मेवा, हलुआ, पकौड़ी आदिका भोग लगाऊँ। ठाकुरने मेरी इच्छा जानकर स्वयं ही यह ढंग बना लिया।

इस प्रसंगको देखकर मुक्तेश्वरीजी और कमलजीके आश्चर्यकी सीमा नहीं थी। ये दोनों भले इस प्रसंगको असाधारण कहें, परन्तु साथवाली बहिनोंके लिये यह एक साधारण-सी घटना थी। जगतके लिये असाधारण लगनेवाले प्रसंग प्रायः घटित होते ही रहते थे, अतः साथ रहनेवाली बहिनें भला क्या आश्चर्य करें? इस प्रसंगसे एक नवीन परम्पराका शुभारम्भ हो गया। दिव्य-लीला राज्यने इस प्रसंगके माध्यमसे वह संकेत दिया कि प्रतिदिन उत्थापनके समय श्रीप्रिया-प्रियतमको नैवेद्य निवेदित करना चाहिये। अब प्रतिदिन उत्थापन-भोग पधराया जाने लगा। अपराह्णकालमें फलका भोग लगा करता था।

अगला प्रसंग भागलपुर स्थित श्रीमहिला संघका है। एक दिन काले जामुनका भोग लगाया गया। भोग लगाकर वे प्रसादी जामुन बाईके सामने रख दिये गये। बाई पालथी लगाकर बैठ गयीं और एक-एक करके तेरह जामुन खा गयीं। जामुनके साथ वह गुठली भी खा लेती थीं। दूर बैठी हुई भाभीजीने देखा कि बाई गुठली भी खाती चली जा रही है। भाभीजी स्वभावतः सदा सजग रहती थीं कि सेवामें कहीं कोई चूक न हो जाय। गुठली सहित जामुनको खाते हुए देखकर वे घबरा गयीं। भाभीजीने पूछा—बाई! तुम गुठली क्यों खा रही हो? बाईने नजर नीचे रखे हुए ही धीरेसे उत्तर दिया—वह भोग लगी हुई थी ना!

उसी दिन भाभीजीने सबसे आदेशात्मक रूपमें कह दिया—आजके बादसे कभी भी काला जामुनको नैवेद्यमें नहीं रखना है। इतना ही नहीं, वह फल, जिसकी गुठली नहीं निकाली जा सके, ऐसा कोई भी फल भोग की थालीमें न रखा जाय।

उसी दिनसे यह नियम बन गया कि गुठली रहित फलोंका ही श्रीबरसानेवालीको भोग लगाया जाय। बाईकी प्रारम्भसे ही प्रसादमें बड़ी महत्त्व बुद्धि रही है। भोग लगनेके बाद यह सोचना ही अनुचित था कि वस्तु खानेके योग्य है अथवा नहीं? प्रसादकी वस्तुके प्रति ऐसा चिन्तन बाईके लिये सदैव असह्य रहा।

बाई प्रतिवर्ष नर्मदा बाईके साथ गीताभवन (स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश) जाया करती थी। वहाँ पूज्य श्रीसेठजी और श्रीभाईजीके सत्संगसे उनकी भक्ति

भावनाको बड़ा प्रोत्साहन और पोषण मिला करता था। वहाँ ये लोग प्रायः चैत्रसे आषाढ़ मासतक रहा करती थीं। इसके बाद उनका निवास वृन्दावनमें रहा करता था। सारे श्रावण मास वृन्दावनमें श्रीप्रिया-प्रियतमके झूलेका दर्शन करके भाद्र मासमें गोरखपुर आ जाया करती थीं। श्रीबाबा और श्रीभाईजीके कारण गोरखपुरकी गीतावाटिकामें श्रीराधा-अष्टमी महोत्सव बड़े उल्लसके साथ मनाया जाता था और मनाये जानेकी परम्परा अखण्डित है। यह उत्सव साधकों एवं सिद्धोंके लिये सदैव बड़ा ही प्रेरक रहा है।

गीताभवनकी एक और घटना उल्लेखनीय है। सुमित्रा बाईको साथ लेकर बाई पूज्य श्रीसेठजीका प्रवचन सुननेके लिये जाया करती थीं। सत्संग सुनकर बाई अपने निवास स्थानपर आयीं। बाईने सुमित्रा बाईसे पानी माँगा। सुमित्रा बाई पानी लानेके लिये अन्दर गयीं। अंदर कई बक्से रखे हुए थे। बक्सोंके पास भूमिपर उन्हें एक काला पत्थर दिखलायी दिया। वे काला पत्थर हाथमें लेकर बाईके पास आयीं। बाईने पत्थर हाथमें ले लिया और गम्भीर हो गयीं। उस पत्थरपर लाल तिलक बना हुआ था। बाईने कहा—ये तो श्रीराधारमणजी प्रकट हुए हैं। इन्हें पूजा घरके सिंहासनपर विराजित कीजिये। तुरंत सवा सेर दूधसे स्नान करवाइये। सवा सेर मिष्ठान्न भोग लगाइये।

अभिषेक, पूजा, भोग आदिका तत्काल प्रबन्ध किया गया। जब बाई गीताभवनसे भागलपुर लौटकर आयीं तब श्रीराधारमणजी भी उनके साथ थे। जो आजतक श्रीमहिला संघमें पूजित हो रहे हैं।

चैत्रसे आषाढ़तक स्वर्गाश्रममें रहना, फिर श्रावण मासमें वृन्दावन-वास करना और भाद्र मासमें गोरखपुर जाकर रहनेका क्रम चार-पाँच वर्षोंतक अखण्ड रूपसे चलता रहा। अब वृन्दावनका एक प्रसंग है। बाई वृन्दावनमें रसिक शेखर श्रीहरिदासजी महाराजके सेव्य श्रीबिहारीजीके दर्शनके लिये गयीं। बाईकी दर्शनकी पद्धति कुछ निराली ही थी। साधारण दार्शनार्थियोंकी तरह दर्शन करके तुरन्त चल देना बाईको कभी भी प्रिय नहीं रहा। बाईका स्वभाव था बहुत देर तक खड़ी रहकर दर्शन करना, वह भी भावपूर्ण मुद्रामें एकटक निहारते रहना। समीपस्थ नर्मदा बाईको सदा यही लगता था कि बाई श्रीबिहारीजीसे बात कर रही है।

एक दिन बाई श्रीबिहारीजीके दर्शन करके लौटकर आयीं तो नर्मदा बाईने उनके हाथमें मन्दिरके प्रसादकी एक कुलिया देखा और फिर प्रश्न किया—

यह प्रसाद तुमको किसने दिया? मन्दिरके किस गोसाँईसे तुमने बातचीत की थी?

बाईने मधुर स्वरमें उत्तर दिया—माँ! मैं न तो किसी गोसाँईको जानती हूँ, न किसी गोसाँईसे मैंने बात की और न किसी व्यक्तिने मुझे प्रसाद दिया। मैं खड़ी-खड़ी दर्शन कर रही थी, उसी समय एक छोटा सा नीलसुन्दर बालक मन्दिरसे बाहर निकला, मेरे पास आया और मेरे हाथपर यह प्रसाद रखकर वह झट अदृश्य हो गया।

अब नर्मदा बाईके लिये यह लोकातीत घटनाएँ आश्चर्यकी वस्तु नहीं रह गयी थीं। उन्हें ज्ञात था, केवल ज्ञात ही नहीं अपितु विश्वास था कि बाईका उनके प्राण-प्रियतम श्रीकृष्णके साथ अनोखा प्यार भरा सम्बन्ध है और इसीसे वह बाईके साथ रंग-भरे, उमंग-भरे विलास करता रहता है।

इस उमंग भरे विलासने अपना रंग दिखलाना आरम्भ किया। बाईका चिन्तन ऐसा होने लगा कि वृन्दावनमें ही नित्य वास करना चाहिये। वृन्दावनसे जाना बड़ा अरूचिकर लग रहा था, किन्तु निर्धारित कार्यक्रमके अनुसार वृन्दावनसे गोरखपुर जानेकी घड़ी समीप आ गयी। ज्यों ही प्रस्थानका समय आया, वे एक वृक्षको पकड़कर रोने लगी—क्या मुझे श्रीधाम छोड़ना पड़ेगा? क्या श्रीबिहारीजीके नित्य दर्शनसे वंचित होना पड़ेगा?

प्राण-प्रियतम श्रीकृष्णके लिये उनका रोदन असह्य हो गया। तत्काल उस वृक्षसे श्रीबिहारीजी प्रकट हो गये और बड़ी लटक भरी भाषामें बोले—क्यों रोती हो? चलो, मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ।

यह तो बाईकी मनचाही बात थी। श्रीबिहारीजीको देखते ही और उनकी वाणी सुनते ही बाई अपना रोना भूल गयीं। जिनके नित्य दर्शनके लिये वृन्दावनमें रहनेकी भावना बद्धमूल हो रही थी, जब वे ही साथ चलनेके लिये प्रस्तुत हैं, तब उन्हें कहीं भी आने-जानेमें आपत्ति क्या हो सकती है? फिर उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक गोरखपुरके लिये प्रस्थान किया और गीतावाटिकाके श्रीराधाष्टमी महोत्सवमें भाग लेनेके लिये गोरखपुर पहुँच गयीं।

* * * * *

भगवन्नाम संकीर्तनका प्रवाह

श्रीभाईजी तथा श्रीबाबासे मिलन होनेके बाद बाईके जीवनमें भगवन्नाम संकीर्तनका ज्वार सा आ गया। श्रीभाईजी स्वयं मुक्त स्वरसे कहा करते थे कि मेरे जीवनमें जो कुछ उपलब्धि या अच्छाई है, वह सब भगवन्नामका चमत्कार है और भगवन्नामके आश्रयसे जीवनमें महानसे महान वस्तुकी प्राप्ति हो सकती है। स्वयं गोस्वामी तुलसीदासजीने अपनी महान कृति श्रीरामचरितमानसमें भगवन्नामकी अपार महिमाका उन्मुक्त गायन किया है।

श्रीमहिला संघमें रुक्मिणी बाई जब आयीं, उसके कुछ दिनों बादसे ही भगवन्नाम संकीर्तनका सोल्लास शुभारम्भ हुआ और क्रमशः भगवन्नामके संकीर्तनका उत्साह वातावरणमें छा गया। यह उत्साह उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। स्वर्गाश्रमके गीताभवनमें श्रीभाईजी तथा श्रीबाबासे मिलकर जब बाई भागलपुर वापस आयीं, उसके बादसे भगवन्नाम संकीर्तनके आयोजनका ताँता ही लग गया। भगवन्नाम संकीर्तनमें अनोखा उत्साह दिखलायी देने लगा। कभी सात दिनका, कभी नौ दिनका, कभी तेरह दिनका और कभी सोलह दिनका अखण्ड भगवन्नाम संकीर्तन होने लगा।

एक बार संकल्पके अनुसार सोलह दिवसीय अखण्ड भगवन्नाम संकीर्तनका शुभारम्भ श्रीमहिला संघमें हुआ। इस अवधिके बीच एक दिन संकीर्तन बहुत उल्लासके साथ हो रहा था। बाई ऊपरी मंजिलके अपने कमरेमें थीं। उस समय सभी बहिनें एक दूसरेसे होड़ लगाकर कीर्तन कर रही थी। कीर्तन करनेवाली सब बहिनें जानती थीं कि संकीर्तन जितनी जोरसे होता है, बाईको उतनी ही अधिक प्रसन्नता होती हैं तथा उल्लासमय कीर्तनसे बाई शीघ्र और सहज ही भावावेशमें आ जाती हैं। बाईकी भावावेशमयी स्थितिका दर्शन करनेका चाव सभीमें बना रहता था। इसी चावको लिये-लिये बहिनों द्वारा जो संकीर्तन हो रहा था, उससे सारा श्रीमहिला संघ गूँज रहा था।

कीर्तनके बोल थे—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

एकादशीका दिन था। रात्रिके लगभग ग्यारह बज रहे होंगे। दिशा-दिशाको

प्रति गुंजित करती हुई संकीर्तन ध्वनिने बाईको आकृष्ट कर लिया। कीर्तन-स्वरपर विलुब्ध और विमुग्ध बाई ऊपरसे नीचे आ गयीं। बाईके आते कीर्तनका स्वर और अधिक ऊँचा हो गया। एक ओर स्वर तुमुलतर हुआ और दूसरी इसीके साथ नृत्य भी होने लगा। सभी बहिनें हॉलमें घूम-घूम करके नृत्य कर रही थीं। और उच्च स्वरसे कीर्तन भी हो रहा था।

अचानक तुमुल स्वरके मध्य एक मन्द और मधुर स्वर सबके कानमें पड़ा। यह मन्द और मधुर स्वर कीर्तनके तुमुल घोषसे सर्वथा अलग था और ऐसा लग रहा था मानो यह स्वर पीछेकी ओरसे धीरे-धीरे बहता हुआ चला आ रहा है। इस स्वरके बोल थे—'राधे-राधे राधे-राधे'। यह भी स्पष्ट लग रहा था कि स्वर दो कण्ठोंसे आ रहा है मानो एक महिला और एक पुरुष परस्पर मिलकर मधुर-मधुर धीरे-धीरे कीर्तन कर रहे हैं। आश्चर्य इस बातका था कि तुमुल ध्वनिसे होते हुए कीर्तनके बीचमें भी वह मन्द-मन्द, मधुर-मधुर स्वर सभी बहिनोंको स्पष्ट सुनायी दे रहा था। बाईके मनमें जिज्ञासा जाग उठी कि श्रीराधा नामका मधुर संकीर्तन कौन कर रहा है? बाईने अपने हाथके इशारेसे सभी बहिनोंको मन्द स्वरमें संकीर्तन करनेका संकेत दिया। संकीर्तनकी ध्वनि और गति दोनोंके मन्द होनेपर भी श्रीराधा नाम संकीर्तनका मन्द और मधुर स्वर वैसे ही सुनायी देता रहा। अब संकीर्तन स्वरके साथ-साथ घुँघरूकी भी मीठी-मीठी आवाज आने लगी, मानो कीर्तनके साथ-साथ नृत्य भी हो रहा हो। सभीके मनकी उत्सुकता यह जाननेके लिये बढ़ती चली जा रही थी कि श्रीराधा नामका यह कीर्तन कहाँ हो रहा है और कौन कर रहा है? बाईने सुमित्रा बाईको हॉलके पिछवाड़े जानेके लिये कहा। सुमित्रा बाई पिछवाड़ेकी ओर गयीं। जाते समय रास्तेमें उन्हें श्रीराधे-राधे संकीर्तनकी मधुर आवाज तो सुनायी दे रही थी, पर पिछवाड़े ही आवाजका सुनायी देना बन्द हो गया। वे हॉलमें आनेके लिये घूम पड़ी तो फिर आवाज आने लगी। आवाज तो सुनायी देती थी, परन्तु कोई भी दिखलायी नहीं दिया। लौटकर सुमित्रा बाईने जैसा अनुभवमें आया था, बतला दिया। अब बाईको निष्कर्ष पर पहुँचनेमें देर नहीं लगी और बाईने सभी उपस्थित बहिनोंसे कहा—आज हमलोगोंको श्रीराधे नामका महामन्त्र मिल गया है। यह मंत्र प्रछन्न रूपसे स्वयं श्रीराधा-कृष्णने दिया है।

इतना कहकर बाई मौन हो गयीं और फिर श्रीराधा नामका संकीर्तन होने लगा। आज अद्भुत उल्लास था। श्रीराधा नामका संकीर्तन उफनते उत्साहके साथ होने लगा। अब महामन्त्रके स्थानपर राधे राधे नामके संकीर्तनकी धारा बह

चली। बीच-बीचमें कभी-कभी 'हरि बोल, हरि बोल' का संकीर्तन भी होता था।

एक बार श्रीमहिला संघमें हरि बोल हरि बोल, का कीर्तन हो रहा था। कीर्तनके समय अचानक एक मटकी आकर फूट गयी। मटकीके उन टुकड़ोंमें दही लगा हुआ था। कोई भी बहिन अपने साथ मटकी नहीं लायी थी, तब यह मटकी अचानक कहाँसे आ गयी? रहस्योद्घाटन करते हुए बाईने कहा—यह मटकी चिन्मय वृन्दावनसे आयी है।

फिर तो सभी बहिनें चटसे मटकीके टुकड़ोंको उठा-उठा करके दही चाटने लगीं। इतना ही नहीं, उन टुकड़ोंको कटर-कटर करते हुए खाना शुरु कर दिया। उस दहीमें और उन टुकड़ोंमें एक विलक्षण स्वाद था।

अब तो भगवन्नाम संकीर्तनमें प्रायः ही कुछ-न-कुछ अप्रत्याशित-अनुमानातीत घटनाएँ होने लगीं। एक बार कीर्तनके मध्य दो सुपारी आकर गिरी। उनमेंसे एक श्याम वर्णकी थी और दूसरी पीतवर्ण की। युगल वर्णको देखकर बाईने तुरन्त कहा—यह तो दिव्य लोकसे आयी है। इनका वर्ण अद्भुत है। यह सुपारी नहीं है, बल्कि इस रूपमें श्रीराधारानी और श्रीश्यामसुन्दर ही पधारे हैं।

ये दोनों सुपारियाँ पूजाघरमें पधरा दी गयीं। जिस भगवन्नाम संकीर्तनमें आये दिन कोई-न-कोई अलौकिक घटना होती रही हो और जो भगवन्नाम संकीर्तन जनी-जनीके तन-मनको नामोन्मत्त बना देता हो, उसकी चर्चा यत्र-तत्र न फैले, यह हो तो नहीं सकता। संकीर्तनकी चर्चा फैलाती जा रही थी और संकीर्तनमें माताओं-बहिनोंकी संख्या बढ़ती जा रही थी। संकीर्तनकी सुन्दर चर्चा सुनकर भाभीजीकी बहुत इच्छा रहती थी कि जब श्रीमहिला संघमें भगवन्नाम संकीर्तन हो, तब उसमें मैं भी सम्मिलित होऊँ, परन्तु श्रेष्ठ संभ्रान्त कुलके रीति-रस्म और ठाट-बाट कुछ और ही होते हैं। कुलकी परम्परागत मर्यादाओंसे बँधी होनेके कारण भाभीजी यदा-कदा ही श्री महिला संघमें आ पाती थीं। यदि आ पाती थीं तो वह भी एकमात्र दिनमें एक-दो-घण्टेके लिये। रात्रिमें तो आनेका और रहनेका प्रश्न ही नहीं था। भाभीजीकी पारिवारिक विवशताको देखकर बाई ही हवेलीमें अपनी संकीर्तन-मण्डली लेकर पहुँच जाया करती थीं और वहाँ कीर्तन का, नृत्यका और लीलाका उल्लास छा जाया करता था। उस समय जो लीला सहज रूपमें होने लगती थी, उसको मात्र अभिनय कहना एक भावापराध होगा। उस लीलामें नित्य धामकी चिन्मयता ही प्रतिबिम्बित हो उठती थी।

अपने पारिवारिक अनुशासनसे आबद्ध होनेके कारण भाभीजी लगातार कई दिनोंतक श्रीमहिला संघ नहीं जा पायीं। उनकी व्याकुलता देखकर बाईने कहा—भाभीजी! आप श्रीमद्भागवत महापुराणका पाठ कीजिये और पासमें पुत्रवधू कान्ताको भी बैठा लीजिये। वह भी पाठ सुना करेगी।

भाभीजी दोपहरके समय पाठ किया करती थीं। एक दिनकी घटना है। श्रीमद्भागवतका पाठ करते समय कंस-कारागारमें भगवती योगमायाका प्रसंग चल रहा था। उसी समय उन्होंने देखा कि पत्थरके छोटे-छोटे सुन्दर-सुन्दर दो टुकड़े सीढ़ीसे लुढ़कते-लुढ़कते आकर उनके पास गिरे। प्रसंगानुसार जैसे ही कंसने भगवती योगमायाको शिलापर पटक देनेके लिये पकड़ा, ठीक उसी समय वे पत्थरके टुकड़े आकर पड़े थे। भाभीजीकी आस्था यह थी कि ये दोनों टुकड़े बाईकी प्रेरणासे आये हैं और अवश्य ही इनका आध्यात्मिक दृष्टिसे विशेष महत्त्व है। उन्होंने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि इन टुकड़ोंको बड़े आदरके साथ अपने पास रखूँगी।

इधर हवेलीमें यह घटना हुई और उधर श्रीमहिला संघमें बाईने सुमित्रा बाईसे कहा—आप हवेलीमें जाकर भाभीजीको पूछिये कि उनके पास कोई वस्तु आयी है क्या?

सुमित्रा बाईने हवेलीमें आकर भाभीजीसे पूछताछ की। भाभीजीने उसी समय आकर गिरे हुए वे दोनों पत्थरके टुकड़े दिखला दिये। सुमित्रा बाईने लौटकर बाईको पत्थरके टुकड़ोंकी बात बतला दी। बाईने पुनः सुमित्रा बाईको पत्थरके टुकड़े माँगकर ले आनेके लिये भाभीजीके पास भेज दिया। उन पत्थरके टुकड़ोंके प्रति आदर-भावना होनेके कारण भाभीजीका मन देनेमें बहुत हिचक रहा था परन्तु, सुमित्रा बाई बहुविध आश्वासन देकर वे टुकड़े ले आयीं। पत्थरके दोनों टुकड़ोंको अपने हाथमें लेकर बाईने कहा—ये तो सुग्गा-सुग्गी है। उस दिव्य लोकसे आये हैं। ये भला भाभीजीके पास रहेंगे क्या?

इतना कहकर बाईने उन टुकड़ोंको अपने हाथमें ले लिया। टुकड़ों सहित हाथको पीछे कमरपर रखकर बाई सीधी लेट गयीं। सुमित्रा बाईने कहा—अब वे टुकड़े दे दीजिये। मैं भाभीजीको वापस दे आऊँ।

बाईने हाथ बाहर निकालकर दिखा दिया और कहा—सुमित्रा बाई! देखिये अब वे टुकड़े कहाँ हैं?

वे पत्थरके टुकड़े अदृश्य हो चुके थे। पत्थरके टुकड़ोंके अदृश्य हो

जानेपर सुमित्रा बाईको पूर्ण विश्वास हो गया कि वे पत्थरके आवारणमें सुग्गा-सुग्गी ही थे। उनके अदृश्य हो जानेकी बात जब भाभीजीके पास पहुँची तो वे भी मन-ही-मन अपने सौभाग्यकी सराहना करने लगीं कि दिव्यधामके सुग्गा-सुग्गी परोक्ष रूपमें कुछ क्षण उनके समीप रहे थे।

एक और घटना विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। एक बार श्रीमहिला संघमें इक्कीस दिनका अखण्ड श्रीराधा नाम संकीर्तन प्रारम्भ हुआ। कीर्तनमें एक-दो नहीं, झुण्ड-की-झुण्ड स्त्रियाँ और लड़कियाँ भाग लिया करती थीं और मिलकर कीर्तन करतीं थीं। उस समुदायमें मञ्जु नामकी भी एक लड़की थी। वह सात वर्षकी थीं। वह रात्रिके समय कीर्तन कर रही थी। प्रायः रात्रिके समय कीर्तन करनेवाली स्त्रियों और लड़कियोंकी संख्या दिनकी अपेक्षा अधिक रहा करती थी। सभी स्वरसे स्वर मिलाकर जोर-जोरसे कीर्तन करती थीं। कीर्तनमें झाँझ, घण्टा, करताल आदि वाद्योंका भी उपयोग होता था। उस राधा नाम संकीर्तनमें कीर्तन करते-करते वह बालिका मंजु नामोन्मत्त हो उठी। वह भावाविष्ट हो गयी ओर उसके मुखसे कीर्तनकी ध्वनि अनवरत निकल रही थी। उसके पाँव नृत्य मुद्रामें थिरक रहे थे। इसी दशामें रात्रि बीत गयी। प्रात:काल भी उसकी वही स्थिति रही। वह बैठने या सोने या खानेके समय स्थिर मुद्रामें रहती ही नहीं थी। उसकी सतत नृत्यमयी चञ्चलता देखकर सबको बड़ा विस्मय होता था। यदि उसको पकड़कर किसी ओर ले जाया जाता था, तब भी वह नृत्यमयी मुद्रामें चलती थी। उसके पाँव कभी स्थिर होते ही नहीं थे और श्रीराधानामका उच्चारण भी अविराम चलता रहता था। उसे जबरदस्ती लिटा देनेपर भी उसकी स्थिति वही रहती थी। सोलह रात और सोलह दिन वह नृत्यमयी मुद्रामें अनवरत कीर्तन करती रही। इसके बाद उसकी स्थिति सामान्य हो पायी।

कीर्तनका यह उल्लास श्रीमहिला संघकी चहर-दीवारीको पार करके नगरके कई घरोंको पवित्र बनाने लगा। नगरमें जहाँ भी श्रीराधा नाम संकीर्तन होता, बाई वहाँ ही पहुँच जातीं। वे स्वयं कीर्तन करतीं, कीर्तनका नेतृत्व भी करतीं और उल्लासमें नृत्य करने लगतीं। सभीके मनमें यह स्पृहा बनी रहती कि यदि हमारे घर कीर्तन होगा तो बाई अवश्य आयेगीं, इस सात्त्विक स्पृहाका परिणाम यह होता कि वह बहिन कीर्तनका कार्यक्रम बनाकर बाईको सूचना देती कि आज मेरे यहाँ चौबीस घण्टेका अखण्ड कीर्तन है। इस कार्यक्रम सम्पन्न होते-न-होते दूसरा निमन्त्रण आ जाता। अब निमंत्रण-पर-

निमंत्रण आने लगे। कोई निमंत्रण एक दिवसीय, कोई दो दिवसीय, कोई तीन दिवसीय और कोई सप्त दिवसीय होता था। नगरमें कीर्तनकी धूम मच गयी। श्रीमहिला संघमें तो जब-तब दिन या रातमें कीर्तन ध्वनि गुंञ्जित होती ही रहती थी, परन्तु अब नगरके अनेक घर श्रीराधा नामकी परम पावनी संकीर्तन ध्वनिसे गुंजित होने लगे। नगरमें राधा नाम संकीर्तनकी सरिता बह चली। कोई-कोई बहिन अपने घर और आँगनको विविध प्रकारसे सजाती। आँगनमें अल्पना, द्वारपर बन्दनवार, मंदिरमें फूल माला आदिकी छवि बहुत मन मोहिनी होती। बहिनोंका उल्लास ऐसा होता कि किसीको दिनका और रातका ज्ञान नहीं रहता। कब दिन हुआ कब रात हुई, कब सोना, कब खाना है इन सबको भूलाकर बस एक ही मद चढ़ा रहता और वह मद था श्रीराधा नाम संकीर्तनका तथा प्रिया-प्रियतमकी सेवाका।

बाईकी अभिलाषाने एक नया कार्यक्रम और अपना लिया। मोदन और सुमित्रा बाईको श्रीराधा नाम संकीर्तनकी भिक्षा माँगनेके लिये भेजा गया। वे घर-घर जातीं और अपनी झोली फैलाकर गृहस्वामिनीसे याचना करती—भिक्षां देहि, भिक्षां देहि।

वे माताएँ समझ नहीं पातीं कि याचनाका आशय क्या है। गृहस्वामिनीके पूछनेपर वे दोनों कहतीं—हमें श्रीराधा नामकी भिक्षा चाहिये। आप अपने घरमें श्रीराधानामका संकीर्तन करवाइये।

इस प्रस्तावको वे सहर्ष स्वीकार कर लेतीं और वे तीन या पाँच या सात दिनोंके अखण्ड कीर्तनके आयोजन रूपी भिक्षा माँग लातीं। एक पुस्तिकामें आयोजनका विवरण लिख लिया जाता कि किस घरमें किस दिनसे कितनी अवधिका श्रीराधा नाम अखण्ड संकीर्तन होगा। जब-जब आयोजनके अनुसार अखण्ड कीर्तनका शुभारम्भ होता, बाई किसी-न-किसीको कीर्तनके संचालनके लिये अवश्य भेजती थीं। इस कीर्तनका प्रचार इतना व्यापक हुआ कि केवल भागलपुर ही नहीं आस-पासके कुछ नगरोंमें भी अखण्ड श्रीराधा नाम संकीर्तनकी धारा बह चली। जहाँ-जहाँ संकीर्तन होता, वहाँ-वहाँ हृदयस्पर्शी सात्त्विकता व्याप्त रहती।

* * * * *

विरहाकुल अन्तर

संकीर्तनमें नामामृतका जो सतत पान हुआ, गाये गये पदोंमें वर्णित लीलाओंका जो सुखद श्रवण हुआ और जीवनमें समय-समयपर जो दिव्य अनुभूतियाँ हुई, उन सबने बाईकी जीवन-धाराको प्रभावित तो किया ही, परन्तु सबसे अधिक प्रभावित किया श्रीभाईजीकी भक्ति-भावपूर्ण पद रचनाओंने।

श्रीभाईजीका एक पद है—

एक लालसा मन महँ धारौ।
बंसी-बट कालिंदी-तट नट-नागर नित्य निहारौ॥
मुरली-तान-मनोहर सुनि-सुनि तन-सुधि सकल बिसारौ।
पल-पल निरखि झलक अँग-अंगनि पुलकित तन-मन वारौं॥
रिझऊँ श्याम मनाइ गाइ गुन गुंज-माल गर डारौं।
परमानंद भूलि जग सगरौ स्यामहि स्याम पुकारौ॥

इन पदोंमें जिन भावोंकी अभिव्यक्ति है, वह मात्र अभिव्यक्ति न होकर श्रीभाईजीका वास्तविक जीवन रहा है। इस जीवनको बाईने अपनी आँखोंसे देखा है और वह जीवन बाईके लिये प्राप्तव्य आदर्श बन गया।

श्रीभाईजीके एक पदको बाई बराबर गाया करतीं। वह पद है—

प्रियतम से मिलने को जिसके प्राण कर उठे हाहाकार।
गिना नहीं उसने पथ की दूरी को, भय को किसी प्रकार॥
विकल, चल पड़ी वह निर्भय हो, बीहड़ वन में बिना विचार।
दुःख-कष्ट बन गये सभी पथ के पाथेय, सुखद आहार॥
नहीं ताकती किसी ओर वह, नहीं किसी से भी डरती।
नहीं प्रलोभन में पड़ती वह, नहीं चाह कुछ भी करती॥
पद-पद पर, पल-पल प्रियतम की प्रिय सुधि में आहें भरती॥
चली जा रही अटल लक्ष्य पर, वह जग में जीवित मरती॥

अधुना बाई कीर्तनमें भाग तो लेती थीं, विभिन्न उत्सवोंमें सम्मिलित भी होती थीं और समय-समय पर परिस्थिति अनुसार परामर्श भी देती थीं, परन्तु अब बाईके प्रेमातुर मनकी भीतरी माँग कुछ और ही हो गयी थी। पुनरावृत्ति-

दोष तो होगा, परन्तु इस दोषको सहन करते हुए फिरसे कहा जा सकता है कि बाईकी भीतरी माँग थी 'परमानन्द भूलि जग सगरौ स्यामहि स्याम पुकारौ।' दिन प्रतिदिन बाईकी एकान्त-प्रियता बढ़ती जा रही थी। श्रीमहिला संघके अपने कमरेमें बैठकर कपाट बन्द कर लेती और प्रियतम श्रीकृष्णको आर्त-स्वरसे पुकारने लगतीं। जब वेदना बहुत बढ़ जाती, तो वे पत्र लिखने बैठ जातीं। प्रीति-पगी बाईके द्वारा प्रियतम श्रीकृष्णके नाम जो पत्र लिखे गये हैं, उनकी संख्या बहुत है।

इन पत्रोंको पढ़नेसे एक बात स्पष्ट दिखलायी देती है कि यद्यपि ये पत्र बाईके द्वारा ही कमरेके एकान्तमें लिखे गये हैं, किन्तु पत्रान्तमें लेखिकाओंके नाम भिन्न-भिन्न है। नामोंका भिन्न-भिन्न होना ही प्रमाणित कर रहा है कि बाईके दिव्य कलेवरमें भिन्न-भिन्न समयपर भिन्न-भिन्न सखियोंका, मञ्जरियोंका आवेश होता था और उनसे भावित होकर वे प्रियतम श्रीकृष्णको पत्र लिखा करती थीं। इसीके साथ-साथ यह भी स्पष्ट दिखलायी दे रहा है कि यद्यपि बाईके दिव्य कलेवरमें भिन्न-भिन्न सखियों और मञ्जरियोंका आवेश होता रहा, परन्तु सभीकी भाव-धारामें प्रमुखतः प्रीतिकी करुण पुकार रही है प्रियतमका दर्शन और उनसे सम्भाषण कब होगा?

पत्रोंको लिखनेका क्रम कई वर्षोंतक चला। कमरेका एकान्त अन्तरके भावोंको उद्दीप्त कर देता था और आँसुओंकी सरितामें बहते-बहते वे यमुना तट स्थित निकुञ्ज-द्वार पर पहुँच जाती थीं। भले बाई तनसे श्रीमहिला संघके कमरेमें हों, परन्तु वे मनसे अपने प्रियतम-प्रेमाराध्य श्रीकृष्णके समीप थीं। इन पत्रोंमें प्रिय-मिलनकी आकांक्षा बड़ी तीव्र है। विरह-व्यथिता बाई रह-रह करके प्रियतमको उनके मधुर स्वभावकी स्मृति दिलाती हैं। कभी अपनी प्रिय सखीका सहारा लेती हैं, जिससे विरह ताप कुछ शमित हो। अन्तमें विरह-व्यथिता बाई परम प्रेमास्पद श्रीकृष्णके चरणोंपर अपना सर्वस्व समर्पित करती हुई श्रीभाईजीके शब्दोंमें बोल पड़ती है—

सौंप दिये मन प्राण तुम्हीं सौंप दिये ममता अभिमान।
जब, जैसे, जी चाहे बरतो, अपनी वस्तु सर्वथा जान॥
मत सकुचाओ मन की करते, सोचो नहीं दूसरी बात।
मेरा कुछ भी रहा न अब तो, तुमको सब कुछ पूरा ज्ञात॥
मान-अमान, दुःख-सुख से अब मेरा रहा न कुछ सम्बन्ध।

तुम्हीं एक कैवल्य मोक्ष हो, तुम ही केवल मेरे बन्ध॥
रहूँ कहीं, कैसे भी, रहती बसी तुम्हारे अंदर नित्य।
छूटे सभी अन्य आश्रय अब, मिटे सभी सम्बन्ध अनित्य॥
एक तुम्हारे चरण कमल में हुआ विसर्जित सब संसार।
रहे एक स्वामी बस, तुम ही, करो सदा स्वच्छन्द विहार॥

उपर्युक्त दस पंक्तियों वाला यह पद श्रीभाईजी द्वारा रचित है, किन्तु इन दस पंक्तियोंका मूर्तिमान स्वरूप था बाईका जीवन। एक दिन पत्र लिखनेमें व्यस्त बाईको झकझोरती हुई नर्मदा बाईने कहा—क्यों स्वर्गाश्रम नहीं चलना है क्या? चैत्र मास आ गया। वहाँपर श्रीभाईजी व श्रीबाबासे मिलनेका सुअवसर मिलेगा।

बाई पत्र लिखनेमें कितनी ही व्यस्त हो, किन्तु उनके मनमें तो श्रीभाईजी और श्रीबाबाके प्रति एक अनोखा चुम्बकीय आकर्षण था, और कुछ ही दिनों बाद नर्मदा बाई और कुछ अन्य बहिनोंके साथ बाई स्वर्गाश्रम चली आयी। बाई गीताभवनके कमरेमें ठहरी थीं और यदा-कदा श्रीभाईजीसे मिलनेके लिये डालमिया कोठी जाया करती थी।

एक दिन बाई सत्संगके लिये गीताभवन गयी हुई थी। उसी समय श्रीभाईजी उनसे मिलनेके लिये उनके कमरेमें आये। कमरेमें कोई अन्य बहिन थी। उसने श्रीभाईजीको विराजनेके लिये तुरन्त आसन बिछाया। श्रीभाईजी बैठ गये और बहिन बाईको बुला लानेके लिये सत्संगमें चली गयी। बाई जबतक आवें, उस बीचमें संयोगवशात् श्रीभाईजीकी दृष्टि सामने रक्खी उस कापीपर पड़ गयी, जिसमें बाई अपने प्रियतम श्रीकृष्णके नाम पत्र लिखा करती थीं। श्रीभाईजीने उस कापीके पत्रोंको पढ़ना आरम्भ कर दिया। एक-एक करके कई पत्र श्रीभाईजी पढ़ गये। कुछको पढ़ गये और कुछमें झाँक लिया। सारी कापीको देख लेनेका कार्य समाप्तिके बिन्दु पर था, उसी समय बाई आयीं और उन्होंने देखा कि श्रीभाईजी मेरे द्वारा लिखे गये पत्रोंको देख रहे हैं। अत्यधिक संकोचशीला बाईके मनमें अनेक भाव नृत्य करने लगे। भय, संकोच, शर्म, दैन्य, पुलक, हर्ष आदि छोटी-बड़ी भाव-तरंगोंका मानस-सरोवरमें उठना-छिपना चल रहा था। बाई सहमी सी खड़ी रहीं। फिर श्रीभाईजीने अपने पास बुलाकर पूछा—यह कापी किसकी है?

बाईने दबे स्वरसे झेंपते हुए कहा—मेरी।

श्रीभाईजीने पूछा—तो क्या इन पत्रोंको तुमने लिखा है?

अधरोंने तो नहीं, आँखोंने धीरेसे बता दिया कि सत्य क्या है। श्रीभाईजीने कहा—इन परम पवित्र भावोंका ग्राहक कामलोलुप जगत्में भला कौन है? मेरे मनमें इन भावोंके प्रति सीमातीत आदर होते हुए भी इनकी अभिव्यक्ति उचित नहीं लगती। यह तो हृदयका परम गोपनीय धन है, इसीलिये तो ब्रजकी कृष्ण-प्रेमिका ब्रजबालाओंको गोपी कहा जाता है, जिनके निर्मल भावकी भनक जगतके लोगोंको मिल ही नहीं पाती थी। पत्र तो लिखो, पर इस कागजपर नहीं, मानस-पटल पर और मन-ही-मन चुपचाप उन युगल चरणोंके प्रति अर्पित करती रहो।

बाई नत मस्तक थीं। उन्होंने श्रीभाईजीके निर्देशको सदैवके लिये स्वीकार कर लिया। फिर बाईने जीवनमें कभी न लिखनेका संकल्प ले लिया। यहींपर एक तथ्यकी ओर संकेत करना आवश्यक लग रहा है। फिर बाईने पत्र लिखनेके लिये भविष्यमें लेखनी उठायी ही नहीं। भावाधिक्यमें गुनगुनाहटके रूपमें जो पंक्तियाँ मनमें उभरती थीं, उनको तो बाईने यदा-कदा लिखा ही है, परन्तु श्रीभाईजीके आदेशानुसार पत्रका लिखना तो छूट ही गया। अपवाद स्वरूप इतना अवश्य कहा जा सकता है कि व्यथाके अतिरेकमें जब उस संकल्पकी स्मृति भी अतल-तलमें डूब गयी, तब उन्होंने लेखनी पकड़कर कुल दो या तीन पत्र अवश्य लिखे, पर ये दो-तीन पत्र भी प्रियतम श्रीकृष्णके नाम न होकर प्रिय सखीके नाम हैं। उन दो-तीन पत्रोंमें प्रिय सखीके समक्ष आन्तरिक व्यथा की अभिव्यक्ति होनेसे यह निर्विवाद सत्य है कि बाईने श्रीभाईजीके निर्देशका आजीवन अक्षरशः पालन करनेके लिये प्रियतमके नाम तो पत्र लिखा ही नहीं। प्रिय सखीके नाम लिखे गये इन दो-तीन पत्रोंका उल्लेख यथा-अवसर आगे आयेगा।

* * * * *

दिव्य श्रीकृष्ण भावावेश

स्वर्गाश्रमसे लौटकर आनेके बाद बाईके जीवनमें और उनके सम्पर्कमें आनेवाली बहिनों-माताओंके घरोंमें भगवन्नाम संकीर्तनके ज्वारका अभूतपूर्व उभार आ गया। केवल भागलपुर ही नहीं आसपासके नगरोंके अनेक घरोंमें श्रीराधा नाम संकीर्तन गूँजने लगा। परस्पर मिलते समय वन्दन निवेदित करनेके लिये बहिनें राधे-राधे कहने लगीं। किसी भी कार्यको आरम्भ करते समय मांगलिक घोषके रूपमें श्रीराधा नामका उच्चारण होने लगा। यह सारा कुछ था बाईके व्यक्तित्व और सम्पर्कका प्रभाव। इतना होकर भी भगवन्नामकी यह बाढ़ बाईके व्यक्तित्वका मात्र एक पक्षीय स्वरूप था। बाईके प्रयाससे भगवन्नाम संकीर्तनका विपुल प्रचार अवश्य हुआ, परन्तु इस प्रचार तक उनका व्यक्तित्व सीमित नहीं था।

जीवनके अनेक प्रसंग कुछ नये संकेत दे रहे थे। भगवन्नाम प्रचारके साथ-साथ उनके व्यक्तित्वमें कुछ नवीन भावोंका उन्मेष परिलक्षित होने लगा। नवीन भावोंसे भावित होनेके कारण उनकी चेष्टाओंके स्वरूपमें और उनके कार्योंकी रूपरेखामें परिवर्तन आने लगा। जो भी नवीन परिवर्तन या विविधता दिखलायी दे रही थी, इतना अवश्य था कि सबका लक्ष्य एक ही था। बाईकी भावना यही थी कि सम्पर्कमें आनेवाली प्रत्येक महिलाका जीवन जागतिकतासे ऊपर उठकर श्रीराधा-कृष्णकी अमला प्रीतिसे सुवासित हो जाय। भगवन्नाम संकीर्तनके प्रचारके साथ-साथ बाईके जीवनके जो प्रसंग सामने आये, उनसे नवीन परिवर्तनकी झलक मिलती है।

बाई अपनेसे बड़ोंको आदर सूचक सम्बोधन बोलकर ही सम्मान दिया करती थीं। एक दिन इसके प्रतिकूल आचरण देखा गया। एक दिन रामप्यारी बाईको मोटकी, मुरझरी कहकर पुकारने लगी। वे कहने लगीं—ऐ मोटकी! ऐ मुरझरी! मेरेको खानेको दे।

रामप्यारी बाईको बहुत गुस्सा आया। उन्हें भला गुस्सा आये, पर अब तो यह नित्यकी बात हो गयी। रामप्यारी बाई क्षुब्ध होकर कहतीं—मैं रुक्माका कुछ खाती हूँ क्या, जो यह मुझे मोटकी-मोटकी कहकर बोलती है?

उनके क्षुब्ध उद्गार सुनकर बाई खूब हँसती तथा अधिकाधिक चिढ़ा-

चिढ़ा करके बोलती। कभी-कभी रामप्यारी बाई क्षुब्धातिरेकमें रोने लगतीं। एक दिन बाई सहज स्थितिमें थी तब उन्होंने रामप्यारीको समझाते हुए कहा— रामप्यारी बाई! छोटेसे श्रीकृष्ण आपसे खेलते हैं, हँसी-विनोद करते हैं। आप इतना नाराज क्यों हो जाती हैं?

बाईके इस विपरीत आचरणका रहस्य अब खुला कि वे बालक श्रीकृष्णके भावसे भावित होकर अटपटे शब्द बोलती है। अबतक रामप्यारी बाईको यही ज्ञात था कि रुक्मिणी बाई प्रायः मञ्जरी भावमें रहती है, पर अब उनके भाव राज्यका एक नया तथ्य बहिनोंके सामने आ गया था। रामप्यारी बाई सरल और सरस हृदया होनेसे उनके भावमें भी परिवर्तन आया। भाव बदलते ही गुस्सा होनेके स्थानपर वे उन अटपटे बोलनमें रस लेने लग गयीं। इसीका स्वाभाविक परिणाम यह था कि रामप्यारी बाई अब उन्हें प्यारसे लड्डू खानेके लिये देने लगीं। अब तो वे छिप-छिपकर करके श्रीकृष्ण भाविता बाईपर प्यारकी वर्षा करने लगीं।

उन दिनों श्रीमहिला संघमें कोयलेका चूल्हा जलता था। चूल्हेमें कोयला तो काममें लिया ही जाता था, धीरे-धीरे कोयलेका चूरा बहुत बड़ी मात्रामें इकट्ठा हो जाया करता था। इस चूरेको मिट्टी या गोबरमें मिलाकर लड्डू बना लिया जाता था। कोयलेके लड्डू चूल्हा जलानेके काममें आते थे। इन गीले लड्डुओंको सुखानेके लिये गिरिराज परिसरमें टीनपर रख दिया जाता था। ऐसा कई बार हुआ कि बाई श्रीकृष्ण भावमें नाचती-नाचती जाती और पाँव मारकर सारे लड्डुओंको फोड़ डालतीं। फोड़कर फिर बोलतीं—मेरी स्थलीमें यह क्यों सुखाया गया?

रामप्यारी बाई इस उपद्रवकी शिकायत भाभीजीसे करतीं। उदारचेता भाभीजीके लिये यह उपद्रव था ही नहीं। उनको सुदृढ़ भावना थी कि बाईके रूपमें इन दिनों श्रीकृष्ण ही विलस रहे हैं। मुस्कुराते हुए भाभीजीने रामप्यारी बाईसे कहा—तुम क्यों बुरा मान रही हो? कोयलेके इन लड्डुओंको कहीं और सुखा लिया करो।

चन्दा बाईकी शीतल वाणीसे रामप्यारी बाईका रोष तुरन्त शान्त हो गया। अब वे उन लड्डुओंको मातृस्थलीकी ओर सुखा देतीं। उधर जाकर भी बाई उन लड्डुओंको फोड़ आतीं। इस प्रकार रामप्यारी बाईको कभी रिझाने और कभी खिझानेकी लीला समय-समयपर चलती रहती।

अब बाईके आचार-विचार-व्यवहारमें एक परिवर्तन स्पष्ट रूपसे

दिखलायी देने लगा। उनका बोलना, उनका देखना, उनका चलना, उनका कहना, उनका मिलना ऐसा होता था मानो बाईके भीतर प्रियतम श्रीकृष्ण विराजित हैं और वे भीतर बैठे हुए सम्पूर्ण बाह्य चेष्टाओंको संचालित नियन्त्रित कर रहे हैं।

नारी शरीरमें पुरुषोचित आचरणकी छाया देखकर सभीके मनमें एक प्रश्न उठता था कि यह कैसा परिवर्तन है? बाईके आचरणमें श्रीकृष्ण-आचरणका प्रतिबिम्ब देखकर एक बार तो संघकी माताओं बहिनोंको बड़ा अटपटा लगा। वे यह तो जानती थी कि बाईमें कभी किसी मञ्जरीका और कभी किसी मञ्जरीका आवेश होता है और इनकी सारी चेष्टाएँ मञ्जरीभावसे भावित रहती है, पर वे समझ नहीं पा रही थीं कि वह कैसा नवीन परिवर्तन अनुभवमें आ रहा है। यहाँ तो मात्र कुछ प्रसंगोंके वर्णन द्वारा परिलक्षित होनेवाले परिवर्तनकी ओर संकेत किया गया है। जब पद-पदे ये भाव परिवर्तन दिखलायी देने लगे तो उनके संदेह और अनुमानको श्रीमद्भागवत महापुराणसे पुष्टि मिल गयी। श्रीमद्‌भागवत महापुराणकी रासपञ्चाध्यायीमें आया है—

गत्यानुरागस्मित विभ्रमेक्षितै-र्मनोरमालापविहारविभ्रमैः।
आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापते-स्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिका॥
गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु, प्रियाः प्रियस्य प्रतिरूढ़मूर्तयः।
असावहं त्वित्यबलास्तदात्मिका, न्यवेदिषुः कृष्ण विहारविभ्रमाः॥

(रासपञ्चाध्यायी अ० २, श्लोक २-३)

रमापति श्रीकृष्णकी ललित गति, प्रेमभरी सुमधुर मुसकान, अत्यन्त मधुर तिरछी भ्रृकुटी, प्रीति भरी चितवन, मनोरम प्रेमालाप तथा अन्यान्य विविध लीला-विलास एवं श्रृंगारकी भाव-भङ्गियोंसे उनका चित्त खिंचकर श्रीकृष्णमें लगा हुआ था। वे ब्रजगोपियाँ श्रीकृष्णमें ही तन्मय हो गयीं और फिर श्रीकृष्णकी ही विभिन्न चेष्टाओंका ध्यान करने लगीं।

इससे प्रियातम श्रीकृष्णकी ललित गति, मधुर हास, मनोरम चितवन, अमृतमय वचन आदिमें वे श्रीकृष्णकी प्यारी व्रजसुन्दरियाँ उनके समान ही बन गयीं। उने शरीरमें भी वैसी ही चेष्टाओंका प्राकट्य हो गया और वे श्रीकृष्ण लीला-विलासके स्मरण जनित भावसे उन्मादिनी होकर श्रीकृष्ण स्वरूप ही बन गयीं तथा 'मैं श्रीकृष्ण ही हूँ' परस्पर इस प्रकार अपना परिचय देने लगीं।

मञ्जरी भावसे प्रियतम श्रीकृष्णका सतत चिन्तन करते-करते बाईमें

श्रीकृष्ण भावका उन्मेष हो गया। कहा भी है—

लाली मेरे लालकी, जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गयी लाल॥

अब उस अटपटेपनकी भावनाका स्थान आनन्द और आदरकी भावनाने ले लिया। अब संगकी बहिनोंका प्रयास यही था कि हम अपनी हर क्रिया द्वारा बाईके अन्तरालमें विराजित श्रीकृष्णको सुख पहुँचाये, उनको आनन्दित बनायें।

श्रीराधाष्टमी महोत्सवके अवसरपर बाई, भाभीजी, नर्मदा बाई आदि अनेक बहिनें गोरखपुर गयी हुई थीं। एक दिन सभी बहिनें श्रीभाईजीसे एकान्तमें बातचीत कर रही थीं। बातचीतके प्रवाहमें नर्मदा बाईने पूछा—भाईजी! मेरी रुकमा, जो अभी आपके सामने बैठी है, इसमें समय-समयपर भिन्न-भिन्न आवेश होते रहते हैं। कभी इस मञ्जरीका, कभी उस मञ्जरीका, कभी चैतन्य महाप्रभुका, कभी श्रीकृष्णका, इसमें भी कभी छोटे श्रीकृष्णका, कभी बड़े श्रीकृष्णका आवेश होता है। जैसा आवेश होता है, उसीके अनुसार बोलना, उठना, बैठना, खाना, पीना होने लगता है। यह सब क्या है? मैं तो बहुत दिनोंसे इस बारेमें आपसे पूछताछ करना चाहती थी, संयोग आज बन पाया।

प्रश्नको सुनकर श्रीभाईजीके अधरोंपर हल्की-सी मुस्कान फैल गयी। थोड़ी देर मौन रहकर फिर बोले—इन भावावेशोंके प्रति अनास्था नहीं होनी चाहिये और न रुक्मिणी बाईके प्रति अनादर। इस रुक्मिणीमें कोई दिखावा या बनावट नहीं है। रुक्मिणीसे किसी प्रकारकी अन्यथा चेष्टा हो ही नहीं सकती। जिन-जिन आवेशोंकी चर्चा तुम कर रही हो, ये वस्तुतः आवेशावतार है। परम सात्त्विक जीवनमें ही इन आवेशोंका अवतरण होता है, परन्तु एक सावधानी बहुत आवश्यक है। इसे जहाँतक हो सके, जगतकी दृष्टिसे बचाकर रखना चाहिये। यह प्रचार या दिखावेकी चीज है ही नहीं।

श्रीभाईजीके विचारोंको सुनकर नर्मदा बाई और भाभीजीका मन पूर्ण रूपसे सन्देह रहित हो गया। उनके कथनने एक ऐसी छाप लगा दी, जिससे सभी प्रकारके तर्क, संदेह सदाके लिये समाप्त हो गये।

एक बार भाभीजीके गलेमें टॉन्सिलका कष्ट बढ़ गया। कष्टकी निवृत्तिके लिये टॉन्सिलका ऑपरेशन हुआ। घाव भरनेकी स्थितिमें आ गया था, परन्तु अभी कमजोरी बहुत थी। भाभीजी अस्वस्थावस्थामें अपने बिस्तरपर लेटी हुई थीं। उसी समय बाई अचानक हवेलीमें आयीं और आग्रह भरे स्वरमें बोली—

भाभीजी! भाभीजी! उठिये, क्या सोयी हुई हैं?

भाभीजीने कहा—मेरे गलेमें दर्द है और कमजोरी भी है।

बाईने उनके उत्तरको सुनकर भी अनसुना कर दिया और पुनः मनुहार भरे स्वरमें कहने कहने लगीं—उठिये ना।

भाभीजी उठकर बैठ गयीं—ज्यों ही वे बैठी, बाई चटसे उनकी गोदमें बैठकर उनसे कहने लगीं—मैं बाँकेबिहारी हूँ। मेरा श्रृंगार कीजिये। मुझे मक्खन खिलाइये। मुझे फूल दीजिये। मुझे इत्र लगाइये।

बाई इस समय श्रीकृष्ण भावसे भावित थीं। बाईकी बोलन, बाईके हाव-भाव श्रीकृष्ण परक ही हो रहे थे। इतना ही नहीं भाभीजी आयुमें बड़ी थीं फिर भी वे भाभीजीको चन्दा कहकर सम्बोधित कर रही थीं। बिम्बका प्रतिबिम्ब और ध्वनिकी प्रतिध्वनि होती है। बाईके भाव राज्यके अनुसार भाभीजीमें प्रतिक्रिया हुई। प्रौढ़ अवस्था वाली भाभीजी स्वयंको अल्पवयस्का मानने लगीं और उन्हें यही भान होने लगा कि श्रीकृष्ण ही मेरी गोदमें बैठे हुए हैं। भाभीको इस बातकी जानकारी भली प्रकारसे हो चुकी थी कि इन दिनों अनेक बार बाई श्रीकृष्ण भावसे भावित हो जाया करती हैं। भाभीजीका हृदय सहज रूपसे गोदमें बैठी हुई श्रीकृष्ण भाव भाविता बाईकी ओर बहने लगा। बाई उन्हें अत्यधिक प्राण प्रिय लग रही थी। वे सिरपर हाथ रखकर प्यार करने लगीं। घरमें मक्खन था ही, मँगवाकर मक्खन खिलाया और लड्डू भी खिलाया। हाथमें फूल भी दिये।

प्रसन्न वदना बाईने मुस्कुराते हुए भाभीजीसे कहा—मैं बाँकेबिहारी हूँ। देख, मैं तेरे लिये ही यहाँ आया हूँ। मैं तेरा हूँ, तूँ मेरी चन्दा है। तुम मुझसे खेला कर। तुम्हें क्या बतलाऊँ खेलमें कितना आनन्द आयेगा।

यहाँ एक बात विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। बाई जब श्रीकृष्ण भावसे भावित रहतीं तब वे भाभीजीको चन्दा कहकर सम्बोधित करतीं और लाल्य सूचक शब्द बोलतीं। इससे अलग जब बाई अपनी सहज स्थितिमें रहतीं, तब भाभीजीको भाभीजी कहती तथा हर प्रकारसे उन्हें सम्मान देतीं। भावोंका यह मिला जुला खेल बड़ा विचित्र है और जगतकी लौकिकतासे सर्वथा परे है। इस खेलका मर्म तो वे ही कुछ-कुछ जान सकते हैं और बता सकते हैं जिन्होंने व्रज भावके कणांशका भी आस्वादन किया हो। बाई और भाभीजीके इस भावमय सम्बन्ध और व्यवहारकी आन्तरिक वास्तविकताको हृदयंगम कर सकना सहज नहीं है। बहुत पुण्यपुञ्ज हो तो उसकी छायाका किञ्चित स्पर्श

मिल पाये। उन दिनों बाईके व्यवहारमें एक अनोखा प्यार भरा रहता था और उस प्यारके प्रति सभीके मनमें ललक बनी रहती थी।

श्रीमहिला संघमें श्रावण शुक्ला एकादशीसे पूर्णिमा तक पाँच दिनका झूला हुआ करता था। झूला हॉलमें डाला जाता था। फूल पत्तियोंसे सजाया जाता था। पाँच दिन अलग-अलग प्रकारकी झूलेकी सजावट होती थी। जैसे हरी-भरी फूल पत्तियोंका, रूईका, कपड़ेका, कागजका, फलोंका। चौकीपर कुञ्ज बनाकर उसमें फूल, सब्जियाँ लटका दी जाती थीं। झूलनोत्सवके पश्चात् श्रीयुगल सरकारको शयन करा दिया जाता था। फिर उन कुञ्जोंमें कीर्तन होता।

बाईको बुलानेका एक ही मन्त्र था कीर्तन। कीर्तन प्रारम्भ होते ही बाई आ जाती थीं। रात भर लीला होती, फल लूटे जाते, खाये जाते। उस उल्लासका वर्णन सम्भव ही नहीं है। एक बार कच्ची सब्जियोंका झूला बना। उसमें भिण्डी, बैंगन, करेला, कद्दू, हरी मिर्चा, तोरू, परवल इत्यादि लटका दिये गये थे। कीर्तनके बीच श्रीकृष्ण-भाव-भाविता बाईने सब्जियाँ तोड़-तोड़कर सबको दीं, भिण्डी, तोरूँ आदि तो सब खाने लगीं, पर कई बहिनोंके मनमें प्रश्न था कि करेला, हरी मिर्चा, आदि कड़ुवी, तीती लगनेवाली कैसे खायी जाय?

सबने मन-ही-मन विचार किया कि अब इस प्रकारकी वस्तुओंका प्रयोग झूलेमें नहीं करना है। तभी बाईने कहा—तुमलोग झूला सजाती हो क्यों? मुझको झुलानेके लिये ना? हम युगल जड़ हैं क्या? झूला झूलेंगे तो कुञ्जके फूलों, फलोंके साथ भी खेल खेलेंगे। ये फल-फूल भी हमारी प्रतीक्षा करते हैं। इन्हें हम तोड़ेंगे भी, खायेंगे भी। तुमलोगोंने हमलोगोंको जो खानेको दिया, वही तुमलोगोंको खाना होगा।

अब तो सब बहिनोंको अपनी भूल समझमें आने लगी। भविष्यमें ऐसा नहीं करनेका मन-ही-मन निश्चय करके जिस बहिनको जो मिला, वही वस्तु वह खाने लगी। खानेके लिये मुँहमें रखते ही सबके नेत्रोंमें विस्मय झलक रहा था। न करेला कड़ुआ लगा और न मिर्च तीती लगी। खानेमें सब बड़ी स्वादिष्ट लग रही थीं। इतना रूचिकर स्वाद आ रहा था कि और अधिक खानेकी इच्छा होने लगी।

श्रीमहिला संघमें बाईका रसमय व्यक्तित्व सबके लिये आकर्षणका बिन्दु बना हुआ था। जो भी आती, चाहे किसी कामसे आयी हो, वे कुछ देरके लिये बाईके समीप बैठना चाहतीं। एक बार कुछ लड़कियाँ बाईको घेरकर बैठी हुई थीं। उनमें एक लड़कीका नाम कुसुम था। उसने फूलोंका एक गजरा बाईको

पहना दिया। लड़कियाँ फूलोंके गजरे और गहने बना-बना करके लाया करती थीं और बाईको सजाया करती थीं। शीशपर या हाथमें या पाँवमें या गलेमें या करधनीमें, जिसे जो अच्छा लगता था और जिसका जैसा मन होता था, वह लड़की फूलके गहने या गजरे बनाकर चुपचाप लाती और एक दूसरीसे छिपकर बाईको चट पहना देती थी। बाईका शृंगार करनेमें होड़ सी मची हुई थी। केवल शृंगार ही नहीं, कभी कोई मक्खन ले आती, कोई लड्डू ले आती, कोई अन्य मिष्टान्न पदार्थ ले आती तथा अवसर पाकर बाईके मुँहमें चुपचाप खिला देती। अक्सर ऐसा ही हुआ करता था। कभी-कभी बाईको पीताम्बर पहनाया जाता, दुपट्टा ओढ़ाया जाता, गहनोंका शृंगार किया जाता और इस प्रकार बाईको श्रीकृष्ण वेशमें सजाया जाता। अन्य सब भी घाघरा, ओढनी, गहना धारण करती और फिर नृत्यका रंग बहने लगता। नृत्यके होते-होते श्रीकृष्णलीलाका प्रवाह चल पड़ता। उस समय जो रंग उछलता था, जो उमंग व्याप्त रहती थी, उस उमंगको और रंगको वही जानती है, जिसने अपनी आँखोंसे देखा हो। अब तो बाईका शृंगार करना और श्रीकृष्णवेशमें सजाना एक प्रकारसे दैनिक जीवनका सहज क्रम ही बन गया था।

श्रीमहिला संघकी मंत्रिणी फूल बाईको यह रंग-ढंग कुछ अच्छा नहीं लग रहा था। उन्होंने देखा कि बाईको घेरकर सब लड़कियाँ खड़ी या बैठी हैं और आश्रमके सेवा कार्यको सम्पन्न करनेके लिये कोई भी नहीं आ रही है। उनका मन झुँझलाहटसे भर गया। वे बाईके पास आयीं और रोषपूर्वक बोलीं। सबको तो तुमने अपने पास बुला लिया। सब लड़कियाँ तुम्हारे चारों ओर खड़ी या बैठी है। अब उत्सवमें सेवाका काम कौन करेगा? तुम सबको काम करनेके लिये भेजो। ये लड़कियाँ पहले काम सलटा लें, फिर आकर तुम्हारे पास बैठ जायेंगी।

फूल बाईकी झुँझलाहटकी प्रतिक्रिया बाईपर कुछ और ही प्रकारसे हुई। क्षुब्ध होनेके स्थानपर बाईका प्यार छलकने लगा। बाईने फूल बाईका हाथ प्यारसे पकड़ लिया और फिर अपने गलेकी एक माला निकालकर उनके गलेमें पहना दी। इस प्रक्रियाने एक चमत्कार उपस्थित कर दिया। उनके गलेमें जो माला पहनायी गयी, उस मालाके माध्यमसे फूल बाईको क्या दिया गया और कितना दिया, यह तो कह सकना बहुत कठिन है, किन्तु यह देखा गया कि उस मालाके पहनते ही फूल बाई नृत्य करने लगीं। नाचते-नाचते दो-तीन लड़कियोंको पकड़ करके उछल कूद मचाने लगीं। लड़कियोंको इतनी

कसकर पकड़ रखा था कि उनका छूट पाना कठिन हो गया। आसपास खड़ी बहिनोंको बड़ा विस्मय हो रहा था कि उनमें इतना बल कहाँसे आ गया। उनके बलको, उनकी चेष्टाको उनकी हास्यमयी मुखाकृतिको उनकी मटकती बोलनको देखकर स्पष्ट परिलक्षित होता था कि फूल बाई श्रीकृष्ण-सखा मनसुखके भावसे आविष्ट हैं। सच पूछा जाय तो श्रीकृष्ण-वेशमें सुसज्जित बाईकी मालाके स्पर्शने यह चमत्कारी प्रभाव दिखला दिया और गम्भीर स्वभाववाली फूल बाई हँसमुख मनसुख सखा बनकर नृत्य करने लगीं। वे व्रजभाषा सहज रूपसे बोल रही थीं और उनकी सम्पूर्ण शारीरिक क्रिया सखा जैसी हो रही थी।

एक दिन गो-वत्स चारण-लीला हुई। यह इतनी रोचक हुई कि लीला-पात्र और लीला-दर्शक सभीके मनमें अत्यधिक गुदगुदी और अधरोंपर अत्यधिक हास्य था। बाई बन गयीं गोपालक और पुष्पा बाई, कमल बाई, रामप्यारी बाई, सावित्री बाई, पद्मा बाई ये सब बन गयीं गोवत्स। इन गोवत्सोंको गोपाल-भावाविष्ट बाई बगीचेमें चराने लगीं। श्रीबरसानेवालीके सामने बगीचा है। बगीचेकी क्यारियोंमें गोवत्सोंको चराया गया। गोवत्सोंको हाँक-हाँक करके चराया जा रहा था। बाईकी बोलन ठीक ग्वालों जैसी हो रही थी। गोवत्सारूपा बहिनें पैरसे नहीं हाथ और घुटनोंके बल चल रही थीं। बगीचेकी एक क्यारीमें पोदीना लगा हुआ था। क्यारीमें लगे हुए पोदीनेको गोवत्सोंने हाथसे नहीं, मुँहसे तोड़कर खाया। ज्यों ही ये लीलापात्र गोवत्स अपना मुँह उठाते, गोपाल-स्वरूपा बाई उनको आगे बढ़नेके लिये हाँक देती।

चरनेके बाद चारा देनेके समय आहारके रूपमें दूध दिया गया। दूध परोसा गया था थालीमें। गोवत्स थालीमें मुँह डाल-डालकर जीभसे दूध पी रहे थे और चाट रहे थे। गोवत्स-चारणका यह दृश्य बड़ा ही अद्भुत और रंजक था। गोवत्स-चारण-लीला देखने वाली बहिनें और गोवत्स बनी हुई बहिनें सभी उन्मुक्त हँसी हँस रही थीं। इस हास-परिहासका विकास कीर्तनोल्लास एवं जयगानके रूपमें हो गया। सभी बहिनें उच्च स्वरसे कीर्तन कर रही थीं—

जय राधा कान्त कृपाल।
जय हो मन मोहन लाल॥ टेर ॥
जय यशुमतिजी के लाल॥ जय हो॰॥
जय नटखट मदन गोपाल॥ जय हो॰॥

जय हो ब्रजके प्रतिपाल॥ जय हो०॥
जय प्रेमिन के प्रतिपाल॥ जय हो०॥
जय ब्रजगोपिन प्रतिपाल॥ जय हो०॥
जय ब्रज के गौ, गोपाल॥ जय हो०॥

श्रीकृष्ण-भावमय हास-परिहास और लीला-विलासमें समय व्यतीत हो रहा था, तभी स्वर्गाश्रमकी यात्राका समय समीप आ गया। बाई प्रतिवर्ष मासके नवरात्रके बाद स्वर्गाश्रम जाया करती थीं। वहाँ तीन-चार मास पूज्य श्रीसेठजी, श्रीभाईजी और श्रीबाबाके सत्संग और सानिध्यका लाभ लेकर वृन्दावन जानेका कार्यक्रम बनता था। वृन्दावनमें श्रावण मासके झूलनोत्सवका आनन्द विहार देखकर फिर बाई गोरखपुर श्रीराधाष्टमीके महोत्सवमें भाग लेने पहुँच जाती थीं। अब सम्भवतः सन् १९६१ की राधाष्टमीकी बात है, जब बाई गोरखपुरमें थीं और उनके कानोंमें षोडशगीतकी चर्चा पड़ी। षोड्शगीत श्रीभाईजीकी रचना है। इस संग्रहके आरम्भमें वन्दनाके पाँच दोहे हैं और अन्तमें पुष्पिकाके पाँच दोहे हैं। वन्दना और पुष्पिकासे सम्पुटित कुल सोलह पद हैं, जिनमें प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवका पारस्परिक पद्यात्मक संलाप है। इस पारस्परिक संलापमें दिव्य प्रेमप्लुत आत्मनिवेदनकी अनोखी अभिव्यक्ति है। इन्हीं सोलह पदोंके संग्रहको प्रचलित भाषामें षोडशगीत कहा जाता है। वह प्रीति, जो एकमात्र तत्सुखैकतात्पर्यमयी है और जो नितान्त स्व-सुख-कामना शून्य है, ऐसी अमला प्रीतिका अति सरल शब्दोंमें सहज वर्णन होनेसे इन सोलह पदोंके प्रति श्रीबाबाका आन्तरिक लगाव था। श्रीभाईजीकी कृति, श्रीबाबा द्वारा वस्तु-गुण-गरिमा-गायन और सोलह पदोंके अन्तर्गत भावधाराकी दिव्यता, इन सभीने बाईके मनको मोह लिया और अब बाईका पूर्ण प्रयास रहने लगा कि ये षोडशगीत साधक-साधिकाओंकी साधनाका एक प्रमुख अंग बन जाय। समीपमें आनेवाली हर बहिनको श्रीराधानाम संकीर्तनके साथ-साथ षोडशगीतके नित्य पाठका सुझाव देने लगीं। बाईके सुझावको सर्वोपरि माननेवाली बहिनोंमे-से कोई सम्पूर्ण सोलह पदोंका प्रतिदिन पाठ करतीं और कोई दो-दो पदोंका ही पाठ करतीं। पाठ करनेका स्वरूप जो भी रहा हो, परन्तु बाईके प्रयाससे षोडशगीतके पाठका खूब प्रचार हुआ।

बाईने श्यामा नामकी लड़कीको भी षोडशगीत पाठका नियम दिलाया। यह लड़की कीर्तनमें आया करती थी। स्वभावसे बड़ी भावुक थी। उसे भी

एक दिन रात्रिके कीर्तनमें भाव आ गया और वह भावमें बाह्य-ज्ञान-शून्य हो नृत्य करनी लगीं। इसी श्यामाका एक बड़ा भावमय प्रसंग है—

स्कूलमें उसकी परीक्षा चल रही थी। प्रात:काल उसने स्कूल जानेकी सोची, परन्तु बाईने उसको रोक दिया। उसे स्कूल नहीं जाने दिया। श्रीमहिला संघमें उस दिन श्रीषोडशगीतका अखण्ड पाठ चल रहा था। वह चुपचाप पाठ करने लगी। उसने बाईसे परीक्षावाली बात बतलायी भी नहीं। पाठ करते समय उसके मनमें चिन्तन चल रहा था कि मैं सब परीक्षा तो दे चुकी हूँ, बस, एक सिलाईकी परीक्षा न दे सकनेके कारण मैं फेल हो जाऊँगी। ऐसा चिन्तन होते रहनेके बाद भी वह पाठ करती रही। दूसरे दिन वह स्कूल गयी। वहाँ शिक्षिकाजीसे बोली—बहिनजी! कल किसी विशेष कारणसे मैं स्कूल नहीं आ सकी थी। आप मेरी सिलाईकी परीक्षा आज ले लीजिये तो आपकी बड़ी कृपा होगी।

बहिनजीने साश्चर्य उसको देखा और पूछा—तुम कहीं पागल तो नहीं हो गयी हो? तुम कल भी स्कूल आयी हो और परीक्षा दी हो। तुम्हारी बनायी हुई फ्राक मेरे पास है।

उसने बार-बार कहा—बहिनजी! मैं नहीं आयी थी। आप ठीकसे देखिये। मैंने तो परीक्षा दी ही नहीं है।

इस प्रकार कई बार कहने-सुननेके बाद उसने बहिनजीसे फ्राक दिखलानेके लिये अनुनय की। उसका बहुत आग्रह और अविश्वास देखकर बहिनजीने उसके नामकी परीक्षामें जमा की हुई फ्राक निकालकर उसे दिखला दी। वह स्कूलकी छुट्टी होनेके बाद सीधे बाईके पास आयी और सारी घटना बाईको सुनायी। बाईने कहा—श्यामा! तुम धन्य हो। तुम जिसके लिये यहाँ पाठ करती हो, कीर्तन करती हो, वह बरसानेवाली तुम्हारे बदले परीक्षा देने गयी। करुणामयीकी करूणाकी बार-बार बलिहारी।

आज बाईकी मान्यता और उनके पुन:-पुन: कथनकी प्रत्यक्ष रूपमें पुष्टि हो गयी। बाई जब-तब अवसर देखते ही बहिनों और माताओंसे कहा करती थीं—जहाँ श्रीराधा नाम संकीर्तन होता है, जहाँ श्रीमद्भागवतका पाठ होता है, जहाँ श्रीठाकुरजीकी सेवा होती है, जहाँ जप-ध्यान हेता है, वहाँ श्रीकृष्ण सदैव विराजते हैं और जहाँ श्रीकृष्ण विराज रहे हों वहाँ वृन्दावनेश्वरी श्रीराधा न हों, ऐसा हो ही नहीं सकता। हमलोग देखनेकी चेष्टा करें तो अवश्य दिखलायी देंगे।

ऊपर लिखी बात तो एक सर्व सामान्य सिद्धान्तके रूपमें है, परन्तु श्यामाकी घटनाको लक्ष्य करके बाईने कहा—यह षोडशगीतका पाठ कर रही थी और इसके बदले स्वयं करुणामयी श्रीराधारानी परीक्षा दे आयी। क्या यह प्रसंग एक प्रबल प्रमाण नहीं है कि जहाँ भी भगवदीय अनुष्ठान होते हैं वहाँ श्रीप्रिया-प्रियतम विराजते हैं।

समीपस्थ बहिनोंको सम्बोधित करते हुए बाई कहती जा रही थीं—तुमलोग कहती हो कि बाईके बिना कीर्तनमें मन नहीं लगता, उल्लास नहीं आता, ऐसा क्यों समझती हो? जब श्रीकृष्ण इस शरीरके माध्यमसे खेल खेलना चाहते हैं तो वे इसमें आविष्ट हो जाते हैं। यही बात तुमलोगोंके जीवनमें घटित हो सकती है। तुमलोग उन्हें देखना चाहोगी, उनसे खेलना चाहोगी तो वे निरावरण रूपसे तुम्हारे सामने होंगे और प्रत्यक्ष रूपमें विहार करेंगे।

इसी श्यामा नामकी बालिका, जिसके बदले करुणामयी श्रीराधारानी सिलाईकी परीक्षा देने गयी थीं, उसीके जीवनकी एक घटना और है। वह एक बार कीर्तन कर रही थी। कानमें सोनेका कुण्डल पहने थी। उसे लगा जैसे कोई उसका कान खींच रहा है। उसने पीछे मुड़कर देखा तो उसको कोई दिखलायी नहीं पड़ा। कुण्डल खींच लिये जानेसे उसका कान कट चुका था। कानके कट जानेपर कुण्डलको इधर-उधर खोजा गया पर वह कहीं दिखलायी नहीं दिया। उसने बाईको बतलाया।

श्यामाका कान कटनेकी जानकारी होते ही बाईने कही—ठाकुरने अपनी उपस्थितिका विश्वास दिलानेके लिये यह लीला की है। वह कुण्डल इसीलिये अदृश्य हो गया कि उसे प्रियतम कृष्ण लेते गये। हमारे मनमें यह विश्वास होना चाहिये कि यहाँ श्रीराधा-कृष्ण खेलते हैं। जहाँ श्रीराधा नामका संकीर्तन होगा, वहाँ श्रीकृष्णकी उपस्थिति होगी ही। आपलोग निश्चय-निश्चय मानिये कि यहाँ श्रीराधा-कृष्णका नित्य विहार नित्य चलता ही रहता है।

लोगोंको अब विश्वास होने लगा कि बाईकी धारणाको सत्य दिखलानेके लिये ही श्रीकृष्णने कुण्डल-चोरी लीला रची है।

* * * * *

श्रीविग्रह वितरण

पूर्वके कुछ अध्यायोंमें भगवन्नाम संकीर्तनके प्रचारके अतिरिक्त मञ्जरी-भावाविष्ट और श्रीकृष्ण-भावाविष्ट-जीवनकी कुछ झलकियाँ प्रस्तुत की गयी हैं और इस अध्यायमें प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-कृष्णके श्रीविग्रहके वितरणकी चर्चा आयेगी। भिन्न-भिन्न अध्यायोंमें भिन्न-भिन्न तथ्योंकी चर्चासे यह अर्थ नहीं लेना चाहिये कि ये सर्वथा भिन्न-भिन्न है। इन तथ्योंके मध्य विभाजन रेखाको अंकित किया ही नहीं जा सकता। वर्णनकी सुविधाके लिये इनको अलग-अलग भले ही लिख लिया गया, परन्तु ये सभी धाराएँ बाईके जीवनमें समानान्तर बहती रही हैं। हरिनाम संकीर्तनके मध्य ही उनके श्रीकृष्ण-भावाविष्ट जीवनकी झलक अनेक बार देखनेको मिली है और उसी भाव दशामें उन्होंने सम्पर्कमें आनेवाली बहिनोंको ठाकुर-सेवा भी प्रदान की है।

ठाकुर सेवा पानेका सर्वप्रथम सौभाग्य कलकत्तेकी विद्या बाईको मिला। भाभीजीने विद्या बाईको पूजाके लिये श्रीप्रिया-प्रियतमके विग्रह पहले ही दे रखे थे। वे उन्हींकी पूजा किया करती थीं। अब बाईके द्वारा श्रीविग्रह और भेज दिये जानेसे वे आनन्दातिरेकमें विह्वल हो गयीं।

बाई द्वारा जो श्रीविग्रह भेजे जाते थे, उस भेजनेकी प्रणालीको एक नियममें समेटा नहीं जा सकता। प्राय: स्वर्गाश्रमके गीताभवनमें रहनेके बाद बाई वृन्दावन जाती ही थीं और जैसी प्रेरणा श्रीबिहारीजी करते थे, उसके अनुसार वे बहिनोंको श्रीराधा-कृष्णके युगल-विग्रह साज-शृंगार सहित भिजवाती थी। अनेक बार वे बिना किसी पूर्व सूचनाके भिजवा देती थीं और जिनके यहाँ वे पहुँचते थे, वे आश्चर्यचकित रह जाती थीं।

ऐसी ही कुछ गाथा विद्या बाईके साथ भी है। उन्हें तनिक भी सूचना नहीं थी कि उनके पास बाई द्वारा भिजवाये गये ठाकुर आनेवाले हैं। ज्यों ही ठाकुर आये, उन्होंने उनका अपूर्व उत्साहके साथ स्वागत किया। उनका विश्वास यही था कि मुझपर युगल-द्वयकी कृपा हो रही है। युगल सरकारका विग्रह पहलेसे घरमें विराजित था ही। अब भेजे गये युगल और पहुँच गये।

बाईने स्वयं ठाकुर भेजे, यह देखकर विद्या बाई सदैव अपने सौभाग्यकी सराहना करती रहती थीं।

इसके बाद बाईने न जाने कितनी बहिनोंको ठाकुर प्रदान किये। जिन-जिन बहिनोंको ठाकुर-सेवा मिली, उनकी गणना करना कठिन है। बाई कभी वृन्दावनसे स्वयं ही सेवा-पूजाके लिये श्रीविग्रह भेज देती और कभी वृन्दावनसे आते समय अपने साथ युगलके श्रीविग्रह लेती आतीं। यह भी देखा गया कि अनेक बार मँगवा-मँगवा करके बहिनोंको युगल सेवा प्रदान करतीं। यह तो सदा ही अनुभवमें आया कि जिस बहिनको बाई द्वारा ठाकुर सेवा मिलती, वह अपना परम सौभाग्य समझती और बाईकी अयाचित और अपार कृपापर बलिहार हो जाती। सभीके घरकी पारिवारिक परिस्थितियाँ समान नहीं होती है। जिस बहिनोंका पारिवारिक जीवन कुछ उलझन पूर्ण होता, वे कभी-कभी बहुत झिझकती और कहतीं कि गृहस्थके जंजालके कारण मेरे द्वारा ठाकुर-सेवा नहीं हो पायेगी। यह चिन्तन एक बार उनके अन्तरको झकझोर देता, परन्तु बाईकी अनुकूल दृष्टि होनेसे उसपर भगवद्नुग्रह ऐसा बरसता कि उसकी सारी झिझक दूर हो जाती और ठाकुर-सेवा पाकर वह अपनेको निहाल मानने लगती।

बाई श्रीधाम वृन्दावनसे एक बार युगल सरकारके श्रीविग्रह लायी थीं। बाई एक दिन सत्संगमें बैठी थीं। बाईने पाना बाई किशोरपुरियासे कहा—यह ठाकुर तो आपके घर जाना चाहते हैं।

पाना बाईने कहा—बाई, मुझे तो ठाकुर सेवाका समय नहीं मिल पायेगा। घरमें ठाकुर सेवा विराजित कर लेनेके बाद मैं यहाँ श्रीबिहारीकी सेवा-कीर्तन-सत्संगमें भाग नहीं ले सकूँगी। यहाँकी सत्संग-सेवा-पूजा छोड़ना मेरे लिये सम्भव नहीं।

बाईने कहा—ठाकुर तुम ले लो। सेवा छोटकी (देवरानी) करेगी।

पाना बाईने कहा—उसकी जिम्मेदारी मैं नहीं ले सकूँगी। आप उसीसे पूछ लीजिये।

बाईने कहा—पाना बाई! ठाकुर कह रहे हैं कि मैं इसके घर जाऊँगा। वे तो आपके घर जायेंगे ही। मैं छोटकी (देवरानी शान्ति बाई) से बात कर लूँगी।

बाईके कथनको शिरोधार्य करके पाना बाई युगल विग्रहको अपने घर ले आयीं और उनकी सेवा-पूजा छोटकी देवरानी शान्ति बाई करने लगीं।

देवरानी शान्ति बाईको सन्तानके नामपर मात्र एक लड़का था। एक दिन भावाविष्ट स्थितिमें बाईने शान्ति बाईसे कहा—तुम मुझे अपना बेटा मान लो।

शान्ति बाईने कहा—बाई, मैं तो आपको बहिन बनाऊँगी।

बाईने कहा—तुम मुझे बेटा मानकर निहाल हो जाओगी फिर तुम्हें जीवनमें कोई तकलीफ नहीं होगी।

शान्ति बाईने बाईको बेटा मानना स्वीकार नहीं किया और बाईसे कहा—बाई! आप मेरे उसी पुत्र किशनकी रक्षा कीजिये। मैं क्या करूँ? मेरी ममता उसीमें है।

बाईने किशनकी मंगल कामनाके लिये शान्ति बाईसे पूजा करवायी और उनसे कहा—किशनको प्रतिवर्ष राखीके अवसरपर मेरे पास राखी बँधवाने भेज दिया करो। वह मेरा भाई है। वह भी श्रीबरसानेवालीसे राखी बँधवाकर ही दूसरेसे राखी बँधवायेगा।

शान्ति बाईका पुत्र किशन कुसंगमें पड़कर कुछ कुप्रवृत्तियोंका शिकार हो गया। शान्ति बाईको बहुत अशान्ति होने लगी। उससे बाईने कहा—तुम प्रत्येक वर्ष हरियाली तीजके दिन श्रीबरसानेवालीको तिहल (साड़ी, चुनड़ी, लँहगा, अँगिया, चूड़ी, फीता, काजल, सिन्दूर आदि) चढ़ाया करो।

बाईने पहले ही शान्ति बाईसे कहा था कि तुम मुझे अपना बेटा मान लो। इससे तुम निहाल हो जाओगी और जीवन निरापद हो जायेगा। बाईका यह प्रस्ताव शान्ति बाईने सर्वथा अस्वीकार कर दिया और इसका फल स्पष्ट दिखलायी दे रहा है कि उसका जीवन पुत्रकी ओरसे सदैव अशान्त रहा। इसी प्रसंगका एक अन्य पक्ष भी ध्यान देने योग्य है। बाईका आदेश मानकर वह ठाकुरकी सेवा-पूजा करने लगी तथा श्रीबरसानेवालीको प्रतिवर्ष तिहल चढ़ाने लगी। इसका भी सहज परिणाम यह देखा गया कि उसके पुत्रका अनेक बार भयंकर दुर्घटनाओंसे बचाव हो गया और उस शान्ति बाईको विपत्तिकी घाटियोंको सहज ही पार करके चैनकी साँस लेनेका अवसर मिल जाता था।

बाई भागलपुरकी एक बहिन सुशीला बाईको मैया कहा करती थीं। मैया कहकर पुकारनेके पीछे भी एक छोटा सा प्रसंग है। एक बार हॉलमें सत्संग

हो रहा था। लगभग पचास-साठ स्त्रियाँ बैठी-बैठी सत्संग सुन रही थी। उसी समय बाई श्रीकृष्ण-भावसे आविष्ट होकर सुशीला बाईके पास आयीं और अचानक मैया-मैया कहकर पुकारते-पुकारते सुशीला बाईकी गोदमें लेट गयीं। भरी सभाके मध्य हो रही इस सारी विस्मयकारिणी चेष्टाको अनुप्रेरित और अनुशासित कर रहा था श्रीकृष्ण-भावावेश। सुशीला बाईका भी श्रीकृष्ण भावाविष्ट बाईके प्रति वात्सल्य उमड़ आया। अब एक ऐसा भाव-सम्बन्ध सदा के लिये स्थापित हो गया कि बाई जब भी सुशीला बाईको देखती तो उन्हें मैया ही कहतीं तथा उनसे खानेके लिये मक्खन लड्डू माँगने लगतीं।

बाईके व्यक्तित्वकी एक बात विशेष रूपसे बतलाने योग्य है कि वे जिससे जो भाव-सम्बन्ध मनमें स्थिर कर लेतीं और उस भाव-सम्बन्धानुसार जिस सम्बोधनका प्रयोग करतीं, उसे वे सर्वत्र और सर्वदा दृढ़तापूर्वक निभाती थीं तथा उस भाव-सम्बन्धके अनुरूप ही उनके सारे अचार-विचार व्यवहार होते थे।

प्रसंगानुरोधसे बाईके व्यक्तित्वकी एक गुण-गरिमाका उल्लेख बीचमें आ गया। जिन्हें बाई मैया कहा करती थीं, उन सुशीला बाईकी एक घटना है। बाई उन्हें सेवा पूजाके लिये ठाकुर देना चाहती थीं। सुशीला बाईने उनसे कहा—मैं उनको अपने घरमें कहाँ पधराऊँगी? छोटा घर होनेके कारण कोई भी उपयुक्त स्थान समझमें नहीं आ रहा है।

बाईने कहा—तुम जिस कमरेमें सोती हो, उसीमें चौकी लगाकर पधरा दो अथवा आलमारीके खानेमें इनके लिये आसन लगा दो। मैं ऐसा इसलिये कह रही हूँ कि ये ठाकुर तुम्हारे साथ तुम्हारे घर जानेके लिये मचल रहे हैं। इनको मचलते देखकर ही मुझे ऐसा कहना पड़ रहा है। वे युगल सरकार बार-बार यही कह रहे हैं कि हम तो मैयाके साथ जायेंगे।

ठाकुर लेकर सुशीला बाईको बहुत प्रसन्नता हुई। जिस समय ठाकुरजी गये थे, उस समय उनको अपने कमरेमें ही पधरा दिया था। उनका मकान छोटा होनेसे ऐसा करना पड़ा। भविष्यमें जब उनका अलग मकान बन गया, वे युगल-विग्रह सहित अपने नये मकानमें चली गयीं। उनकी गोदमें उस समय कोई सन्तान नहीं थी। अब वे युगल सरकार ही उनके जीवनके सर्वस्व थे और बड़े लाड़-प्यारसे वे युगल सरकारकी सेवा-पूजा करतीं।

बेगुसराय वाली बहन विमला बाईको भी बाईने श्रीविग्रह दिये। श्रीविग्रह पाकर विमला बाईको बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने अपने घरका एक कमरा ठाकुर बाड़ीके रूपमें ही बदल दिया। वह कमरा ही मन्दिर बन गया और उस मन्दिरमें युगल सरकारकी सेवा-पूजा श्रद्धा-भक्ति सहित होने लगी। ठाकुर पाकर विमला बाईको ऐसा लगा कि मुझे एक महान निधि मिल गयी है। ठाकुरके सुन्दर सेवा-बंधानका प्रभाव पूरे परिवार पर ऐसा पड़ा कि उनके परिवारकी अन्य बेटी-बहुएँ भी बाईसे श्रीविग्रहकी याचना करने लगीं। बाईने सभीको चित्रपट रूपी विग्रह दिये। इसी तरह लक्खीसरायकी रामा बाईको भी सेवा-पूजाके लिये बाईने युगल सरकारका श्रीविग्रह प्रदान किया। नाथनगर और देवरियाकी भी अनेक बहिनोंको श्रीविग्रह मिले।

बाईने न जाने कितनी माताओं-बहिनोंको सेवा-पूजाके लिये युगल सरकारके श्रीविग्रह और चित्रपट प्रदान किये। बाई द्वारा प्रदत्त श्रीविग्रह और चित्रपटकी सेवा-पूजाके फलस्वरूप अनेकानेक परिवारोंके घरेलू वातावरणमें और कौटुम्बिक सम्बन्धोंमें बहुत परिवर्तन आ गया। हरिनामका संकीर्तन, धर्म ग्रन्थोंका पाठ, समय-समयपर नैमित्तिक उत्सव, नित्य सेवा-पूजाका नियम, साधु-संतोंका समादर आदि-आदिके कारण वे परिवार और परिवारके भक्त सदस्य समाजमें आदरकी दृष्टिसे देखे जाने लगे। घरके वातावरणमें सात्त्विकताके परमाणु व्याप्त होनेसे अनेक प्रकारकी पारिवारिक कटुताएँ समाप्त हो गयीं और पारस्परिक सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण हो गये।

इन परिवर्तनोंने और दैवी भावोंकी प्रतिष्ठा-प्रसारने बाईको सहज ही समाजमें वन्दनीय बना दिया और बाईका उभरता हुआ आध्यात्मिक व्यक्तित्व समाजमें गौरव भरी दृष्टिसे देखा जाने लगा।

* * * * *

सत्संगके आयोजन

अपने भावमें कभी डूबी और कभी लहराती हुई बाईने जिस प्रकार भगवन्नाम संकीर्तनका प्रचार और युगल सरकारके श्रीविग्रहका वितरण किया, उसी प्रकार सत्संगके आयोजनोंके लिये भी कुछ बहिनोंको प्रेरणा दी। सत्संगसे ही जीवनमें परिवर्तन और उत्कर्ष आता है। आध्यात्मिक पथपर चलनेवाले साधक-साधिकाओंको सत्संगसे पोषण और प्रोत्साहन मिलता है। श्रीरामचरितमानसमें कहा गया है कि 'बिनु सत्संग विवेक न होई' और आध्यात्मिक जीवनके लिये सात्त्विक विवेक अत्यावश्यक है। बाई जब श्रीमहिला संघमें रहती थीं, तब वहाँ और भाभीजीकी हवेलीमें सत्संगका क्रम चलता ही रहता था। बाईके मनमें ऐसे विचार बार-बार उठने लगे कि यदि इस प्रकारके सत्संगका आयोजन अन्य स्थानोंपर भी हो तो बड़ा सुन्दर रहे और इस चिन्तनका परिणाम यह हुआ कि सत्संगका सर्वप्रथम शुभारम्भ नाथनगरमें हो गया।

नाथनगर बाईकी पितृभूमि है, अतः वहाँसे शुभारम्भ होना स्वाभाविक है। श्रीकृष्ण भाव-भाविता बाईकी रूचिका नाथनगरकी माताओं-बहिनोंने हृदयसे अनुमोदन और स्वागत किया। नाथनगरकी अनेक माताएँ-बहिनें चाहती थीं कि दिव्यभावमें सतत निमग्न रहनेवाली और दिव्य-लीलाओंकी सरस चर्चा करनेवाली बाई नाथनगर भी कभी-कभी आया करें, परन्तु कोई ढंग नहीं बैठ पा रहा था। जबसे श्रीसेठजीने उनको उनके पिताजीसे माँग लिया, तबसे नाथनगरसे उनका सम्बन्ध विच्छिन्न-सा हो गया था। यह विच्छिन्नता सभीके मनमें चुभ रही थी, परन्तु कोई उपाय भी नहीं दीख रहा था। इसी निराशाके बिन्दुपर बाईकी उस अभिलाषाने आशाकी किरणें बिखेर दी। इसीकी चिरप्रतीक्षा थी। सत्संग-प्रचारकी योजनाके रूपमें नाथनगरकी माताओं-बहिनोंको बड़ा सुन्दर निमित्त मिल गया। बाईका नाथनगर आना-जाना आरम्भ हो जायेगा और बाईकी उपस्थितिसे हमलोगोंको भक्ति-भावपूर्ण जीवन व्यतीत करनेमें सहारा मिलेगा, ऐसे लाभकी आशासे वहाँकी बहिनोंका मन प्रसन्नतासे भर गया और शीघ्र ही नाथनगरमें सत्संगका क्रम चल पड़ा। नाथनगरमें होनेवाले सत्संगके आयोजनको सँभालनेका दायित्व सुरजी बाईने सहर्ष स्वीकार कर लिया और उनकी देख-रेखमें प्रत्येक मंगलवारको सत्संग और प्रत्येक

एकादशीको अखण्ड हरिनाम संकीर्तन होने लगा।

संतका सांनिध्य भी छूतका रोग है। इसीको सुन्दर शब्दमें कहा जाता है—'एक दीपसे जले दूसरा, ऐसे अगणित होवे'। नाथनगरके तुरन्त बाद बेगुसरायमें सत्संगका शुभारम्भ हुआ। नाथनगर बाईकी पितृभूमि थी तो बाईको भाव-पुत्री मानने वाली नर्मदा बाईका ससुराल भी वहीं था। बाईके नित्य साथ रहने वाली नर्मदा बाईका पीहर बेगुसराय होनेसे शीघ्र ही वहाँ भी सत्संगका ढंग बन गया और वहाँ भी प्रत्येक मंगलवारको सत्संग और हरिनाम संकीर्तनका क्रम चल पड़ा। वहाँकी माताओं औार बहिनोंके उत्साह और नाम-निष्ठाको देखकर बाई प्राय: बेगुसराय जाया करती थीं और उनकी उपस्थितिसे रसकी बाढ़ आ जाती थी।

नाथनगर और बेगुसरायमें सत्संगका शुभारम्भ देखकर बाईको बड़ा सन्तोष मिला। बाई स्वर्गाश्रमसे वृन्दावन गयी हुई थीं। वहीं कलकत्ताकी विद्या बाई मस्करासे भेंट हुई। विद्या बाईकी बाईके प्रति बड़ी श्रद्धा थी। बाईने उनसे भी सत्संगकी चर्चा चला दी। विद्या बाईने तुरन्त आश्वासन दिया कि मैं यहाँसे कलकत्ते जाते ही आपके निर्देशानुसार कार्य करनेका पूर्ण प्रयास करूँगीं। बाईके सामने वृन्दावनमें ही विद्या बाईने शुक्रवारका दिन सत्संगके लिये निश्चित कर लिया। कलकत्ते पहुँचकर वह अपनी जान-पहचानवाली सभी बहिनोंको शुक्रवारके दिन सत्संगके लिये बुलाने लगीं। विद्या बाईके घरपर ही सत्संग होता था। आनेवाली बहिनें सत्संग लाभसे बड़ी सन्तुष्ट औार प्रसन्न थीं।

कलकत्तेके बाद सत्संगका शुभारम्भ देवरियामें हुआ। सदैवकी भाँति सन् १९६४ (सं० २०२१ वि०) में श्रीराधाष्टमी महोत्सव पर बाई गोरखपुर आयी हुई थीं। इस बार महोत्सवके अवसरपर देवरियासे कुछ बहिनोंके साथ पद्मा बाई और साबो बाई भी आयी हुई थीं। साबो बाई नाथनगरकी बेटी थीं, इस नाते उन्होंने रुक्मिणी बाईका नाम तो सुन रखा था, परन्तु बाईसे कभी मिल नहीं पायी थीं। गीतावाटिका आनेपर उन्हें पता चला कि बाई भी यहाँ श्रीराधाष्टमी महोत्सवमें आयी हुई हैं। उन्होंने तुरन्त अपनी जिठानी पद्मा बाईसे कहा—मैंने सुना है कि भागलपुरकी रुक्मिणी बाई, जो बहुत लीला सुनाया करती हैं, वे यहाँ आयी हुई हैं। उनसे मिलनेके लिये चलना चाहिये।

महोत्सवकी व्यस्तता होते हुए भी अवसर निकालकर बाईके निवास स्थानपर पद्मा बाई और साबो बाई आयीं। बाईको देखते ही वे दोनों ही उनपर

लुब्ध हो गयीं, मानो उन्हें अपनी कोई खोयी निधि मिल गयी। लुब्ध मनसे वे यही सोच रही थीं कि बाईकी सन्निधिमें अधिक-से-अधिक समय तक रहनेका ढंग कैसे बन पायेगा? भगवत्प्रेरणासे अचानक बाईने उनसे पूछा लिया—आपलोग सत्संग करती हैं क्या?

साबो बाईने कहा—बाई! अभीतक तो सत्संगका कोई ढंग नहीं है, परन्तु अब आप जैसे बतलायेंगी, वैसे करनेके लिये हमलोग तैयार हैं। आप देवरिया चलकर हमारे घर सत्संग प्रारम्भ करवा दीजिये। आपके बतलाये अनुसार हम सत्संगके लिये पूर्ण प्रयास करेंगी।

बाईके सामने ही यह निश्चित हो गया कि देवरियाका सत्संग साप्ताहिक होगा और मंगलवारको हुआ करेगा। यह भी निश्चित हुआ कि महोत्सवके षष्ठी-पूजनके बाद सत्संगका शुभारम्भ करनेके लिये बाई देवरिया चलेगी।

श्रीराधा-जन्मोत्सव भाद्र शुक्लकी अष्टमी तिथिके मध्याह्न कालमें मनाया जाता है और इसके छठे दिन षष्ठी-उत्सव रात्रिमें मनाया जाता है। साबो बाई और पद्मा बाई श्रीराधा-जन्मोत्सवके बाद गोरखपुरसे देवरिया चली गयीं, परन्तु उनके मनमें सत्संग प्रारम्भ होनेका चाव चढ़ा हुआ था। वे षष्ठी उत्सवके बाद आनेवाले सोमवारकी प्रतीक्षा करने लगीं।

सोमवारको साबो बाई गोरखपुर आयीं। वे गोरखपुरसे बाई, भाभीजी और नर्मदा बाईको साथ लेकर देवरिया पहुँच गयीं। आगामी मंगलवारको ही सत्संगका शुभारम्भ होनेवाला था। साबो बाई और पद्मा बाईने सत्संगके शुभारम्भकी सूचना अनेक घरोंमें भिजवायी। जिन-जिन माताओं-बहिनोंसे कम या अधिक परिचय या घनिष्ठता थी, उन सभीसे सत्संगमें सम्मिलित होनेके लिये अनुरोध किया।

मंगलवारके दिन दोपहर दो बजेसे सत्संग प्रारम्भ हुआ। दो बजेसे तीन बजेतक कीर्तन हुआ। कीर्तनके बाद षोडशगीतके दो पदोंका गायन हुआ। उसके बाद बाईने आराध्य-आराधनाके स्वरूपपर कुछ प्रकाश डालते हुए सभीसे अनुरोध किया कि भगवान्‌से नाता जोड़िये। बाईने उपस्थित अनेक बहिनोंसे पूछा—आपका भगवान्‌से क्या सम्बन्ध है?

इस प्रश्नका उत्तर कोई भी नहीं दे सकी। आराध्यसे सम्बन्ध जोड़नेकी चर्चा उन्हें सर्वथा नवीन लग रही थी। वे बहिनें यह जानती ही नहीं थी कि भगवत्सम्बन्ध क्या वस्तु है और भगवान्‌से सम्बन्ध किस प्रकार जोड़ा जाता

है। बाईने सविस्तार समझाते हुए बतलाना आरम्भ किया—आपके घरमें आपके पति, पुत्र, पुत्री, सेवक तथा अन्य सम्बन्धी है। उनके साथ कैसा व्यवहार किया जाय और कौन आपको सर्वाधिक प्रिय है, यह आप अच्छी तरह जानती हैं। उन सम्बन्धोंकी विस्मृति आपको स्वप्नमें भी नहीं होती। इस प्रकारके पारिवारिक सम्बन्ध और लौकिक व्यवहारसे आप सभी भली प्रकार परिचित हैं। आपके मनमें जो सम्बन्ध सर्वाधिक प्रिय लगता हो, वही सम्बन्ध आप भगवान्‌से जोड़ लीजिये।

इसी विषयपर लगभग डेढ़ घण्टेतक चर्चा हई। यह लम्बी चर्चा बड़ी सरस रही। बीच-बीचमें विनोदके पुट भी आते थे। उपस्थित बहिनोंसे घुल-मिलकर जो बातचीत हुई, उससे सभीका कोई-न-कोई भगवत्सम्बन्ध सुस्थिर हो गया और उनसे बाईने प्रत्येक मंगलवारको सत्संगमें आनेका वचन भी ले लिया। सत्संगके समारंभमें लगभग पचास-साठ बहिनें उपस्थित थीं। सभीने सत्संगमें प्रत्येक मंगलवारको आनेकी बात सोत्साह स्वीकार कर ली। सत्संगका समय ग्रीष्म ऋतुमें दो बजेसे पाँच बजेतक और जोड़ेके दिनोंमें डेढ़ बजेसे साढ़े चार बजे तकका निर्धारित हुआ। यह भी निर्धारित हुआ कि सत्संगका आरम्भ श्रीराधानाम संकीर्तनसे होगा। एक घण्टे संकीर्तन होनेके बाद षोडशगीतके दो पद फिर एक भक्त गाथा तथा अन्य पुस्तकोंका वाचन उपयोगी रहेगा। समय रहनेपर आपसमें भगवदीय चर्चा भी की जा सकती है। अन्तमें प्रार्थना, आरती, पुष्पाञ्जलि और प्रसाद वितरण अवश्य करना चाहिये।

बाईकी देवरिया यात्रा बड़ी सफल रही। पद्मा बाई, साबो बाई, इन्द्रा बाई, लक्ष्मी बाई आदिको बड़ी प्रसन्नता थी कि बाईकी प्रेरणासे देवरियामें सत्संगके आयोजनका ढंग बन गया। बाई देवरियासे गोरखपुर आयीं और फिर भागलपुर चली गयीं।

* * * *

भागलपुर रहकर भी बाईके मनमें गोरखपुर जानेकी ललक बनी रहती थी। जीवन-सर्वस्व श्रीभाईजीके सानिध्यको एक स्पृहणीय सौभाग्य समझती थी। बाईने श्रीभाईजीको एक नहीं दो पत्र लिखकर यह अनुरोध किया कि आप मुझे एक बार गोरखपुर बुला लीजिये। जब दूसरा पत्र मिला तो रुक्मिणी बाईको श्रीभाईजीने एक पत्र लिखा। पत्र लिखनेका उद्देश्य यह था कि अभी गीतावाटिकामें परिस्थितिकी अनुकूलताका अभाव है। तुम्हारा व्यक्तित्व जैसा

अनुपम है, उसके अनुरूप अभी परिस्थिति नहीं है।

श्रीभाईजीने जो पत्र लिखा उसका मुख्य अंश नीचे दिया जा रहा है—

तुम्हारे दो बड़े सुन्दर, मधुर पत्र मिले। तुम्हारे पवित्र भाव विशुद्ध रस पूर्ण होनेके कारण बड़े ही आनन्द दायक होते हैं। इधर बहुत अधिक व्यस्त रहनेके कारण पत्र नहीं लिख पाया। कागज-कलमका उपयोग भी नहीं कर सका, पत्रके लिये। मानसिक पत्र बहुत शीघ्र-शीघ्र, बहुतसे लिखे, अब भी लिखता रहता हूँ और उनका मानस उत्तर भी मिलता है। बीचमें मेरा तथा सावित्रीकी माँका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहा तथा बाबासे मिलने आनेवालोंकी बेहद भीड़ रही। तुमको जान बूझकर ही आनेके लिये नहीं लिखा। बहुत तरहके लोगोंकी भीड़-भाड़में तुम्हारा आना, तुम्हारी स्वरूप स्थितिके अनुकूल मुझे नहीं जँचा। तुम भीड़-भाड़की बाजारु साधिका नहीं हो। तुम्हारा अपना एक ऊँचा स्थान है और उसकी मर्यादाका संरक्षण होना चाहिये। इसीसे तुमको शरीरसे नहीं बुलाया।

फिर शरीरके मिलने-बिछुड़नेका महत्त्व ही क्या है? वास्तविक मिलन वही है जो इस शरीरकी सीमामें आबद्ध नहीं है। स्थान-समयके आधीन नहीं है। जो नित्य है, सर्वत्र है और असीम है। वह मिलन अति पावन, अत्यन्त मधुर तथा परमाह्लाद मय है। उसमें कभी वियोग बिछोहकी कल्पना ही नहीं है, न कभी उसकी मधुरतामें ही कहीं कोई कमी हो सकती है। कोई भी बाहरी व्यवधान उसमें तनिक भी बाधक नहीं हो सकता। उसमें न दूरी है, न संकोच है, न भय है, न शंका है, न सहम है, न बहम है, न जरा भी कहीं कुछ भी छिपाव-अलगाव है। वह सदा ही निरावरण सत्य है। उसी मिलनकी अनुभूति सदा होनी चाहिये।

भागलपुर आनेका विचार बहुत दिनोंसे है, प्रयास भी किया गया। पर पाञ्चभौतिक शरीर प्रारब्धाधीन है। पता नहीं, कब आना होगा, होगा या नहीं होगा। मनसे तो आना-जाना होता ही है। सदा ही।

तुम्हारी मधुर रस भावना निरन्तर पवित्रतम प्रेम समुद्रकी ओर बढ़ती ही रहे।

इस पत्रमें बाईके परम दिव्य भावमय स्वरूप स्थितिकी श्रीभाईजी जैसे

रसमार्गके चूड़ान्त मर्मज्ञ द्वारा स्पष्ट स्वीकृति है तो इसीके साथ संत-साधक-सांसारिकके समक्ष यह स्पष्ट घोषणा भी है कि बाईका व्यक्तित्व जागतिकतासे बहुत-बहुत ऊँचा है, जिसकी अन्तरकी रसधारा सदैव श्रीप्रिया-प्रियतमके रससिन्धुकी ओर अविरल कल-कल प्रवहित होती रहती है। परम पैनी दृष्टि रखनेवाले महाभावोदधि स्वरूप श्रीभाईजीने बाईके भावमय व्यक्तित्वका जैसा मूल्यांकन इस पत्रमें अपनी लेखनी द्वारा किया है, उसके बाद कुछ कहनेके लिये शेष रहता ही नहीं। जगतकी नजर न लगे, इसीलिये श्रीभाईजीका सदैव सतत प्रयास रहता था कि यह सलोना व्यक्तित्व स्त्रियोचित घूँघटके अन्दर ही छिपा रहे और इसीका सहज परिणाम यह था कि जीवनके अन्ततक बहुतोंको बाईके उस व्यक्तित्वका सही परिचय मिल ही नहीं पाया।

प्रसंग प्रवाहको देखते हुए श्रीभाईजी द्वारा लिखे गये उपर्युक्त पत्रको उद्धृत करना आवश्यक लगा, अतः किञ्चित विषयान्तर हो गया।

* * * *

सन् १९६८ में बाई गीतावाटिका श्रीराधाष्टमी महोत्सवके अवसर पर गयी हुई थीं। महोत्सवके अवसरपर देवरिया वाली बहिनोंसे भेंट हुई। उन बहिनोंके आग्रहपर बाईको पुनः चार साल बाद देवरियाकी यात्रा करनी पड़ी। देवरियामें बाई भक्त बहिनोंसे एकान्तमें मिलीं तो उनसे उन उत्सवोंकी चर्चा चला दीं, जिनको गत कुछ वर्षोंसे भागलपुरमें बहुत विशाल रूपमें मनाये जानेकी परम्परा रही है। बाईके मुखसे उन उत्सवोंकी विशद चर्चाने बहिनोंका मन मोह लिया और वे उत्कंठित हो गयी कि हम सब भी देवरियामें यह उत्सव मनाया करेंगी। बाईने उन उत्सवोंके नाम बतला दिये। मुख्य-मुख्य नाम इस प्रकार है—श्रीबसन्त पञ्चमी, अक्षय तृतीया, गुरु पूर्णिमा, हरियाली तीज, जन्माष्टमी, राधाष्टमी, शरद पूर्णिमा, बिहार पञ्चमी तथा प्रत्येक अष्टमीको पूर्वाह्नके समय पौने दस बजेसे बारह बजेतक श्रीराधा नाम संकीर्तन। बाईकी प्रेरणासे अब देवरिया वाली बहिनोंने भी इनको समय-समयपर मनाना आरम्भ कर दिया।

सत्संगके विभिन्न आयोजनोंके उत्साहमें बेगुसरायका एक दिन विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। सन् १९६५ (सं० २०२१ वि०) की शिवरात्रिके दिन बाई बेगुसरायमें ही थीं। शिवरात्रिके पावन दिवसपर अपराह्नकालके समय विमला बाईकी बगीचीके भवनमें माताएँ-बहिनें सत्संगके लिये इकट्ठी होने

लगीं। आरम्भमें श्रीराधा नामका पूर्ण उत्साहके साथ संकीर्तन हुआ। संकीर्तन एक घण्टे तक होता रहा। इसी समय बाई पधारीं। संकीर्तनके उपरान्त सत्संग चर्चाके मध्य बाईने प्रिया-प्रियतमकी पावन होली-लीलाका जीता-जागता वर्णन आरम्भ कर दिया। वर्णन दस पन्द्रह मिनट चला होगा कि होलीके पदोंके गायनसे सारा वातावरण गूँज उठा—

आज बिरज में होरी रे रसिया, होरी रे रसिया बरजोरी रे रसिया।
कौन के हाथ कनक पिचकारी, कौन के हाथ कमोरी रे रसिया।
कृष्ण के हाथ कनक पिचकारी, राधा के हाथ कमोरी रे रसिया॥
कौन गाम के कुँवर कन्हैया, कौन गाम राधा गोरी रे रसिया।
नन्द गाम के कुँवर कन्हैया, बरसाने की राधा गोरी रे रसिया॥
अपने अपने घर से निकलीं, कोई साँवरि कोई गोरी रे रसिया।
उड़त गुलाल लाल भये बादल, केशर संग में घोरी रे रसिया॥
बाजत ताल मृदंग झाँझ ढप, और नगारे की जोरी रे रसिया।
कै मन लाल गुलाल मँगाई, कै मन केसर घोरी रे रसिया॥
सौ मन लाल गुलाल मँगाई, दस मन केसर घोरी रे रसिया।
चन्द्र सखी भज बालकृष्ण छबि, जुग-जुग जियो यह जोरी रे रसिया॥

* * * *

होरी खेलन आयो श्याम आज याहि रंग में बोरौ री॥
कोरे-कोरे कलस मँगाओ रंग केसर घोरौ री।
रंग बिरंगो करो आज याहि कारे ते गोरौ री॥
पार परौसिन बोलि आज याहि आँगन में घेरौ री।
हरे बाँस की बाँसुरिया जाहि तोर मरोरौ री॥
पीताम्बर लेउ छीन याहि पहराय देउ चोरी री।
तारी दै दै याहि नचावौ अपनी पोरी री॥
चन्द्रसखी की यही विनती करै निहोरौ री।
हा हा खाय परै जब पैया तब याहि छोरौ री॥

एकके बाद एक इस प्रकार होलीके अनेक पद गाये गये। पदोंके रस-प्रवाहमें सारा मातृ-समुदाय निमग्न था। उस समय भवनके कमरेमें लगभग साठ-सत्तर बहिनें-माताएँ होंगी। सभी भाव-विभोर हो रही थीं। अग-जगकी

सुधिसे शून्य उन भाव-विभोरा बहिनोंके समक्ष रसमयी लीलाका वर्णन करते हुए बाईने कहा—बड़े-बड़े सोनेके पात्रोंमें रंग घोला हुआ है। गुलाल, इत्र, फुलेल उड़ रहा है। सोनेकी रतन जटित पिचकारी श्रीराधा और श्रीकृष्णके हाथमें है। वे एक दूसरेपर पिचकारीसे रंग डाल रहे हैं। बीच-बीचमें सखियोंकी पिचकारी भी चल रही है। श्रीराधारानीपर प्रियतम श्रीकृष्णकी पिचकारीका रंग गिरते ही रंगकी कुछ बूँदें उनकी आँखोंमें पड़ जाती है, अत: उनकी आँखें नहीं खुल पाती हैं। अवसरका लाभ उठाकर श्रीकृष्ण उनके गोरे-गोरे गालपर गुलाल मल देते हैं। श्रीराधारानी बिना देखे ही प्रियतम श्रीकृष्णपर पिचकारी चला देती हैं। इस बार श्रीकृष्ण बच जाते हैं। दोनों दिशाओंसे रंगकी मार और गुलालकी उछाल मची हुई है। आकाशमें गुलालके बादल छा गये हैं। बादलोंके बीचसे आती हुई पिचकारियोंकी रंग भरी झड़ीको देखकर ऐसा लगता है मानो अनेक रंगोंके बादलोंसे रंग-बिरंगे फुहारोंकी बरसात सब ओर हो रही है। समझमें नहीं आ रहा है कि रंग पिचकारीसे गिर रहा है या बादलोंसे। पिचकारीसे रंगकी धार निकल कर शरीरका स्पर्श तो करती है, पर आश्चर्य यह है कि स्पर्शकी अनुभूति किसीको नहीं होती। फूलोंकी पंखुड़ियोंका स्पर्श होनेसे शरीरमें जैसी मृदुल-मञ्जुल अनुभूति होती है, वैसी अनुभूतिकी प्रतीति भी रंगीले फुहारोंके पड़नेपर नहीं होती, पर उससे भी बड़ा आश्चर्य यह है कि उस प्रतीतिके अभावमें भी सभी रंगमें रंगी और भींगी हुई दिखलायी देती हैं और देते हैं। होलीके रंगसे बहुत अधिक सुगन्ध फैल रही है। सुगन्ध इतनी अधिक है, मानो इत्रकी सैकड़ों शीशी एक साथ उड़ेल दी गयी हो। रंगसे भीगे गोल-गोल गालोंपर जगह-जगह जो रंग बिरंगी गुलाल चिपक जाती है, उसकी लोनी-लोनी शोभा अद्भुत रूपसे निराली है।

बाई इस प्रकार वर्णन कर रही थीं, मानो वे कुछ देख रही हैं और देख-देख करके वर्णन कर रही हैं। हाँ, सभी बहिनोंको इतना अवश्य समझमें आ रहा था कि बाई बाह्य-ज्ञान-शून्य है। सत्संगमें उपस्थित बहिनोंने प्रत्यक्ष देखा कि कमरेकी दीवालोंपर जगह-जगह गुलालके धब्बे बने हुए हैं। यह कैसे हो गया? बाईने होली-लीलाका मात्र आँखों देखा वर्णन किया था। वहाँ कमरेके भीतर होली नहीं खेली गयी थी, बल्कि बाईने जैसी मधुर-लीला देखी थी, उसीका वर्णनात्मक चित्रांकन किया गया था, पर यह कैसा आश्चर्य है कि गुलालके रंग-बिरंगे चित्र कमरेकी चारों दीवालोंपर अंकित हो गये थे। धब्बोंका

रंग भी एक जैसा नहीं था। धब्बे भी अनेक है, रंग भी अनेक है, आकृतियाँ भी अनेक है, छबियाँ भी अनेक हैं और कमरेके भीतर ऐसी भीनी-भीनी सुगन्ध फैल गयी, जो पहले कभी जीवनमें अनुभूत नहीं हुई थी। सभीके मन उस होलीके रँगमें रंग गये। लीला-वर्णनका विराम हुआ। कुछ देर सभी मौन बैठी रहीं। बाईकी बाह्य-चेतना कुछ-कुछ लौटी। वे पूर्ण प्रकृतिस्थ नहीं थी, फिर भी उन्होंने उपस्थित बहिनोंसे कहा—आज महाशिवरात्रि है। आज रात्रिमें जागरण होना चाहिये। हमलोग आज सारी रात कीर्तन करें, वह भी बन्द कमरेमें। रात्रि जागरणका यह अखण्ड कीर्तन माँ (नर्मदा बाई) के पीहरमें श्रीलालजी मेंगोतियाके घरपर होगा। सभी माताओं-बहिनोंको समयसे वहींपर आना चाहिये। जो बहिनें छः बजेतक आ जायेंगी, उनके लिये द्वार खुला है। फिर कमरा बन्द हो जानेके बाद द्वार नहीं खुलेगा। इस नियमका पालन अति कठोरताके साथ होगा।

श्रीमेंगोतियाजीके घरपर पाँच बजेसे ही बहिनोंने आना आरम्भ कर दिया और छः बजेतक नौ-दस बहिनें पहुँच चुकी थीं। कहा तो यह गया था कि कमरेका द्वार छः बजे बन्द हो जायेगा, किन्तु उदार-हृदया बाईने नियमके पालनमें किञ्चित् शिथिलता कर दी। बाईने एक घण्टेकी छूट देकर द्वारको छः बजेके स्थानपर सात बजे बन्द करवाया। सात बजेतक पन्द्रह-सोलह माताएँ-बहिनें आ गयीं। इनको तो प्रवेश मिल गया। सात बजे द्वार बन्द हो जानेके बाद जो माताएँ-बहिनें आयीं, उनमेंसे कुछ तुरन्त लौट गयीं, कुछ थोड़ी देरतक कीर्तन सुनकर लौटीं और कुछ ऐसी थीं, जो सूर्योदय तक कमरेके बाहर द्वारसे सटकर बैठी रहीं। कमरेका द्वार सात बजे बन्द हुआ और वह सूर्योदय तक खुला ही नहीं।

रात्रि जागरणका शुभारम्भ श्रीराधा नाम संकीर्तनसे हुआ। कीर्तन तुमुल स्वरसे हो रहा था। कीर्तन करनेवाली बहिनोंके हाथमें झाँझ थी। घरकी साधारण स्त्रियाँ होनेसे इन्हें न कोई राग-रागिनी आती थी और न स्वर-तालका कोई ज्ञान था। केवल भाववशात् हाथमें झाँझ लेकर बाईके साथ-साथ उच्च स्वरसे कीर्तन कर रही थीं। कमरेमें उच्च स्वरसे सस्वर कीर्तन हो रहा था। उन राग-रागिनी-विहीना, किन्तु अनुरागिणी बहिनोंके कण्ठसे राग फूट पड़ा, राग फूट पड़ा भावके आवेशमें और कीर्तनकी उमंगसे। अनुरागके आधिक्यसे सभीका मन निर्मलताके शिखरपर था। उनके नितान्त निर्मल मनमें लौकिकताकी गन्ध

भी नहीं रह गयी थी। किसीके भी अन्तरमें किसी भी अन्यको सुनाने या दिखानेकी भावनाका सर्वथा अभाव था। सभी एक दूसरेसे स्वरमें स्वर मिलाकर श्रीराधा नामका संकीर्तन कर रही थीं। कीर्तनने अपना अनोखा रंग दिखलाया। बाई पूर्ण रूपसे बाह्य-ज्ञान-शून्य हो गयी। बाह्य-ज्ञान-शून्य हो गयी, अर्थात् सर्वथा आत्मकेन्द्रस्थ हो गयी। बाईको ज्ञान ही नहीं रहा कि मेरे आस-पास कौन-कौन है। उनको ज्ञान होता भी कैसे? वे तो पहुँच गयी थीं गोपीश्वरी स्वरूपा महादेवके समीप। वे महादेव भगवान् शिव भी कैलासेश्वरसे गोपीश्वरी बन गये थे। नवागता गोपीश्वरी सखीका परिचय जब रासेश्वरी श्रीराधाने अपने प्रियतमसे पूछा तो उन्होंने इतना ही संक्षिप्त उत्तर दिया था—यह कैलास कुञ्ज-विहारिणी त्रिलोचना सखी है।

उन त्रिलोचना सखीका रासेश्वरी श्रीराधाने प्रफुल्ल नेत्रोंसे स्वागत किया और वे ही प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-कृष्णके संग महारासमें यमुना तटपर वंशीवटके निकट नृत्य कर रही हैं। इन्हीं गोपीश्वरी त्रिलोचना सखीके समीप बाई भी पहुँच गयीं। महाशिवरात्रिकी यह रात बाईके लिये महारास वाली रात बन गयी और बाई पहुँच गयी नित्यवन्द्या त्रिलोचना सखीके साथ यमुना तटपर प्रिया-प्रियतमके नृत्यमें। वे ही नृत्यमयी मुद्राएँ, वही नृत्यमयी तन्मयता इस समय कमरेकी चार दीवारोंके भीतर नृत्य करती हुई बाईके अगं-अंगमें व्यक्त हो उठी। बाई कीर्तन करते हुए अबाध गतिसे तीव्र नृत्य कर रही थीं। बाईका यह अद्भुत नृत्य कई घण्टेतक अविराम और अनवरत चलता रहा। इस अविराम नृत्यको देखकर एक बार आश्चर्यको भी आश्चर्य हो रहा था। पञ्चभूतोंसे निर्मित कोई भी श्रेष्ठ-कलाविद् नर्तक या नर्तकी भी तीव्र गतिसे अविराम नृत्य इतने सुदीर्घ कालतक कर ही नहीं सकती। यह अविराम नृत्य सर्वथा-सर्वथा मानवीय धरातलका था ही नहीं। संगकी बहिनें कठिनतासे साथ दे पा रही थीं। यही कहना चाहिये कि वृन्दावनके यमुना तटका वह रास-विहार, जो गोपीश्वर महादेव की उपस्थितिमें हुआ था, आज इस महाशिवरात्रिकी पावन रात्रिमें कमरेके भीतर अवतरित हो उठा। बाईको तो सुध-बुध थी ही नहीं, अन्यको भी अपनी सुध-बुध विस्मृत हो रही थी।

कमरेको सात बजे बन्द किया गया था और बन्द करते ही जय-जयकारकी ध्वनिके साथ राधा नाम संकीर्तन आरम्भ हो गया था। यह पता ही नहीं चला कि दस कब बजा। रात्रिके दस बजे एक बहिनको यह दिखलायी

दिया कि जिस सिंहासनपर श्रीप्रिय-प्रियतमको विराजित किया गया है, उस सिंहासनके नीचेसे जल प्रवाहित हो रहा है। उस बहिनको वस्तु स्थितिका पता लगानेके लिये नृत्यमय कीर्तनसे तनिक भी हटना सर्वथा अप्रिय लग रहा था, अतः उसने मन-ही-मन अपनेको समझा लिया कि सिंहासनपर जो जलकी लुटिया रखी थी, वही लुढ़क गयी होगी। वह पूर्ववत् कीर्तन करती रही, नृत्य करती रही और सिंहासनसे जल भी धीरे-धीरे प्रवाहित होता रहा। इसके थोड़ी देर बाद ही एक और दृश्य दिखलायी दिया कि कमरेकी दीवालें आर्द्र हो उठी है, मानो उनपर जलसे छिड़काव किया गया हो, पर ऐसा तो यहाँ हुआ नहीं। किसीने भी जल छिड़का नहीं है। तीन घण्टे पहले भी ऐसा नहीं हुआ था। पुनः मनको चुपचाप समझा लिया गया कि बाहर जोरसे वर्षा हो रही है और वर्षाके कारण दीवालें तर हो गयी हैं। वह बहिन पुनः कीर्तनमय नृत्यमें तन्मय हो गयी। तभी एक और दृश्य दिखलायी दिया, कमरेकी ड्रेसिंग टेबुलके शीशे भी नमीके कारण भीगे-भीगे लगने लगे। मकानके बाहर होनेवाली वर्षाका असर ड्रेसिंग टेबुलपर हो, यह सर्वथा असम्भव है, पर आज तो वह सर्वथा असम्भव भी सम्भव हो रहा था। इन सारे परिवर्तनोंको देखकर मनमें तर्क-वितर्क अवश्य हो रहा था, पर यह भी साहस नहीं हो रहा था कि बाईके उस भावपूर्ण नृत्यमय कीर्तनके प्रवाहमें कोई व्यवधान उपस्थित किया जाय। मनमें कितना ही तर्क-वितर्क हो, पर वह आर्द्रता बढ़ती ही चली जा रही थी और उसने क्रमशः प्रवाहका रूप धारण कर लिया। धीरे-धीरे दीवालोंसे, शीशोंसे, सिंहासनसे जल प्रवाहित हो ही रहा था। कहाँ तक कहा जाय, पृथ्वीसे भी जल निकल-निकल करके बाहर आने लगा। देखते-देखते कमरेकी सारी भूमि जलमें तर हो गयी। महाशिवरात्रिकी रातका अन्तिम प्रहर था। ब्राह्म बेला होनेमें देर नहीं थी। भूमिसे निकलनेवाले तथा सिंहासन, दीवालों आदिसे झरनेवाले जलने ब्राह्म-मुहूर्त होते-होते कमरेको लघु जल-कुण्डके रूपमें परिणत कर दिया। कमरा जलसे भर गया किन्तु जलकी एक बूँद भी बहकर या छलक कर कमरेके बाहर गयी ही नहीं। भूमिके ऊपर आठ-दस अंगुल जल था। उस जलमें ही छप-छप करते हुए सभी नृत्य कर रही थीं। जनी-जनीके दोनों चरण और दोनों अधर थिरक रहे थे, चरण थिरक रहे थे नीचे जलमें और अधर थिरक रहे थे ऊपर कीर्तनमें। नृत्य हो रहा था। सबके नृत्यरत पद जलमें थे और सबके अधरोंपर श्रीराधे नाम था। सभी बहिनें कीर्तन कर

रही थीं, साथ में आश्चर्य भी कर रही थी, यह क्या हो रहा है, इतना जल कहाँसे आ गया। सभीके मनमें प्रश्न भी था, पर साथ ही सावधानी भी थी कि बाईके भावमय कीर्तनमें रञ्चमात्र व्यवधान न आने पाये। उसी समय सभीकी जिज्ञासाको परिशान्ति मिली बाईकी जयकार ध्वनिसे। कीर्तन करते-करते बाई उच्च स्वरसे बोल पड़ीं—

यमुना-रानी की जय।
धारा-रानी की जय।
कलिन्द-नन्दिनी की जय।
कृष्ण-प्रेयसी की जय।
भाव-प्रदायिनी की जय।
कलिमल-हारिणी की जय।
प्रीति-प्रदायिनी की जय।

सभीके मनके तर्क-वितर्कको समाप्त कर दिया कि यमुना-रानीकी जयकारने। जिज्ञासाका समाधान मिलते ही सभी बहिनोंको परम संतोष मिला। मनही मन चलनेवाले प्रश्नका उत्तर मिल गया कि आज श्रीयमुना महारानीका प्राकट्य ही श्रीराधा नाम-संकीर्तनमें हो गया है। यह प्राकट्य ही प्रमाणित कर रहा है कि बाई तनसे कमरेमें रहकर भी यमुना तटके रास-विहारमें आनन्द ले रही थीं और आनन्दका किञ्चिदंश सहभागिनी बहिनोंको प्रदान करनेके लिये, इसीके साथ-साथ एक अन्तरंग तथ्यकी साक्षी देनेके लिये श्रीयमुना-महारानीका यहाँ अवतरण हो गया है। उस अन्तरंग रहस्यकी गुत्थी आज सहज ही खुल गयी। श्रीराधा-नाम-परायणा, कृष्णानुरागिणी बाईकी घनीभूत भाव-निमग्नता आज अनोखी थी। उस अनिर्वचनीय सघनतापर रीझ उठे श्रीप्रिया-प्रियतम। बाईके भावमय नृत्यमें व्यक्त परमोज्जवल दिव्यताकी साक्षी देनेके लिये उन रिझवार युगलकी प्रेरणासे ही कृष्ण-प्रेयसी श्रीयमुना-पटरानी कमरेकी भूमि और चार दीवारोंके भीतर आविर्भूत हो गयीं।

अब तो कमरेको आप्लावित करती हुई यमुनाजीके जलमें स्नान होने लगा। कुछकी चोटी बाईने खोली और कुछने अपने आप खोल ली। बाई संगकी बहिनोंको लिटा-लिटाकर झुका-झुकाकर उनके केशोंको भिगोने लगीं। यमुना जलमें स्नान और आचमनका क्रम चल पड़ा। यह सब कुछ होते हुए भी कीर्तन अविराम चलता रहा। अब तो यमुनाजीमें नाच-नाच करके और

लोट-लोट करके कीर्तन हो रहा था, तभी एक बहिनको अपनी अनेक सहेलियोंकी स्मृति हो आयी। उसने ठाकुरजीके सिंहासनपर रखी हुई एक कटोरी उठा ली और कटोरीमें जल भरकर रख लिया कि जो यहाँ नहीं आयी है, उनको यमुना-जलका प्रसाद दे दिया जायेगा। कीर्तन प्रात:काल पाँच बजेतक चलता रहा। शामके सात बजेसे प्रात:काल पाँच बजेतक अर्थात् इन दस घण्टोंकी लम्बी अवधिमें न किसीको प्यास सतायी, न नींद आयी, न किसी शारीरिक आवेगने बाधा डाली और न थकान लगी। सभी इसी परमानन्दमें निमग्न थीं कि आज बाईकी कृपासे चिन्मयी यमुनाजीमें अवगाहन करके कृतार्थ होनेका अवसर मिला।

प्रात:काल पाँच बजे कमरेका द्वार खुला। खुलते ही एक साथ अनेक बातें घटित हुईं। रात्रिभर जो बहिनें कमरेके बाहर द्वारसे सटकर बैठी हुई थीं, उनकी चिर प्रतीक्षाका अन्त आया और द्वार खुलते ही आनन्दातिरेकमें उन्होंने 'जय-जय श्रीराधे' का सस्वर घोष किया। उनके अधर कर रहे थे जय घोष, किन्तु दोनों नेत्र आश्चर्य कर रहे थे यह देखकर कि भीतरवाली सभी माताओं-बहिनोंके वस्त्र पूर्णत: भीगे हुए हैं। द्वारके खुलते ही उनका प्रश्न था कि वस्त्र क्यों भीगे हुए हैं? जिनसे यह प्रश्न किया गया था, वे उत्तर स्वरूप बतलाना चाहती थीं कि आज रात्रिमें यमुनाजीका कमरेमें प्राकट्य हो गया था और दिखलाना चाहती थीं कि यह कमरा जलसे भरा हुआ है। उन्होंने जल दिखलानेके लिये भूमिकी ओर दृष्टि डालते हुए अँगुलीसे इशारा किया, किन्तु वहाँ जल एक बूँद भी नहीं था, जलके तुरंत अदृश्य हो जानेसे भीतर रहनेवाली बहिनोंको बड़ा आश्चर्य हो रहा था। जिस बहिनने कटोरीमें यमुना जल भरकर सिंहासन पर रखा था, वह सिंहासनपर की कटोरी लेने गयी कि प्रसादी जल वितरित कर दूँ, किन्तु कटोरीका जल भी अदृश्य हो चुका था। उनका आश्चर्य प्रतिपल बढ़ता जा रहा था। जलका अदृश्य हो जाना ही सिद्ध कर रहा था कि वह साधारण जल नहीं, वस्तुत: श्रीयमुना जल ही था। अब तो बतलानेके लिये श्रीयमुनाजीके प्राकट्यकी मात्र स्मृति रह गयी थी। भीतरसे बाहर आनेवाली बहिनें अपने-अपने ढंगसे भीतरकी लीलाका वर्णन कर रही थी। रातभर बाहर रहनेवाली बहिनोंने भी प्रश्नोंकी झड़ी लगा दी। एकने पूछा—क्या आपलोगोंने नृत्यके समय पैरोंमें घुँघरू बाँध रखा था? कीर्तनके समय असंख्य घुँघरुओंके बजनेकी बड़ी मधुर ध्वनि आ रही थी।

एक अन्यने पूछा—तुमलोग थीं तो कुल चौदह-पन्द्रह बहिनें, पर ऐसा लग रहा था मानो कमरेमें हजारों बहिनें आनन्द विभोर होकर कीर्तन कर रही हैं।

एक और बहिनने पूछा—तुमलोगोंमें-से कौन-सी बहिन वंशी बजा रही थी? जिसने भी वंशी बजायी, वह बड़ी ही मधुर बजा रही थी। वंशी स्वर बड़ा ही सुरीला था।

इस प्रकारकी छोटी-मोटी अनेक जिज्ञासाएँ रह-रह करके पूछी जा रही थीं, परन्तु उन बहिनोंके पास कोई उत्तर नहीं था। उनकी जिज्ञासा सुनकर भीतरवाली बहिनें भी आश्चर्य कर रही थीं कि ये सब कैसी-कैसी अन हुई बातें पूछ रही हैं? वास्तविकता यही थी कि कुल चौदह-पन्द्रह बहिनें हाथमें झाँझ लेकर नृत्य करते हुए श्रीराधा-नामका सस्वर कीर्तन कर रही थीं। बाहरवाली बहिनोंको जो कुछ अनुभवमें आया था, उसीके आधारपर वे प्रश्न-पर-प्रश्न करती चली जा रही थीं और इन प्रश्नोंकी झड़ीने इस तथ्यकी और अधिक परिपुष्टि कर दी कि रात भर बाई महारास-विहारके जिस आनन्दमें पूर्णतः डूबी हुई थीं, उसी आनन्दकी लहरियाँ इन बाहरवाली बहिनोंको भी पल-प्रतिपल छू रही थी। घुँघरू स्वर, वंशीनाद, कीर्तन ध्वनि, कर ताली, नृत्य-पदचाप आदिके समवेत मधुर स्वरके रसास्वादनका सौभाग्य बाहरवाली बहिनोंको मिला, जिसकी चर्चा सुनकर भीतरवाली बहिनें उनके सौभाग्यकी वन्दना कर रही थीं।

भीतरवाली बहिनोंके मुखसे यमुनाजीके प्राकट्यका वर्णन सुनकर सभीके हृदयमें श्रद्धा उमड़ आयी। सभी कमरेके भीतर देखनेके लिये चली गयीं। जमीनकी और दीवालोंकी आर्द्रता बहिनोंके कथनकी पुष्टि कर रही थी। श्रीयमुनाजीका जल तो द्वारके खुलते ही अदृश्य हो गया था, किन्तु दीवालोंकी आर्द्रता लगभग तीन-चार दिनोंतक बनी रही। नगरमें यह बात तुरन्त फैल गयी। कौतुहलवशात् नर-नारी उमड़ पड़े। वे आकर कमरेको प्रणाम करते और दीवालकी आर्द्रताको छूकर स्वयंको कृतार्थ मानते।

सभी रह-रह कर उन बहिनोंकी हृदयसे सराहना कर रहे थे जन्होंने महा-शिवरात्रिके दिन सारी रात कमरेमें रहकर नृत्य किया था और श्रीयमुना जलके दर्शन किये थे।

* * * * *

लौकिकतामें अलौकिकता

बेगुसरायमें शिवरात्रिका उत्सव अद्भुत रूपसे मनाया गया। उसके बाद बाई भागलपुर चली गयीं। कुछ ही दिनों बाद फाल्गुनी पूर्णिमा आयी, जो श्रीचैतन्य-महाप्रभुका जन्म दिवस है। पूर्णिमाके दिन गौरांग-महाप्रभुका जन्मोत्सव बड़े उत्साहके साथ मनाया गया, परन्तु उनको भोग एक विशेष पद्धतिसे लगाया गया। यह बाई द्वारा अपनायी गयी एक विशेष पद्धति थी। नैवेद्यमें मिष्ठान्न तो होता ही था, परन्तु इसके साथ कढ़ी, चावल, मूँग, सब्जी और पाँच तरहकी पकौड़ी अवश्य रहती थी। नैवेद्यको केलेके पत्तोंपर परोसकर भोग लगाया जाता था। केलेके पत्ते लगा दिये जाते थे। उनपर भातका ढेर सजा दिया जाता था। अन्य विविध सामग्रियाँ भी परोस दी जाती थीं। फिर जोर-जोरसे 'हरिबोल-हरिबोल' का कीर्तन होता था। जब-जब यह उत्सव आयोजित होता था, उस दिन बाईका आह्लाद दर्शनीय होता था।

भाभीजीकी पुत्रवधू कान्ता बाईका बाईके प्रति बहुत अधिक लगाव था। लगाव इतना अधिक था कि उसे मुँह लगी कहा जा सकता है। मुँह लगी होनेके कारण उसको बाईसे ठिठोली करनेमें तनिक भी संकोच नहीं होता था। यही कान्ता बाई एक बार आसन्न-प्रसवा होनेसे बहुत कष्ट पा रही थीं। उनकी कष्टमयी स्थिति सभीके चिन्ताका कारण बन गयी थी। भाभीजीने यह समाचार बाईके पास श्रीमहिला संघ भिजवाया। समाचार पाकर बाई मुस्कुरायी और हवेलीकी ओर चल दीं। जैसे ही बाईने हवेलीमें पाँव रखा, उसी समय प्रसूति-गृहसे शिशुके रोनेकी आवाज आयी। घरके सभी लोगोंने इसे बाईकी उपस्थितिका एक चमत्कार समझा। प्रथम पुत्रका जन्म आनन्द-मंगलका हेतु होता ही है। मांगलिक गीतोंसे घरका आँगन गूँज उठा।

पुत्र जन्मके लगभग एक मास बाद जन्मोत्सव मनाया गया और बधाई बाँटी गयी। बाईके साथ आनेवाली बहिनोंने भाभीजीसे बधाई माँगी। भाभीजी उल्लास भरे मनसे सोचने लगी अपने प्रथम पौत्रकी बधाईके अवसरपर इन्हें क्या दूँ। भाभीजी कुछ निर्णय लें, इसके पहले ही बाईने उठकर भाभीजीकी आलमारी खोल दी, जिसमें उनकी नयी-नयी कीमती साड़ियाँ रखी हुई थीं। बाई बधाई माँगनेवाली हर बहिनको आलमारीसे निकाल-निकालकर साड़ी देती

जा रही थीं। बाईकी दृष्टि साड़ीके मूल्यपर नहीं, बल्कि बधाई पानेवालीकी प्रसन्तापर थी। प्रसन्नवदनाका शुभाशीर्वाद ही तो नवजात शिशुकी छाया बनेगा। बधाई पानेवाली बहिनोंमें श्यामा नामकी लड़की भी थी। श्यामाने कहा—मैं साड़ी नहीं लूँगी। मैं तो भाभीजीके गलेकी कण्ठी लूँगी।

जैसे ही श्यामाने कण्ठीकी इच्छा व्यक्त की, भाभीजीने बिना कुछ विचार किये हुए अपने गलेकी बहूमूल्य स्वर्ण कण्ठी श्यामाके गलेमें पहना दी। भाभीजीके इस उन्मुक्त उदार भावसे बाईको सीमातीत प्रसन्नता हुई। सच बात तो यह है कि बाईकी प्रसन्ताके लिये भाभीजी सर्वस्वकी आहुति देनेके लिये सदैव तत्पर रहा करती थीं। बाईकी प्रसन्नता ही भाभीजीके जीवनकी महान काम्य-वस्तु थी।

इन दिनों गीताभवन स्वर्गाश्रम और फिर वृन्दावन जानेका कार्यक्रम स्थगित ही रहता था। बाई सर्वप्रथम १९५९ में गीताभवन गयी थीं और उसके बादसे लगातार तीन-चार सालतक गीताभवन और फिर वृन्दावन जाती रहीं। बादमें बाईके कलेवरमें जो विविध आवेश समय-समयपर व्यक्त होते रहते थे, उनके कारण यात्राके कार्यक्रमोंमें शिथिलता आने लगी। कितनी ही शिथिलता क्यों न आवे, किन्तु श्रीभाईजी और श्रीबाबाके प्रति जो समर्पण और आकर्षण था, उसके कारण गोरखपुरकी यात्राका कार्यक्रम बन ही जाता था।

प्रसंग सन् १९६६ या ६७ का है। बाई, भाभीजी, नर्मदा बाई एवं अन्य बहिनें श्रीराधाष्टमी महोत्सवमें भाग लेनेके लिये गोरखपुर गयी हुई थीं। इन दिनों श्रीबाबा षोडशगीतके पाठ और अर्चनाकी प्रायः चर्चा करते रहते थे। श्रीबाबाके प्रयाससे षोडशगीतका चतुर्दिक् प्रचार हो रहा था। वृन्दावनमें और जतीपुरामें भवन खरीदकर षोडशगीत मंदिरकी स्थापना हुई। श्रीजगन्नाथपुरीमें भगवान जगदीशके मन्दिरकी दीवालोंपर षोडशगीत लिखे गये। षोडशगीतका अनेक बार लीलापरक प्रस्तुतीकरण भी हुआ। पूज्य बाबाके प्रयाससे षोडशगीत ताम्रपत्रपर खुदवाये गये और गीतावाटिकामें उनकी विधिवत् प्रतिष्ठा हुई। बाबाकी भावनाके अनुसार षोडशगीतके पाठका आदर्श रूप यह था कि पाठ प्रति दिन रात्रिमें दो बजेसे साढ़ चार बजेतक किया जाय। इस समयावधिको श्रीबाबा ऋषि-बेला कहा करते थे।

षोडशगीतका यह विशद प्रचार बाईको बहुत अच्छा लगा। बाई तो अपने यहाँ पाठ पहलेसे ही करवा रही थीं। अब बाई यह चाहने लगी कि षोडशगीतके ताम्रपत्र श्रीमहिला संघके मंदिरमें भी प्रतिष्ठित किये जाँय। बाईने श्रीभाईजीसे

कहा—भाईजी! षोडशगीत हमारे श्रीमहिला संघके लिये भी दीजिये।

श्रीभाईजीने प्यार पूर्वक कहा—षोडशगीतका वितरण तो बाबा ही करते हैं। उन्हींसे प्रार्थना करनी चाहिये।

बाई श्रीबाबाके पास पहुँच गयीं और षोडशगीतके ताम्रपत्र देनेके लिये आग्रह करने लगी। श्रीबाबाने पूछा—रात्रिमें दो बजेसे साढ़े चार बजेतक ताम्रपत्रोंके समक्ष बैठकर षोडगीतका पाठ कौन करेगी?

बाईने कहा—बाबा! हमारे श्रीमहिला संघकी स्थायी सदस्या सुमित्रा बाई और कान्ता बाई मिलकर करेंगी और अन्य बहिनें भी पूर्ण सहयोग देंगी।

श्रीबाबाने बाईको षोडशगीतके पाँच ताम्रपत्र श्रीभाईजीके कर कमलोंद्वारा दिलवा दिये। बाईका हृदय आह्लादसे भर गया। उनकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। सारा शरीर पुलकनसे सिहर उठा। भागलपुर आकर श्रीमहिला संघके कमरेमें उन ताम्रपत्रोंको विराजित किया गया। वह कमरा षोडशगीत मन्दिरके नामसे विख्यात हो गया और ताम्रपत्रोंके प्रतिष्ठित होते ही रातमें दो बजेसे साढ़े चार बजेतक षोडशगीतका पाठ होने लगा।

सुमित्रा बाईने पाठका व्रत स्वीकार किया था। वे डेढ़ बजेके लगभग उठ जातीं और स्नान करके दो बजेसे पाठके आसनपर बैठ जाती। यदि किसी दिन उनकी नींद समयपर नहीं खुलती तो ऐसा कई बार हुआ है कि उन्हें श्रीबाबाकी खड़ाऊँ सुनायी देने लगतीं, मानो श्रीबाबा जगानेके लिये आ रहे हैं। बस, वे झटपट उठ जातीं और कई बार साथकी बहिनोंसे पूछतीं—श्रीबाबा यहाँ श्रीमहिला संघमें आये हैं क्या? मुझे उनको खड़ाऊँकी आवाज सुनायी दे रही है।

सुमित्रा बाई आलस्यके वशीभूत होकर समयसे नहीं जग पातीं, अतः सुमित्रा बाईको जगानेके लिये श्रीबाबाको आना पड़ता है, यह देखकर बाईको बहुत कष्ट होता। अब बाई सावधान रहने लगीं कि सुमित्रा बाई बिस्तरसे उठ गयीं है अथवा नहीं? बाईने एक प्रकारसे नियम ही बना लिया कि सुमित्रा बाईको डेढ़ बजे उठाकर ही वे सानेके लिये जातीं। षोडशगीतके ताम्रपत्रोंकी प्रतिष्ठा और उसके पाठने श्रीमहिला संघके वातावरणकी दिव्यताको बढ़ाया ही।

षोडशगीतसे सम्बन्धित एक प्रसंगका उल्लेख करना आवश्यक लग रहा है। बाई गोरखपुर गयी हुई थीं। उनके साथ नर्मदा बाई और सुमित्रा बाई थीं। उन दिनों बाई गोरखपुर लम्बी अवधितक रहीं। एक दिन नर्मदा बाई और सुमित्रा बाईको साथ लेकर बाई श्रीगोरखनाथजीका दर्शन करनेके लिये चली

गयीं। गीतावाटिकासे श्रीगोरखनाथ मंदिर काफी दूरीपर है। जाना, दर्शन करना और वापस आना इसमें दो-तीन घण्टा लग जाना स्वाभाविक है। जब बाई गोरखनाथ मंदिर गयी हुई थीं, उसी समय श्रीबाबाने भगतजीसे कहा—जाओ, रुक्मिणीको बुला लाओ।

भगतजीने बाईको बहुत खोजा, परन्तु बाई मिली नहीं। इतना पता अवश्य चल गया कि वे दर्शन करनेके लिये गोरखनाथ मन्दिर गयी हुई हैं। बाबाने भगतजीको दो बार और भेजा कि यदि रुक्मिणी आ गयी हो तो बुला लाइये। तीन बार खोजनेके बाद भी भगतजीको बाई नहीं मिलीं तो भगतजी भी कुछ झुँझला गये। दर्शन करके ज्यों ही बाई गीतावाटिका वापस आयीं, उनको पता चला कि उनको बड़ी खोज हो रही है। बाई सीधे श्रीभाईजीके पास गयीं।

बाईको देखते ही श्रीभाईजीने कहा—तुमलोगोंने वहाँ बड़ी देर लगा दी। बाबा तुम लोगोंको खोज रहे थे। तीन बार भगतजीको भेजा, परन्तु तुम लोग मिली नहीं। तुम लोग तो गोरखनाथजीके दर्शनार्थ गयी थी और वे ही श्रीगोरखनाथजी महाराज तुम लोगोंसे यहाँ मिलना चाह रहे थे। यदि तुम लोग यहाँ रहती तो यहीं उनका दर्शन हो जाता। एक बात और है, बाबा तुम लोगोंको षोडशगीतकी पुस्तक और प्रसाद देना चाहते थे। तुम लोग जब नहीं मिली, तब उन्होंने यह पुस्तक और प्रसाद मुझको दे दिया कि जब आवे तो तुमलोगोंको दे दिया जाय। यह षोडशगीतकी पुस्तक और प्रसाद तुमलोगोंको बाबाकी ओरसे मैं दे रहा हूँ।

बाईने अपना आँचल फैलाकर वह पुस्तिका और वह प्रसाद ले लिया। उन पुस्तकोंपर श्रीभाईजीके हाथसे तीनोंका अलग-अलग नाम लिखा हुआ था। श्रीभाईजीकी लेखनीसे लिखित नामको देख करके और उस पुस्तिकाको प्राप्त करके तीनोंको बड़ी प्रसन्नता हो रही थी।

इस घटनाके बाद बाई फिर कभी गोरखनाथ मन्दिर गयी ही नहीं। उनकी यह आस्था हो गयी कि गीतावाटिकामें ही जब सभीका आगमन होता है और दर्शन मिलता है, तब फिर अन्यत्र जानेकी आवश्यकता ही क्या है? यह सोचकर अब वे गीतावाटिकाकी सीमासे बाहर जाती ही नहीं थी।

इसके कुछ दिनों बाद बाई भागलपुर आ गयीं। एक दिन रात्रिमें बाईको स्वप्न आया—श्रीभाईजी एक कमरेमें बैठे हैं, जिसमें सोलह दरवाजे हैं। श्रीभाईजीके हाथमें बड़ा-सा एक माइक है। उस माइकके सामने बैठे हुए वे

श्लोक पढ़ रहे हैं—

वर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं।
विभ्रद्वासः कनककपिशं बैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः॥

प्रातःकाल बाईने सबको बैठाकर पूछा—यह श्लोक कहाँका है?

सब निरूत्तर थीं। वहाँ उपस्थित किसी भी बहिनने कभी भी संस्कृतमें श्रीमद्भागवतका पाठ नहीं किया था। सारी बहिनें चुपचाप बैठी थीं। सबको मौन देखकर बाई कुछ देरके लिये ध्यानस्थ हो गयीं। फिर थोड़ी देर बाद अपने प्रश्नका उत्तर बाईने स्वयं ही दिया—यह श्रीमद्भागवतके दशम-स्कन्धके इक्कीसवें अध्यायका पाँचवा श्लोक है।

यह तो निश्चित हो गया कि यह श्लोक श्रीमद्भागवतका है, पर अभी प्रश्न बना हुआ था कि स्थानके रूपमें वह कौन-सा कमरा है, जिसको स्वप्नमें बाईने देखा था। बहुत विचार करनेके बाद भी स्थानका पता नहीं लग पाया कि वह कमरा कौन-सा है। सोचते-सोचते ध्यानमें आया कि हॉलके दरवाजे और खिड़कीको मिलानेपर कुल सोलह ही होते हैं। अब एक प्रश्न और ऐसा स्वप्न क्यों आया। यह स्वप्न किस लक्ष्यकी ओर इशारा कर रहा है। इस स्वप्नका तात्पर्य भी किसीकी समझमें नहीं आ रहा था। तब बाईके मनमें एक समाधान तत्काल स्फुरित हुआ—लगता है, श्रीभाईजीने श्रीमद्भागवतका श्लोक सुनाकर श्रीमद्भागवतका पाठ करनेका संकेत दिया है।

उसी दिन गौतमी मैयाको बुलाकर बाईने श्रीमद्भागवतका नियमित पाठ करनेके लिये कहा। श्रीमद्भागवतका पाठ एक महीनेमें पूरा हो जाता था। ग्रन्थमें छपे हुए मासिक पारायण विधिसे विश्राम दिया जाता था।

उसी दिन बाईने एक बहिनको वेणुगीत कण्ठस्थ करनेका आदेश भी दिया, जिससे वे नियमपूर्वक तीन बार वेणुगीत सुना करती थीं।

अब तो श्रीमद्भागवतके सप्ताह पाठ भी होने लगे, जब-तब हॉलमें सप्ताह पाठका आयोजन बन जाता था। एक बहिन हिन्दी भाषामें श्रीमद्भागवत पढ़ती और सब बहिनें बैठकर सुनती थीं। श्रीराधा-सुधा-निधिके पाठ भी प्रारम्भ हो गये। श्रीराधा-सुधा-निधिके इक्कीस श्लोक सब बहिनें कण्ठस्थ करने लगीं। कोई इक्यावन श्लोक भी याद करती। विशेष बात यह थी कि जिन बहिनोंने

कभी संस्कृत पढ़ी ही नहीं थी, संस्कृतकी तो बात ही क्या वे शुद्ध हिन्दी लिखना-पढ़ना भी नहीं जानती थीं, वे भी राधा-सुधा-निधि कण्ठस्थ कर लेतीं। जिस बहिनने इक्यावन श्लोक याद किये थे, वे तो नियमपूर्वक रोज उसका पाठ करते हुए रोज श्रीबरसानेवालीको सुनाती।

लगभग बीस वर्षोंतक हॉलमें उसी प्रकार नियमित मासिक परायणके रूपमें श्रीमद्भागवतका पाठ होता रहा। उस पाठका क्रम किसी-न-किसी रूपमें आजतक चल रहा है।

एक बारकी बात है, श्रीबरसानेवालीके मन्दिरके पीछे हरसिंगारके फूलका एक पेड़ था। उस पेड़की जड़में पाँच ईंटोंसे एक घेरा बना हुआ था और उसके पास ही बालूका एक ढेर था। एक दिन अचानक कीर्तन करते-करते बाई हॉलके पीछे पहुँच गयीं और बालूके टीलेपर चढ़कर कीर्तन करने लगीं। कीर्तनके बीचमें उन्होंने कहा—श्रीगिरिराज महाराज प्रकट हो गये हैं।

बाईने कच्चा दूध, फूल, फल, जल लानेके लिये कहा। पूजन सामग्री आ गयी। श्रीकृष्णभावाविष्ट बाईके आदेशानुसार सारे कार्य हो रहे थे। सविधि पूजनके उपरान्त श्रीगिरिराज महाराजकी जय-जयकार होने लगी। बाईने बतलाया—श्रीगिरिराज महाराज कृपा करके प्रकट हुए हैं। आजसे इनका नियमित पूजन होगा।

सभी बहिनोंका बाईपर सहज विश्वास था। सभीने सभक्ति श्रीगिरिराज महाराजको प्रणाम किया। श्रीगिरिराज महाराजके प्राकट्यकी तरह ही श्रीश्रीमाँ कात्यायनीजीके प्राकट्यका भी एक संक्षिप्त वृत्त है। एक दिन कीर्तन करते-करते बाई परिक्रमा स्थलीमें चली गयीं। परिक्रमा मार्गके पार्श्वमें एक हौद था, जिसमें पूजासे अपसारित फूल-पत्तियाँ डाल दी जाती थीं। निर्माल्य फूल-पत्तियोंसे भरे उस हौदपर बाई चढ़ गयीं। वे चढ़कर नृत्य करने लगीं। उनके हाथमें सिन्दूर कहाँसे आया, कोई समझ नहीं सका। वह सिन्दूर उन्होंने दीवालपर लगा दिया। यह सबने देखा कि दीवालपर सिन्दूर लगा है। मोदीजीसे बाईने कहा—उस सिन्दूरपर हाथकी छाप लगाइये।

हाथकी छाप लगवाकर बाईने श्रीमाँकी जय-जयकार बुलवायी। जगज्जननी माँकी जय, करूणामयी माँकी जय, श्रीकृष्ण प्रेम-प्रदायिनी माँकी जय। जयकारके उपरान्त बाईने बतलाया—गोपियोंने मार्गशीर्षमासमें व्रत करके एक महीने श्रीमाँ कात्यायनीका पूजन किया था। आज वही श्रीमाँ हमलोगोंपर कृपा करके प्रत्यक्ष प्रकट हो गयी हैं।

उसी दिनसे श्रीमहिला संघमें मातृ-पूजन होने लगा। इसी प्रकार श्रीराधाकुण्ड एवं श्रीकृष्णकुण्डके प्राकट्यकी भी एक विशेष घटना है। बेगुसरायकी पुष्पा बाई मस्करा एक बार बाईसे मिलनेके लिये भागलपुर आयीं थी। उन दिनों रात-रात भर कीर्तन होता था, कीर्तन होते-होते लीला होने लगती थी, कब प्रातःकाल हो जाता था पता ही नहीं चलता। उस दिन भी रातके तीन बजे श्रीमहिला संघके ऊपरवाले कमरेमें लीला हो रही थी। पुष्पा बाई मस्कराको ओढ़ना उढ़ाकर फूल-मालासे सजा दिया गया। वे उसी तरह लेट गयीं। उन्हें स्पष्ट आभासित होने लगा, श्रीगिरिराज परिसरमें श्रीकृष्ण खड़े हैं। उधरसे एक रास्ता है। उस रास्तेसे चलकर वे आ रहे हैं। श्रीगिरिराज तलहटीमें, जहाँ श्रीराधाकुण्ड, श्रीकृष्णकुण्ड है, वहाँ आकर वे नृत्य कर रहे है श्रीकृष्णकुण्डमें नीला-नीला जल हिलोरेंसे ले रहा है। समीपवाले श्रीराधाकुण्डके जलमें हल्की-हल्की मिट्टीकी झलक है और सादा जल है।

वे सोचने लगी कि क्या मैं स्वप्न देख रही हूँ। वे उठकर नीचे उसी स्थानपर गयीं, जहाँ उन्हें कुण्डके दर्शन हुए थे। उन्हें उसी तरह लहराता जल दिखलायी दिया। वापस आकर उन्होंने सब बातें बाईको बतलायी। बाईने कहा—चलो दिखाओ।

वे बाईको लेकर वहाँ गयीं और जो-जो देखा था, सब बतलाया। बाईने कहा—जहाँ श्रीगिरिराजजी हैं, वहाँ श्रीराधाकुण्ड-श्रीकृष्णकुण्ड तो है ही, पर आजतक वह केवल मैं ही देखती रही। यहाँ वृन्दावनकी सभी प्रमुख स्थलियाँ प्रकट हैं। आज श्रीराधाकुण्ड-श्रीकृष्णकुण्डके तुम्हें दर्शन हुए हैं। अब इनकी प्रकट रूपमें भी स्थापना आज ही की जायेगी।

पूजन सामग्री मँगवायी गयी। कई बहिनें आ गयीं। भाभीजी भी आ गयी। उत्सवका-सा वातावरण बन गया। बड़ी धूम-धामसे श्रीराधा-नाम-संकीर्तन करते हुए सभी बहिनें नृत्य करने लगीं। उसी दिन पूजन करके कुण्डोंकी स्थापना हुई। एक दिन कीर्तन करते-करते बाई श्रीराधाकुण्ड-श्रीकृष्णकुण्ड पर पहुँच गयीं, साथमें कई बहिनें भी थीं। कुण्डमें स्वयं उतरकर स्नान करने लगीं और कई बहिनोंको उतारकर स्नान करवाया। जो स्नान नहीं कर पायीं, उन्हें आचमन करवाया। बहुत दिनोंतक उन कुण्डोंके जलका रंग बिलकुल श्रीराधाकुण्ड-श्रीकृष्णकुण्डकी तरह नीला-पीला था, जिसे सब देख सकते थे।

* * * * *

प्राणीमात्रके प्रति आत्मीयता

बाईके मनका धरातल साधारण लोकसे बिल्कुल अलग था। वैसा धरातल उन बहिनोंका था ही नहीं, जो श्रीमहिला संघमें रहती थीं अथवा नगरसे दर्शनार्थ आया करती थीं। बाईके हृदयमें जैसी उदारता, परदुःख-कातरता, सेवोत्सुकता थी, उसकी हल्की सी छाया किसी-किसी बहिनमें थोड़ी बहुत भले ही मिल जाये, किन्तु उनके भी नाम अँगुलियोंपर गिने जा सकते हैं। मम-परके दलदलमें धँसी हुई अधिकांश बहिनोंकी प्रीतिकी परिधि बहुत छोटी हुआ करती है। केवल नर-नारीका ही नहीं, प्राणीमात्रकी पीड़ा मेरी ही पीड़ा है, इस भावनासे सदैव भावित रहनेवाली बाईकी उदारता, सक्रियता और तत्परता जगतके लिये सदैव अनुमानातीत रही है। मरणोन्मुखी बिल्लीके बच्चेको कीर्तन-मण्डली द्वारा श्रीराधा-नाम सुनाना, मृतक चिड़ियाको भी गिरिराजजीके पास समाधि देना, मरणासन्न कबूतरके ऊपर गंगाजल छिड़कना, मृत कौवेको गंगाजीकी पावन धारामें प्रवाहित करवाना, दिवंगत कुत्ता, बिल्ली, कबूतर, कौआ, चिड़िया, चूहा आदिकी सुगतिके लिये विष्णुसहस्रनामका पाठ करवा कर ब्राह्मण भोजन करवाना, इस प्रकारके अगणित साधु कार्य बाईके संकेतपर श्रीमहिला संघमें प्रायः होते ही रहते थे। एक नग्न पागलिनी वृद्धा जो गटरमें गिरी हुई थी, उसे गटरमेंसे निकलवा कर न केवल अस्पतालमें भर्ती करवाया, बल्कि आश्रम-निवासिनी बहिनोंको उस वृद्धाकी सेवामें नियुक्त किया। यह एक ऐसा सेवा कार्य है जो सर्वहितमें रत बाईके करूणार्द्र हृदयका परिचय देता है। इस प्रकारके अनेक सेवा कार्य आये दिन घटित होते ही रहते थे और ऐसे सेवा कार्योंके प्रति बाईके कोमल मनमें अमित उत्साह रहता था।

जीव मात्रके प्रति बाईके मनमें कितनी आत्मीयता और सदाशयता थी, इसका एक भावपूर्ण प्रसंग सन् १९६८ का है। श्रीमहिला संघमें एक बिल्ली म्याऊँ-म्याऊँ करती घूम रही थी। उसकी आवाजके उत्तरमें उसका बच्चा भी म्याऊँ-म्याऊँ करता था। बिल्ली बार-बार म्याऊँ-म्याऊँ करे और उसका बच्चा

भी म्याऊँ-म्याऊँ करके उत्तर दे, परन्तु आश्चर्य यह है कि न माँको बच्चा मिल रहा था और न बच्चेको माँ मिल रही थी। जब बाई पूजा करने गयीं, तब माँकी और बच्चेकी आवाज सुनकर बाईने सुमित्रा बाईसे कहा—ऐसा लगता है कि इस बिल्लीका बच्चा इन गमलोंके ढेरमें कहीं दब गया है और वह बच्चा निकल नहीं पा रहा है। यह बिल्ली उस बच्चेकी माँ है और यह बहुत परेशान है। आप इसके बच्चेको खोजिये और बाहर निकालिये, पर एक बातका ध्यान रखियेगा। उस बच्चेका स्पर्श मत करियेगा। यदि आप उसका स्पर्श कर देंगी तो बिल्ली अपने बच्चेको दूध नहीं पिलायेगी।

सुमित्रा बाई खोजमें लग गयीं। उन्होंने बहुत खोजा, जगह-जगह झाँक-झाँक करके खोजा, परन्तु वह बच्चा नहीं मिला। बच्चा नहीं मिलनेसे वह बिल्ली सर्वथा निराश हो गयी और न जाने कहाँ चली गयी। लगभग सात दिन बाद श्रीमहिला संघके माली लोटन बाबाने सफाई करनेके लिये गमला हटाया। ऊपरवाला गमला हटाते ही नीचेवाले गमलेमेंसे वह बच्चा फुदक कर बाहर आ गया। बाहर आकर भी वह स्थलीमें ही घूमता रहा, श्रीमहिला संघसे कहीं बाहर नहीं गया। बाई जब पूजा करके स्थलीमें गयीं, तब उन्होंने भी बिल्लीके बच्चेको देखा। बच्चा भी बाईको देखने लगा। डरकर भागनेकी जगह वह एकटक बाईको देख रहा था, मानो कुछ कह रहा हो। बाईने सुमित्रा बाईसे दूध-रोटी मँगवाकर उसे खानेके लिये दी। वह धीरे-धीरे दूध पीने लगा, परन्तु रोटी नहीं खायी। बाईने सुमित्रा बाईसे कहा—इसको दिनमें चार-पाँच बार दूध पिलाया करिये।

बाईके निर्देशानुसार उसे रोज दूध पिलाया जाता था। वह बिल्लीका बच्चा श्रीमहिला संघमें ही घूमता रहता था। कहीं भी बाहर नहीं जाता था। अब दीपावलीके दूसरे दिनकी बात है। श्रीगिरिराजजी महाराजको अन्नकूटका भोग लगानेकी तैयारी हो रही थी। वह बच्चा उस दिन प्रात:काल ही अचानक बीमार हो गया और स्थलीमें ही एक जगह पड़ गया। बाईने उसे देखा तो कहा—इसे गिरिराज परिसरमें ले चलिये।

उसे गोदमें उठाकर सुमित्रा बाई गिरिराज परिसरमें ले आयीं। थोड़ी देरतक उसके पास कीर्तन होता रहा। फिर बाईने कहा—इसके पास अखण्ड गीताजीका पाठ होना चाहिये।

श्रीमहिला संघकी बहिनें बारी-बारीसे उसे पाठ सुनाने लगी। बीच-बीचमें उसके मुँहमें गंगाजल दिया जाता था। शामके समय बाई उसके पास आयीं। उसके कानके पास अपना मुँह ले जाकर बाई उसे राधे-राधे सुनाने लगीं। वह बच्चा भी म्याऊँ-म्याऊँ करने लगा। हमलोगोंको तो म्याऊँ-म्याऊँ ही सुन रहा था, परन्तु बाईने कहा—वह राधे-राधे बोल रहा है।

थोड़ी देर बाद बाईने कहा—इसे श्रीबरसानेवालीके पास हॉलमें ले चलिये, वहीं इसको कीर्तन सुनाया जायेगा।

सुमित्रा बाई उसे गोदमें लेकर हॉलमें ले आयीं। उसे हॉलमें सुला दिया। उसको चारों तरफसे घेरकर जोर-जोरसे कीर्तन सुनाया जाने लगा। बाई स्वयं भी नाच-नाच करके उसे कीर्तन सुना रही थीं। वह भी बड़े ध्यानसे बाईकी ओर देखता रहता था। लगभग एक-डेढ़ घण्टे बाद बाईने उसे पुनः गिरिराज परिसरमें भेज दिया। उसके पास पूर्ववत् गीताजीका पाठ होने लगा। श्रीगिरिराज महाराजकी पूजा होकर अन्नकूटका भोग लगा। आरती सम्पन्न होनेके बाद प्रसाद वितरण होते-होते रात्रिके लगभग नौ बज गये। आश्रमवासिनी बहिनोंको प्रसाद पाते-पाते दस बज चुके थे। बाई एक बार उस बिल्लीके बच्चेको देखनेके लिये गिरिराज परिसरमें गयीं। बाईको गिरिराज परिसरमें आये दस मिनट भी नहीं बीते होंगे कि वह बच्चा अन्तिम श्वास लेने लगा। उसके पास बहिनें जोर-जोरसे राधे-राधेकी ध्वनि करने लगीं। बाई उसके बिल्कुल समीप ही बैठी थीं। अचानक उस बच्चेने अपनी गर्दन उठायी और उस बच्चाके मुँहसे दो बार राधे-राधे निकला।

राधे-राधे नामकी ध्वनिको सबने स्पष्ट सुना। उस बिल्लीके बच्चेने राधे-राधे बोलते ही अपनी गर्दन गिरा दी। उसकी गर्दन बाईकी गोदमें गिरी। सभी बहिनोंको यह देखकर आश्चर्य हो रहा था कि इसकी गर्दन बाईको गोदमें कैसे आ गयी? उससे भी अधिक आश्चर्य यह था कि उस बच्चेने मनुष्यकी भाषामें राधे-राधेका स्पष्ट उच्चारण किया।

बाईके नेत्र उस बिल्लीके बच्चेकी विदाईके समय सजल हो उठे थे। बाईने कहा—निश्चित ही यह कोई साधना-च्युत आत्मा है, जिसने किसी च्युतिके कारण बिल्लीके रूपमें जन्म लिया है।

बाईने स्वयं उसपर गंगाजल छिड़का, फूल चढ़ाया और लाल कपड़ेमें

लपेटकर मोदीजीको देते हुए बोलीं—आप इसे गोदमें लेकर गंगाजी जाइये। जाते समय राधे-राधे नामका मधुर कीर्तन अवश्य कीजियेगा और फिर इसे गंगाजीमें प्रवाहित कर दीजियेगा।

श्रीमहिला संघमें तेरह दिन तक उस बच्चेके निमित्तसे कीर्तन होता रहा। तेरहवें दिन ब्राह्मणों स्त्रियोंको भोजन करवाया गया। भोजनमें पत्तलपर दही, भात, पत्तीका साग परोसा गया। उसकी जीमनवारकी पंगतमें स्वयं बाई भी बैठीं और सभीके साथ प्रसाद पाया। बाईके सजल नेत्रोंसे कहा—उस बिल्लीके बच्चेका भाग्य कितना अच्छा था, जो श्रीगिरिराज महाराजके अन्नकूट-पूजनके दिन ही श्रीगिरिराज परिसरमें, श्रीराधा नाम संकीर्तन सुनते हुए और राधे-राधे उच्चारण करते हुए उसने प्राणोंका परित्याग किया।

बिल्लीके बच्चेका श्रीगिरिराज परिसरमें शरीरान्त होना और उसकी सुगतिके लिये बाई द्वारा विविध प्रकारके अनुष्ठानात्मक कार्योंका सम्पन्न होना, इसीको यहाँपर विस्तारसे लिखकर बतलाया गया है। विस्तारसे लिखनेका प्रयोजन यह है कि मानवेतर प्राणियोंके प्रति भी बाईके हृदयमें कितना अधिक आत्मभाव था। सिद्धान्ततः मात्र ऊपरी चोलेका अन्तर है, अन्यथा मानव और मानवेतर प्राणियोंकी आत्मामें कोई अन्तर नहीं है। ऊपरी चोलेकी भिन्न-भिन्न आकृतियोंके रूपमें दिखलायी देनेवाला यह अन्तर तो कर्मफल सिद्धान्तके अनुसार आवागमनके प्रवाहमें पड़े रहनेके कारण है, परन्तु बाई तो इस आवागमनसे बहुत परे थीं। कर्म फल भोग परायण जगतके सामान्य धरातलसे बहुत ऊपर खड़े रहकर बाई दिव्य दृष्टिसे विधाताकी लीलाको देखती रहती थीं तथा सम्पर्कमें आनेवाले प्राणी मात्रके मंगलके लिये जो उचित होता था उसे वे करवाती रहती थीं।

* * * * *

कीर्तन-मण्डलीका निर्माण

संघमें कीर्तन, पाठ सत्संग आदिके कार्यक्रमोंका जैसे-जैसे विस्तार होता गया, सबके हृदय विनत होकर स्वतः ही बाईकी ओर आकर्षित होने लगे। पहले श्रीमहिला संघमें गीता-पाठ और सत्संगको ही मुख्यता थी और अब श्रीराधानामका संकीर्तन, षोडशगीतका गायन, श्रीराधा कृपा-कटाक्षका पाठ, श्रीचैतन्य चरितावलीका स्वाध्याय, यह प्रमुख रूपसे होने लगा। इन्हीं दिनों श्रीराधा-सुधा-निधिके पठन-मनन-चिन्तनने भी अपना स्थान महत्त्वपूर्ण बना लिया। कई धर्म-ग्रन्थोंके कुछ-कुछ अंशोंका पाठ और सत्संग पहले नियमित समयपर हुआ करता था। अब एक समयमें दो-दो कार्यक्रम समानान्तर भी होने लगे, अर्थात् पाठ तो हो ही रहा है, पास ही सत्संग या संकीर्तन भी हो रहा है। प्रायः चौबीसों घण्टे कुछ-न-कुछ होता ही रहता था। यह देखकर संघकी मंत्रिणी फूल बाईका ऐसा चिन्तन होने लगा कि अब यहाँ श्रीसेठजीकी मान्यताकी उपेक्षा हो रही है और क्रमशः चैतन्य महाप्रभुके मतकी प्रतिष्ठा अधिकाधिक होती जा रही है। भावात्मक स्तरपर किञ्चित् संकीर्णता होनेके कारण वे सोच भी नहीं पायीं कि श्रीराधानाम संकीर्तन तथा नव-नव स्वीकृत पाठ आदि भी श्रीसेठजीको अति प्रिय थे। इसीलिये उनका मन रुक्मिणी बाईकी ओरसे खिन्न होने लगा। वे बाईपर नाराज होने लगीं। फूल बाईके मनमें चाहे कितनी ही खिन्नता हो, पर अब तो बाईकी श्रीराधानाम निष्ठाने श्रीमहिला संघमें भक्ति-भावकी बाढ़ ला दी थी। यह प्रवाह अब रुकने वाला नहीं था। सिद्ध स्तरके जीवनका और वाणीका प्रभाव कुछ अद्भुत ही हुआ करता है। सावन-भादौमें बाढ़के आते ही सरिताके जल-प्रवाहका प्रकर्ष और प्रबल रूप जिस प्रकार सबके सामने आ जाता है, उसी प्रकार श्रीराधा नाम संकीर्तनकी बाढ़का प्रभाव श्रीमहिला संघमें पूर्णतः छा चुका था। श्रीकृष्णानुरागरूपी सूर्यका प्रकाश फैल चुका था। श्रीमहिला संघके वातावरणमें श्रीराधा नाम गुञ्जित होता ही रहता था। श्रीराधा नामका रसायन पाकर और पीकर भी दोनों कर्ण कुहर सदा अतृप्त रहते थे। न चाहते हुए भी श्रीराधा नामके तालपर पाँव थिरकने लगते थे। जब देखो तब कण्ठ-कण्ठसे निःस्सृत होनेवाले श्रीराधा नामके स्वर श्रीमहिला संघकी चहार दीवारीके भीतर मधु-धारा बहा देते थे। जो भी आता था, वह नामामृतका पान करके उन्मत हो ही जाता था। देवरियाकी साबो बाई

एक बार श्रीमहिला संघमें आयीं। तब श्रीराधा नामका संकीर्तन हो रहा था। नामका अनोखा प्रभाव ऐसा था कि जैसे ही उन्होंने हॉलमें पाँव रखा, वे हाथ उठाकर श्रीराधा नाम लेते हुए नृत्य करने लगीं। जैसे शराबीका संग करनेसे शराबकी लत लग जाती है, वैसे ही श्रीमहिला संघमें आते ही श्रीराधा नाम मुँहसे बरबस निकल ही जाता था।

इस संकीर्तनोत्साहको देखकर श्रीफूलबाई चिन्ताकुल हो उठीं। उनको चिन्ता होने लगी—श्रीराधानाम संकीर्तनकी ओटमें श्रीमहिला संघके भीतर यह सब क्या हो रहा है? नियम-संयमको ताकमें रखकर जब चाहे तब नाचने-गाने लगना यह समाजमें चर्चाका कारण बन सकता है। इस ढंगसे नाचना-गाना-बजाना तो स्त्री जातिके लिये अशोभनीय है। यह तो भगवन्नाम संकीर्तनके नामपर उच्छृंखलता है। अब कार्यक्रमोंपर अंकुश लगाकर कड़ाईके साथ सारी गति-विधियोंको नियमित-संयमित करना आवश्यक हो गया है।

उन्होंने प्रथम प्रयासके रूपमें बाईको समझाया—यह रात-रात भर पागलोंकी तरह चिल्लाते रहना, नाचते रहना तुमलोगोंको शोभा नहीं देता। सत्संगमें भी तुमलोग केवल चैतन्य चरितावली ही पढ़ती हो। पूज्य श्रीसेठजीके बतलाये हुए मार्गपर चलो। श्रीमद्भगद्गीताजीका पाठ और स्वाध्याय करो। समयपर सो जाओ। समयपर उठो। सुबह होनेवाले सामूहिक पाठमें सब मिलकर बैठो। जीवनको नियममें बाँधो। संयमित बनाओ।

कीर्तनको नियमित बनानेकी योजनासे संयमकी रूपरेखाका शुभारम्भ हुआ। पूर्वाह्न दस बजेसे ग्यारह बजेतक कीर्तन होना निश्चित हुआ। कीर्तनकी जिम्मेदारी लेनेके लिये वहाँ रहनेवाली बहिनोंको बुलाया गया। उनमेंसे कुछ ऐसी थी, जो पहलेसे आश्रममें रहती थीं और कुछको बाईने आश्रममें रहनेकी प्रेरणा देकर रखा था। वे सभी इकट्ठी हुईं। बाईने सर्वप्रथम कान्ता बाईको पूछा, जो मणी बाईकी पुत्री थी। बहुत दिनोंसे आश्रममें अपनी माँके साथ निवास कर रही थीं। उन्होंने कहा—बाई कीर्तन तो मैं करूँगी, परन्तु जिम्मेवारी आप किसी औरको सौंप दीजिये।

रामप्यारी बाई श्रीमहिला संघमें आया-जाया करती थीं। जागतिक प्रपञ्च और जिम्मेदारीसे वे सर्वथा परे थीं। कीर्तन उन्हें बड़ा प्यारा लगता था। एक-दो-दिवसीय अखण्ड कीर्तनमें श्रीमहिला संघमें रह जाया करती थीं। बाईने उन्हें प्यारसे समझाया यदि आप रोज यहीं रहेंगी तो आपको कीर्तनका आनन्द अधिक आयेगा। हम सब बहिनें मिलकर साथ-साथ कीर्तन किया करेंगी। घर

आने-जानेके प्रतिबन्धसे आप मुक्त हो सदा-सदाके लिये श्रीमहिला संघमें रहने लग जाइये। बाईका प्यार भरा आग्रह इतना मधुर था कि उसकी अवमानना कर पाना रामप्यारी बाईके लिये अशक्य हो गया और वे सदाके लिये आश्रममें रहने लगीं। उन्होंने भी कीर्तनकी जिम्मेदारी लेनेमें असमर्थता प्रकट कर दी।

अब तो सुमित्रा बाईकी बारी थी, जो कभी एक बार श्रीगौरांग आवेशमें आविष्ट बाईके साथ श्रीयवन हरिदासजीके भावसे आविष्ट होकर कीर्तन और नृत्य करने लगी थीं। ये भी बाईके आग्रहसे ही आश्रममें स्थायी निवास कर रही थीं और मोदनके साथ ये ही घर-घर श्रीराधा नामकी भिक्षा माँगने गयी थीं, परन्तु आज जिम्मेदारीके नामपर ये भी सामने नहीं आयीं।

श्रीमहिला संघमें तारा बाई नामकी एक अविवाहित बहिन भी रहती थीं। उनकी दैनिक चर्या सबसे भिन्न थी। वे नित्य श्रीराधा-कृपा-कटाक्षके एक सौ आठ पाठ किया करतीं। हाथसे सेवा करती रहतीं और मुँहसे अनवरत, पाठ, नाम-जप आदि करती रहतीं। सेवा और भजनके प्रति उनकी अत्यधिक निष्ठा थी। उनको दी गयी सेवा यदि कोई अन्य बहिन कर ले, तो वे उपवास करनेके लिये तैयार हो जातीं। बहुत आवश्यक होनेपर ही वे बोलतीं, अन्यथा वे मौन रहतीं। बाई उन्हें देखतीं तो कहती—तारा योग-भ्रष्ट है। यह आठ जन्मोंसे साधना कर रही है। सात जन्मोंतक तो वह किसी-न-किसी कारणसे सफलतासे वञ्चित होती रही है। इस जन्ममें लक्ष्यको पा ले, तो जन्म मृत्युके चक्करसे बच जायेगी।

कीर्तनकी जिम्मेदारी किसी भी बहिनने स्वीकार नहीं की। एक ओर आश्रमवासी बहिनोंने कीर्तनकी जिम्मेदारी लेनेसे अस्वीकार कर दिया था और दूसरी ओर बाईको कीर्तन-मण्डली बनानेकी त्वरा लगी हुई थी। उनके मनमें उठे हुए संकल्पको मूर्त्त होनेमें समय ही कहाँ लगता था। सन् १९६७ (सं० २०२४ वि०) के श्रावण मासकी बात है। बाई हॉलकी सीढ़ीपर बैठ गयीं और सत्संगमें आनेवाली बहिनोंको पूछने लगीं कि कीर्तन-मण्डलीमें कौन-कौन रहेगी। उनके मनमें कीर्तन-मण्डली बनानेका निर्णय हो ही चुका था। बहिनोंसे बातचीत करके अट्ठारह बहिनोंकी एक मण्डली बाईने बना ली। बात-की-बातमें कीर्तन-मण्डली बन गयी और सभीने कीर्तन-मण्डलीके नियम स्वीकार कर लिये।

कीर्तन-मण्डलीका मूल मन्त्र था 'राधे-राधे'। हर परिस्थितिमें राधे-राधे बोलना था। हर प्रश्नके उत्तरमें राधे-राधे कहना था। उन्हें बताया गया—आपसे

कोई पूछे कि कैसी थी? तो राधे-राधे कहना। फिर पूछे कैसी हो? तो पुनः राधे-राधे बोलना। राह पड़े हुए सूखे तिनकेसे भी स्वयंको नीचा माननेका प्रयास करना चाहिये।

नव निर्मित मण्डलीकी उन अट्ठारह सदस्या बहिनोंको साथ लेकर बाई श्रीगिरिराज परिसरमें चली गयीं। वहाँ बाईने एक-एकसे पूछा—आप श्रीराधारानीकी पक्षवाली बनेगीं या श्यामसुन्दरकी पक्षवाली?

सबने अपनी इच्छासे अपने-अपने पक्षका चुनाव किया। संयोगसे ऐसा विभागीकरण हुआ कि नौ बहिनें श्रीकृष्णकी ओर वाली हो गयीं और नौ ही श्रीराधाकिशोरीके पक्षवाली। जिन्होंने श्रीराधाकिशोरीके पक्षमें रहना स्वीकार किया था, उनको बाईने नीला परिधान प्रदान किया। जिन्होंने श्रीकृष्णकी ओर रहना चाहा, उनकी पहचान थी पीत परिधान।

बाईने यह भी जोर देकर स्पष्ट रूपसे बतलाया—वस्तुतः यह नील-पीत परिधान एक मात्र कृष्णप्रिया-श्रीराधारानीको रिझानेके लिये ही धारण करना है।

कीर्तन-मण्डलीमें जो-जो बहिनें सम्मिलित हुई थीं, उनको करना था केवल संकीर्तन, गिरिराजजीकी परिक्रमा और षोडशगीतका पाठ। कीर्तनका समय निर्धारित हुआ प्रातःकाल छः बजेसे मध्याह्न बारह बजेतक, जिसमें पौने दस बजेसे बारह बजेतकके कीर्तनका दायित्व नवनिर्मित मण्डलीपर रहा। कीर्तनकी अग्रगण्या हुई परमेश्वरी बाई। साथमें दो सहयोगियोंका होना आवश्यक था। इन दो बहिनोंको वे सुविधानुसार विचार करके स्वयं निश्चित कर लेती थीं। इस कीर्तन-मण्डलीकी अट्ठारह सदस्या बहिनोंकी नामावली इस प्रकार है—

(क) नील परिधानमें नित्य निकुञ्जेश्वरी श्रीराधा किशोरीके पक्षवाली बहिनें—

(१) त्रिवेणी देवी मोदी
(२) पाना बाई किशोरपुरिया
(३) इन्द्रा देवी किशोरपुरिया
(४) रामसखी बाई प्राणसुखका
(५) पाना बाई नेवटिया
(६) दुर्गा बाई शर्मा
(७) मञ्जु बाई
(८) ललिता बाई
(९) किरण बाई

(ख) पीत परिधानमें नित्य निकुञ्जेश्वर श्रीकृष्णके पक्षवाली बहिनें—

(१) परमेश्वरी बाई किशोरपुरिया
(२) ज्ञान बाई प्राणसुखका
(३) मुन्ना बाई सिंहानियाँ
(४) गायत्री बाई सिंहानिया
(५) सावित्री बाई शर्मा
(६) सावित्री बाई खेमका
(७) सावित्री बाई डोकानियाँ
(८) तारा बाई
(९) प्रेमा बाई

साधनाकी दृष्टिसे कीर्तन-मण्डलीकी अट्ठारह बहिनोंको दिनमें एक बार श्रीबरसानेवालीके समक्ष सामूहिक रूपसे उपस्थित होना अनिवार्य था। बाई द्वारा निर्दिष्ट साधना प्रणालीके अनुसार ये अट्ठारहों बहिनें प्रातःकाल चार बजकर पच्चीस मिनटपर श्रीबरसानेवालीके समक्ष पहुँच जाती थीं। वन्दन एवं प्रणामके उपरान्त श्रीभाईजी द्वारा रचित निम्नपद सस्वर गाना जाता था—

स्वामिनि हे वृषभानु-दुलारि।
कृष्णप्रिया, कृष्णगतप्राणा, कृष्णा, कीर्तिकुमारि॥
नित्य निकुंजेश्वरि, रासेस्वरि, रसमयि, रस-आधार।
परम रसिक रसराजाकर्षिणि, उज्जवल-रसकी धार॥
हरिप्रिया, अह्लादिनि, हरि-लीला-जीवनकी मूल।
मोहि बनाय राखु निसि-दिन निज पावन पादकी धूल॥

इस पदके गायनके उपरान्त लगभग आधा घण्टा श्रीराधा नामका कीर्तन होता था। अन्तमें आशीर्वाद दिया जाता था, जिसकी शैली और शब्द-योजना बाईकी भावानुसार है। जिसका विस्तारसे वर्णन आगे परिशिष्टमें दिया गया है। समवेत स्वरमें प्रफुल्ल मनसे बोलती हुई संकीर्तन-मण्डलीकी बहिनें आशीर्वाद देती थीं।

श्रीबरसानेवालीको आशीर्वाद देकर और जय-जयकार मना कर ये अट्ठारहों बहिनें श्रीगिरिराज परिसरमें आ जातीं। इन बहिनोंको गिरिराजजीकी कुल ग्यारह परिक्रमा दो घण्टेमें एक विशिष्ट पद्धतिका आश्रय लेकर पूरी करनी होती थी। वह विशिष्ट पद्धति इस प्रकार है—

गिरिराजजीकी एक परिक्रमा लगाकर षोडशगीतके एक या दो पदका भक्ति सहित गायन करना, फिर दूसरी परिक्रमा लगाकर षोडशगीतके पदका गायन करना, फिर तीसरी परिक्रमा लगाकर षोडशगीतके पदका गायन करना, इस पद्धतिसे षोडशगीतके अट्ठारहों पदोंका गायन करके ग्यारह परिक्रमा पूर्ण करना। षोडशगीतके सस्वर पाठसहित ग्यारह परिक्रमा करनेमें दो घण्टा लग ही जाया करता था। इतना हो जानेके उपरान्त ही बाई द्वारा बतलायी गयी साधनाका क्रम विश्राम-बिन्दुपर पहुँच पाता था। कीर्तन-मण्डलीकी परिक्रमा प्रातःकाल सात बजेतक सम्पन्न हो जाती थी। उसके बाद अन्य बहिनें भी परिक्रमा लगाती थी। अब यही समझना चाहिये कि कीर्तनके साथ-साथ परिक्रमाका क्रम भी चल पड़ा। परिक्रमा करनेवाली बहिनोंमें-से कुसुमकी एक सौ आठ दण्डवती परिक्रमा करनेका अनुष्ठान उल्लेखनीय है।

कुसुमके बाल बहुत लम्बे थे। बाई जब भी किसी बहिनके लम्बे बाल देखतीं तो उन्हें बड़ा उद्दीपन होता और वे अपने भाव-जगतमें पहुँच जातीं। भाव-विभोर बाई कभी-कभी तो वर्णन करने लगतीं—वहाँकी सखियोंके बाल बहुत लम्बे होते हैं। वे सखियाँ अपने सुदीर्घ बालोंसे ही निकुञ्ज-भवनमें सोहनी-सेवा कार्य करती हैं। वे युगल सरकारकी पाद-पीठ, जिसपर वे चरण रखा करते हैं, उस चौकोर चौकीको भी अपने बालोंसे साफ करती हैं।

एक दिन कुसुमके सुदीर्घ केशोंको देखकर बाईको कोई अनोखी स्मृति हो आयी और वे कुसुमसे बोलीं—कुसुम! तुम श्रीगिरिराजजीके परिक्रमा मार्गमें सोहनी लगाओ।

वह उठने लगी। कुसुम इशारा पाते ही उसे करनेके लिये चट तत्पर हो जाती थीं। अति तत्परा कुसुमसे बाईने कहा—पगली! पूरी बात तो सुन ले।

कुसुम बैठ गयी और बाईके नेत्रोंमें नेत्र गड़ाकर बात सुनने लगी। बाईने कुसुमसे कहा—तुम्हें अपने लम्बे-लम्बे, सुन्दर-सुन्दर बालोंसे सोहनी लगानी है।

यह तो कुसुमके लिये एक सर्वथा नयी चीज थी। वह समझ भी नहीं पा रही था कि केशोंसे सोहनी भला कैसे लगती है? कुसुमकी उलझन उसके चेहरेपर झलक रही थी। उसके जिज्ञासा भरे नेत्रोंको देखकर बाईने समझाते हुए बतलाना आरम्भ किया—तुम स्नान कर लो। फिर स्वच्छ और शुचि एक साड़ी पहन लो। इसके बाद जैसे मैं बतलाती हूँ, वैसे श्रीगिरिराजजीकी एक सौ आठ परिक्रमा लगाओ। श्रीगिरिराजजीको दण्डवत प्रणाम करते हुए लेट जाओ। लेटे-लेटे जहाँतक आगेकी ओर तुम्हारे हाथ जायँ, वहाँतक अपने केशोंसे सोहनी

लगाओ। इसके बाद जहाँतक सोहनी लगी हो, वहींसे फिर साष्टांग दण्डवत प्रणाम करो और पूर्वकी भाँति पुन: केश हाथमें लेकर सोहनी लगाओ। इस प्रकार सोहनी लगाते हुए एक सौ आठ परिक्रमाकी संख्या पूरी करो।

कुसुमने बड़ी प्रसन्नतासे सोहनी-सेवामयी परिक्रमाका यह अनुष्ठान पूर्ण किया। अनुष्ठान-परायणा कुसुमको केशोंसे परिक्रमा मार्गमें सोहनी लगाते हुए देखकर बाईकी प्रसन्नता उनके नेत्रोंसे क्षणे-क्षणे झर रही थी और रह-रह करके बाई उसे साधुवाद दे रही थीं। बहिनोंके मध्य कुसुमकी परिक्रमा सराहनाका विषय बन गयी। इसकी चर्चा बाईने न जाने कितनी बार बहिनोंके मध्य की।

बाईने कीर्तन-मण्डलीकी स्थापना करके जिन नौ बहिनोंको पीले परिधान और जिन दूसरी नौ बहिनोंको नीले परिधान दिये थे, वे सब अपने भीतर कुछ विशेषताका अनुभव करने लगीं। वह स्वानुभूत विशेषता क्या थी, उसको वे बतला तो नहीं पाती थीं, किन्तु विशेषताका अनुभव सबको अवश्य होता था। उन कुल अट्ठारह बहिनोंको समझाते हुए बाईने बतलाया—आजसे आप सभी श्रीराधा-कृष्णकी सखी हो गयी। युगल सरकारका सुख-सम्पादन ही आपके जीवनका एकमात्र कर्तव्य और लक्ष्य है। कीर्तनके नियमके अनुसार 'स्वामिनी हे वृषभानु दुलारि' यह पद गाकर श्रीराधारानीसे प्रार्थना की जाती है। इस पदके रचयिता श्रीभाईजी हैं। पदके माध्यमसे हम सभी श्रीराधारानीसे यही निवेदन करती हैं कि आप हम सभीपर कृपा करें। हे वृषभानु बाबाकी दुलारी, हे कीर्तिदा मैयाकी प्यारी और हे श्रीकृष्णकी प्राण आधारी ऐसी कृपा कीजिये, जिससे हमारे जीवनका प्रत्येक क्षण आपकी सेवामें व्यतीत हो। इसके बाद कुछ देर कीर्तन करके हमलोग प्रीतिपूर्वक मंगल कामना करती हैं कि युगल सरकारका सुख सदा बढ़ता रहे, इनका सौभाग्य सदा बना रहे, इनका विहार नित्य चलता रहे। यह मंगल कामना सखियोंकी ओरसे आशीर्वाद ही है। आशीर्वाद कोई महान व्यक्ति ही दे सकता है। सखी हानेके नाते हम सभी प्रीति पगे मनसे आशीर्वाद दे रही है। यह हमारे लिये और हमारी कीर्तन-मण्डलीके लिये गौरवकी बात है।

इस प्रकार कीर्तन-मण्डलीकी अट्ठारह सदस्य बहिनोंको समझाते हुए बाई प्रेरणा देती जा रही थीं—जो बहिनें श्रीमहिला संघमें रहती हैं, उनका जीवन साधनात्मक है और दिन-रात वे सेवामें लगी रहती हैं, किन्तु जो अपने घरपर जाती हैं, उन्हें अपने पति, पुत्र, सास, ससुर, देवर, जेठ, पड़ोसी, परिचित

सभीकी यथावसर यथोचित सेवा करनी पड़ती है और करनी ही चाहिये, परन्तु सेवा करते हुए भी सावधान रहना चाहिये कि मन प्रभुमें अटका रहे।

बाई जो भी उद्‌बोधन देती थीं, वह हृदयसे देती थीं। आजकल प्रायः एक टिप्पणी सुनी जाती है कि कथा-वार्ता, सत्संग आदिको सुनते रहनेके बाद भी साधकके जीवनमें परिवर्तन नहीं आता। परिवर्तन भला कैसे आये? वक्ताकी वाणी हृदयसे नहीं, अधरसे निकलती है और श्रोताके हृदयमें न उतरकर उसके कर्णकुहरोंतक ही रह जाती है। वह वाणी न हृदयसे निकलती है और न हृदयतक जाती है। जो वाणी वक्ताके हृदयकी गहराईसे उभरेगी, वह वाणी श्रोताके हृदयकी गहरायी तक उतरेगी भी। यही सत्य बाईके साथ था। बाईकी वाणी बहिनोंके हृदयको छू जाती थी, इसीलिये कि बाई वही बोलती थीं, जो उनकी करनी-रहनी-जीवनमें होता था और करनी-रहनी-जीवनका सार ही उनकी वाणीमें रहता था। ऐसी कथनी अपना प्रभाव श्रोताओंपर न छोड़े, यह हो ही नहीं सकता। इसीका परिणाम था कि सम्पर्कमें आनेवाली बहिनें सर्वस्वकी आहुति देनेके लिये सदैव तत्पर रहा करती थीं। घरमें आवश्यक सेवा करते हुए भी उनका मन श्रीमहिला संघके संकीर्तनकी ओर आकृष्ट रहा करता था। श्रीमहिला संघके प्रति होनेवाला यह आकर्षण कई बार घरवालोंको अप्रिय लगता था और वे अनेक बार बाधा भी उपस्थित करते थे कि मेरी घरवाली श्रीमहिला संघमें न जाय। भले ही वे कितनी ही बाधा उपस्थित करें, चाहको राह मिल ही जाती है। जिस प्रकार रासविहारी श्रीकृष्णकी वंशीने गोपियोंको बुलावा दिया और वे गोपियाँ मना किये जानेके बाद भी अर्धरात्रिमें यमुना तटपर पहुँच जाती थीं, इसी प्रकार अनेक बार इस तथ्यकी आवृत्ति श्रीमहिला संघमें होनेवाले कीर्तनमें देखी गयी। कीर्तनकी ध्वनि वंशी रवकी भाँति उन्हें संदेश देती थी और वे खिंचती हुई चली आती थीं। संतजन जानते हैं कि एक भीतरी आह्वान होता है, जो न पाञ्चभौतिक अधरोंसे निकलता है और जो न पाञ्चभौतिक कर्ण-छिद्रोंको सुन पड़ता है, परन्तु वह भीतरी आह्वान भीतरी मनको भली प्रकार सुनायी देता है। बाई द्वारा किया गया वह भीतरी आह्वान उन समर्पिता-श्रद्धालु बहिनोंको सुनायी देता था और तब यही दिखलायी देता था कि वे विमुग्ध और विलुब्ध बहिनें चोरी-चोरी आकर श्रीमहिला संघके कीर्तनमें सम्मिलित होती थीं।

एक बहिनका उत्साह लिखने योग्य है। वह अपने घरमें बिस्तरपर चादर ओढ़कर सो जाती। आधी रात होते ही वह उठती और अपनी जगह बिस्तरपर

मसनद रखकर चादर उढ़ा देती। इसके बाद अँधेरी रातमें घरवालोंको कुछ भी न बतलाते हुए वह बहिन श्रीमहिला संघके कीर्तनमें पहुँच जाती। रातभर संकीर्तनमें रहती और ब्राह्ममुहूर्त होते-होते घरपर आकर पहलेकी भाँति ही सो जाती, ऐसा तो कई बार हुआ था।

परन्तु एक दिन दुस्साहसका कार्य भी एक अन्य बहिन कर बैठी। अपनी घरवालीको रोकनेके लिये पतिदेवने मुख्य द्वारके फाटकको ताला लगाकर बन्द कर दिया। तालेकी चाभी पतिदेवने अपने पास रख ली, किन्तु उस बहिनको तो संकीर्तनमें पहुँचना ही था। घरकी चहारदीवाली सात-आठ फीट रही होगी। यह बहिन साहस करके ऊपर चढ़ गयी और भले ही शरीर स्थूल था फिर भी भगवानका नाम लेकर सड़कपर कूद गयी। आश्चर्य यह कि कहीं चोट या खरोंच भी नहीं लगी। यह बहिन श्रीमहिला संघमें कीर्तनका आनन्द लेकर सूर्योदयके पहले-पहले घर पहुँच गयी। ऐसे दृढ़ निश्चयीकी रक्षा प्रभु ही करते हैं। सूर्योदयके समय पतिदेव गंगा स्नान करनेके लिये ताला खोलकर बाहर गये और संयोग ऐसा अपने आप बन गया कि उनके चले जानेके थोड़ी ही देर बाद यह बहिन घर आयी और घरके खुले द्वारसे अन्दर आकर पूर्ववत् सो गयी। इन घटनाओंसे इतनी झलक तो मिलती ही है कि श्रीमहिला संघके कीर्तनका आकर्षण बड़ा अनोखा और बड़ा प्रबल था और बाईका व्यक्तित्व बहिनोंके मानसपर छाया हुआ था।

कीर्तन-मण्डलीकी अट्ठारह सदस्या बहिनोंका चुनाव होते ही उनके लिये पालनीय नियम भी लिखवा दिये। नियमानुसार जीवन व्यतीत करनेसे ही जीवनमें परम निर्मलता और परम सात्त्विकताका प्रादुर्भाव होता है और यही हेतु बन जाता है दिव्य-लीलानुभूतिका। नियमोंमें कुछ नियम ग्रहण करनेके हैं और कुछ त्याग करनेके। वे इस प्रकार हैं—

साधना

पालन करनेके नियम—

१. सूर्योदयसे पूर्व जागरण।

२. प्रात:काल भगवान्‌का स्मरण करना। गुरुजनोंको प्रणाम करना।

३. परिक्रमाके समय मन, वाणीसे भगवान् (श्रीराधा बहिन) की मधुर सेवा करना। भगवान् (प्रियतम नन्दनन्दन) के साथ मधुर हास्य विनोद करना।

४. संकीर्तनके समय मन, वाणी, शरीरको भगवान् (प्रियतम श्रीकृष्ण)

की सेवामें प्रसन्नता सहित समर्पित कर देना।

५. नित्य सत्संग, श्रीराधा-माधव चिन्तन, गीता, रामायण, श्रीमद्भागवत और भक्त चरित्रोंका अध्ययन करना।

६. घरकी प्रत्येक सेवा भगवत्सेवा मानकर भगवत्प्रीत्यर्थ भगवन्नाम स्मरण करते हुए करना।

७. भगवत्स्मरण—प्रत्येक पाँच-पाँच मिनटपर भगवान् (श्रीराधा बहिन प्रियतम नन्दन्दन) का नाम-रूप-लीला-गुण आदिका स्मरण करना और स्मरण आनेपर न भूलनेका प्रयत्न करना।

८. भगवन्नाम जप—कम-से कम २५००० भगवन्नाम जप (षोड़श नाम की १६ मालाएँ) नियमित रूपसे करना तथा प्रात:काल उठनेसे लेकर रात्रिके सोनेतक जीभसे यथासाध्य भगवन्नाम जप करते रहना।

९. सभीमें भगवद्दर्शन, भगवत् बुद्धि।

१०. वाणीका मौन—वाणीके मौनके साथ-साथ मनका भी मौन होना चाहिये।

११. सत्य भाषण—सदा सत्य, मृदु एवं हितकारी वाणीका प्रयोग करना।

नियम पालन निरीक्षण

प्रतिदिन कम-से कम पन्द्रह मिनट इस बातकी जाँच करनेमें लगाना कि मैं सत्यमेव सत्य भगवान् (श्रीराधा बहिन - प्रियतम नन्दनन्दन) को चाहती हूँ या नहीं? नियम पालनमें भूल हो जाय, तो भूलके लिये प्रायश्चित रूप दण्ड-विधान करना एवं कल भूल न हो इस बातका दृढ़ निश्चय करना।

त्याग करनेके नियम

१. झूठ बोलनेका, मिथ्या साक्षीका त्याग।

२. आत्म प्रशंसाका त्याग।

३. पराये अहितका त्याग।

४. क्रोधका त्याग।

५. समय नष्ट करनेकी प्रवृत्तिका त्याग।

६. जूठा छोड़नेकी प्रवृत्तिका त्याग।

७. परापवादका त्याग। जान-बूझकर किसीकी निन्दा चुगली न करना।

* * * * *

उत्सव शृंखला

श्रीकीर्तन-मण्डलीके निर्माणसे एक ओर श्रीमहिला संघमें होनेवाले दैनिक कार्यक्रमोंमें नियमितता आयी, वहीं वर्षभरमें समय-समयपर मनाये जानेवाले उत्सवोंमें विधि-निषेधका ध्यान रखते हुए पर्याप्त परिवर्तन और सुधार आया। कीर्तन-मण्डली निर्माणके पहले श्रीमहिला संघमें मुख्यतः झूलन, श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी, नवरात्रमें मानस-पाठ, दीपावली, अन्नकूट और होली, यही उत्सव मनाये जाते थे। अब बाईकी प्रेरणासे उनकी देखरेखमें कुछ नये उत्सवोंका शुभारम्भ हुआ और कुछ पहलेसे मनाये जानेवाले उत्सवोंकी रूपरेखामें सुधार हुआ। अब वर्षभर जो-जो उत्सव मनाये जाते थे वे इस प्रकार है—

१. **हरियाली तीज**—श्रीमहिला संघमें श्रावण शुक्ला तीजके दिन झूला सजाया जाता है। झूलेपर श्रीराधारानीको झुलाया जाता है। निकुञ्जमें सखियाँ प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-कृष्णको पधराकर झूला झुलाती हैं तथा उनके प्रसादन-प्रमोदनके लिये विनोद भी करती है। फिर इन्हें रुचिर मिष्टान्नोंका भोग लगाया जाता है। इसकी शृंखलामें श्रावण शुक्ल एकादशीसे पूर्णिमा तक पुनः निकुञ्जात्मक चावसे झूलनोत्सव मनाया जाता है। श्रीमहिला संघमें सजाये जानेवाले झूलेमें पहले बिजलीके बल्वोंकी सजावट होती थी, यह प्रक्रिया हटा दी गयी। इन दिनों पाँचों दिन भिन्न-भिन्न प्रकारकी सजावटें होती है, कभी फूलसे, कभी फलसे, कभी वस्त्रसे, कभी रूईसे, कभी पत्तियोंसे। इन दिनोंमें जो उल्लास रहता है, वह किस दिन कम हुआ और किस दिन अधिक हुआ, यह कहना बनता ही नहीं। झूलनके दिनोंमें बहिनोंपर पदोंके गायन और कीर्तनकी मस्ती छायी रहती है। कुछ विशेष कारणोंसे यह पञ्चदिवसीय उत्सव अब नहीं मनया जाता है।

२. **श्रीकृष्ण जन्माष्टमी**—यह उत्सव प्रतिवर्ष श्रीमहिला संघमें मनाया जाता है। पहले जो जन्मोत्सव मनाये जाते थे, उनमें गीतोपदेशक श्रीकृष्णके ऐश्वर्य भावादर्शित महत्ताका आधिक्य रहता था और अब माधुर्य भावोद्भूत रसिकताकी अधिकता रहती है। पहले जन्मोत्सवके अवसरपर बधाईका पद गा लिया जाता था, परन्तु अब नवमीके दिन बधाईके पदका गायन ढाढ़िन वेषधारी

बहिनें करने लगीं। इससे उत्सवका आनन्द बहुत अधिक बढ़ जाता है।

३. **श्रीराधाष्टमी**—भागलपुरमें कोई जानता ही नहीं था कि राधाष्टमी किस उत्सवका नाम है। हाँ, अपवाद स्वरूप उन कुछ भाई-बहिनोंका नाम लिया जा सकता है, जिनका गीतावाटिकाके मुख्य उत्सव राधाष्टमीकी चर्चा सुनकर उत्सवमें भाग लेनेके लिये गोरखपुर जाना हो चुका था। श्रीभाईजी और श्रीबाबाके प्रयाससे इस उत्सवका अनेक स्थानोंपर खूब प्रचार हुआ और इसके फलस्वरूप लोगोंको श्रीकृष्ण, जो स्वयं आनन्द स्वरूप हैं, उनको भी आनन्द प्रदान करनेवाली भगवती श्रीराधाकी महिमाका किंचित् परिचय मिल पाया। बाई तो श्रीभाईजी एवं श्रीबाबापर बलिहार थीं। श्रीभाईजी एवं श्रीबाबा जिस श्रीराधा जन्मोत्सवको पूर्ण उत्साह और उल्लासके साथ मनाये, वह उत्सव बाई न मनायें, इसकी कल्पना भी कठिन है। भाद्र शुक्ल अष्टमीके दिन श्रीराधा जन्मोत्सव बड़े उत्साहके साथ श्रीमहिला संघमें मनाया जाने लगा।

४. **अष्टमी व्रत**—बाईके हृदयमें अष्टमी तिथिका बहुत अधिक महत्त्व था। कृष्णपक्षकी अष्टमीको नन्दनन्दन श्रीकृष्णका प्राकट्य और शुक्लपक्षकी अष्टमीको वृषभानुनन्दिनी श्रीराधारानीका प्राकट्य होनेसे बाईकी श्रद्धा-भावनाके अनुरूप वे दोनों तिथियाँ व्रतकी तिथियाँ बन गयी। बाईने कीर्तन-मण्डलीकी अट्ठारहों सदस्या बहिनोंको यह नियम दिलवाया कि प्रत्येक अष्टमी तिथिको प्रातः जागरणसे लेकर सूर्यास्ततक निर्जल, तत्पश्चात् केवल एक बार अन्नाहारके रूपमें व्रत रखना चाहिये। कृष्णपक्षकी अष्टमीके दिन श्रीबरसानेवालीके समक्ष मध्याह्नमें चार घंटे कीर्तन करना आवश्यक था। इसी प्रकार मध्याह्नमें चार घण्टे तक शुक्लपक्षकी अष्टमीके दिन गिरिराजजीमें कीर्तन करना आवश्यक था। दोनों अष्टमीके दिन बतलायी गयी विधिके अनुसार सब बहिनें व्रत रखकर कीर्तन करती थीं और कीर्तन-मण्डलीका अनुकरण करते हुए अन्य बहिनोंका भी सहयोग मिलता था।

५. **आश्विन नवरात्रमें मानस पाठ**—नवरात्रके अवसरपर श्रीरामचरितमानसका नौ दिनोंतक नवाह्न पाठ हुआ करता है। इसके लिये विद्यालयमें पढ़नेवाली बालिकाओंको आमन्त्रित किया जाता है। पाँचवी कक्षातककी बालिकाएँ शुद्ध पाठ नहीं कर पाती हैं, इसलिये छठी या उससे ऊँची कक्षामें पढ़नेवाली बालिकाओंको चुना जाता है। उन्हें प्रतिपदासे पाठ

करनेके लिये बैठाया जाता है। आश्विन नवरात्रमें बालिकाओंकी संख्या एक सौ पैसठ तक हो जाया करती है। यह आवश्यक है कि सभी बालिकाएँ स्नान करके और शुचि-स्वच्छ वस्त्र पहन करके पौने सात बजे तक श्रीमहिला संघमें अवश्य उपस्थित हो जायें। प्रात:काल सात बजे भगवान् श्रीसीतारामजीकी आरती होकर पाठ आरम्भ होता है। लगभग दस बजे लड़कियोंको भोजन करवाया जाता है। पाठका क्रम दो तीन बजेतक पूरा हो पाता है। पाठ सस्वर होता है। पाठमें बालिकाओंको विशेष उत्साह रहता था क्योंकि पाठ पूर्ण होनेपर प्रतिदिन ये बालिकाएँ बाईको घेरकर बैठ जाया करती थीं और बाई इन्हें लीला सुनाया करती थीं। लीला सुननेमें बालिकाओंका इतना मन लगता था कि वे घर जानेका नाम ही नहीं लेती थीं कभी तो तीन-चार घण्टे भी व्यतीत हो जाया करते थे। नवरात्रकी पूर्णाहुतिके दिन बालिकाएँ उदास हो जाती थीं कि अब लीला सुननेका अवसर न जाने कब मिल पायेगा?

एक बार नवरात्रमें प्रसाद वितरण दस बजेकी जगह ग्यारह-बारह बजेतक हुआ। बाई ऊपर अपने कमरेमें सो रही थी। एक बालिका ऊपर जाकर बाईसे बोली—बाई! बहुत भूख लगी है।

आवाज सुनकर बाई हड़बड़ाकर उठ बैठीं। नीचे आकर बालिकाओंसे पूछा—मुझे जगाने ऊपर कौन गया था?

किसीने भी जानेकी बात स्वीकार नहीं की। बाईने कहा—अवश्य ही लाडिली गयीं होगीं।

उसी दिनसे मानस पाठका थोड़ी देरके लिये विराम देकर बालिकाओंको नौ बजेसे साढ़े नौ बजेतक प्रसाद दे दिया जाता है।

६. शरद पूर्णिमा—आश्विन शुक्ला पूर्णिमाके दिन रासोत्सव बगीचेमें मनाया जाता है। यह बगीचा श्रीबरसानेवालीके मन्दिरके सामने है। बगीचेमें सिंहासनपर मन्दिरके श्रीप्रिया-प्रियतम और अन्य विग्रह विराजित कर दिया जाते हैं। विग्रहोंको विराजित करनेके बाद जय-जयकार बोलकर नौ बजेसे रासपञ्चाध्यायीका सस्वर पाठ प्रारम्भ हो जाता है। मध्य रात्रिके समय प्रिया-प्रियतमका पूजन करके और खीरका भोग लगा करके आरती की जाती है। रासपञ्चाध्यायीका पाठ ब्राह्मबेलातक पूर्ण हो पाता है। फिर खीर प्रसादका वितरण होता है।

७. दीपावली—मन्दिरमें श्रीगणेशजी और भगवतीजी लक्ष्मीजीका पूजन करके रात्रिमें दीपमालिका सजायी गयी है।

८. अन्नकूट—दीपावलीके दूसरे दिन, पहले अन्नकूटका उत्सव श्रीबरसानेवालीके मन्दिरमें मनाया जाता था, परन्तु श्रीगिरिराजजीकी स्थापनाके बाद इसका रूप बदल गया। अब पूजन श्रीगिरिराजजीके समक्ष भी होने लगा। कीर्तन-मण्डलीकी सभी सदस्याएँ नारियल, केला, सेव, नारंगी, अनार, दूध, श्रीगिरिराजजीके पूजनके लिये बड़े उत्साहके साथ अपने साथ लातीं। इसके अलवा आटेके लड्डू श्रीमहिला संघमें ही बनते थे, पर वह आटा हाथका पिसा होता था। पूजनके उपरान्त प्रत्येक बहिनको एक सौ आठ परिक्रमा लगानी होती थी। यह क्रम पूर्वाह्न कालमें होता था। अपराह्नकालमें श्रीबरसानेवालीके मन्दिरमें पूर्ववत् पूजन होकर भोग लगता था। इस उत्साहका निर्वाह यथासम्भव आज भी हो रहा है।

९. श्रीकात्यायनी माँका पूजन एवं व्रत—बाईने कीर्तन-मण्डली, भक्त-मण्डली और आश्रमवासी बहिनोंको बिठाकर बताया—अपने यहाँ श्रीकात्यायनी माँका प्राकट्य हो चुका है। गोपियोंने मार्गशीर्ष मासमें श्रीमाँका व्रत और अर्चन किया था। अपनेको भी करना चाहिये।

यह व्रत और अर्चन सम्पूर्ण मार्गशीर्ष मासमें करनेका विधान है, परन्तु बाईकी भावनाके अनुसार कार्तिक शुक्ल अष्टमीसे बहिनें व्रत रखने लगती थीं और भगवती गंगाके तटकी पवित्र मिट्टीसे निर्मित मातृ-विग्रहके अर्चनका शुभारम्भ मार्गशीर्ष कृष्ण प्रतिपदासे श्रीमहिला संघमें हो जाया करता था। ज्ञान बाई माँ कात्यायनीकी मृत्तिकासे मूर्तिका निर्माण करके एक परातमें पधरा देतीं। कुछ बहिनें यह अर्चन अपने घरपर भी करती थी, परन्तु अधिकांश बहिनें बाईके साथ बैठकर श्रीमहिला संघमें ही किया करती थीं। अर्चन करके निम्नलिखित श्लोकका ग्यारह माला जप आवश्यक था।

कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि।
नन्दागोपसुतं देवि, पतिं मे कुरू ते नमः॥

पूजन-जपमें लगभग दो घण्टेका समय लग जाता था। पूजनमें तीन पाव मिष्टान्नका भोग लगता था। शामको चार बजे हविष्यान्न बनाकर भोग लगातीं। पूजन करके भोग लगाकर पुनः उपर्युक्त श्लोककी ग्यारह माला जप करतीं।

फिर मूर्त्तिका एक कुएँमें विसर्जन कर दिया जाता। यही क्रम एक मासतक नित्य चलता। व्रत करनेवाली बहिनोंके लिये आवश्यक था कि वे सम्पूर्ण मास केवल एक बार सात्त्विक आहार ग्रहण करें। पूरे महीने श्रीमद्भागवत महापुराणकी चीर-हरणकी कथा पढ़ी जाती और बाई भी प्राय: लीला सुनाया करती थीं।

१०. श्रीबिहारपञ्चमी—रसिक शेखर स्वामी श्रीहरिदासजी महाराजके सेव्य श्रीबिहारीजीका प्राकट्य मार्गशीर्ष शुक्ल पञ्चमीके दिन हुआ था। यह प्राकट्य महोत्सव भी श्रीमहिला संघमें बाईकी प्रेरणासे मनाया जाने लगा। श्रीबिहारीजीको नवीन पोशाक धारण करवायी जाती। बूँदीका भोग लगाया जाता और श्रीबाँकेबिहारी महाराजके प्राकट्यकी लीला सुनायी जाती और रात्रिमें दीपोत्सव मनाया जाता।

११. गीता जयन्ती—भगवान् श्रीकृष्णने मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशीके दिन अपने प्रिय सखा अर्जुनको गीतोपदेश दिया था। उस दिन श्रीबरसानेवालीके समक्ष हॉलमें श्रीमद्भगवद्गीताका भक्ति-भावसहित अखण्ड पाठ होता।

१२. बसन्त पञ्चमी—इस दिन श्रीबरसानेवालीको जो भोग लगाया जाता है, उसमें मीठे भातकी प्रमुखता रहती है और उसका रंग बसंती होता है। मीठे भातके साथ मोगरका भी भोग लगता है। कीर्तन, पद-गायनके उपरान्त प्रसाद वितरण किया जाता है।

१३. रंगीली होली—बाई होलीका उत्सव फाल्गुन शुक्ल अष्टमीके दिन ही मनाती थीं। केसरिया रंग घोला जाता था। रंग-बिरंगी गुलाल इकट्ठीकी जाती थी। दोपहरके समय होलीके पदोंका गायन और कीर्तन होता। इसमें रंग और गुलालकी धूम मच जाती।

एक वर्ष इस रंगीले उत्सवने एक चमत्कारिक दृश्य उपस्थित कर दिया। श्रीमहिला संघकी दीवालें लगभग ग्यारह फीट ऊँची हैं। उनपर छतके पास कई चित्र लगे हुए हैं। वे चित्र लगभग १६ इंच × २४ इंच साइजके हैं। चित्रोंकी संख्या लगभग छियालीस होगी। होलीकी उमंगमें जो रंग-बिरंगी गुलाल उड़ायी गयी, उन गुलाली बादलोंने छतको रंग दिया और उन चित्रोंको भी रंगीन बना दिया। उत्सवके बाद चित्रोंको साफ करनेका बड़ा प्रयास हुआ, पर लगी हुई रंगीली गुलाल तो छूटनेका नाम ही नहीं ले रही थी। यह तो श्रीबरसानेवालीके

मन्दिरके बाहरकी बात है। मन्दिरके भीतर तो इससे भी बड़ा चमत्कार देखनेको मिला। मन्दिरमें श्रीबरसानेवालीके सिंहासनपर गुलालकी मोटी परत फैलकर जम गयी। मन्दिरकी पुजारिनने शयनके समय पूरा सिंहासन भली प्रकारसे स्वच्छ करके प्रिया-प्रियतमको शयन करा दिया।

अब अगले दिन नवमी तिथिकी बात है। प्रातःकाल जब मन्दिर खोला गया तो सबके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। वह चादर जो श्रीप्रिया-प्रियतमको ओढ़ायी गयी थी, वह गुलालसे भरी हुई थी। जब श्रीप्रिया प्रियतमको उत्थापन कराया गया, तब सिंहासनपर बिछावनी पर भी हल्की-हल्की गुलाल लगी हुई थी। पुजारिनको रह-रह करके विस्मय हो रहा था कि यह कैसे हो गया? रात्रिको शयनके समय भली प्रकारसे स्वच्छ कर दिया गया था। ठाकुरकी कोई अन्तरंग लीला मानकर उसने मन-ही-मन समाधान कर लिया। पुनः भली प्रकार स्वच्छ करके उसने ठाकुरजीका विविध उपचारोंसे पूजन किया और वह आरती करके बाहर आ गयी। फिर मध्याह्नके समय भोग लगानेके लिये थाल लेकर मन्दिरमें गयी तो पुनः उसने देखा सिंहासनकी बिछावनी पर गुलाल बिखरी हुई है। नवमी तिथिको श्रीमहिला संघमें न रंग खेला गया, न गुलाल उड़ायी गयी, इसके बाद भी मन्दिरके सिंहासनपर गुलाल बिखरी हुई थी, मन्दिरमें श्रीप्रिया-प्रियतमको ओढ़ायी गयी चादर पर और मन्दिरके सिंहासनकी बिछावनी पर बार-बार अपने आप बिखरी हुई गुलालको देखकर पुजारिन ही नहीं, प्रत्येक आश्रमवासिनी बहिन आश्चर्यमें डूब गयीं। उनका आश्चर्य तब अनन्तानन्त गुणा प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जब गुलाल उड़ाये बिना ही मन्दिरमें गुलालके बिखरनेका क्रम लगतार पूर्णिमातक होता रहा। पूर्व निश्चित कार्यक्रमके अनुसार श्रीमहिला संघमें रंग-रंगीली होलीका उत्सव अष्टमी तिथिको पूर्ण हो गया, पर यह पूर्णता हमारे जागतिक स्तरपर थी। उस दिव्य राज्यमें तो अभी शुभारम्भ ही हुआ था, और उसे पूर्णता प्रदान करनेके लिये मन्दिरमें होलीका विलास पूर्णिमा तक चलता रहा। अब तो सम्पर्कमें आनेवाली बहिनोंने कहना आरम्भ कर दिया कि जो बात बाई बार-बार कहा करती थीं, उसीको प्रमाणित करनेके लिये यह चमत्कार घटित हुआ है। बाई कहा करती थीं कि अष्टमीको दिव्य-भाव राज्यमें, नवमीको श्रीबरसानेमें, दशमीको नन्दगाँवमें और एकादशीसे पूर्णिमातक वृन्दावनमें होलीका उत्सव हुआ करता

है। बाईके कथनको परिपुष्ट करनेके लिये ही श्रीबरसानेवालीने श्रीमहिला संघमें होली-लीलाका खेल ऐसा रचा कि दिव्यधाममें और ब्रजमण्डलमें भिन्न-भिन्न तिथियों और भिन्न-भिन्न स्थानोंपर होनेवाले होली-विलासकी झाँकी एक ही स्थानपर अर्थात् श्रीबरसाने-वालीके मन्दिरमें बिखरी हुई गुलालके रूपमें प्रस्तुत कर दी।

इस चमत्कारने अनेकोंकी आस्तिकताका पोषण किया, श्रद्धाका संवर्द्धन किया और समर्पणपर मोहर लगा दी। यह प्रत्यक्ष प्रमाण था कि श्रीबरसानेवालीके मन्दिरमें मञ्जरियों-सखियों सहित श्रीप्रिया-प्रियतम आठ दिन तक रंग-रंगीली होली खेलते रहे हैं। सिंहासनपर बिखरी हुई गुलालका प्रसाद सबको दिया गया और प्रसादी गुलालसे सबके भाल रंजित हो रहे थे।

१४. श्रीगौरांग जन्मोत्सव—चैतन्य महाप्रभु श्रीगौरांग देवका जन्म फाल्गुनी पूर्णिमाके दिन हुआ था। बाईकी लीला-भावना और उपासना पद्धतिपर श्रीगौरांग महाप्रभुका बहुत अधिक प्रभाव है। इतना ही नहीं कीर्तनोल्लासमें बाईको श्रीगौरांग महाप्रभुका कई बार आवेश आ चुका है। बाई इनका जन्मोत्सव बड़े उल्लासके साथ मनाती थीं। इस दिन 'हरि बोल' का उच्च स्वरसे कीर्तन होता था और अन्तमें पूजनोपरान्त प्रसादका वितरण किया जाता था।

१५. चैत्र नवरात्र—इन नौ दिनोंमें श्रीरामचरितमानसका नवाह्नपाठ उसी उत्साह और उसी विधिसे होता है, जैसा कि आश्विन नवरात्रकी अवधिमें होता है। इसका वर्णन पहले किया जा चुका है।

१६. अक्षय तृतीया—वृन्दावनके श्रीबाँकेबिहारीजीकी रसोपासनामें अक्षय तृतीयाका दिवस महत्त्वपूर्ण है। यह वैशाख शुक्ल तृतीयाको मनाया जाता है। इस दिन ठाकुरजीके चरण-दर्शनकी लीला होती है। खिचड़ी, इमलाना, रसमुनियाका भोग विशेष रहता है।

१७. गुरु पूर्णिमा—श्रीमहिला संघमें आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमाके दिन गुरु स्वरूपा अष्ट सखियोंका बहुत श्रद्धा एवं उल्लास सहित पूजन होता है। अपने सम्पर्कमें आनेवाली वे बहिनें, जिनका झुकाव मधुरोपासनाकी ओर होता था, उनसे बाई कहा करती थीं कि श्रीराधारानीकी अष्ट सखियोंमेंसे किसी एकको, जिसके श्रीचरणोंके प्रति तुम्हारा सहज झुकाव-लगाव हो, उसे गुरु रूपमें मन-ही-मन वरण कर लो। ऐसा कहा जाता है कि बिना गुरुके गति नहीं और

नित्य-निकुञ्जेश्वरी श्रीराधारानीके भावराज्यमें प्रवेश पानेके लिये और गति-रति होनेके लिये किसी एक सखीके अनुगत होना आवश्यक है। किसी-किसी बहिनने श्रीरंगदेवीजीको गुरुमें वरण किया। बाई भी इन्हें ही गुरु स्थानीया मानतीं थीं, परन्तु अधिकांश बहिनें मुख्य रूपसे प्रिय सखी श्रीललिताजीको ही गुरु मानती थीं। बाईने गुरु-स्वरूपा प्रिय सखी श्रीललिताजीका गुरुपूर्णिमाके दिन पूजन करवसाया और उन्होंने बतलाया कि आजके दिन प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-कृष्ण भी इन्हींकी पूजा किया करते हैं। इस दिन विशेष रूपसे हलुआका भोग लगता है।

एक बार गुरु-पूर्णिमाके दिन रात्रिके समय बाईमें प्रिय सखी श्रीललिताजीका भावावेश हो आया। उस समय बाई अपने ऊपर वाले कमरेमें थी। भाभीजी भी वहींपर थीं। भाभीजीने विविध पूजन सामग्रियोंसे गुरु-स्वरूपा प्रिय सखी श्रीललिताजीका सभक्ति अर्चन किया। उसी भावावेशकी दशामें बाई ऊपरवाले कमरेसे नीचे बगीचेमें चली गयीं, जो मन्दिरके सामने है। बगीचेमें एक स्थानपर जूहीकी लताकी कुञ्ज है। उस कुञ्जमें बाई बड़ी लटकके साथ खड़ी हो गयीं। खड़ी होनेकी ललित भंगिमा बड़ी ही प्रभावोत्पादक थी। नियमन-संयमन-संचालनके गुरुतर भावकी गरिमासे उनका मुख मण्डल सुदीप्त हो रहा था। सभी उपस्थित बहिनें उन्हें वन्दन कर रही थीं। श्रीललिता-भावाविष्ट बाईका भाभीजीने पुनः पूजन किया। उस भाव-दशाकी स्मृतिमें उस कुञ्जको प्रिय सखी-कुञ्ज कहा जाने लगा। वह कुञ्ज अब इसी नामसे विख्यात है।

* * * * *

आर्ति और आश्वासन

पूज्य स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज अनेक बार कहा करते थे कि दूसरोंका सुख सहन कर लो। प्राय: ही उनके समक्ष ऐसे प्रसंग आया करते थे, जब कि सज्जन कहलानेवाले व्यक्तियोंको भी प्रियजनोंका उत्कर्ष चुभने लगता था। जब-जब ऐसे चुभनके प्रसंग सुननेमें आते, स्वामीजी मुक्त स्वरसे यही कहते कि प्रियजनोंके उत्कर्षको देखकर प्रसन्न होनेमें ही मानवकी मानवता है।

ऐसे ही चुभन श्रीमहिला संघकी मंत्रिणी आदरणीया फूल बाईको होने लगी। श्रीमहिला संघमें संकीर्तनका, उत्सवोंका, पूजा-पाठका, उमंग-उल्लासका जैसे-जैसे आधिक्य होता गया, वैसे-वैसे एकमात्र गीता पाठको महत्त्व देनेवाली फूल बाईके प्रति सत्संगी बहिनोंके मनमें वह सहज सम्मान नहीं रह गया, जो उनके प्रति पहले था। श्रीमहिला संघमें आनेवाली सभी बहिनें फूल बाईको सम्मान देती थीं, पर उसके बाद भी फूल बाईको यह अनुभव हो रहा था कि ये बहिनें सम्मानका दिखावा कर रही हैं। उन्हें यह भी स्पष्ट रूपसे दिखलायी दे रहा था कि ये बहिनें रुक्मिणीको अधिक सम्मान देती हैं और स्नेह करती हैं। जिस रुक्मिणीको मैंने श्रीमहिला संघमें प्रवेश दिया, जो मेरे सामने साधन-पथपर अग्रसर हुई, उसी रुक्मिणीके सामने उचित महत्त्वका न मिलना फूल बाईके मनमें काँटेकी तरह चुभ रहा था।

बाईकी बढ़ती हुई लोकप्रियता फूल बाईको असह्य हो रही थी। उद्विग्न फूल बाई बाईको सचेत करती हुई कई बार कहा करती थीं—लड़कियोंको रातमें श्रीमहिला संघके भीतर मत रखा करो। जो कुछ भी उत्सव मनाना हो, कीर्तन करना हो, सब सूर्यास्तके पहले-पहले कर लिया करो।

इस प्रकारके अनेक आदेश-निर्देश-उपदेश बाईको और कीर्तन-सत्संग आदिमें आनेवाली बहिनोंको देनेसे फूलबाई चूकती नहीं थी, परन्तु वे यह भी देख रही थीं कि ये आनेवाली और श्रीमहिला संघमें रहनेवाली बहिनोंके द्वारा उनके आदेश-निर्देश-उपदेशकी कभी कम और कभी अधिक उपेक्षा हो रही है। श्रीमहिला संघके भीतर आत्म-प्रतिष्ठाके प्रश्नपर जो कुछ भी आन्तरिक असन्तोष फूलबाईके मनमें गहरायीके साथ चल रहा था, उसकी जानकारी न तो भागलपुरके वरिष्ठ लोगोंको थी और न ही इसकी सूचना श्रीभाईजीको और

श्रीबाबाको गोरखपुर दी गयी थी। श्रीमहिला संघमें चलनेवाले इस मानसिक-असन्तोषसे बाईका मन अत्यधिक खिन्न था और उन्होंने निश्चय कर लिया कि मैं श्रीमहिला संघमें अब नहीं रहूँगी। श्रीमहिला संघमें रहनेसे भला क्या लाभ, जब कि मातृ स्थानीया फूलबाईको मेरे निवाससे अत्यधिक कष्ट हो रहा है।

बाईका संकल्प था कि मुझे अब श्रीमहिला संघमें नहीं रहना है और भाभीजी सहित अनेक बहिनोंका प्यार भरा आग्रह था, आग्रह ही नहीं, बार-बार मनुहार हो रही थी कि बाई तुमको श्रीमहिला संघमें ही रहना है। इस द्वन्द्वमें पड़ी हुई बाई उदास रहने लगीं। उदासीमें बीतते हुए दिनोंमें अचानक गोरखपुरसे श्रीभाईजीका पत्र आया। अन्तर्यामी श्रीभाईजीको बाईकी उलझन भरी द्वन्द्वात्मक परिस्थितिका आभास मिल गया और बाईको सान्त्वना देनेके लिये श्रीभाईजीका लिखा जो पत्र गोरखपुरसे भागलपुर अचानक पहुँचा, वह इस प्रकार है—

प्रिय रुक्मिणी,

सप्रेम हरिस्मरण। बहुत दिनोंसे तुम्हारा कोई समाचार नहीं मिला। तुमने पत्र भी नहीं लिखा। स्वभाव दोष तथा अस्वस्थताके कारण मैं भी पत्र नहीं लिख सका। तुम स्वस्थ और सानन्द होओगी। नर्बदी प्रसन्न होगी। चन्दा राजी होगी। तुम्हारा भगवत्प्रेमका सत्संग-सुधा-प्रवाह चलता होगा। तुम्हारे कारण वहाँ बहुत सी बहनोंको पारमार्थिक लाभ तथा सात्त्विक आश्वासन प्राप्त हो रहा है। यह भगवान्‌की बड़ी सेवा है। तुमपर भगवान्‌की अत्यन्त अनुकम्पा तथा प्रीति है, तभी तुम्हें ऐसी सेवाका सुअवसर मिला है।

संसारकी सर्वथा विस्मृति तथा भगवान्‌की नित्य निरन्तर अखण्ड मधुर स्मृति रहनी चाहिये। यही सबसे बड़ा लाभ है। वही परम कर्त्तव्य है। ऐसे स्मृतिमय व्यक्तिके पास नित्य-निरन्तर भगवान् रहते ही नहीं, अपना अनुभव कराते रहते हैं।

महिला संघका कार्य ठीक चलता होगा। सबसे मेरा सादर सप्रेम यथायोग्य कहना। फूल बाईजी प्रसन्न होगीं। उनको सादर यथायोग्य कहना। पत्र जरूर देना।

शेष भगवत्कृपा।

तुम्हारा
हनुमान

श्रीभाईजीका पत्र अचानक पाकर बाईका हृदय प्रसन्नतासे भर गया। बाई उनके पत्रका उत्तर न दें, वह कैसे हो सकता है। बाईने इस बार अपने मनकी खिन्नता पूर्ण स्थितिको श्रीभाईजीके सामने स्पष्ट करनेके लिये एक पत्र लिखा। बाईने पत्रमें क्या-क्या लिखा, यह तो श्रीभाईजी ही जाने, परन्तु बाईने अपनी उलझन पूर्ण मन:स्थितिका उल्लेख करके अपना यह निश्चय भी बतला दिया कि यहाँ श्रीमहिला संघमें अब मैं नहीं रहना चाहती।

पुन: श्रीभाईजीने पुन: बाईको पत्र द्वारा बहुत आश्वासन दिया। श्रीभाईजीका जो पत्र आया, वह यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

प्रिय रुक्मिणी,

सस्नेह हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र बहुत समयके बाद मिला। तुमने जो कुछ लिखा उसे पढ़कर हँसी आती है। तुम अपनेको भगवान्‌को समर्पण कर चुकी हो। समर्पण एक ही बार होता है और वह मनका होता है। जब मन उनका है तो वे ही पूरे मालिक हैं उसके। वे मनसे चाहे किसीको भुलाएँ या याद रखाएँ। चाहे किसीमें मनको खिचायें चाहें ऊँबायें। तुम कौन सोचनेवाली, कहने वाली होती हो कि मैं भूल गयी, मैं ऊब गयी। मुझसे लोग ऊब गये। तुम तो कठपुतलीकी भाँति नाचती रहो उनके सूत्रके इशारेपर परवश जड़की भाँति। जरा भी मालकिन बननेकी कल्पना मत करो। वे स्वामी हैं—मनके, बुद्धिके, आत्माके। जीवनमें वे जब जो चाहें करें, जैसे चाहें मनसे करवाये। तुम तो उनकी ओर देखती रहो बस। अपनी ओर देखनेसे उनकी ओर देखनेमें रुकावट आती है। अत: अपनी ओर कभी देखो ही मत। वे भूल गये या भूल जायें, यह प्रश्न तो नहीं बनता। अपने अंगको भूलने या स्मरण रखनेकी कल्पना ही नहीं होती। वह तो अपना है। समर्पित वस्तु उनकी है। तुम तो बस सदा मौज करो। चिन्ता करें वे, सोचें वे, चाहे जैसी व्यवस्था करें वे। अपनी चीज चाहे जैसे व्यवहारमें लावें। हानि होगी तो उनकी, लाभ होगा तो उनका; वे सोचें।

अपने हानि-लाभको और उसके कारण यदि दु:ख-सुख होता हो तो उसको भोगें भी वही। तुम तो आनन्दमें मस्त रहो, उनकी होकर फिर हमें चिन्ता क्यों? उनके चिन्तनमें ही चित्तको अवकाश नहीं

मिलना चाहिये। रही मेरी बात सो मैं तो भूला नहीं हूँ। भूलनेकी कोई कल्पना भी नहीं है।

प्रिय नर्बदी प्रसन्न होगी। उससे मेरा यथायोग्य कहना और सभी महिला संघकी बहिनोंसे सस्नेह यथायोग्य। मेरा शरीर पहलेकी अपेक्षा ठीक है। चिन्ता मत करना। शेष भगवत्कृपा।

तुम्हारा
हनुमान

श्रीभाईजीका पत्र पाकर बाईके मनको बहुत शान्ति मिली, परन्तु श्रीमहिला संघकी परिस्थितिमें कोई सुधार दिखलायी नहीं दे रहा था। बाई हर प्रकारसे फूल बाईको प्रसन्न करना चाहती थी। फूल बाईको जो करना हो करे, पर बाईकी भावना यही थी कि वातावरणमें व्याप्त कटुताका अन्त किसी प्रकार हो जाय—कोई उपाय न देखकर बाईने यह निर्णय लिया कि मुझे कुछ दिनोंके लिये मौन लेना चाहिये। अपने निश्चयको व्यक्त करते हुए भाभीजी, नर्मदा बाई, सावित्री बाई तथा अन्य उपस्थित बहिनोंसे बाईने कहा—मैं मौन लूँगी। कल सूर्योदयसे मैं मौन हो जाऊँगी। मेरी सँभालका दायित्व माँ (अर्थात् नर्मदा बाई) पर रहेगा। मुझे जिस वस्तुकी आवश्यकता होगी, वे दे ही देगीं। भोजनके समय भोजन करा ही देगी। मौनमें मैं न किसीसे मिलूँगी, न बोलूँगी, न देखूँगी और न सुनूँगी।

मौन व्रतकी सूचना सभी बहिनोंको दे देनेके बाद बाईने नर्मदा बाईसे विशेष रूपसे अनुरोध किया—माँ! मैं भोजनके समय भी कोई इशारा नहीं करूँगी। आप बार-बार यह ले-ले, वह ले-ले, क्या दूँ, क्या करूँ आदि आग्रह या प्रश्न मत करियेगा।

मौन व्रतकी सूचना सभीकी भावनाओंको मथ रही थी। सबके धैर्यका बाँध टूटा जा रहा था। बाई अब न जाने कब बोलेंगी? कब हम अपने दुःख-सुखकी बातें कहेंगे-सुनेंगे, यह सब भविष्यके अन्धकारमें छिपा हुआ था। सभी बाईसे मिलनेके लिये उत्सुक हो गयीं। रात्रि भर आनवाली बहिनोंसे मिलने और सान्त्वना देनेका क्रम चलता रहा। सूर्योदय होते ही बाईने मौन ले लिया और कमरेमें जाकर उन्होंने कपाट बन्द कर लिये।

थोड़ी देर बाद बाई कमरेसे बाहर निकलीं। उनके नेत्र भूमिपर गड़े हुए थे। वे भूमिको देखते हुए चल रही थीं। प्रातःकालीन नित्य क्रियासे निवृत्त

होनेके लिये वे स्नान घरमें चली गयीं। अब नित्यका क्रम यह बन गया कि स्नानोपरान्त हॉलमें आकर श्रीबरसानेवालीकी अर्चना करके फिर वे अपने कमरेमें चली जातीं। बाईका यह मौन व्रत इक्कीस दिनतक रहा। बाईने यह मौन हरियाली तीजके आसपास लिया था। इस मौनकी अवधिमें जो-जो उत्सव हुए, बाई नीची नजर किये हुए अपने कमरेसे आती और श्रीबरसानेवालीके युगल चरणोंमें अपने भाव-सुमन समर्पित करके चुपचाप वापस अपने कमरेमें चली जातीं।

श्रीराधाष्टमी महोत्सवका अवसर समीप था, अतः बाई मौन व्रतका विसर्जन करके भागलपुरसे गोरखपुर आ गयीं। बाईको महोत्सवका आनन्द लेनेके लिये तो आना ही था, इसीके साथ अपना दुःख दर्द भी श्रीभाईजीको सुनाना था।

क्या ही संयोगकी बात है कि भागलपुरसे बाई गोरखपुर पहुँचीं, अपने मनकी व्यथा सुनानेके लिये और दूसरी ओर वृन्दावनसे फूल बाई भी पहुँच गयीं अपना दुःख-दर्द सुनानेके लिये। भले फूल बाईने यह बहाना लिया था कि मैं गोरखपुर श्रीराधाष्टमी महोत्सवमें भाग लेने जा रही हूँ, पर भीतरी उद्देश्य तो यही था कि श्रीभाईजीसे बात करके इस रुक्मिणीकी निरंकुशतापर रोकथाम लगायी जाय। फूलबाईने अबतक भिन्न-भिन्न अवसरोंपर मीठे या कड़े शब्दोंमें जो आदेश-निर्देश-उपदेश दिये थे, उनका कोई भी प्रतिफल न देखकर अब एक ही उपाय रह गया था कि यह रुक्मिणी जिन्हें अपना श्रद्धेय मानती है, उन्हींके द्वारा अनुशासित करवाया जाय। फूल बाईके मनमें अब एकमात्र श्रीभाईजीका ही सहारा शेष रह गया था।

महोत्सवके मध्य एक दिन अवसर देखकर बाई और नर्मदा बाई श्रीभाईजीसे कमरेमें एकान्त चर्चा कर रही थीं, उसी समय फूल बाई भी वहाँ पहुँच गयीं। फूल बाईको तो मन चाहा अवसर मिल गया कि रुक्मिणीकी शिकायत रुक्मिणीके सामने ही श्रीभाईजीसे करूँ। श्रीभाईजीके सामने बैठते ही अपना रोष प्रकट करते हुए क्षुब्ध स्वरमें फूलबाईने श्रीभाईजीसे कहना आरम्भ किया किया—भाईजी! लाचार होकर घरकी पोल खोलनी पड़ रही है। आपके सामने यह रुक्मिणी बैठी हुई है, इस रुक्मिणीने आजकल श्रीमहिला संघमें बहुत उपद्रव मचा रखा है। किसीकी कुछ सुनती नहीं है। मेरी बात तो मानो इसके कानमें जाती ही नहीं है। चन्दा भी इसको कुछ कहती नहीं है और

यह नर्बदीने तो इसको अपने सिरपर चढ़ा रखी है। आश्रममें रहनेवाली और आनेवाली हर बहिन मानो इसके हाथकी कठपुतली बन गयी है। पागलोंकी तरह नाचना, गाना, चिल्लाना बस यही इन सबका काम रह गया है। रातमें भी इन्हें नींद नहीं आती। यह रुक्मिणी घर-गृहस्थी वाली स्त्रियोंको भी रातके समय आश्रममें रख लेती है। वे स्त्रियाँ भी अपने परिवार वालोंको कुछ गिनती ही नहीं और पति-पुत्रको भाग्यके भरोसे छोड़कर इसके इशारेपर नाचती रहती हैं। एक बार तो यहाँतक हुआ कि एक स्त्री, जिसके पतिने घरके मुख्य द्वारमें ताला लगा दिया था, वह अपने पतिकी आँखमें धूल झोंककर और आधी रातके समय घरकी दीवाल फाँदकर श्रीमहिला संघ आ गयी।

पहले तो श्रीभाईजी धैयपूर्वक फूल बाईकी बातें सुनते रहे, परन्तु जब उनको ऐसा लगा कि क्षुब्ध फूलबाईका ध्यान मर्यादाकी ओरसे हट रहा है, तब श्रीभाईजीको बोलना पड़ गया—बाई! यह कौन-सी नयी बात हो गयी? भगवान् श्रीकृष्णके प्रति जब अनुराग बढ़ जाता है, तब लोक-धर्म किनारे पड़ जाते हैं। यही बात श्रीकृष्णानुरागिणी गोपियोंमें पायी जाती है। उनका जीवन इसका प्रमाण है। स्वयं देवर्षिने कहा है—"यथा ब्रजगोपिकानाम्" और व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजीने यही बात राजर्षि परीक्षितके समक्ष कही है।

श्रीमद्भागवतमें आया ही है—

या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा।
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥

धन्य हैं ये व्रज-गोपियाँ, जिन्होंने बड़ी कठिनतासे छोड़े जानेवाले बन्धुओंको और सनातन (मर्यादा) धर्मको त्यागकर उस मुकुन्द पदवीका अनुसरण किया है, जो श्रुतियों द्वारा खोजी जाती है (परन्तु प्राप्त नहीं होती)। गोपियोंने भी आर्य-पथकी उपेक्षा कर दी थी। फूल बाई! मैं तुमसे ही यह प्रश्न करता हूँ कि ये बहिनें नृत्य तो करती हैं, परन्तु क्या इनका नृत्य पुरुषोंके साथ होता है?

सहमते हुए फूलबाईने कहा—नहीं।

श्रीभाईजीने फिर पूछा—वह सब बहिनें इकट्ठी होकर क्या एक दूसरेकी निन्दा-चुगली करती हैं?

अपनी शिकायतको सिद्ध करनेका प्रयास करते हुए फूलबाईने कहा—

ये निन्दा-चुगली करें तब, जब इन स्त्रियोंको नाचने, गाने, चिल्लानेसे फुरसत मिले। ये किसीको क्या कहें और किसीकी क्या सुनें? इन सबको तो सोने, खाने, पीनेका होश ही नहीं रहता, फिर मेरी-तेरी बात इनके कानोंमें कैसे पहुँच पायेगी? दुनियादारीसे ये लोग कोई सम्बन्ध ही नहीं रखतीं। भाईजी! सेठजीने गीताजीका पाठ-अध्ययन-मनन करनेके लिये कहा था, पर ये लोग गीताजीको तो उठाकर रख दीं और सत्संगमें चैतन्य-चरितावली पढ़ती रहती हैं।

श्रीभाईजी खिलखिला कर हँस पड़े और बोले—फूल बाई! ये उपन्यास तो नहीं पढ़ती? चैतन्य चरितावली ही पढ़ती हैं ना! गौरांगदेव कोई साधारण पुरुष थे क्या? आपको इतना उद्वेग क्यों हो रहा है? रुक्मिणीको तो मैं समझा दूँगा, पर आश्रममें कीर्तन, सत्संग नहीं होगा तो और क्या होगा? सत्संग, कीर्तन, भक्त-गाथाका वाचन जितना बढ़े, उतना ही अच्छा है।

आदरणीया फूलबाईने सोचा था कि श्रीभाईजीके सहारे रुक्मिणीको नियन्त्रित-अनुशासित करनेमें भरपूर सफलता मिल जायेगी, पर यहाँ भी उन्हें हताश होना पड़ा। बातचीतके प्रवाहको अनुकूल न देखकर फूल बाईने कोई और बात चला दी और थोड़ी देर बाद श्रीभाईजीके पाससे चली आयीं।

अब पुनः भाईजीके पास रह गयीं बाई और नर्मदा बाई। बाई रो-रोकर श्रीभाईजीसे कहने लगीं—भाईजी! माताजी (फूल बाई) को मुझसे बहुत कष्ट होता है। मेरा श्रीमहिला संघमें रहना इनको बुरी तरह चुभ रहा है। मैं भागलपुर नहीं जाऊँगी।

श्रीभाईजीने प्यारपूर्वक कहा—मान लिया कि एक फूल बाईको कष्ट होता है, पर यह तो देखो कि तुम्हारे द्वारा सैकड़ों बहिनोंको आध्यात्मिक लाभ मिल रहा है। तुम्हारे लिये श्रीमहिला संघ ही उपर्युक्त स्थान है और तुम्हें वहीं रहना चाहिये।

श्रीभाईजीके ऐसा कहते ही बाई और फूट-फूटकर रोने लगीं और बोलीं—मैं आपके चौकेके बर्तन मल दूँगी; गेहूँ चुन दूँगी, घरमें झाड़ू लगा दूँगी, और जो भी काम होगा कर दूँगी, पर भागलपुर नहीं जाऊँगी।

श्रीभाईजीने बड़े विनम्र स्वरमें कहा—मैंने तुम्हें वहाँ कुछ सोचकर ही रख रखा है।

अब बाईकी भाव-धाराने एक नया ही मोड़ लिया। मनका क्षोभ रोषमें बदल गया और अधिकार भरे स्वरमें बोली—आपके यहाँ इतने लोग रहते हैं।

जो भी आपके पास आता है, आप उसे अपने पास रख लेते हैं। क्या एक मुझे अकिंञ्चनाके लिये ही आपके पास जगह नहीं है? क्या मैं इतनी गयी गुजरी हूँ? मैं भागलपुर तो नहीं ही जाऊँगी, आप नहीं रखना चाहते हैं तो मुझे वृन्दावन भेज दीजिये।

बाईकी अत्यधिक विकल मन:स्थितिको देखकर श्रीभाईजीने यही उचित समझा कि एक बार इस चर्चाको विराम देना चाहिये। उस समय तो श्रीभाईजीने किसी तरह समझा-बुझाकर बाईको निवास स्थानपर भेज दिया। श्रीभाईजीके पाससे नर्मदा बाईके साथ बाई अपने कमरेमें चली आयीं। वह चली तो आयीं, पर अन्तरमें विचारोंकी आँधी पूर्ववत् थी। बाईकी चिन्तन-धारा यही थी—यह ठीक है कि श्रीमहिला संघमें मेरे द्वारा मानसिक या शारीरिक या व्यावहारिक स्तरपर कोई भी अभद्र या अशिष्ट अनुचित कार्य नहीं हुआ है, इसके बाद भी मेरा रहना माताजी (फूल बाई) को अत्यधिक कष्टप्रद हो रहा है। उन्हें कष्ट होता है तो मैं रहूँ ही क्यों? बस, श्रीभाईजी एवं श्रीबाबाकी ममतामयी छायामें रहते हुए मैं अपने जीवनके शेष दिन यहीं गीतावाटिकामें गुजार दूँगी।

गीतावाटिकाके समक्ष स्थित नयी कोठीके एक कमरेमें बाई रहने लगीं। क्रमशः एकके-बाद-एक दिन और सप्ताह बीतने लगे। धीरे-धीरे बाईका मन भी शान्त होने लगा। श्रीभाईजीने भी भागलपुर जानेके सम्बन्धमें पुन: कोई बात नहीं की। भागलपुरसे भाभीजीके पत्र श्रीभाईजीके पास समय-समयपर आ रहे थे कि रुक्मिणी बाईको आप श्रीमहिला संघके लिये भागलपुर भेज दीजिये। उसके बिना यह उजड़ रहा है। भागलपुरसे ऐसे पत्र लगातार आनेके बाद भी पूज्य भाईजीने भागलपुर जानेके सम्बन्धमें कोई चर्चा बाई या नर्मदा बाईसे चलायी ही नहीं। श्रीभाईजी द्वारा भागलपुर जानेवाली बातका न उठाया जाना भी सहैतुक था। श्रीभाईजी अपनी खुली आँखोंसे देख रहे थे कि रुक्मिणी बाईका जीवन कितना भक्तिमय और रसार्द्र है। बाईके पास तो भागलपुरसे पत्र आते ही थे, परन्तु उन्हें यह भी पता था कि श्रीभाईजीके पास भी भागलपुरसे पत्र आ रहे हैं और उन पत्रोंमें बार-बार यही अनुरोध किया जा रहा है कि रुक्मिणी बाईको भागलपुर भेजना चाहिये। इन पत्रोंके आनेके बाद भी श्रीभाईजीके मौनको देखकर बाईने अनुमान लगा लिया कि मेरे गोरखपुर रहनेके विषयमें श्रीभाईजीकी सहमति है। इस प्रकार रहते-रहते सात मास बीत गये।

अपने पत्रोंका समुचित उत्तर न पाकर भाभीजीके मनमें बड़ी उथल-पुथल

मची हुई थी। अन्तमें उन्होंने गोरखपुर जाकर प्रार्थना करनेका निश्चय किया। भाभीजी अपने साथ ज्ञान बाईको तथा एक-दो बहिनोंको लेकर गोरखपुर आयीं और एकान्तमें श्रीभाईजीसे बातचीत की। श्रीमहिला संघकी दीन-हीन दशाको बतलाकर भाभीजीने कहा—आप रुक्मिणीको यहाँ रख लेंगे तो श्रीमहिला संघका काम कैसे चलेगा?

श्रीभाईजीने अपनी लाडिली रुक्मिणीका पक्ष लेते हुए कहा—रुक्मिणी तो नहीं जायेगी।

रुक्मिणी बाईके बारेमें श्रीभाईजीने जो कहा, वह उचित ही कहा गया। श्रीभाईजीने स्वयं अपने स्वरचित पदमें लिखा है—

नंदसुवन-सेवा ही सब कौ परम चरम फल।
बिना दाम घनश्याम-हाथ बिकिबौ अति मंगल॥
स्याम-चरन कौ एक भरोसौ कबहुँ न तजियो।
अग-जगकी चिंता बिसारि गोपालै भजियो॥

इन चार पंक्तियोंमें श्रीकृष्ण-भक्तिके जिस आदर्शको आख्यापित किया गया है, वही इन दिनों बाईके जीवनमें मूर्तिमान था। 'जुगल-कृपा ते लही जो दुर्लभ कृष्न-मिताई' उस मिताईमें खटाई डालनेसे क्या लाभ? अच्छा है कि रुक्मिणी उसी भक्ति-भावनामें डूबी रहे। यह दृष्टिकोण था श्रीभाईजीका, परन्तु श्रीभाईजीके उस उत्तरको सुनकर भाभीजी बहुत चिन्तित हो गयीं। प्रत्युत्तर स्वरूप उनको न कुछ सूझ पाया और न वे कुछ बोल पायीं। सरल हृदया भाभीजी बोलें भी तो क्या बोलें? यह उत्तर उनके मनकी भावनापर वज्रपातके समान था। एक बार तो वे श्रीभाईजीके पाससे उठकर चली आयीं। भाभीजीको भला चैन कहाँ? उनके मनको श्रीमहिला संघका प्रश्न गहरे रूपसे मथ रहा था। अत्यधिक मथित और व्यथित हृदय लिये हुए भाभीजी पुनः पहुँच गयीं श्रीभाईजीके पाास और इस बार उनके साथ भागलपुरसे आयी हुई बहिनें भी थीं। भाभीजीने बड़े करूण स्वरमें आँचल फैलाकर आर्तिपूर्वक याचना करते हुए श्रीभाईजीसे कहा—भाईजी! श्रीमहिला संघको उजड़नेसे बचा लीजिये। यदि नहीं बचायेंगे तो फिर नष्ट ही हो जायेगा। मैं किसी भी स्वार्थको लेकर यह प्रार्थना नहीं कर रहीं हूँ। रुक्मिणीके रहनेसे भागलपुरमें जो भक्ति भावका प्रवाह आया, वह अब बिल्कुल सूख जानेवाला

है। जिस भगवद्‌भक्ति और भगवन्नामके प्रसार और प्रतिष्ठाका उद्देश्य लेकर आप यहाँ बैठे हुए हैं उसी कार्यको आगे बढ़ानेके लिये मैं रुक्मिणीकी याचना कर रही हूँ।

भाभीजीकी दर्द भरी पुकार, पुकार नहीं गुहारने भाईजीको हिला दिया। वे पसीज गये। कुछ भी हो, भाईजी हैं तो संत-हृदय ही। यह परिवर्तन भाईजीके भीतर-भीतर चुपचाप हो रहा था। भाईजीके भीतर होनेवाले इस परिवर्तनसे बेखबर, परन्तु साथ ही बेसबर वे साथवाली बहिनें तो रो-रो करके भाभीजीके स्वरमें स्वर मिलाते हुए कहने लगीं—हमारे तो बाई बिना सब सूना हो गया। सब बिना प्राणका-सा हो गया। हम तो आपसे जीवनकी भीख माँग रही हैं। बाईको भेजकर हमें जीवनका दान दीजिये।

उन बहिनोंका विकल रोदन और उनके करुण आँसू श्रीभाईजीके कोमल हृदयके लिये असह्य थे। कल्पवृक्ष स्वरूप श्रीभाईजीने आश्वासन देते हुए कहा—तुमलोग विकल मत होवो। मैं प्रयास करूँगा कि रुक्मिणी भागलपुर चली जाये।

बस! बस! यही आश्वासन तो भाभीजी सुनना चाहती थीं। 'सूखत धान परा जनु पानी।' वे मुदित मनसे श्रीभाईजीके पाससे लौट आयीं और उस क्षणकी प्रतीक्षा करने लगीं जब श्रीभाईजी भागलपुर जानेके लिये बाईसे कहेंगे। अगले दिन श्रीभाईजीने बाईको बुलाया, साथमें नर्मदा बाई भी थीं। श्रीभाईजीके कमरेमें पलंगके सामने बाई और नर्मदा बाई बैठ गयीं और श्रीभाईजीने कमरेके कपाट बन्द कर लिये। पुनः खाटपर बैठते हुए श्रीभाईजीने बाईसे कहा—तू वृन्दावन जाना चाहती है न!

अब चाहे गुरु-शिष्यका सम्बन्ध मान लें अथवा पिता-पुत्रीका भाव मान लें, बाई संकोच रहित होकर खुले मनसे उन्मुक्त स्वरमें श्रीभाईजीसे कहने लगीं—हाँ! मैं वृन्दावन जाना चाहती हूँ। यदि आप यहाँ नहीं रखेंगे तो मेरा कोई दवाब तो है नहीं, फिर क्या करूँगी? तब तो वृन्दावन जाना ही पड़ेगा, परन्तु इतना तो निश्चित है कि मैं भागलपुर जाऊँगी ही नहीं! मेरा रहना किसीको कष्टदायक क्यों बने? उस रहनेको धिक्कार है। जैसे मैं अभी यहाँ रही थी, उसी प्रकार आपकी गोदमें खेलती हुई और आपकी छायामें रहती हुई यहाँ हमेशाके लिये रहना चाहती हूँ, परन्तु यहाँ रहनेमें भी कोई बाधा हो तो फिर वृन्दावन ही चली जाऊँगी।

बाई जो बात एक ही साँसमें कह गयीं, उसको श्रीभाईजीने सुन लिया, पर जैसे-जैसे वे कहती जा रही थीं, वैसे-वैसे श्रीभाईजीके मुख-मण्डलपर गाम्भीर्य बढ़ता जा रहा था। श्रीभाईजीके चेहरेपर गम्भीरता पूरी तरह छा गयी। उनके भीतर कोई विशेषावेश सक्रिय हो उठा था। गम्भीर स्वरमें आदेश देते हुए श्रीभाईजीने बाईसे कहा—

अब तू मेरी बात सुन! ध्यान देकर सुनना। तुमको भागलपुर जाना है। तुम वृन्दावन जाना चाहती हो ना! भागलपुरके श्रीमहिला संघमें ही तुम्हारे लिये श्रीधाम वृन्दावनका प्राकट्य हो जायेगा। तू मेरी बातपर विश्वास कर। मेरी वाणी व्यर्थ नहीं जायेगी। तुम स्वयं देखोगी कि श्रीमहिला संघकी दीवाल-दीवालमें खम्भे-खम्भेमें मैं ही हूँ। मेरे पास चन्दा आयी थी। वह बहुत रो रही थी। मैं तुमको भागलपुर नहीं भेजता, परन्तु उसका रोना भी तो मैं नहीं देख सकता। विवश होकर तुमको भेजना पड़ रहा है।

श्रीभाईजीके आदेशका अनादर या उपेक्षाकी कल्पना भी अब कठिन थी। बाईके लिये तो उनका आदेश सर्वोपरि था ही और अब तो यह आश्वासन भी मिल गया था कि भागलपुरके श्रीमहिला संघमें श्रीवृन्दावनका प्राकट्य हो जायेगा। भावोंके चढ़ाव-उतारसे अतीत होकर अति विनीत बाई उस आदेशको सिर माथे रखकर अपने कमरेमें चली आयीं।

श्रीभाईजीने श्रीमहिला संघके स्थान और वातावरणको पारमार्थिक दृष्टिसे उज्जवलतर बनानेकी दृष्टिसे कुछ नियम लिखकर भाभीजीको दिये और कहा कि आश्रमवासी बहिनें और आश्रममें आनेवाली बहिनें, सभी इन नियमोंका पालन करें। वे नियम इस प्रकार हैं—

श्रीमहिला संघके नियम

१. श्रीमहिला संघका सारा कार्य भगवत्प्रेम सम्पादनके उद्देश्यसे ही हो।

२ श्रीमहिला संघमें पुरुषका बेकाम आना और रहना निषिद्ध है।

३. संघमें जो महिलाएँ रहती हैं तथा जो नयी भरती हों वे व्यर्थ एक पल भी न खोकर अपनेको नियमित स्वाध्याय, जप, सत्संग और सेवा तथा अनवरत नाम स्मरणमें लगाये रखें। आलस्य, प्रमादको जरा भी स्थान न दें। आपसमें अत्यन्त प्रेम भरा विनम्र व्यवहार करें।

४. यथासाध्य संघकी सेवाका काम उत्साहपूर्वक करें। ऐसा संयम तथा सदाचार पूर्ण भक्ति प्रेममय, विनीत तथा सेवा परायण सादा-सीधा आदर्श जीवन बितायें, जिससे उनको तो शान्ति तथा भगवत्प्राप्ति हो ही, दूसरी महिलाएँ भी उनके जीवनसे शिक्षा लेकर भगवत्प्राप्तिमें, पवित्र मार्गमें लगें।

५. घरवालोंकी न्याय इच्छाके विरुद्ध किसी महिलाको संघमें न रखा जाय।

६. रात्रिको वही महिला रहें जो संघमें ही निवास करती हों। रात्रिको दस बजेके बाद बाहरकी कोई महिला न रहें। एकादशी आदि विशेष कीर्तनके दिनोंमें घरवालोंकी अनुमतिसे रह सकती हैं।

७. महिलाएँ नियत कीर्त्तन-सत्संग अवश्य करें।

हनुमान

(श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार, कल्याण सम्पादक)

श्रीमहिला संघमें पालनीय नियमोंको लिखकर श्रीभाईजीने भाभीजीको दिया और साथ ही अत्यधिक प्यारमें भरकर उनसे कहा—चन्दा! देख; मैं मेरे हृदयका एक अमूल्य रत्न तुम्हें सौंप रहा हूँ। तुम इस रुक्मिणीको सँभालकर रखना।

श्रीभाईजीके ये भाव-भरे उद्गार भाभीजीके हृदय-पटलपर सदाके लिये अंकित हो गये। उस समय भाभीजी कुछ अधिक बोल तो नहीं पायीं, किन्तु उनके दिलकी एक-एक धड़कनमें श्रीभाईजीके शब्द अनुगुञ्जित हो रहे थे। भाभीजीके शरीरका एक-एक रोम संकल्प ले रहा था कि श्रीभाईजी द्वारा दिये गये रत्नकी सँभालके लिये मैं सर्वस्व की आहुति दे दूँगी। भाभीजीका हृदय पुकार-पुकार कर कह रहा था, न जाने किस-किस जन्मका कौन-कौन-सा पुण्य उदित हुआ है, जो श्रीभाईजीने रुक्मिणी बाईको देते हुए इन उद्गारोंको व्यक्त किया।

अब भागलपुर जानेकी तैयारी होने लगी। जानेका दिन भी समीप आ गया। श्रीबाबासे भी मिलना आवश्यक था। भाभीजी, नर्मदा बाईके साथ बाई श्रीबाबाको प्रणाम करनेके लिये गयीं। भाभीजी, नर्मदा बाई और बाई तथा अन्य बहिनें श्रीबाबाके पास जा तो रही थीं, पर भाभीजी मनमें सहमी हुई थीं। वे जानती थीं कि फूल बाई अभी शान्त नहीं बैठी हैं और रुक्मिणी बाईके विरुद्ध उनके प्रयास चालू हैं। उनके मनमें आशंका थी कि भागलपुरसे जब-तब

आनेवाले कुछ व्यक्तियोंने श्रीबाबाके कानोंको सम्भवतः भर देनेकी कोशिश की होगी। भाभीजीके सशंकित मनका भय सही निकला। ज्यों ही ये लोग श्रीबाबाको प्रणाम करने बैठीं, श्रीबाबा तो रुक्मिणी बाईपर बरस पड़े। वे बरसते हुए बोले—क्यों बहिन! अपनी सिद्धाईका प्रचार शुरू कर दिया? अनेक प्रकारकी चर्चायें मेरे कानतक आ रही हैं कि कीर्तन-मण्डलीके रूपमें तुम्हारी शिष्य-संख्याका बड़ा विस्तार हो रहा है।

श्रीबाबा बोलते जा रहे थे और रुक्मिणी बाई चुपचाप सुनती जा रही थीं। संतोंके खेल विचित्र हुआ करते हैं। ये चतुर संत एक ही तीरसे कई निशाने सिद्ध करते हैं। श्रीबाबाके मनके भीतर बाईके लिये प्यार लबालब भरा हुआ था और वे जानते थे कि मेरी बहिन रुक्मिणी भगवती गंगाकी तरह परम-निर्मल और परम-पवित्र है। मेरी बहिन रुक्मिणीके परम-धवल-जीवनपर कोई नजर न लगा दे, इसीलिये श्रीबाबाका वह बरसना एक दिखावा था। दिखावेका उद्देश्य लेकर श्रीबाबाका वह बरसना इतना प्रखर था कि एक बार भाभीजी भी थोड़ी देरके लिये संत्रस्त हो उठीं। भाभीजी मन-ही-मन प्रश्न कर रही थीं कि नितान्त-निर्दोष रुक्मिणीके प्रति श्रीबाबा यह क्या बोल रहे हैं। संत्रस्त भाभीजी श्रीबाबाके इस 'खेल' का मर्म समझ ही नहीं पायीं। वस्तुतः बरसनेका यह खेल एक प्रकारसे 'डिठौना' ही था, श्रीबाबाकी परमोज्जवल-जीवना बहिनीकी ओर कोई अँगुली न उठा सके। बरसनेका नाटक करके यदि श्रीबाबाने एक ओर अपचर्चा करनेवालोंका मुँह बन्द कर दिया, तो दूसरी ओर उनका यह भी प्रयास था कि अपचर्चाके फलस्वरूप सत्त्व सम्पन्ना 'सहोदरा' के ऊपर कोई रज-कण उठकर और उड़कर लग गयी हो, तो उसे भी झाड़-पोंछ कर, धो करके स्वच्छ कर दिया जाय। बस, इसीलिये तो श्रीबाबाने बरसनेका अभिनय किया था।

श्रीबाबाने अपने ढंगसे 'पोंछने, धोने' का जो ढंग अपनाया था, उस ढंगके अनुसार वे प्रखर शब्दोंमें बोलते चले जा रहे थे और बाई नीची नजर करके सब सुनती जा रही थीं। कुछ क्षणोंके बाद ही श्रीबाबा एकदम शान्त हो गये और पूर्णतः स्व-स्वरूपमें स्थित होकर मधुर स्वरमें अपनी सहोदरा बहिन (रुक्मिणी बाई) से विनोदका पुट लगाते हुए कहने लगे—बहिनी! मेरे डाँटनेसे तुम्हारी सिद्धाईमें कोई कमी आ गयी क्या? या तुम्हारी श्रद्धा भावनामें कुछ अंतर आ गया? ऐ बहिनी! सत्य कुछ और है। कई बार ऐसा भी होता है

कि जब मैं किसीको डाँटता हूँ तो उन शिकायत करनेवालोंपर नजर रखते हुए ही मैं कभी-कभी डाँटनेका नाटक करता हूँ। मैं जानता हूँ, तुम परम निर्मल हो और विश्वास कर, मैं नित्य तेरे साथ हूँ।

पूज्य बाबाके इन उद्‌गारोंको सुनकर भाभीजीकी भावनाको बड़ा चैन मिला और तभी बाबा चन्दा बाईकी ओर उन्मुख होकर प्यारमें उमड़ते हुए बोले—'चन्दा बहिन! रुक्मिणी मेरे हृदयकी मणि है। इसे मैं ही स्वच्छ करता हूँ। जैसे हीरेको जौहरी ही स्वच्छ कर सकता है, वैसे ही मैं इसको सँवारता हूँ। लेकिन तुमलोगोंको इसे डाँटनेका कोई अधिकार नहीं है। चन्दा बहिन! तुम इसे ले तो जा रही हो, पर रखना बहुत सभाँल कर। यह मेरी सहोदरा बहिन है। मैं निरंतर इसके साथ रहता हूँ। यह भगवती गंगाके समान परम पवित्र है। यह मेरे हृदयकी मणि है। इसे मैं तुम्हें सौंप रहा हूँ। रखना सँभाल कर। प्राणोंकी बाजी लगाकर सँभालना।'

श्रीबाबाने तो वही कह दिया, जो बाईको सौंपते हुए श्रीभाईजीने कहा था। भाभीजीके दिलकी एक-एक धड़कनमें और शरीरके एक-एक रोममें जो चिन्तन और संकल्प था, उसपर एक स्थायी मोहर लगा दी श्रीबाबाके इन उद्‌गारोंने। भाभीजीका बाह्याभ्यन्तर बलिहार था श्रीबाबाके आदेश पर। समर्पित हृदया भाभीजी रह-रहकर करके अपने सौभाग्यकी मन-ही-मन सराहना कर रही थीं कि श्रीभाईजीके समान श्रीबाबाने भी मुझे बड़ा सम्मान दिया और मुझे परम निज-जन मानकर अपनी परम-निधि सौपी। भाभीजीके आन्तरिक उल्लासकी सीमा नहीं थी। आन्तरिक उल्लासके साथ आन्तरिक संतोष भी था कि बाई उनके साथ भागलपुर जायेंगी।

* * * * *

अन्र्मुखता और एकान्तप्रियता

भाभीजी, नर्मदा बाई तथा अन्य बहिनोंके साथ रुक्मिणी बाई जिस दिन भागलपुर पहुँचीं, उसके कई दिन पहले ही यह समाचार भागलपुर पहुँच चुका था कि बाई गोरखपुरसे भागलपुर आनेवाली है। बाईका मन आनेका नहीं था, परन्तु श्रीभाईजीके आदेशको शिरोधार्य करके बाई भागलपुर आ रही हैं और आ रही हैं श्रीमहिला संघके लिये। जिस क्षण यह समाचार भागलपुर पहुँचा, कानों-कान सभी बहिनों तक यह बात फैल गयी। अब सबके हृदयमें आनन्दका उफान आ गया। सब अपने-अपने मनमें मीठे-मीठे सपने सँजोने लगीं कि वही कीर्तन, वही नृत्य, वही उत्सव, वही उल्लास पुनः उमड़ पड़ेगा। सब आतुरतापूर्वक बाईकी प्रतीक्षा कर रही थीं और उनके भागलपुर पहुँचते ही सबने बड़े उल्लसित मनसे बाईका स्वागत किया।

स्वागत-सत्कार करनेमें, गले-से-गले मिलनेमें, मनकी कहने-सुननेमें कुछ दिन निकल गये, परन्तु यह क्या हुआ? कीर्तन-मण्डलीकी बहिनोंको तथा जिनको भी बाईसे कुछ लगाव था, वे खिन्न होकर सोचने लगीं—क्या हमारा सपना अब सपना ही रह जायेगा? हम सबने तो यह सोचा था कि बाईके आते ही, बाईके संग राग-रंगका रस बरसने और बहने लगेगा, परन्तु बाईका ढंग तो कुछ और ही है।

भागलपुर आनेके बाद बाईकी परिवर्तित दिनचर्या और अन्तर्मुखी वृत्तिने सभी बहिनोंकी भावनाको झकझोर दिया था। इन दिनों बाईकी उपरामता क्रमशः बढ़ती जा रही थीं। मिलना-जुलना रुचिकर नहीं लग रहा था। उनका अधिकांश समय एकान्तमें व्यतीत होता था। आदेश-निर्देश न्यूनतम हो गये थे। प्रेरणा-प्रोत्साहनकी कोई चर्चा ही नहीं थी। सभी बहिनोंको यह उपरामता बड़ी खल रही थी। जिन बहिनोंको बाईके साथ कीर्तन करनेकी, नाचनेकी, गानेकी, उठने-बैठनेकी चटक लग गयी थी, वे सब आ-आ करके बाईको देखतीं और मन-ही-मन प्रश्न करतीं कि बाईको क्या हो गया है? उन बहिनोंके भिन्न-भिन्न प्रकारसे प्रयास होने लगे कि बाईका वह हास, वह परिहास, वह विहार पूर्ववत् हो जाये। एकने अपनी सहेली बहिनोंको सुझाव देते हुए कहा—अरी!

तू मन मारकर क्यों बैठी हुई है ? कीर्तन करो। जोर-जोरसे करो। बाईको कीर्तन अत्यधिक प्रिय है। कीर्तनकी तुमुल ध्वनि उनको हमारे बीच खींच ही लायेगी। चलो कीर्तन करें।

यह सुझाव सबको जँच गया और श्रीमहिला संघके हॉलमें बहिनोंने राधे-राधेका कीर्तन उच्च स्वरसे आरम्भ कर दिया। कीर्तन बहुत देरतक होता रहा, तब भी बाईका आना नहीं हुआ। कीर्तन करते-करते एक बहिन बाईके पास ऊपरवाले कमरेमें पहुँच गयी और कीर्तनमें चलनेके लिये आग्रह करने लगी। उस आग्रहका सम्मान करनेके लिये बाईने किञ्चित मुस्कुरा दिया, पर वह आग्रह उनको ऊपरसे नीचे उतार लानेमें सफल न हो सका। इस प्रयासको असफल देखकर भी वे बहिनें हार मानने वाली नहीं थीं। एक तो उन्हें पहले वाली चटक लगी हुई थी और दूसरी वे यह जानती थीं कि हमारी बाई नितान्त सरल-स्वभाव और कोमल-हृदया हैं। बाईका हम सभी पर बड़ा प्यार है, अतः अपनेको कोई और उपाय करना चाहिये। दूसरी बहिनने कहा—श्रीराधा-कृपा-कटाक्षका पाठ करना चाहिये, इससे बाई जरूर जा आयेंगी।

तीसरीने कहा—षोडशगीतका पाठ करना चाहिये। षोडशगीत श्रीभाईजीकी रचना है और वे बाईके श्रद्धेय हैं, अतः श्रद्धेयकी रचना सुनकर मनमें कुछ तो प्रतिक्रिया होगी ही। उसमें भी षोडशगीतमें प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-कृष्णके पारस्परिक प्रेममय-संलाप है। उस प्रेम-संलापसे भावित होकर वे अवश्य आ जायेंगी।

चौथी बहिनने श्रीरासपञ्चाध्यायीके पाठका सुझाव दिया। इस प्रकार कोई बहिन कोई सुझाव देती और कोई बहिन कोई सुझाव देती। इन सुझावोंके अनुसार कीर्तन, गायन, पाठन, नर्तन आदि करके देख लिया गया, परन्तु कोई भी प्रयास बाईकी अन्तर्मुखी वृत्तिमें कमी नहीं ला पाया। बाईकी बढ़ती हुई एकान्त प्रियता देखकर सभी बहिनें व्याकुल हो उठीं। अब एक ही और अन्तिम उपाय रह गया था, मन्दिरमें श्रीबरसानेवालीके समक्ष बैठकर आँसू बहाना। सबका विश्वास था कि ये आँसू अपना असर दिखलायेंगे, किन्तु आश्चर्य यह हुआ कि आँसुओंकी यह गंगा-यमुना भी बाईकी गम्भीर मनःस्थितिमें कोई परिवर्तन नहीं ला पायी।

गोरखपुरसे आनेके बाद भाभीजीने भी मन-ही-मन ऐसा मान रखा था कि बाईके भागलपुर आते ही महिला संघमें पूर्ववत् कीर्तन और उत्सवकी उमंग

छा जायेगी और इस भावनाको लेकर ही भाभीजीने बाईको भेज देनेके लिये श्रीभाईजीसे प्रार्थना की थी, पर यहाँ तो रंग-ढंग ही दूसरा था। नवीन विकासने भाभीजीको सचिन्त बना दिया। भाभीजी यह देखकर आश्चर्य कर रही थीं कि बहिनों द्वारा भिन्न-भिन्न समयपर भिन्न-भिन्न रूपमें किये गये सारे प्रयास जो कभी भी व्यर्थ नहीं हुए, आज सर्वथा असफल क्यों हो रहे हैं? इस असफलताके पीछे क्या कारण है? यह सब जाननेके लिये भाभीजीका मन बड़ा ही आतुर हो रहा था। मन आतुर था, पर कोई समाधान मनको नहीं मिल रहा था। चिन्ताकुला और उत्सवातुरा भाभीजी प्रतिदिन निरख रही थी और प्रतिक्षण परख रही थीं, किन्तु निरख-परख करके भी तथ्यकी तहमें पहुँच नहीं पा रही थी कि बाईमें यह परिवर्तन कैसा और क्यों हो रहा है? श्रीमहिला संघकी अन्य बहिनोंने भी अपनी-अपनी मान्यता और भावनाके अनुसार कीर्तनानन्द और उत्सवायोजनके सपने सँजो रखे थे, परन्तु अपने-अपने सपनोंमें डूबी हुई उन बहिनोंका ध्यान जा ही नहीं रहा था कि हमारी श्रद्धेया बाईके भीतर भी भावोंका कोई चढ़ाव-उतार हो सकता है। चाहे भाभीजी हों, चाहे अन्य बहिनें हों, सबकी अपनी भिन्न-भिन्न चाह थी, भिन्न-भिन्न चाव था और इस चाह-चावकी चटकमें वे अनुमान ही नहीं लगा पा रही थी कि बाईके भीतरकी कोई चटपटी लगी हुई है—

जग में कोउ न संगी-साथी, कोउ न बूझन हारौ।
अपने-अपने पंथ चलत सब, पंथ सबनि को न्यारौ॥

पूर्व अध्यायमें यह इशारा किया जा चुका है कि श्रीभाईजीने बाईकी दैनिक जीवन-चर्याका सात-आठ मासतक अवलोकन करनेके बाद ही भाभीजीके अनुरोधका प्रतिरोध करते हुए कह दिया कि रुक्मिणी भागलपुर नहीं जायेगी। श्रीभाईजी द्वारा ये शब्द बाईके जीवनको देख करके ही कहे गये थे। जिस प्रकार श्रीभाईजी बाईके जीवनको देख रहे थे, उसी प्रकार बाई भी श्रीभाईजीके जीवनको देख रही थीं कि ये किस प्रकार सोलह-सोलह घण्टे समाधिस्थ बैठे रहते हैं। सिरपर कल्याणके सम्पादनका भार है, परिवारके दायित्वका भार है, अनेक साधको-संतोंकी सँभालका भार है, देशमें चलेनवाली विविध गतिविधियोंके संचालनका भार है, उसके बाद भी श्रीभाईजी सबसे अलग होकर, जगतसे ऊपर उठकर श्रीप्रिया-प्रियतमके लीला-सिन्धुमें ऐसे निमग्न हो जाते हैं कि खाना-पीना, सोना-जागना, उठना-बैठना, कहना-सुनना, लेना-देना सर्वथा विस्मृत हो

जाता है। लीला-सिन्धुमें डूबे हुए श्रीभाईजीने अपनी उस चिन्मयी स्थितिका यत्किञ्चित् संकेत अपने स्वरचित पदमें स्वयं ही किया है—

हटे वह सामने से, तब कही मैं अन्य कुछ देखूँ।
सदा रहता बसा मन में तो कैसे अन्य को लेखूँ?
उसीसे बोलनेसे ही मुझे फुरसत नहीं मिलती।
तो कैसे अन्य चर्चा के लिये फिर जीभ यह हिलती?
सुनाता वह मुझे मीठी रसीली बात है हरदम।
तो कैसे मैं सुनूँ किसकी, छोड़ वह रस मधुर अनुपम?
समय मिलता नहीं मुझको, टहलसे एक पल उसकी।
छोड़कर मैं उसे, कैसे करूँ सेवा कभी किसकी?
रह गयी मैं नहीं कुछ भी किसी के काम की हूँ अब।
समर्पण हो चुका मेरा जो कुछ भी था उसी के सब॥

बाई श्रीभाईजीकी इस दिव्य स्थितिको देख रही थीं और मन-ही-मन चाह रही थी कि मेरा भी जीवन ऐसा ही हो जाये। गोरखपुरसे प्रस्थान करते समय भाभीजी सोच रही थी श्रीमहिला संघमें रस-सिन्धु पुनः उछलने लगेगा और बाई सोच रही थी रस-सिन्धुमें पूरी तरह डूब जाऊँगी। यद्यपि भाभीजी साथ थीं फिर भी बाईने अपनी भावना-चाहना आदिका आभास किसीको भी नहीं होने दिया। श्रीभाईजीके पदोंको पढ़कर बाई मन-ही-मन अभिलाषा कर रही थीं—

देखा करूँ तुम्हारी लीला, गाया करूँ तुम्हारा नाम।
सुना करूँ नित मुरली की धुन, वचन तुम्हारे परम ललाम॥
नेत्र-मधुप नित करें तुम्हारे वदन-कमल-मधु-रसका पान।
पूर्ण समर्पित हो जायें इन्द्रिय-तन, मन-मति, जीवन-प्रान॥

* * * * *

घुली-मिली मैं रहूँ नित्य प्रियतम से, रहूँ दूर या पास।
बाहर-भीतर मेरे प्रियतम, करें सदा-सर्वत्र निवास॥

श्रीभाईजीकी भाव-धारामें डूबती-उतराती हुई बाईकी यही लालसा थी 'यही एक है परम साधना, यही एक है मनकी साध।' बाई जिस प्रकार श्रीभाईजीकी भाव-समाधि जैसी भागवती दशापर बलिहार थीं वैसे ही बलिहार थीं श्रीबाबाकी भाव-निमग्नता जैसी भागवती स्थिति पर। भाव-समाधिस्थ श्रीभाईजीकी एकान्त प्रियताका चित्र बाईके जिन मानसिक नेत्रोंके सामने नाच

रहा था, वहीं नाच रहा था मौन धारण किये हुए बाबाका ऐकान्तिक जीवन। भाव-राज्यकी परमोच्च स्थितिपर आरूढ़ इन दोनों महान विभूतियोंकी जीवन शैलीका आदर्श स्वरूप बाईके सामने था। इन दिनों बाई उसी आदर्श स्वरूपसे अनुप्रेरित थीं और बाईकी दिनचर्या स्वतः ही उस साँचेमें ढ़लती चली जा रही थी। उस आदर्शके साँचेमें क्रमशः ढलती हुई बाई अब कम-से कम बोलती थीं, कम-से-कम मिलती थी और कम-से-कम कमरेसे बाहर निकलती थीं। बाई यह भी चाहती थीं कि यदि निकलना-मिलना-बोलना पड़े तो वह संक्षिप्त-से-संक्षिप्त हो। बाहरी राग-रंगसे विरक्त और भीतरी रास-रसमें आसक्त बाईने अपने एकान्तवासके लिये श्रीमहिला संघकी एक कुटियाका चुनाव किया। उस कुटियाका कुछ परिचय देना आवश्यक है। ऊपर जानेवाली सीढ़ीके नीचे भूमिपर जो थोड़ा-सा रिक्त स्थान था, उसीपर कपाट लगा करके छोटी-सी कोठरी बना दी गयी थी। उसमें श्रीगौरांग महाप्रभुकी पूजा हुआ करती थीं। वह कोठरी बोलचालकी भाषामें कुटियाके नामसे प्रसिद्ध हो गयी थी। इसी कुटियाको बाईने अपना एकान्तावास बनाया। जब रसोद्रेककी अधिकता होती, तब बाई उस कुटियामें स्वयंको कई घण्टोंके लिये बन्द कर लेतीं। आकुल और आतुर अन्तरसे परम प्रेमास्पद प्रियतमकी प्रतीक्षा करती हुई बाईके कभी-कभी कुछ स्फुट स्वर उस कुटियामेंसे सुन पड़ते थे 'हा प्रियतम हा कमलनयन'। इन दिनों ऐसा लगता था मानो उनका श्वास-श्वास पुकार रहा है—

कब चरण रज सिर चढ़ाकर, धन्य हूँगी मैं अमर।
कब करूँगी नेत्र शीतल निर्निमेष मुख देखकर॥
कब लगाऊँगीं अगर-मृगमद-चुआ-चन्दन, शरीर।
कब चढ़ाऊँगी सुमन-सुरभित चरण होकर अधीर॥
फट रहा है हृदय मेरा, जल रही ज्वाला अमित।
कहाँ जाऊँ? क्या करूँ? पाऊँ कहाँ प्रियतम अजित॥

प्रियतम श्रीकृष्णके विरहमें उनके नेत्र झरते ही रहते थे। रोते-रोते आँखें सूज जाती थीं। खाने-पीनेकी सुधि तो रहती ही नहीं थीं। नर्मदा बाई प्रतीक्षा करती रहती थीं कि कब कुटियाके कपाट खुलेंगे और कब इसके गलेमें कुछ कौर उतार पाऊँगीं। बाईकी यह अत्यधिक अन्तरंग स्थिति लगभग दो-तीन मास तक बनी रही।

इस अवधिमें प्रियतम श्रीकृष्ण ही उनकी सम्पूर्ण ममताके केन्द्र-बिन्दु

बने हुई थे। किसी भी राग या रंगसे संस्पर्श नहीं रह गया था। वे यहीं समझती थीं कि मेरा तन, मेरा मन, मेरा धन, मेरा जीवन, मेरा रोम-रोम सब कुछ एकमात्र मेरे ममतास्पद श्रीकृष्णके लिये ही हैं। प्रियतमके युगल चरणोंपर उनके सर्वस्वका सहज समर्पण हो गया था। उन प्रियतमसे न कोई आकांक्षा थी, न कोई अनुरोध था। बस, रह गया था स्वरोंमें आर्त क्रन्दन—प्राण-प्रियतम तुम कब मिलोगे? कब अपना दर्शन दोगे? कब तुम्हारे युगल चरणोंपर सुमन समर्पित कर पाऊँगी। इन दिनोंमें बाईकी दिव्य-भावमयी स्थितिके सम्बन्धमें यही कहा जा सकता है—

एक-एक पल बना युगों सा, दारुण पीड़ा का आगार।
आँखों में छायी वर्षा ऋतु, अविरत बही अश्रु-जल-धार॥
हुआ व्यथामय हृदय, कर उठे प्राण करुण-स्वर हाहाकार।
प्रियतम विरह-विषम से सूना हुआ सहज सारा संसार॥

लगभग दस ग्यारह सप्ताह तक विरह-भावका प्रवाह बड़ा प्रबल रहा। विरह-भावकी कातरतामें रोते-रोते विरह-मथिता बाईकी व्यथा जब कुछ कम होती तो वे अपनी प्रिय सखीके नाम पत्र लिखने बैठ जातीं। वे श्रीललिताजीको प्रिय सखी कहा करतीं थीं। प्रिय सखीके नाम जो तीन पत्र लिखे गये वे इस प्रकार है—

प्रिय सखी,

जय श्रीकृष्ण! प्रियतम श्रीकृष्णकी मधुर-मधुर स्मृतिमें तुम भरी रहती हो। मुझे क्या हो गया? स्वयं पता नहीं। नेत्र बरस भी नहीं पाते, हृदयकी गति उत्कण्ठित अबाध गतिसे बहते-बहते रुक जाती है। हृदय चीत्कार कर उठता है। शायद भूल गये। मधुर-मधुर प्रियतम प्यार भरी स्मृति भी भूल गये। हृदय नहीं यह पत्थर है। जहाँ प्रिय स्मृति शून्य जीवन है। मेरी गति, मति, रति, तो वे ही हैं। वे भले ही भूल जायें, मैं तो स्वप्नमें भी उन्हें नहीं भूल सकती।

मेरी प्यारी सखी! मैं नित्य तुम्हारे ही समक्ष प्रियतम श्रीकृष्णकी मधुर लीला विहारमें डूबी रहती हूँ। देखो! कई दिन पहलेकी बात है—मैं गीताभवनके बगीचेमें बैठी थी। सहसा बगीचा वृजमें परिणत हो गया। पुष्प खिल उठे। मैं फूल चुन-चुनकर आँचलमें बाँधने लगी। फूल कई तरहके थे। हृदय वल्लभ प्रियतम चितचोर माधवकी मधुर स्मृतिमें पुष्प गिरने लगे। मैं चिन्ता करने लगी अब क्या करूँ?

इतनेमें मुँहसे अकस्मात् निकला प्रिय सखी .... इतनेमें तुम जो मेरे पीछे ही खड़ी थीं, हँसने लगी कहने लगी अरी! तुम तो बड़ी ही भोली

हो। श्रीवृन्दावन अधीश्वर ललित प्रियतमके श्रीचरणोंमें ही तो पुष्प चढ़ रहे है। देखो तो सही! मैं देखने लगी आश्चर्य भरी दृष्टिसे प्रियतम हँसने लगे। मधुर-लीला निर्बाध गतिसे चलने लगी। धन्य है तुम्हारे प्यारको। प्यारकी मधुर स्मृति जन्य जीवन ही धन्य है।

प्रियकी स्मृति दिलाते रहना।

तुम्हारी सखी

* * * *

प्रिय सखी,

श्रीकृष्णकी महान् कृपा है। वे जो कर रहे हैं ठीक ही कर रहे हैं। मुझे भुला-भुला कर आप चली गयीं। वे तो चले गये। सखी पता नहीं निठुरतामें उनको क्या रस मिलता है। उनका मीठा-मीठा रस भरा प्यार भूले नहीं भूल सकती हूँ। प्रिय सखी मैं सत्य कहती हूँ वे नटनागर, रति सुख सागर भले ही मुझ नीच, अधमको भूल जायँ, मरनेके बाद भी मुझे याद न करें। याद दिलानेपर भी मेरी अवहेलना करें। इससे क्या होगा? राधा तो राधाकान्तकी ही थी, है और रहेगी। उसके जीवनाधार प्रियतमके बिना उसका आस्त्वि कहाँ है? प्रिय सखी! प्रियतमके बिना सर्वत्र सूना-सुना ही लखाता है। तुम्हारा प्यार भरा आश्वासन मुझे बहुत याद आता है। जब उनकी व्याकुलता भरी याद आती है तो प्रत्यक्षवत् ऐसा लगता है तुम कह रही हो—लाड़िली! वे बहुत जल्दी आयेंगे।

सखी! क्या वे सचमुच आयेंगे? मुझे हृदयसे लगायेंगे? सखी! यदि श्याम घन मिलेंगे तो निज गलेकी मोतिन माला तुमको पहनाऊँगी। यदि हृदयसे लगायेंगे तो भी तुम्हें नहीं भूलँगी। सखी! एक बार मिला दो, दिखा दो, बुला दो। तुम्हीं बताओ क्या करूँ? मुझे तरसानेमें उन्हें क्या सुख मिलता होगा?

सखी! अवश्य किसी लाचारीवश ही मुझसे नहीं मिल रहे हैं। मेरे हैं न! मुझपर प्यार बहुत है। कितना मीठे बोलते थे—हृदयसे कहता हूँ तुम्हारे पास रहूँगा।

सखी आओ न! हृदय विहारी प्राणधनकी मीठी-मीठी चर्चा करें।

* * * *

प्रिय सखी,

जय श्रीराधे राधे!

आज बहुत प्रतीक्षा करके लिख रही हूँ। नहीं आये। हृदय निराश, व्यथित हो रहा है। क्या करूँ, कैसे मिलूँ, नहीं मिलेंगे? मुझे वे स्वयं प्यार किये। सत्य-

सत्य बतलाओ अब क्यों नहीं मिल रहे हैं? कौन सा पाप उदय हो गया है? सखी मैं क्या करूँ? मुझसे नहीं रह जाता है। हा हृदय धन! प्यारी सखी! उनका प्यार प्राप्त करके मैं उसे सँभाल नहीं सकी। मैं आनन्द प्रेमके समुद्रमें डूब गयी। यह पता नहीं था कि अभी भी मेरे प्राणेश मुझे ठग ही रहे हैं। हाय-हाय सखी! अब कृपा करो। एक बार, बस एक बार प्राणधनसे मिलाओ। जैसे भी हो मिलाओ। दिखाओ न एक बार वह चन्द्रमुख। सखी प्रत्यन्त करो न। भूल जाओ मेरे सभी अपराधोंको, तुम्हारे चरणोंमें गिरती हूँ। मुझे एक बार जरूर मिला दो। सखी वे मुझे एकदम भूल गये।

१. *सजनी हृदय कठोर है, जीवत उन बिनु हाय।*
कैसे करिके मिलूँ सखी, मोकूँ देउ बताय॥

२. *सखी प्यार उनको मेरे रोम-रोम गयो छाय।*
कण-कण में तो वे ही हैं, प्रियतम प्राण सदाय॥

३. *प्रिय सखी ललिते करो कृपा, प्रियतम श्याम मिलाय।*
जीवन सुनो है रह्यो, याको लेहूँ खिलाय॥

सखी! मेरी सखी! मैं लज्जा छोड़कर तुम्हें लिख रही हूँ। मुझे मेरे प्रियतमसे एक बार जल्दी मिला दो। प्रियतम बिना जीवन कैसा?

तुम्हारी छोटी बहिन

प्रिय सखीके नाम इन पत्रोंको लिखकर बाईने प्रयास किया कि विरह-व्यथा कुछ शमित हो, परन्तु होता यह था कि पत्र-लेखन उनकी व्यथाको और बढ़ा देता था। फिर इस बढ़ी हुई व्यथामें लिखना बन ही नहीं पाता था, अतः पत्र-लेखन भी बन्द हो गया। बाईके मनको कुछ शान्ति मिल पायी तब, जब किसी अचिन्त्य प्रेरणासे उनके भावके प्रवाहमें कुछ मोड़ आया और यह मोड़ आ पाया दो-तीन मासके बाद। इस अवधिके बीतनेके बाद बाईके जीवनमें ऐसा परिवर्तन और प्रयास दिखलायी देने लगा कि वे श्रीमहिला संघके आध्यात्मिक वातावरणको सुन्दर-से-सुन्दर बनाना चाहती है, जिससे अधिक-से-अधिक संख्यामें बहिनें मम-पर-द्वन्दात्मक जगतसे ऊपर उठकर आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करते हुए श्रीराधा-कृष्णकी भक्तिमें लग जावें।

* * * * *

उत्सवोल्लास

बाईका आगामी जीवन विविधताओंसे भरा हुआ है। उनके विविध कार्य व्यापारों और भाव-स्थितियोंको देखकर ऐसा लगता है कि उनके जीवनकी धारा दो तटोंको छूते हुए बह रही है। एक तट है एकान्त प्रियतावाला और दूसरा तट है सार्वजनिकता वाला। बाईकी अन्तर्मुखताका, विरहाकुलताका, दर्शनोत्कण्ठाका, प्रेमानन्दका जैसा वर्णन पूर्वके कुछ अध्यायोंमें आया है, वह तो इन दिनों उनके एकान्त जीवनमें रहा ही, इसीके साथ-साथ बाईमें ऐसी नेतृत्व क्षमताका विकास हुआ कि वे अपने सार्वजनिक जीवनमें श्रीमहिला संघकी अनेक गतिविधियोंका बड़ी सफलताके साथ नियमन और संचालन करने लगीं। सम्पर्कमें आनेवाली बहिनोंकी आध्यात्मिक उन्नतिकी दृष्टिसे यह संचालन-नियमन अत्यावश्यक था। श्रीमहिला संघकी अनेक गतिविधियोंमें बाईके द्वारा जो संशोधन, परिवर्तन और परिवर्द्धन हुआ, यह प्रिया-प्रियतमके दिव्य-लीला-राज्यसे प्राप्त संकेतोंके आधारपर होता था। बाईके पावन कलेवरमें समय-समयपर अनेक सखियों, मञ्जरियोंका भावावेश हुआ करता था और वे दिव्यभाव-राज्यके दृश्य दिखलाकर अथवा क्रम बतला कर बाईको संकेत दे दिया करती थीं और उन्हीं प्राप्त संकेतोंके आधारपर बाईने श्रीमहिला संघको सुधारने-सँभालनेका प्रयत्न किया।

यहाँपर बाईकी निजी मान्यताका उल्लेख करना आवश्यक लग रहा है। यह श्रीमहिला संघ हमारे-आपके लिये भले नारी-जातिकी हितकारिणी संस्था रह गयी हो, परन्तु बाई इसे नव-वृन्दावन ही कहती थीं। नव-वृन्दावन कहनेके पीछे भी अनेक कारण हैं। प्रथम तो स्वयं श्रीभाईजीने गोरखपुरमें बाईको यह आश्वास दिया था कि वहीं श्रीमहिला संघमें वृन्दावनका प्राकट्य हो जायेगा और तुम्हारा वास वृन्दावनमें ही होगा। श्रीभाईजीके ये शब्द बाईके लिये मात्र शब्द नहीं थे, अपितु बाईकी दृष्टि ही श्रीभाईजीने बदल दी थी। अपने श्रद्धेयके श्रीचरणोंपर सर्वथा समर्पित बाईको उनसे जो दृष्टि मिली, उसीका परिणाम था कि बाई अपनी आस्थाके अनुसार श्रीमहिला संघकी चहारदीवारीके भीतर रहते हुए भी वृन्दावनमें वास कर रही थीं। दूसरे यह भी दिखलायी दे रहा था कि ब्रज-मण्डलकी अनेक स्थलियोंका प्राकट्य वहाँ हो गया है। जहाँ सूर्य है, वहाँ दिन होगा ही, वहाँ ब्रजकी स्थलियाँ

हैं, यह ब्रज होगा ही और अन्तिम महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि प्रिया-प्रियतमके दिव्य-भाव-राज्यकी सखियाँ, मञ्जिरियाँ, सहचरियाँ बाईके माध्यमसे संकेत दे-दे करके इस नव-वृन्दावनको सजा-सँवार रही थीं। क्रमशः सँवारते हुए इस आश्रमको बाई अब नव-वृन्दावन ही कहने लगीं। वस्तुतः यह है तो नव-वृन्दावन ही और बाईकी प्रेरणा और प्रोत्साहन पाकर जो बहिनें प्रिया-प्रियतमकी भाव-साधनामें लगी हुई थीं, वे बहिनें भी नव-वृन्दावन ही कहने लगीं; परन्तु यह नया नाम अन्तरंग जनोंके लिये था। इस अन्तरंग भावमयताको जगतकी दृष्टिसे बचाना भी आवश्यक था, अतएव जगतमें इस स्थानका नाम प्रख्यात हुआ श्रीमहिला संघ ही। आगे इस पुस्तकमें जहाँ-जहाँ श्रीमहिला संघ शब्द आता है, वहाँ-वहाँ यह मानकर ही चलना चाहिये कि श्रीमहिला संघ नाम होते हुए भी नव-वृन्दावनका ही वर्णन है, अर्थात् श्रीमहिला संघका अर्थ है नव-वृन्दावन।

श्रीमहिला संघके आध्यात्मिक वातावरणको समुन्नत बनानेके लिये बाईने मनाये जानेवाले उत्सवोंके आयोजनोंमें जो सुधार आदि किये, सर्वप्रथम उन्हींको संक्षेपमें लिखनेका प्रयास किया जा रहा है। दो-तीन मासके एकान्तावासमें जब शिथिलता आयी, तब उनके द्वारा सर्वप्रथम हरियाली तीजका उत्सव उत्साहपूर्वक मनाया गया। प्रत्येक उत्सव मनानेमें कीर्तन-मण्डलीकी सदस्याएँ प्रमुख रूपसे आगे रहती ही थीं, इसके अतिरिक्त नव निर्मित भक्त-मण्डलीकी चार सदस्याओंका स्थान भी महत्त्वपूर्ण था। इन चार सदस्याओंके नाम इस प्रकार है—सावित्री बाई सुन्दरका, सुमित्रा बाई भुवानियाँ, विमला बाई मस्करा और सुशीला बाई केजरीवाल।

श्रीमहिला संघकी अट्ठारह सदस्योंवाली कीर्तन-मण्डलीके प्रति बाईकी दृष्टि आसाधारण रूपसे दिव्य थी। कीर्तन-मण्डलीकी अट्ठारह सदस्याओंमें यदि कोई प्रौढ़ आयुकी थी, तो कोई अल्पवयस्का किशोरी थी। चाहे प्रौढ़ हो या किशोरी, बाईके लिये सभी परम पूजनीयाँ थीं। बाईकी दृष्टिमें ये अट्ठारहों प्रिया-प्रियतमके भाव-राज्यकी मञ्जरियाँ-सहेलियाँ थीं, जो भागलपुरके श्रीमहिला संघकी चहार दीवारीके भीतर नव-वृन्दावनमें निकुञ्जात्मक रसमयतासे भरपूर वातावरणका निर्माण करती रहतीं। बाई उनसे कभी कोई काम नहीं करवाती थीं, अपितु उनके आनेपर उनके विराजनेके लिये स्वयं आसन बिछाती थीं और उन्हें सभक्ति प्रणाम करती थीं। वे भी निर्दिष्ट वेशके अन्दर ही अर्थात् जिसे जो भी नील या पीत परिधान दिया गया हो, उसी वेशमें बाईके सामने आया

करती थीं। नव-वृन्दावनमें कीर्तन-मण्डलीकी उपस्थितिका अर्थ होता था भाव-सरिताका प्लावन। बाईने सदैव ही उनको सीमातीत सम्मान दिया और उसका सहज परिणाम यह होता था कि इस नव-वृन्दावनमें भाव-राज्यका दिव्य वातावरण मूर्तिमान हो उठता था। उत्सवमें कलश संस्थापन आदि सारे कार्य कीर्तन-मण्डलीकी सदस्यों द्वारा ही होते थे।

१. **कलश-स्थापना**—बाई द्वारा मनाये जानेवाले सभी उत्सवोंमें कलश-स्थापनाका विशेष स्थान रहता था। कलश मंगलका प्रतीक है। हरियाली तीज उत्सवमें कलशके चित्रणका कार्य आठ दिन पहले श्रावण कृष्णा दशमीसे ही शुरू हो जाता था। एक बड़ा कलश एक छोटा कलश, ऐसे आठ जोड़े कलशको चूनेसे लीपने, चित्रकारी करनेका कार्य द्वितीया तक पूर्ण हो जाता था और इन आठ जोड़ी कलशोंको मन्दिरोंके सामने चार स्थानोंपर स्थापित कर दिया जाता था। कलशोंको लीपने और चित्रकारी करनेवाली बहिनोंको प्रतिदिन प्रात:कालसे लेकर अपराह्न कालतक निर्जल व्रत रखना होता था। उनकी तपस्या और सात्त्विकता ही तो वातावरणमें आध्यात्मिक सुगन्ध लायेगी। इन स्थापित कलशोंका विसर्जन उत्सवके एक सप्ताह बाद उत्सवके सम्पन्न होनेपर होता था।

२. **निमन्त्रण**—श्रीमहिला संघमें श्रीबरसानेवालीके मन्दिर, श्रीबिहारीजीके मंदिर, श्रीगिरिराजजी, श्रीकात्यायनी माँ इस प्रकार कुल पन्द्रह आराध्य-स्थलियाँ हैं। इधर तो मंगल कलशोंकी सुरचनाके कार्यका शुभारम्भ होता और उधर इन पन्द्रहों स्थलियोंपर भक्त-मण्डली जाकर प्रणाम करके सभीको निमंत्रण देती हुई प्रार्थना करतीं कि आप सभीकी सम्मिलित उपस्थिति होनेसे ही उत्सव सुन्दर हो पायेगा। हम तो अल्प-मति, अल्प गति वाली हैं। हमसे पदे-पदे भूल होगी ही। आप अपने सहज-सरल स्वभावसे हमारी सभी भूलोंको सुधार दें। हमारी सारी भूलोंको, कमियोंको दूर करके आप ही हमारे प्रयासको सफलता प्रदान करेंगे।

३. **वाद्य-यन्त्र**—वाद्य-यन्त्र भी देवस्थानोंके ऐसे दिव्य पार्षद हैं, जिनकी दसों दिशाओंमें गूँजती हुई झंकार और टंकार सात्त्विकता और पवित्रताका प्रसार करती है। अत: उन वाद्य-यन्त्रोंका भी बाईको बहुत ध्यान रहता था। वाद्योंकी प्रसन्नता ही उत्सवके उल्लासमें उमंगका सृजन करती है। उत्सवमें काम आनेवाले वाद्य जैसे विजय घण्टा, झाँझ, घंटा, करताल, घुँघरू; इन सबको गंगाजलसे स्नान करवाया जाता था और फिर इनमें प्रयुक्त होनेवाले रस्सी और वस्त्रको बदल दिया जाता था। इसके उपरान्त सभी वाद्योंका चन्दन, धूप, पुष्प

आदिसे विधिवत् पूजन होता था। पूजनोपरान्त प्रणाम करके वाद्योंसे प्रार्थना की जाती थी कि शक्ति सहित पधारकर उत्सवके वातावरणको गुञ्जित-रञ्जित बना देनेकी कृपा करें।

४. **अखण्ड कीर्तन**—भगवन्नाम समस्त अमंगलोंका निवारण करके शुभका विस्तार करता है। श्रीमहिला संघके ये उत्सव जन-जनको परम मंगलमय भक्तिभावका दान करें, अतः उत्सवसे एक दिन पहले सूर्योदयके समय जयकार बोलकर श्रीराधा नाम संकीर्तनका शुभारम्भ होता था और यह साठ घण्टेतक अर्थात् तीन दिन और दो राततक अखण्ड रूपसे चलता रहता था।

५. **वन्दनवार**—मंगल कलशकी तरह बन्दनवार भी शुभ शकुनका परिचायक है। आम्र पल्लवोंसे बन्दनवारका निर्माण एक दिन पहले होता था। यह बन्दनवार सम्पूर्ण आराध्य-स्थलियोंके समक्ष, हॉल तथा बरामदेके चारों ओर बाँध दी जाती थी।

६. **कदली स्तम्भ**—बन्दनवारके साथ-साथ अनेक स्थानोंपर कदली स्तम्भ भी प्रस्थापित किये जाते थे, जिससे उत्सवकी शोभा अत्यधिक बढ़ जाती थी।

७. **नैमित्तिक पूजन**—श्रीमहिला संघमें जितनी भी आराध्य स्थलियाँ हैं, उनका नित्य पूजन तो होता ही था। इस पूजनके अतिरिक्त तीन दिनोंतक नैमित्तिक पूजन भी होता था। उत्सवको निमित्त मानकर उत्सवसे एक दिन पहले और एक दिन बादमें अर्थात् कुल तीन दिनोंतक बड़े विधि-विधानसे विविध उपचारों द्वारा विशद पूजन-अर्चन बाईके निर्देशानुसार किया जाता था।

८. **सुसज्जा**—मुख्य मन्दिर श्रीबरसानेवालीके द्वारको फूलोंके हारसे, फूलोंसे और हरी पत्तियोंसे विशेष रूपसे सजाया जाता था, जो अत्यधिक आकर्षक और नयनाभिराम होता था। श्रीमहिला संघके द्वारको भी भली प्रकारसे सुसज्जित किया जाता था। श्रीबरसानेवालीके मन्दिरके सामने फूलोंके गुलदस्तों और गमलोंसे सुन्दर सजावट होती थी।

९. **फलार्पण**—कीर्तन-मण्डलीकी अट्ठारह सदस्याएँ और भक्त-मण्डलीकी चार सदस्याएँ, इन सभी बाइस सदस्याओंकी ओरसे फलोंकी बाइस डलिया सजायी जाती थी। प्रत्येक डलियामें दो नारियल और चौबीस केले होते थे। इन्हीं बाइस डलियाओंमेंसे चार डालियामें विशेष रूपसे तीन तरहके चार-चार फल और होते थे। उत्सव आरम्भ होनेसे पूर्व ही फलोंसे भरी हुई और अति

सुन्दर लगनेवाली ये सभी डलियाएँ श्रीबरसानेवालीके मन्दिरके समक्ष रखकर और तुलसी पत्र छोड़कर समर्पित कर दी जाती थीं। उत्सवोपरान्त डलियाओंके फल उत्सवमें भाग लेनेवाली सभी बहिनोंके मध्य प्रसाद रूपमें वितरित कर दिये जाते थे।

१०. नैवेद्य—मुख्यतः बुंदिया, भुजियाका भोग लगा करता था। इसको बनाते थे बाहरसे आनेवाले हलवाई, किन्तु बनानेकी प्रक्रिया भी विशेष थी। नगरके जो हलवाई इसे बनाते थे, वे और उनके सहयोगी, सभीके लिये आवश्यक था कि आधा घण्टा श्रीराधा नाम संकीर्तन करें, फिर शुद्ध जलसे स्नान करें और स्नानोपरान्त पवित्र खादीके वस्त्र पहनें। बाईकी ओरसे यह विशेष आदेश रहता था कि कोई हलवाई निर्माणकी अवधिमें धूम्रपान या ताम्बूल या ऐसी कोई अन्य वस्तु जैसे खैनी आदिका सेवन नहीं कर सकता। नैवेद्यके निर्माणमें अत्यधिक पवित्रता और सात्त्विकता पर विशेष ध्यान रहता था। हलुआ हाथसे पीसे हुए आटेका बनता था।

११. दीपार्चन—मिट्टीके अढ़ाई हजार दीपक कुम्हारसे तैयार करवाये जाते थे। उनको शुद्ध जलसे धो लिया जाता था। पीतलके लगभग पैंतीस परातोंमें रोलीसे अल्पना बनायी जाती थी। कलात्मक रीतिसे चित्रित उन पैंतीस परातोंमें अढ़ाई हजार दीपक सजा दिये जाते थे। उन दीपोंमें तेल और बत्ती रखनेका कार्य वही बहिन करती थी, जिसने फलाहार किया हो और प्रज्ज्वलित वही कर पाती थी, जिसने निर्जल व्रत किया हो। उस फलाहार और निर्जल व्रतकी पूर्णता दीप निवेदनके उपरान्त ही होती थी। परातके अढाई हजार दीपोंको रात्रिके समय दस बजकर दस मिनटपर प्रज्ज्वलित किया जाता था। चंचल शिखाओंसे रात्रिके अन्धकारमें जगमग करनेवाले इन दीपोंका निवेदन भी वे व्रत करनेवाली बहिनें ही करती थीं और यह निवेदनकी प्रक्रिया पूर्ण होती थी विभिन्न आराध्य स्थलियोंके समक्ष दीपोंसे भरे इन परातोंको पधरा कर ही।

बाईकी भावनाके अनुसार श्रीमहिला संघमें चार महोत्सव और तीन उत्सव मनाये जाते थे। हरियाली तीज, श्रीराधा-अष्टमी, विहार-पञ्चमी और बसन्त-पञ्चमीके दिन होनेवाले उत्सव 'महोत्सव' कहलाते थे और अक्षय-तृतीया, गुरु-पूर्णिमा और श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीके दिन होनेवाले उत्सव 'उत्सव' कहलाते थे। इन सातों महोत्सवों-उत्सवों पर उपर्युक्त कलश स्थापना, निमन्त्रण, वाद्य-यन्त्र, अखण्ड कीर्तन, बन्दनवार, कदली स्तम्भ, नैमित्तिक पूजन, सुसज्जा,

फलार्पण नैवेद्य और दीपार्चन तो होते ही थे, इनके अतिरिक्त विशेष अवसरपर कुछ विशेष बातें होती थीं।

१. **झूलन**—झूलनका उत्सव हरियाली तीजपर मनाया जाता था। हॉलमें झूला सजाया जाता था। मंदिरके श्रीप्रिया-प्रियतम झूलेपर पधारते थे। झूलनके पद-गायन होते थे और श्रीराधानाम संकीर्तन होता था और वहीं भोग लगाया जाता था।

२. **सत्संग**—हरियाली तीजके अतिरिक्त तीन महोत्सव और तीन उत्सवके अवसरपर शास्त्र, संत और भगवच्चरित्रकी चर्चा करते हुए प्रस्तुत उत्सवके महत्त्वको हृदयंगम करवानेके लिये बाई उपस्थित बहिनोंको बहुत सी लीलाएँ और प्रसंग सुनाया करती थीं।

३. **ढाढ़ी परिवार**—श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी और श्रीराधा-अष्टमी इन दो अवसरोंपर विशेष रूपसे मंगलोत्सव मनाया जाता था। बहिनें ही ढाढ़ी बनकर बधाईकी सौंज लेकर आती थीं और नाच-नाचकर मंगल गीत गाती थीं। भाभीजी यशोदा और कार्तिदाके भावमें प्रतिष्ठित होकर खुले मनसे उन्हें बधाई बाँटती थीं।

४. **षष्ठी देवी पूजन**—शास्त्रोक्त मर्यादाके अनुसार जन्मके छठवें दिन षष्ठी देवीका पूजन आवश्यक है, जिससे शिशुके सम्पूर्ण अमंगलोंका निवारण किया जा सके। बाई श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी और श्रीराधा-अष्टमीके छठवें दिन नवजात श्रीनन्दनन्दन और श्रीवृषभानुनन्दिनीकी मंगल कामनाके लिये षष्ठी देवीका पूजन करवाती थी।

५. **वस्त्र विधान**—महोत्सवोंके अवसरपर श्रीमहिला संघमें विशेष रंगके वस्त्रोंका शृंगार होता और वह वस्त्र वितान अवसरानुकूल भावका सृजन करता था। बिछावनी और पोशाकके सर्वथा नये कपड़े होते थे। हरियाली तीजके दिन हरे रंग, श्रीराधाष्टमीके दिन नीले रंग, श्रीविहार-पञ्चमीके दिन पीले रंग और बसन्त पञ्चमीके दिन बसन्ती रंगके वस्त्रोंकी शोभा देखते ही बनती थी।

६. **उत्सव उमंग**—महोत्सव और उत्सव कुल सात हैं, किन्तु इनमें श्रीराधाष्टमी महोत्सव और श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी उत्सवके अवसरपर एक विशेष बात सदैव दिखलायी देती थी कि श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीके उत्सवमें बाईका उत्साह सीमातीत हो जाता था और श्रीराधाष्टमी महोत्सवके अवसरपर वही सीमातीत उत्साह भाभीजीमें देखनेको मिलता था। यदि भावातिरेकमें श्रीराधाष्टमीके अवसरपर बाई निरीह शिशुके समान सरला और भोली बन

जाती थीं, तो गम्भीर स्वभाव वाली भाभीजी स्वभाविक ही अत्यधिक सक्रिय हो जाती थीं, जिससे महोत्सव भली प्रकार सम्पन्न हो जाय। श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीके अवसरपर बाई भी ढाढ़ी परिवारकी एक मुखरा सदस्या बनकर नृत्य करने लगती थीं। उस अवसरपर बाई जो कीर्तन किया करती थीं उसकी एक झलक इस प्रकार है—

कीर्तन

जय कन्हैया लाल की, जय कन्हैया लाल की।
जय कन्हैया लाल की, मदन गोपाल की॥
मदन गोपाल की, जय कन्हैया लाल की।
ब्रज ने गोपाल पायो, जय कन्हैया लाल की॥
राधा को उर माला आयो, जय कन्हैया लाल की।
प्रेमिन को प्रतिपाल आयो, जय कन्हैया लाल की॥
गोपिन को गोपाल आयो, जय कन्हैया लान की।
यशुमति जी ने लाल जायो, जय कन्हैया लाल की॥
राधिका को प्राण आयो, जय कन्हैया लाल की।
नन्द बाबा को प्राण है आयो, जय कन्हैया लाल की॥
यशुमति जी को धन है आयो, जय कन्हैया लाल की।
नन्द उपनन्द भी हरषायो, जय कन्हैया लाल की॥

७. **पुस्तकालय पूजन**—बाईने गुरु-पूर्णिमा वाले दिन पुस्तकालयकी स्थापना करवायी थी, अतः प्रत्येक गुरु-पूर्णिमाको पुस्तकालयमें विशेष पूजनका विधान प्रचलित हो गया। अपने धार्मिक ग्रन्थ, पुराण और शास्त्र आदि तो गुरु स्थानीय हैं, अतः गुरु स्थानीय शास्त्रोंका पूजन गुरु-पूर्णिमाके दिन होना ही चाहिये। बाईकी निजी भावनाके अनुसार यह पुस्तकालय श्रीललिताजीका व्यक्त स्वरूप है, अतः वे उस दिन पुस्तकालयमें श्रीललिताजीका विशेष रूपसे पूजन करवातीं, भोग लगवातीं, फल चढ़वातीं और कीर्तन करवातीं।

८. **धूपबत्ती**—बाईको धूपबत्ती बहुत प्रिय थी। जब भी कोई कार्य होता, धूपबत्ती जला करके उसका शुभारम्भ होता। भगवदर्चनाका कोई अवसर या कोई सोपान हो, तब-तब तो धूपबत्ती जलायी ही जाती थी, इसके अतिरिक्त न जाने कितनी बार धूपबत्तीका जलाना होता था। जैसे कमरा स्वच्छ करना, किसीके बैठनेके लिये आसन बिछाना, किसीसे बात करना, यात्राके लिये जाना, ऐसे छोटे-छोटे अवसरोंपर भी बाई धूपबत्ती जलवाया करती थीं। प्रत्येक कार्य

बाईकी दृष्टिमें भगवदर्चनाका अंग था और पदे-पदे धूपबत्ती जलाकर श्रद्धा-भावनाका निवेदन होता था।

९. संकल्पकी पूर्णिमा पूर्णता—बाईके संकल्पके अनुसार इन चार महोत्सवों और तीन उत्सवोंको बड़े उत्साहके साथ मनाया जाता था और इन उत्सवोंमें जो-जो प्रमुख बातें थीं, उन्हींका अबतक उल्लेख हुआ है, परन्तु इतनेको ही सब कुछ नहीं समझ लेना चाहिये। श्रीमहिला संघमें वर्षभर मनाये जानेवाले उत्सवोंको सुन्दर और सफल बनानेके लिये न जाने कितने छोटे-मोटे विधि-विधान अपनाये जाते थे। उन अगणित विधि-विधानोंकी चर्चा वर्णन-विस्तारके भयसे नहीं की जा रही है। उनका वर्णन स्थानाभावके कारण भले न किया जा सके, परन्तु उन लघु और संक्षिप्त विधि-विधानोंका भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

वृन्दावन-अधिष्ठात्री देवीकी कृपासे जग हितार्थ बाईकी जीवन-धारामें मोड़ आया और उसके फलस्वरूप बाई श्रीमहिला संघके आध्यात्मिक वातावरणको सुधारने-सँवारनेमें रुचि लेने लगीं। वातावरणको समुन्नत बनानेके लिये जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ, वह था वर्षभर भिन्न-भिन्न उत्सवोंका आयोजन। बाईने यह भी मन-ही-मन संकल्प किया था कि मैं ये विविध उत्सव बारह वर्षकी अवधितक मनाऊँगी और जितना बन सकेगा, पूरे मनसे सहयोग दूँगी। बारह वर्षकी कौन कहे, ये उत्सव सत्रह वर्षोंतक बाई निरन्तर मनाती रहीं। श्रीमहिला संघकी कुछ बहिनोंकी मान्यताके अनुसार बाईको अवधिका स्मरण नहीं रहा। सत्रह वर्षों बाद जब बाईके जीवनमें और अधिक एकान्त-प्रियताकी माँग उभर आयी, तब वे इन उत्सवायोजनोंसे क्रमशः उपराम होने लगीं। बाईकी उपरामताने उत्सवोंके स्वरूपको न चाहते हुए भी प्रभावित किया। उत्सवोंकी परम्परा तो खण्डित नहीं हो पायी, परन्तु इतना तो स्वीकार करना ही पड़ रहा है कि बाईकी उपरामतासे उत्सवोंका स्वरूप और स्तर वैसा भव्य नहीं रह गया।

सत्रह वर्षकी अवधिमें बाईके जीवनका प्रवाह मन्थर गतिसे बहता रहा और बहता रहा एकान्त-प्रियता और सार्वजनिकता इन दो तटोंकी मर्यादाको स्वीकार करते हुए। वह अनवरत प्रवाह इतना मन्थर, इतना सौम्य, इतना शीतल था कि समीप आनेवाले प्रत्येक नर-नारीको अतुल-आनन्द प्रदान करता रहा और वह जीवनके लक्ष्य श्रीप्रिया-प्रियतमकी ओर दिन-रात बहता ही रहा।

* * * * *

विविध भावोर्मियाँ

बाईकी अद्भुत और विलक्षण भाव-स्थितिको समझ सकना या समझा देना एक बड़ी कठिन पहेली है। भावपूर्ण स्थितिके पहले जो दो विशेषण 'अद्भुत और विलक्षण' दिये गये हैं, वे सप्रयोजन हैं। एक ही आधारमें भिन्न-भिन्न स्तर एवं विभिन्न प्रकारके असंख्य दिव्य भावोंकी अभिव्यक्तिके उदाहरण कतिपय ही मिलेंगे। इसीलिये बाईकी यह दिव्य भाव-स्थिति अति अद्भुत और वस्तुतः विलक्षण है। यह अद्भुत तथ्य बाईके जीवनका एक कल्पनातीत सत्य है और सचमुच इस तथ्यको हृदयंगम कर पाना सहज नहीं है।

इस तर्कातीत स्थितिपर मात्र विश्वास ही किया जा सकता है। उनके गौर-कलेवरमें समय-समयपर भिन्न-भिन्न सखियों, मञ्जरयों, सहेलियों आदिका आविर्भाव और तिरोभाव होता रहता था। आविर्भूत मञ्जरी या सखी या सहेलीका जो स्वरूप, जो स्तर, जो रुचि, जो सम्बन्ध, जो निष्ठा, जो सेवा होती थी, तदनुरूप बाईका बोलना-देखना-बैठना-उठना आदि सम्पूर्ण चेष्टाएँ हो जाती थीं। साहित्यमें केवल नौ रसोंकी चर्चा है, किन्तु इसीके सम्बन्धमें गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने अपने मानसमें लिखा है—'भाव भेद रस भेद अपारा।' भावोंके, रसोंके भेद अपार है। भेद, प्रभेद, उपभेद, अवान्तर भेद, समानान्तर भेद आदिकी दृष्टिसे भाव और रसकी संख्याका अपार हो जाना स्वाभाविक है।

यह तो संत जगतकी मान्यता है, और इसी मान्यतासे मिलती-जुलती बाईकी भी एक स्वतन्त्र धारा है। इस स्वतन्त्र धाराका आधार उनका प्रत्यक्ष अनुभव है। बाईने अपने प्रत्यक्ष अनुभवके आधारपर अपनी धाराका उल्लेख करते हुए कहा था कि प्रिया प्रियतमके दिव्य-राज्यमें प्रियतम श्रीकृष्णके सोलह हजार भाव हैं और इसी प्रकार कृष्ण-प्रिया श्रीराधारानीके भी सोलह हजार भाव हैं और सबकी संज्ञाएँ अलग-अलग हैं और सबके स्वरूप भी अलग-अलग हैं। इन अगणित भावोंमेंसे कभी कोई, कभी कोई भाव बाईके कलेवरमें प्रायः आविर्भूत होता ही रहता था, जिनकी गिनती संभव है ही नहीं। अनेक सिद्ध संतोंमें ऐसा भी पाया जाता है कि वे प्रिया-प्रियतमके

दिव्य-राज्यकी जिस किसी विशिष्ट-भाव-धारामें अपने स्वको विलीन कर देते हैं, उसी भावमें तद्रूप होकर आजीवन निमग्न रहते हैं और वही उनकी रसोपासनाका स्वरूप रहा करता है। उदाहरणके लिये यदि किसी रसिक-संतकी रसोपासना श्रीललिताजीके अनुगत्यमें हो रही हो, तो उनके द्वारा होनेवाली सभी चेष्टाओंमें ललिताजीकी अनुहार उतर आती है, उनकी कृति-प्रकृति-भावभंगिमा आदिमें ललिता-जीवनकी प्रतिकृति झलकने लगती है और रस-मर्मज्ञ भाँप लेते हैं कि ये रसिक-संत श्रीललिता भावाविष्ट है। किसी एक विशिष्ट भाव-धारासे तादात्म्यको प्राप्त हुए संतकी रसोपासनाके स्वरूपको भले कोई रस-मर्मज्ञ भाँप ले, पर बाईकी रसोपासना-रसिकता-रससिद्धस्थितिको भाँप सकना सर्वथा कठिन रहा था और यह कठिनता थी, बाईके जीवनमें होनेवाले भावावतरणकी विविधता-विभिन्नता-वैचित्री आदिके कारण। बाईके अन्तरके कपाट सभी भावोंके लिये सदैव खुले रहते थे और भिन्न-भिन्न भाव भिन्न-भिन्न समयपर बाईके तन-मनपर छाये रहते थे। भिन्न-भिन्न भावों और रसोंका प्रतिनिधित्व करनेवाली मञ्जरियों या सखियोंका उनके दिव्य कलेवरमें भिन्न-भिन्न अवसरपर आविर्भाव होता ही रहता था और वे मञ्जरियाँ या सखियाँ अपने स्वरूपके अनुरूप आचरण करवा करके तिरोहित हो जाया करती थीं। ऐसा नहीं मानना चाहिये कि बाईमें सर्वदा-सर्वदा मधुर रसको परिपुष्ट करनेवाले भावावेश हुआ करते थे।

एक बार बाईके कलेवरमें श्रीनृसिंह-भावका आविर्भाव हुआ था। श्रीनृसिंह-भावाविष्ट बाईकी रौद्र आकृतिको देखकर भयका संचार होता था। श्रीनृसिंह-भावावेशका अवतरण होते ही वे सिंहवत् चिंघाड़ने लगीं। फिर भली प्रकारसे पूजन-अर्चन होनेके उपरान्त वह भाव शामित हुआ। रौद्र-रूप तो बाईमें कभी-कभी व्यक्त हुआ करता था, अवश्य ही वह बहुत अल्पकालिक हुआ करता था। जब भी ऐसे रौद्र-रसकी अभिव्यक्ति होती थी, सारी मधुरता न जाने कहाँ तिरोहित हो जाती थी। रौद्र-रूपकी भाँति किसी विशेष भावकी स्थितिमें उनमें कभी-कभी रोष या क्षोभ भी देखा जाता था। हास्यके दर्शन तो कई बार होते थे। अनेक बार उनमें सर्व नियामिका वृन्दावन-अधिष्ठात्री-देवीका ऐसा भावावेश होता था, मानो वे अँगुलीके इंगितसे अथवा नेत्रोंके संकेतसे हर गतिविधिको शासित करते हुए सम्पूर्ण कार्य-व्यापारका प्रिया-प्रियतम सुखार्थ नियमन-संचालन कर रही है।

इन विविध भावोंकी अभिव्यक्ति होते हुए भी यह एक वास्तविकता

थी कि उनके व्यक्तित्वमें मधुर रसके भावकी सदैव प्रबलता और अधिकता रही है। इसीका सहज परिणाम यह था कि बाईके दिव्य जीवनमें दिव्य-भावोंके दिव्य-दर्शन प्रायः होते रहते थे। इसीके परिणाम स्वरूप उनके द्वारा ऐसी-ऐसी भाषाएँ सुनी जाती थीं कि जो हमारे लिये सर्वथा बोधगम्य नहीं होती थीं। उन अटपटी भाषामें असम्बद्ध बातोंको सुनकर यदा-कदा यह भी लगता था कि गोपी भाव भावित अरण्यवासिनी-रमणियाँ बाईके मानस पटलपर आधिपत्य जमाकर प्रिय-प्रियतमके साथ विचित्र-विचित्र विलासमें निमग्न हैं। उनकी विविधताका वर्णन कितना किया जाय, कभी-कभी निकुञ्ज-राज्यके सेवा-परायण पशु-पक्षियोंकी पूर्णतः तदनुरूप बोली बाई बोला करती थीं। कभी मयूर की, कभी कोकिलकी, कभी शुककी, कभी मर्कटकी बोली सुनकर भले हमारा मनोरञ्जन हो, हम उसे विनोदकी वस्तु मान लें, परन्तु वह वस्तुतः बाईका सर्वथा अनुपम-नित्य निकुञ्जमें प्रिया-प्रियतमको परमाह्लादित करनेके लिये दिव्य-विहार था।

एक दिन बाई अचानक बालिका सुलभ बोलीमें बोलने लगीं। यह कोई नवीन भावावेश था। भाभीजीने वन्दन करके करबद्ध उन्हींसे उनका परिचय पूछा। भावाविष्ट बाईने कहा—मैं गुड़िया हूँ। मेरा नाम विश्व विमोहन मन मोहिनी है। निकुञ्जेश्वरी श्रीराधाके केशोंसे मेरा उद्भव है। मेरी आयु सात सालकी है।

जब-जब सप्तवर्षीया विश्व-विमोहन मन-मोहिनीका आवेश होता तब-तब ही बाईका स्वभाव बालिकावत् हो जाता था। माँग-माँगकर भोजन करना, छोटे-छोटे खिलौनेसे खेलना, बात-बातपर मचलना, क्षणे रूष्टे - क्षणे तुष्टे होना, तुष्ट होनेपर निहाल कर देना, यह सब बाईमें सहज देखा जाता था। प्रायः इनका आवेश ब्राह्ममुहूर्तमें हुआ करता था। अब यह कहना कठिन है कि यह आवेश कितनी देरतक रहेगा।

अनेक बार भावाविष्ट बाई चेष्टा-शून्य हो जाती थीं। चेष्टा-शून्यका अभिप्राय यह लेना चाहिये कि भीतर तो चेतना रहती थी, परन्तु भावाधिक्यमें शरीरकी सभी इन्द्रियाँ थोड़ी देरके लिये निश्चेष्ट हो जाती थीं। ऐसी चेष्टा-शून्य स्थितिमें समीपस्थ बहिनें 'जय जय प्रियतम जय जय प्रियतम' या 'श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण' कीर्तन करती थीं। कीर्तन सुनकर भावके कुछ शमित होते ही बाई पूर्ववत् हो जाती थीं। तब बाईका प्रिय कीर्तन रहा है—

जय जय प्रियतम जय जय प्रियतम।
सब सुख के सागर हो प्रियतम॥ जय॥
राधा नट नागर तुम प्रियतम॥ जय॥
गोपी की गागर में प्रियतम॥ जय॥
तुम नित नट नागर हो प्रियतम॥ जय॥
सब गुण के आगर हो प्रियतम॥ जय॥
सब सुख के सागर हो प्रियतम॥ जय॥

इन दिनों बाईके पावन कलेवरमें कभी कोई कभी कोई मञ्जरी, सखी सहेली आदिका भावावेश होता रहता था। बसन्त पञ्चमीके दिन श्रीविनोदिनीजीका प्राकट्य हुआ। भाभीजीने वन्दन करके करबद्ध होकर उनका परिचय पूछा। भावाविष्टा बाई परिचय देते हुए कहने लगीं—मैं विनोदिनी हूँ। मुझे वासके लिये स्थान दो।

उनके आदेशका तत्काल पालन किया गया और षोडशगीत मन्दिरके बगलमें विनोदिनी कुञ्जकी स्थापना हुई। इस बसन्त ऋतुमें भावावेशकी एक सरस शृंखला दिखलायी देती है और भाभीजी द्वारा परिचय पूछे जानेपर सबने अपना परिचय भी दिया। प्राप्त परिचयसे ज्ञात हुआ कि ये १. बसन्त-स्वामिनी, २. हरि-रस-भामिनी, ३. केलि-कुञ्ज-कामिनी, ४. मधुर-मधुर-भामिनी, ५. प्रियतम-उर-यामिनी हैं। प्रिया-प्रियतमके भावराज्यमें इन सबको इन्हीं नामसे पुकारा जाता है। इनमें कोई चौदह वर्ष सात मास तीन दिनकी, कोई तेरह वर्ष नौ मास इक्कीस दिनकी, इस प्रकार सभीकी भिन्न-भिन्न आयु है। इन भावावेशोंमें बाईके भीतर जो भाव पद्यात्मक शैलीको लगभग स्वीकार करते हुए उभरे, वे बड़े ही मधुर हैं।

॥ श्रीराधा रमण॥

सरस रसराज की जय।
नव बसन्त साज की जय।
प्रियतम महा मधुर रसिकराज की जय।
बोलो नित्य निकुञ्ज कामिनी के,
सरस कमलनी के हृदय धन की जय जय जय।

* * * *

नव बसन्त, प्रियतम नन्द नन्दन,
सरस हृदय चन्दन।

कैसे करूँ मैं वन्दन,
तुम्हीं जानो बृज चन्दन।

* * * *

अलबेली ठाड़ी सखी, रीझो री लख साज।
आयो बसन्त सुहावनो, श्री वृन्दावन राज॥

रसदान— मैं हँसि हँसि बसन्त मनाऊँ,
प्रियवर तुम पर बलि जाऊँ।
तुम्हें श्रीराधा-नाम सुनाऊँ,
प्रिय नित्य तिहारे गुण गाऊँ॥

नित्य साज— यही मम हृदय को आशीर्वाद है।

नीलाम्बर— तुम दोनों सदा हँसते रहो।
मम मधुर श्रीवृन्दाविपिनमें नित्य नव खिलते रहो।

पीताम्बर— श्रीकुञ्ज कमलिनी के प्रियतम, सरस बसन्त मनाओ।
जैसे भी हो तैसे रसराज, बसन्त साज ले जाओ॥

संकीर्तन

नीलाम्बरी— जै-जै-जै नित्य निकुञ्ज सरस कामिनी।
मधुर मधुर हरि रस भामिनी।
जै जै जै केलि कुञ्ज कामिनी।
मधुर मधुर प्रियतम उर यामिनी।
सरस रस रंग बसन्त की स्वामिनी।

पीताम्बरी— जै जै श्रीब्रजराज धनी,
वृन्दाविपिन बिहारी।
जय जय श्री राधा मन हारी,
प्रियतम कुञ्जबिहारी॥

* * * *

सभी मिलकर— नित्य लीला करते रहो, श्रीराधाकृष्ण धनी।
सरस बसन्त में तुम, प्रियतम प्रेम ऋणि॥

नित्य दासी तिहारी,
श्रीचरणों पै बलिहारी,
जै जै कुञ्जबिहारी,
नित्य दासी तिहारी।

जागो श्रीराधा प्यारी, सखी सब जगावे।
लाड़िली लड़ैती तोहे, सहचरी मन भावे।

हरि रस भामिनी,
केलि कुञ्ज कामिनी,
मधुर रस भामिनी,
पिय उर यामिनी,
तोहे बसन्त भावे।

जागो श्रीराधा प्यारी, तोहे प्रियतम जगावे।
प्रियतम जगावे तेरो श्याम ही जगावे।
तोहे सखी री बसन्त अति भावे।

दो०- उठो प्रिया सुकुमार, आयो नव बसन्त बहार।
चन्दन चर्चित नील कलेवर, ठाड़ो है तेरे द्वार।

हेली उठो स्वागत करो, पिय आयो रिझवार।
अधरामृत दान करो, सुख देवो री सुकुमार॥

१. प्रसंग—अजी आप मौन शान्त क्यों बैठे हो? यही लीला करनो होय तो मधुर भामिनी जैसी काहे को अपनाई है।

२. उमंग—अजी जीवनको आधारको रस है यह सरस बसन्त। तुम स्वतन्त्र हो। हम नव तरुणी परतन्त्र है। मन भावे सो करो।

३. तरंग—बहुत दिनके बाद नव बसन्त राजको आगमन भयो है। अजी आपको बधाई है। बधाई है। बधाई है। बधाई है। बधाई है।

४. रसरंग—

प्रियतम रस बर्षाओ
सरस बसन्त मनाओ,
मधुर भामिनी जैसी पायक,
क्यों नहीं नाचो गाओ।

अहो हरि मोहे बधाई देओ,
बसन्त राज प्रियतम नन्दनन्दन की जय।

* * * * *

विभिन्न घटनाएँ

सन् १९६९ में बाईके नाथनगर वाला पितृगृह नाग-प्रकोपसे ग्रस्त हो गया। प्राय: नाग देवता प्रकट होते और परिवारके किसी-न-किसी व्यक्तिको डस लेते। बड़ी कठिनाईसे जान बच पाती। उसी प्रकोपकी लपेटमें एक बार बाई भी आ गयी। बाई श्रीमहिला संघमें थी। बाईने प्रात:काल ही सभी बहिनोंके समक्ष घोषणा कर दी—आज शामको मुझे साँप काटेगा। कोई घबराये नहीं। मेरी देह नीली पड़ जायेगी। मुँहसे फेन निकलेगा, पर कोई भी मेरे शरीरका स्पर्श न करे। पूज्य बाबा स्वयं मेरी सँभाल करेंगे। छ: घण्टे बाद मेरी स्थिति ठीक हो जायेगी। सहानुभूति रखनेवाली बहिनोंको समीप बैठकर श्रीराधानाम संकीर्तन करना चाहिये।

बाईने जैसा कहा था, वैसा ही हुआ। शामको सर्प दंस होते ही मालासे जप करते-करते बाई गिर पड़ी। समीपस्थ बहिनें कीर्तन करने लगीं। कुछ बहिनोंको श्रीबाबाके सूक्ष्म शरीरसे पधारनेका आभास भी मिला कि वे खट-खट करते खड़ाऊँ पहने चले आ रहे हैं। रात्रिके दस बजे हालतमें सुधार आया। अत्यधिक कमजोरी लग रही थी। बाईने आँखें खोली, तब सबकी जान-में-जान आयी।

इस घटनाकी सूचना भाभीजीने पत्र लिखकर श्रीभाईजीको दी। गोरखपुरसे श्रीभाईजीका उत्तर आया जो बड़ा ही मार्मिक और रहस्यपूर्ण था। श्रीभाईजीका उत्तर आया जो बड़ा ही मार्मिक और रहस्यपूर्ण था। श्रीभाईजीने लिखा—सर्पके रूपमें श्रीकृष्ण ही आये थे। श्रीकृष्णके अतिरिक्त कोई भी रुक्मिणीका स्पर्श कर ही नहीं सकता।

श्रीभाईजीके इन उद्गारोंको सुनकर बहिनें कहने लगीं कि भगवान् श्रीकृष्णकी लीला बड़ी विचित्र हुआ करती है।

* * * *

इसी प्रकार सन् १९६९ की ही एक और घटना है। बाईके गलेमें भयंकर दर्द होने लगा। देखनेसे यह पता चला कि कण्ठमें बड़े-बड़े छाले हो गये हैं। पानीकी बूँदका भी उतरना कठिन हो गया। ज्वर तीव्र रहता था। प्रश्न था किसे दिखायें? पुरुषको न छुनेका कठोर नियम था और भागलपुरमें कोई उचित लेडी

डॉक्टर ध्यानमें आयी नहीं। हारकर एक पुरुष डॉक्टर साहबको दिखलाया। वे खड़े-खड़े दूरसे देखते रहे। उन्होंने इस रोगको डीप्थिरिया कहा और बतलाया—डिप्थिरियाका रोगी बहत्तर घण्टेमें चल बसता है। यह असाध्य रोग है। इसकी कोई औषधि है ही नहीं।

डॉक्टर साहेबकी बात सुनकर सभी बड़े चिन्तित हो उठे। तीन दिनोंतक भयंकर कष्ट रहा। चौथे दिन कण्ठसे रक्त-मवाद निकलनेसे कुछ राहत मिली और बाई कुछ-कुछ बोलने लगीं। पन्द्रह दिन बाद स्वास्थ्य कुछ-कुछ सुधर पाया। स्वास्थ्यके सुधारको देखकर डॉक्टर साहबने यही कहा—यह तो एक दैवी चमत्कार है कि असाध्य रोगसे बाईको विमुक्ति मिल गयी।

* * * *

भाभीजीकी बड़ी ननदका नाम भगवती बाई था। भगवती बाईकी छोटी सुपुत्रीका नाम मीरा है। वह स्वभावसे अधिक चंचल थी। भगवती बाईको चिकित्साके लिये कलकत्ता जाना था। समस्या थी कि बालस्वभाववशात् अधिक चंचल मीराको कौन रखे। भगवती बाईने भाभीजीसे कहा, पर भाभीजी सहमत नहीं हुई। भगवती बाईकी बाईके प्रति अगाथ श्रद्धा थी। उन्होंने अपनी समस्या बाईके सामने रखी। बाईने आश्वासन देते हुए कहा—मीरा भाभीजीके पास रह जायेगी।

भगवती बाईने कहा—मैंने भाभीजीसे अनुरोध किया था, पर वे तैयार नहीं हैं।

संतकी दृष्टि बड़ी सूक्ष्म और बड़ी समर्थ होती है। वर्तमानके इस पार और उस पार अर्थात् भूत और भविष्यके गर्भमें झाँककर बहुत सी बातोंको वह दृष्टि जान लेती है। इसी परिज्ञानके आधारपर बाईने जान लिया कि आजकी बालिका मीरा कल बड़ी होकर श्रीमहिला संघकी एक प्रमुख सेविका होगी। अपने परिज्ञानकी तनिक भी आहट किसीको न देते हुए बाईने भगवती बाईसे कहा—मैं भाभीजीको समझा लूँगी। आप निश्चिन्त होकर अपनी चिकित्सा करवाइये।

दुर्भाग्यसे भगवती बाईका रोग उनके निधनका हेतु बन गया। अब बाईने जो आश्वासन दिया था, उसको अपना ही आश्वासन मानकर भाभीजी मीराका लालन-पालन-पोषण करने लगी। बहुत दिनों बाद अनुकूल अवसर देखकर बाईने अपने उस परिज्ञानकी किञ्चित् जानकारी भाभीजीको दे दी थी। ऐसी

जानकारी मिलते ही भाभीजीके मनमें खेद-सा होने लगा—मैंने पहले ही भगवती बाईकी बात क्यों नहीं मान ली।

* * * *

भूत-वर्तमान-भविष्य तीनोंपर दृष्टि रखनेवाली बाईकी भावना यह रहती थी कि हम सभी लोग किसी प्रकार इस पाञ्चभौतिक जगतको भूलकर और जागतिक धरातलसे उठकर प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-कृष्णके भाव-राज्यमें पहुँच जायँ। इस दृष्टिसे जो हमको-आपको भले ही खेल लगता हो, परन्तु उस खेल-खेलमें ही बाई यहाँ-से-वहाँ पहुँचा देती थीं। एक बार बाईने खेल-खेलमें निकुञ्जधामकी रेलगाड़ी चलायी। खेल आरम्भ करनेके लिये बाईने घोषणा कर दी—आज तो गोलोक-धामके लिये ट्रेन खुलनेवाली है, बताइये आपलोगोंमें-से कौन-कौन चलेगा?

बाई खड़ी हो गयीं और बाईके साथ अनेक बहिनें खड़ी हो गयीं। रेलगाड़ीकी लीला आरम्भ हो गयी। बाईके संकेतके अनुसार एकके-पीछे-एक, एक दूसरेकी कमर पकड़कर बहिनें खड़ी हो गयीं। लगभग बीस बहिनोंके खड़े होनेसे बीस डब्बोंकी गाड़ी श्रीमहिला संघ स्टेशनपर खड़ी हो गयी। बाई गार्ड थीं। गार्डका संकेत मिलते ही जय श्रीराधेकी ध्वनि पर गाड़ी चल पड़ी। पहला पड़ाव पति-लोक था, जिसे पतिव्रताओंका धाम कह सकते हैं। वहाँ कमल बाई नामवाले डब्बेको काटकर अलग कर दिया गया। उस डब्बेमें उसी लोकके यात्री थे। दूसरा पड़ाव संत-लोक था, यहाँ रामप्यारी बाई नामवाले डब्बेको काटकर अलग कर दिया गया। उस डब्बेमें उसी लोकके यात्री थे। तीसरा पड़ाव वैकुण्ठ-लोकका आया, वहाँ गौतमी मैया नामवाले डब्बेको काटकर अलग कर दिया गया। उस डब्बेमें उसी लोकके यात्री थे। इस प्रकार तीन लोककी लम्बी यात्रा पार करनेके बाद रेलगाड़ी गोलोक-धामके लिये चल पड़ी। अब अन्तिम पड़ाव था, गोलोक-धाम। रातको आठ बजे सत्रह डब्बों वाली गाड़ी पहुँच गयी गोलोक-धाम। वहाँ पहुँचते ही श्रीराधानाम संकीर्तन प्रारम्भ हो गया। खेल-खेलमें उल्लास छा गया, हम सब गोलोक-धाममें हैं। यह नव-वृन्दावन-धाम गोलोक-धाम ही तो है, जहाँ नित्य-निरन्तर प्रिया-प्रियतमके नामकी रटन और लीलाका दर्शन है।

* * * *

श्रीमहिला संघमें एक कमरा है, जिसे श्रीषोडगीत मन्दिर कहा जाता है। इस मन्दिरमें श्रीभाईजीके कर-कमलों द्वारा प्रदत्त श्रीषोडशगीतके पाँच धातु-पत्र प्रतिष्ठित है। इन पाँच धातु-पत्रोंपर सम्पूर्ण षोडशगीत खुदे हुए हैं। इन षोडशगीत-पत्रोंके एक पार्श्वमें श्रीभाईजीका और दूसरे पार्श्चमें श्रीबाबाका चित्रात्मक श्रीविग्रह भी प्रतिष्ठित है। इन प्रतिष्ठित श्रीपत्रों एवं श्रीविग्रहका पूजन-अर्चन नित्य ही विधिवत् हुआ करता है।

एक बार बाईके मनमें ऐसे मनोरथका उदय हुआ कि षोडशगीत मन्दिरमें श्रीमद्भागवतका साप्ताहिक पाठ हो और यह पाठ कीर्तन-मण्डली और भक्त-मण्डलीकी उन सदस्याओं द्वारा हो, जो सही और शुद्ध पाठ कर सकें। बाईकी उस मंगलमयी अभिलाषाको पूर्ण करनेके लिये भाभीजी तत्काल सक्रिय हो गयी। फिर इसी श्रीषोडशगीत मन्दिरमें श्रीमद्भागवत महापुराणके सप्ताह-परायणका कार्यक्रम आयोजित किया गया। सप्ताह-पाठके कार्यक्रममें कुल तेरह माताओं-बहिनोंने भाग लिया। एक बहिन जप करती थी, एक श्रीविष्णु-सहस्रनाम-स्तोत्रका पाठ, एक श्रीमद्भगवद्गीताजीका पाठ और शेष दस बहिन श्रीमद्भागवतजीका पाठ करती थी और यह सारा जप और पाठ होता था श्रीषोडषगीत-पत्रोंके सम्मुख बैठकर। सभी माताएँ-बहिनें एक साथ बैठती थीं और सभीके पास श्रीमद्भावगतजीका अपना-अपना ग्रन्थ रहता था। सप्ताह-परायणके इस पाठ-अनुष्ठानमें बाईके निर्देशानुसार वस्त्रादिकी शुचिता, नियमानुवर्तनमें तत्परता, स्थानकी शुद्धता, वातावरणकी पवित्रता, पाठमें नियमितता आदि अनेक बातोंका विशेष ध्यान रखा जाता था और यह आयोजित अनुष्ठान था एक मात्र भगवत्प्रीत्यर्थ।

पाठ और जप करनेवाली माताओं-बहिनोंने बड़े उत्साहसे कार्यक्रममें भाग लिया और वे बड़े भावके साथ पाठ-जप करती थीं। बाईकी आन्तरिक अभिलाषा थी और उसीके अनुसार भाभीजीका पूर्णतम प्रयास था कि ऐसे निष्काम कार्यक्रमका तनिक भी प्रचार न हो। प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवकी प्रसन्नताकी प्राप्ति ही जिसका एकमात्र हेतु हो, ऐसे शुद्ध साधनात्मक कार्यक्रमका विज्ञापनसे भला क्या सम्बन्ध? यह अनुष्ठान सर्वथा-सर्वथा भगवत्प्रीत्यर्थ था और यह नितान्त ऐकान्तिक कार्यक्रम सप्ताह-पर्यन्त सोत्साह-सोल्लाह श्रीमहिला संघके श्रीषोडशगीत मन्दिरमें चलता रहा।

क्रमशः पूर्णाहुतिका दिवस आ पहुँचा। बाईके द्वारा जो विधि बतलायी

गयी थी, उसीके अनुसार अनुष्ठानकी सम्पन्नतासे सम्बन्धित अर्चन-विधान चल रहा था। इसी समय एक बड़ी विचित्र बात हुई। इधर तो पाठ-अनुष्ठानकी पूर्णाहुति हुई और उधर डाकघरके डाकियेने आकर एक लिफाफा दिया। वह लिफाफा आया था गोरखपुरसे और लिफाफेमें पत्र था श्रीभाईजीके हाथ लिखा हुआ। लिफाफेमें केवल एक पत्र वहीं, बल्कि उनके हाथके लिखे हुए तेरह पत्र थे। यह तेरह पत्र थे इस सप्ताह-अनुष्ठानमें भाग लेनेवाली हर एक बहिनके लिये अलग-अलग। जिन-जिन बहिनोंने भाग लिया था, उन-उन बहिनोंके नामसे श्रीभाईजीने अलग-अलग व्यक्तिगत पत्र लिखे थे। पत्रमें श्रीभाईजीने आशीर्वाद दिया था—यह बड़ा सुन्दर कार्यक्रम तुमलोगोंके द्वारा हुआ है तथा इससे भगवान श्रीकृष्णको परम प्रसन्नता हुई है। तुम सभी अतीव भाग्यशालिनी हो।

आश्चर्यकी बात यह है कि इस कार्यक्रमकी रञ्चमात्र सूचना भाभीजीने श्रीभाईजीको नहीं दी थी, फिर भाग लेनेवाली बहिनोंके नामको बतलानेकी बात ही कहाँ आती थी? न पाठानुष्ठानकी सूचना और न भाग लेनेवाली बहिनोंके नामकी सूचना, इसके बाद भी श्रीभाईजीके पत्र सभी बहिनोंके नामसे व्यक्तिगत रूपसे आये। इस सारी घटनाके बारेमें सोच-सोच करके क्या बाई, क्या भाभीजी, क्या अनुष्ठानमें भाग लेनेवाली बहिनें, क्या अन्य स्वजन, सभीको परमाश्चर्य हो रहा था और इन तेरह पत्रोंका उल्लेख करते हुए अत्यधिक आश्वश्त और आनन्दित मनसे बाईने सभीसे कहा—इन तेरह पत्रोंका अचानक आगमन अनुष्ठानकी सफलताका प्रबल प्रमाण है।

* * * *

श्रीमहिला संघके एक मालीका नाम लूटन था, जिसे बाई बाबा कहा करती थी। नौकर हुआ तो क्या हुआ, उसे बाई बेटीकी तरह प्यारी थीं। सावनकी हरियाली तीजका दिन आया। बाईने उससे कहा—बाबा! क्या मेरा सिन्हारा नहीं करोगे?

वह बोला—बाई! क्या मुझ गरीबका स्वीकार कर लोगी? मेरा सौभाग्य जो आप मेरी चीजें स्वीकार कर लें, बताइये सिन्हारेमें क्या-क्या दूँ?

बाई बोलीं—पहननेका कपड़ा, चूड़ी और मिठाई दीजिये।

लूटन बाबा तत्काल बाजार गये और साड़ी, चूड़ी, जलेबी लाकर उन्होंने वात्सल्य भरे हृदयसे बाईको दी। बाईने साड़ी पहनी, चूड़ी पहन ली और सबको दिखा-दिखाकर अपने लूटन बाबाकी सराहना करने लगी। बाईने यह

भी कहा—मेरा लूटन बाबा मुझे ही नहीं, श्रीबरसानेवाली राधारानीको भी अपनी बेटी मानता है और राधारानीने इससे सिन्हारा लिया है। इसकी सेवासे श्रीबरसानेवाली बहुत प्रसन्न है। लूटन बाबाने श्रीबरसानेवालीकी कृपा खूब लूट ली है।

लूटन बाबाका सिन्हारा स्वीकार करके बाईने और बाईके साथ श्रीबरसाने-वालीने दिखला दिया कि उनके यहाँ निःस्वार्थ प्रीतिका ही महत्त्व है और सचमुच जो आदान-प्रदान स्वार्थकी दुर्गन्धिसे सर्वथा रहित है, उसकी पवित्रताकी कल्पना भी सांसारिक लोग नहीं कर पायेंगे।

* * * *

एक दिन तो बाईका लीला-विलास बड़ा ही अद्भुत रहा। यह पहले कहा जा चुका है कि कभी-कभी बाईमें अरण्य-निवासिनी रमणियोंका भावावेश हुआ करता था और उस भावावेशमें उन्होंने परम प्रियतमके नाम जो पत्र लिखा, उस पत्रकी भाषा बड़ी अटपटी है। वह भाषा इतनी अटपटी है कि उसका अर्थ वे ही जानें। पर इस दिन तो भाषाकी कौन कहे, वेशमें भी बड़ा अटपटापन आ गया। भावावेशमें बाईने अपना श्रृंगार अरण्य वासिनी रमणियोंके समान ही कर डाला। साड़ी पहननेका ढंग बिल्कुल वैसा ही था, पुरुषोंकी तरह पीछे लाँग थी। सामने टेढी होकर ऊँची टँगी थी, घुटनोंसे कुछ ही नीचे थी। शरीरपर फूल-पत्तियोंसे बने गहने थे। माथे पर फूलका मुकुट था। उसी वेशमें कीर्तन-मण्डली और भक्त-मण्डलीकी बहिनोंने श्रृंगार किया। जैसा वेश स्वामिनीका, वैसा ही वेश उनके परिकरका होना ही चाहिये। अटपटा नृत्य भी आरम्भ हो गया। गाये जानेवाले गीतकी भाषा भी अटपटी थी। बाई क्या बोल और गा रही है, कुछ समझमें नहीं आ रहा था। नृत्यका ठुमका भी अटपटा ही था। संगकी बहिनें नृत्यके तालपर ठुमका देना चाहती थीं, पर वह बहुत बेमेल हो रहा था। जैसा अटपटा वेश, जैसी अटपटी भाषा, जैसी अटपटी अदा, वैसी अटपटी अरण्य लीला।

देख-देख करके अनुमानके आधारपर आश्चर्य होता था कि क्या राधारानी अन्तरंग परिकरोंमें ऐसी आरण्यक रमणियाँ भी हैं। अटपटेपनका दर्शन पदे-पदे हो रहा था, पर वही अटपटापन क्षणे-क्षणे आनन्द भी प्रदान कर रहा था।

* * * * *

भाभीजीकी शल्य-चिकित्सा

सन् १९७१ के सितम्बर मासमें शारदीय नवरात्रका अनुष्ठान श्रीमहिला संघमें सानन्द सम्पन्न हो गया। इसके तुरन्त बाद उसी रात भाभीजीको शल्य-चिकित्साके लिये कलकत्ता जाना आवश्यक हो गया। वे तीव्र उदरशूलसे ग्रस्त रहती थीं। कलकत्ता जानेकी योजना बनते ही बाईने कहा— मैं भी आपके साथ चलूँगी।

केवल कहा ही नहीं, जानेकी दृष्टिसे अपनी तैयारी भी कर ली। बाईको साथ लेकर जाना और कलकत्तेमें ठहराना भाभीजीके लिये समस्या थी। शुद्धता, स्वच्छता, सात्त्विकता, ठाकुर-सेवा आदिसे सम्बन्धित बाईके नियम बड़े कठोर थे। उन कठोर नियमोंकी संख्या भी कम नहीं थी। नियमोंकी बहुलता और कठोरतासे परिचित होनेके कारण भाभीजी घबड़ा गयीं। उन्होंने बार-बार यात्रासे बाईको विरत करनेका प्रयास किया। भाभीजीने कहा—मेरे दोनों बच्चों नरेश और उमेशके कमरेमें रहना तुमको सर्वथा अप्रिय होगा। बड़े-बड़े शहरोंमें आजकल कमरेसे संलग्न शौचालय हुआ करते हैं। शहरी जीवन होनेके कारण वह शान्ति, वह शुद्धता, वह स्वच्छता मिलेगी ही नहीं। अतः तुमको भागलपुर ही रहना चाहिये।

भाभीजीने बहुविध प्रयत्न किया, परन्तु बाई माननेवाली थी ही नहीं। भाभीजीको चिन्ता-रहित बनानेके लिये बाईने कहा—मैं कहीं भी पेड़के नीचे रह लूँगी, पर जाऊँगी अवश्य।

हारकर बाईको साथ ले ही जाना पड़ा। कलकत्तामें बाई भाभीजीके साथ प्रिय नरेश-उमेशके फ्लैटमें ठहरी हुई थी, पर परेशानी तो हो ही रही थी। उसी समय भाभीजीकी समधिन, जो मिलनेके लिये आयी थीं, वह आग्रह करके बाईको अपने घर ले गयीं। वहाँ अपेक्षाकृत कुछ अधिक सुविधा थी। वह भाभीजीकी पुत्री विमला बाईका घर था और उस घरमें ठाकुरबाड़ीमें बाई रहने लगीं। भले स्थान और सुविधाका कुछ संकोच था, पर बाईके मनमें परेशानीकी अनुभूति हुई ही नहीं और उसी परिस्थितिमें बाई अपने ढंगसे आनन्दपूर्वक रहने लगी। बाईके पास मिलनेवालोंका आना-जाना वैसे ही लगा रहता। बाईकी रहनीको देखकर घरके नौकर और दाइयोंको बड़ा आश्चर्य होता था। उनके

मनमें रह-रहकर करके प्रश्न उठता था कि यह कौन है? एक दिन उत्सुकताकी अधिकतामें दाइयोंमें-से एक दाईने एकान्त देखकर बाईसे पूछा ही लिया—आप कौन हैं?

बाईने सहज ढंगसे कुछ मुस्कुराते हुए कहा—तुम्हारी मालकिन जो विमला बाई है, उनकी माँका ऑपरेशन होनेवाला है। हमलोग उन्हें भाभीजी कहते हैं, मैं उनकी दाई हूँ। ऑपरेशनमें सेवा करनेके लिये आयी हूँ। मेरे साथ तीन-चार बहिनें हैं, हम सब मिलकरके सेवाका काम सँभालेगी।

उसे बड़ा आश्चर्य होता था कि यह कैसी दाई है, जिससे मिलनेके लिये स्त्रियोंकी भीड़ लगी रहती है। अवश्य ही यह कोई मालदार घरकी है। उस दाईके लिये बाईका व्यक्तित्व और रहनी एक पहेली बनी हुई थी। केवल वह दाई ही नहीं, घरकी अन्य दाइयोंके मनमें अनेक प्रकारके प्रश्न उठते रहते थे। एक अन्य दाईने भी एक दिन बाईसे पूछनेका साहस कर ही लिया—तुम्हारी शादी हो गयी है क्या?

बाईने कहा—हाँ।

दाई—तो तुम सफेद साड़ी क्यों पहनती हो?

बाई—उन्होंने मुझे छोड़ दिया है।

दाई—तुम्हारी जैसीको छोड़ देनेवाला वह पत्थर दिल कौन है? वह कहाँ रहता है? कहाँ काम करता है?

बाई अपनी लटकमें मीठे-मीठे ढंगसे कहती चली जा रही थीं—मेरी बहिन! वह वृन्दावनमें रहता है। वह है तो साँवला, पर है बहुत सलोना। उसके बाल बड़े घुँघराले हैं और वह बड़ा रसीला है। बहुत छैल-छबीला है। मेरी जैसी उसके बहुत सी है। उसकी सुन्दरताका ठिकाना नहीं। जो उसे एक बार देख लेती है, वही उसकी हो जाती है। मेरी जैसी हजारों उसपर बलिहार हैं।

बाईके उत्तरने दाईके मनको और उलझा दिया। वह कौन है ऐसा हृदयहीन, जिसने अपनी परम सुन्दरी घरवालीको छोड़ दिया है। बाईकी बात सुनकर वह वहाँसे चली गयी, परन्तु उसने मन-ही-मन मान लिया कि भाभीजीकी इस 'दाई' का विवाह ऐसे पुरुषसे हो गया है, जो बड़ा लम्पट है और जो अपने चिकने बालों तथा चिकनी बातोंमें अनेकों भोली-भाली स्त्रियोंको फँसाया करता है। उन्हीं अनेकोंके लिये गुस्सेमें भरी हुई वह सरला 'दाई' हजारो-हजारों कह रही है। सहानुभूतिवशात् भाभीजीकी

इस 'दाई' के प्रति जितने अधिक ममता उसके मनमें उमड़ती, उससे कई गुना अधिक क्षोभ उस लम्पट पतिके प्रति रहता। अब उसे दिन-रात बाईके उस लम्पट पतिके प्रति रहने लगा। उसका चिन्तन यही था—क्या यह इतना विषयी है, जो अनेकोंके चक्करमें रहता है। उसने इस मीठी, सलोनीको क्यों छोड़ दिया? इसका दुर्भाग्य था, जो इसकी शादी ऐसे जार पुरुषके साथ हो गयी।

वह सेविका बस दिन-रात बाईके लम्पट पतिके बारेमें सोचती रहती और मन-ही-मन 'उस' जार पुरुषकी टीका-टिप्पणी करती रहती। एक दिन रात्रिके समय वह सोये-सोये उस लम्पटको बुरी तरह कोस रही थी। कोसते-कोसते इस 'दाई' के प्रति ममतावशात् उसकी आँखें भी भर आती थीं। उस लम्पटको खूब बुरा-भला सुनाते-सुनाते उसे नींद आ गयी। नींदमें उसने सपना देखा—एक वनमें एक नदी बह रही है। तटपर चाँदकी चाँदनी खिली हुई है। तटकी बालूपर पीले कपड़े पहने हुए एक किशोर बैठा हुआ है। उसका रंग साँवला है। वह बड़ा सलोना और सुन्दर लग रहा है। उसके घुँघराले बालोंकी छबि न्यारी ही है। उसके आस-पास अगणित सुन्दरियाँ बैठी हैं और वह उनसे मीठी-मीठी बातें कर रहा है। सिरपर मोर मुकुट और हाथमें वंशीको देखकर उसने यह तो तुरन्त अनुमान लगा लिया कि यह किशोर भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं, पर साथ-साथ यह भी अनुमान होने लगा कि भाभीजीकी 'दाई' ने जैसा वर्णन किया था, वह लम्पट पुरुष यही है। तो क्या यही उसका पति है? और क्या यह वृन्दावन है, और यह नदी ही यमुना है? वह स्वप्नमें वृन्दावन बिहारी श्रीकृष्णको देख करके चकित और स्तम्भित रह गयी। सुबह उठनेपर उसे अपने स्वप्नकी पूर्ण स्मृति बनी हुई थी और उसी स्मृतिके साथ-साथ यह प्रश्न भी उसके मनको मथ रहा था कि क्या भगवान् श्रीकृष्ण ही उस बाईके पति हैं। उसे बाईको अपना स्वप्न सुनानेकी चटपटी लगी हुई थी। सब वृत्तान्त सुनाकर उसने बाईसे पूछा—ये भगवान् श्रीकृष्ण ही तुम्हारे पति है क्या?

उस दाईके मुखसे स्वप्नका सारा वृत्त सुनकर और फिर उसके प्रश्नको सुनकर बाई खिलखिला करके हँस रही थीं। हँसते समय बाईके नेत्रोंमें एक रंगीली मधुरता थी, जिसने इशारे-ही-इशारेमें प्रश्नका उत्तर दे दिया और इशारेकी भाषाका अर्थ जान लेते ही उसे अपने प्रश्नका उत्तर मिल गया। फिर

कुछ क्षणों बाद ही शान्त और सम होकर तथा प्यारसे लबालब भरकर दाईके कन्धेपर हाथ रखते हुए बाई बोलीं—बहिन! तुम धन्य हो। वस्तुतः धन्य हो। तुम्हें तो भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन हो गये, भले वह स्वप्नमें ही हुए हों। वे ही मेरे जीवन-सर्वस्व हैं।

बाईके अर्थ भरे उस अटपटे कथनका मर्म सेविकाके सामने अब खुला। अब तो बाईके प्रति उसकी बड़ी श्रद्धा हो गयी। श्रद्धाने सहेलीका रूप ले लिया। वह सहेली स्वरूपा दाई बाईकी हर दिन हर प्रकारसे सँभाल रखने लगी। पैसेके बदले किये जानेवाला कार्य और श्रद्धा भरे हृदयसे किये जाना वाला कार्य, इन दोनों कार्योंमें महान अन्तर होता है। सुख-सुविधा-सम्पत्ति-सम्पन्नतासे सौभाग्यशाली विमला बाई और उनकी सास दोनों अत्यधिक स्नेह और सम्मान देते हुए बाईकी सँभाल कर रही थीं, परन्तु उस अकिञ्चना दाईके द्वारा श्रद्धापूरित हृदयसे की जानेवाली सेवा और सँभालका रस कुछ और ही था। वृन्दावनके उस अलबेले ठाकुरका खेल बड़ा विचित्र है। विमला बाईकी उस दाईके हृदयमें भक्ति-भावका बीजारोपण करना था, अतः उस अनोखे ठाकुरने बाईको 'दाई' बनाकर विमला बाईके घर भेज दिया।

बाई भाभीजीकी सुपुत्री विमलाके घर मात्र दस दिन रहीं। पुनः बाई वहीं आ गयीं, जहाँ भाभीजी अपने पुत्रके फ्लैटमें रह रही थीं। भाभीजीके कमरेमें ही बाईने चटाई लगा ली। उसी कमरेमें ठाकुरजीको पधरानेके लिये भी चौकी लगा ली गयी और चौकीके सामने एक आसन बिछा लिया गया पूजा-पाठके लिये। भाभीजीके उस कमरेमें शौच-स्नानकी दृष्टिसे असुविधा कम नहीं थी, पर अब बाईको वह सारी असुविधा स्वीकार करते हुए वहाँ रहना ही रुचिकर लग रहा था। दस दिन बाद ही ऑपरेशनकी तिथि निश्चित हो गयी। भाभीजी अस्पतालमें भरती होनेके लिये जाने वाली थीं। अस्पतालके नियमानुसार केवल एक सेवक या सेविका ही रोगीके पास चौबीस घण्टे रह सकते थे, अतः परिवारके किसी एक व्यक्तिका ही भाभीजीके पास रहना उचित था, जिससे वह समयपर आवश्यक सँभाल कर सके। अस्पतालके नियम जो भी रहे हों, कुछ विशेष और अज्ञात कारणोंसे बाई भाभीजीके साथ अपना या सावित्री बाईका अस्पतालमें रहना आवश्यक समझ रही थीं, अतः उन्होंने भाभीजीसे कहा—मैं या सावित्री आपके साथ अस्पतालमें रहेंगीं।

भाभीजीने कहा—बाई! तुम अस्पतालमें नहीं रह सकोगी। तुम्हारे साथ

रहनेवाली यह सावित्री भी सेवा-चर्याकी दृष्टिसे किसी उपयोगमें नहीं आ पायेगी। यह अंग्रेजी या बंगला नहीं जानती है और न दवा आदिकी कुछ बात समझती है। तुम दोनोंको तो यहीं घरपर ही रहना चाहिये। इसके अलावा अस्पतालका नियम भी तुम दोनोंके रहनेमें बाधक बन रहा है। वहाँ तो रोगीके साथ केवल एक व्यक्ति रह सकता है।

बाई साथ रहनेका आग्रह नहीं छोड़ रही थीं। उन्होंने भाभीजीसे कहा—सावित्रीका वहाँ रहकर जप-पाठ करना जरूरी है, अतः हम दोनोंमेंसे एक आपके साथ चलेंगी ही।

बार-बार आग्रह-अनुरोध करनेके बाद भी भाभीजीकी सहमति न देखकर बाईने कह ही दिया—ठीक है, मैं और सावित्री रहेगी तो अस्पतालमें ही। आपके कमरेमें नहीं तो अस्पतालके किसी पेड़के नीचे रहकर पाठ किया करेंगी।

अन्ततः भाभीजीको अपनी ओरसे स्वीकृति देनी पड़ी कि सावित्री बाई मेरे साथ रह सकती हैं। अस्पतालमें भर्ती होनेके बाद रहनेके लिये जो कमरा मिला, उस कमरेका रंग-ढंग अब दूसरा ही हो गया। भाभीजी तो अपने पलंगपर थीं, पर एक किनारे एक टेबुलपर ठाकुर विराजित कर दिये गये। उनका नियमित रूपसे पूजन-आरती-भोग आदिका अर्चन विधान चलता रहा। पौने दस बजेसे बारह बजेतक श्रीराधा नाम संकीर्तन होता। दीपक जलाकर सुन्दरकाण्ड, हनुमानचालीसा, रामरक्षास्तोत्रका पाठ होता। जो भी कमरेमें आता उसके लिये आवश्यक था कमरेके बाहर ही जूता-चप्पल खोल करके आये। धूपकी सुगन्धसे कमरा महकता रहता। अब वह अस्पतालका कमरा नहीं था, बल्कि ठाकुरबाड़ी थी। कीर्तनकी ध्वनि, दीपककी ज्योति, अगरबत्तीका धुआँ, पुष्पोंका शृंगार, पाठकी पुस्तक, पूजाका आसन, इन सभीने उस कमरेके वातावरणमें ठाकुरबाड़ी वाली दिव्यता भर दी और इस दिव्यताने अस्पतालके डॉक्टरों और नर्सोंपर भी अपना प्रभाव दिखाया। डॉक्टर, नर्स, अटेण्डेण्ट जो भी आते, वे ठाकुरको प्रणाम करते और सावित्री बाई सभीको चरणामृत एवं प्रसाद देतीं। ऑपरेशन होनेके बाद भाभीजी उस कमरेमें लगभग एक सप्ताह रहीं, फिर वे पुनः अपने पुत्र नरेशके फ्लैटमें आ गयीं। भाभीजीके आनेसे ठाकुरजी भी साथ-साथ चले आये, परन्तु उस ठाकुरबाड़ीकी याद वहाँके डॉक्टरों और नर्सोंको बहुत दिनोंतक बनी रही। उस यादके लगे-लगे और प्यारके धागेमें बँधे-बँधे डॉक्टर और नर्स आदि भाभीजीके घरपर भी आते रहते थे।

प्रेतोद्धार

अपने पुत्र नरेशके फ्लैटमें रहती हुई भाभीजी क्रमशः स्वास्थ्य-लाभ कर रही थीं, परन्तु इसीके साथ उनकी खिन्नता प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही थी। खिन्नताका कारण था उस व्यवस्थाका अभाव, जो बाईके लिये आवश्यक था। बाई भाभीजीके बगलमें चटाई बिछाकर ही सोती-बैठती थीं।

भाभीजीने समीप आनेवाली कई बहिनोंसे पूछना आरम्भ कर दिया कि कहीं बाईके रहनेके लिये समुचित व्यवस्था हो सकती है क्या? पूछते-पूछते स्नेह भरा आश्वासन मिला विद्या बाई मस्कराकी ओरसे। इनके पीहरका एक मकान श्याम बाजारमें था। उस मकानमें एक फ्लैट खाली था। विद्या बाईने वही बाईके रहनेकी व्यवस्था कर दी। विद्या बाई तो पहलेसे ही बाईपर बलिहार थीं। उनके लिये तो यह सेवाका स्वर्णिम अवसर था। भाभीजीने बाईको वहींपर रहनेके लिये भेज दिया।

बाई जिस दिन उस फ्लैटमें रहनेके लिये आयीं, पहले दिन ही एक अप्रत्याशित प्रसंग सामने आ गया। बाई प्रातःकाल शौचालयमें गयीं और उन्होंने कपाट बन्द किये। बन्द कर लेनेके बाद वहाँ उन्हें एक स्त्री दिखलायी दी। वह नग्न, भयंकर और कंकाल मात्र थी। उसके सामने आते ही एक बार तो बाई डरी, परन्तु बहुत ध्यानसे देखनेपर बाईको समझमें आ गया कि निश्चय ही यह कोई प्रेतात्मा है। बाई कुछ-कुछ भयभीत तो थीं, परन्तु तत्क्षण ही बाईने उसे प्रणाम किया और पूछा—माताजी! आप कौन हैं? यहाँ कैसे आयीं?

बाईके इतना कहते ही वह बोल पड़ी—तुम डरो मत। मैं तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ूँगी। हमलोग आठ प्रेतात्मा सामनेवाले वृक्षपर साथ-साथ रहती हैं। हमलोगोंके कई स्तर होते हैं, कई जातियाँ होती हैं। मैं निकृष्ट स्तरकी प्रेतात्मा नहीं हूँ। मैं पहले नहीं बोल सकती थी। तुमने मुझसे बातचीत आरम्भ की, पहले तुमने कुछ पूछा, तब मैं तुमसे बात कर सकती हूँ। मैं उसी स्थानपर जाती हूँ, जहाँ भजन, कीर्तन, पूजा, पाठ, सत्संग होता है। मृत्युसे पहले मैं अपने परिवारके साथ इसी फ्लैटमें रहती थी। मेरी मृत्यु यहीं हुई। मैं नित्य गंगा स्नान करती थी। एक लाख नाम जप करनेका मेरा नित्यका नियम था।

पूज्य श्रीसेठजीके सत्संगमें जाया करती थी। गीता, रामायण, भागवतमें मेरी बहुत श्रद्धा थी। सत्संगमें जानेकी मुझे बहुत जल्दी रहा करती थी। मेरे घरमें लड्डू गोपालजीकी सेवा थी। मैं नित्य मंदिर भी जाया करती थी।

बाईको इतनी समझ तो हो ही गयी थी कि मृत्युके बाद सद्‌गति नहीं होनेके कारण यह प्रेतात्मा दुर्दशाको प्राप्त होकर भटक रही है, परन्तु मनमें प्रश्न बना हुआ था कि ऐसे भजन परायण जीवन शैलीवाली धर्मात्माको प्रेतयोनिकी प्राप्ति क्यों हुई। अपनी मानसिक उलझनको दूर करनेके लिये उस प्रेतात्मासे बाईने पूछा—इतना भजन, सत्संग करनेके बाद भी आपकी यह दुर्दशा कैसे हुई? आपको प्रेतयोनि क्यों मिली?

उस प्रेतात्माने स्पष्टीकरण करते हुए कहा—मेरे घरवालोंने ऋण ले रखा था। उस ऋणके प्रति मैं सदैव उदासीन रहती थी। मैं यही सोचती रहती थी कि ऋण तो घरवालोंने लिया है, मुझे उससे क्या लेना है और क्या देना है। मैंने उन्हें कभी कर्ज चुका देनेकी सलाह भी नहीं दी। इसी उदासीनता और उपेक्षाके फलस्वरूप मुझे यह प्रेतयोनि मिली है। मैं भटक रही हूँ। मेरी दुर्दशा हो रही है। तुम मेरा उद्धार कर सकती हो, इसीलिये मैं तुम्हारे पास आयी हूँ। जैसा कि प्रेतात्माएँ किया करती हैं, मैं तुम्हारा कोई भी अनिष्ट नहीं करूँगी। तुम सक्षम हो, अत: केवल उद्धारकी कामनासे मैं तुम्हारे पास आयी हूँ।

इतना कहकर वह प्रेतात्मा अदृश्य हो गयी। बाईने स्नान किया और पूजा करनेके लिये अपने कमरेमें आयीं। जैसे ही कमरेके कपट बन्द किये, वह फिर दिखलायी दी और बोली—मेरा उद्धार करना।

बाईने पूछा—आपका उद्धार कैसे हो सकता है?

वह प्रेतात्मा बोली—मेरे लिये श्रीमद्भागवत सप्ताह करवा दो।

बाईने कहा—ठीक है। मैं भाभीजीसे बात करके भागवत सप्ताह करवानेकी चेष्टा करूँगी।

भागवतका आश्वासन मिलते ही उस प्रेतात्माने कहा—इस मकानकी मालकिन अर्थात् विद्या बाईकी माताजीका कुछ मकान भाड़ा बाकी रह गया था, वह भी कर्ज है।

बाईने कहा—ठीक है। मैं उस कर्जसे भी आपको मुक्त करवानेकी चेष्टा करूँगी।

बाईने सारी बातें भाभीजीको बतलायी और कहा—उन माताजीके लिये एक भागवत सप्ताह करवानी चाहिये।

भाभीजीने तो सदैव बाईकी रूचिको महत्त्व देती रही है। मन-ही-मन भागवत सप्ताहको करानेका निश्चय करके बाईसे कहा—विद्या बाईसे विचार करके भागवत सप्ताहकी कथा करवा दी जायेगी।

प्रेतात्माकी कही हुई बातकी सत्यताका पता लगानेके लिये खोजबीन होने लगी। विद्या बाईकी माताजीसे चर्चा चलानेपर सारी बातें अक्षरशः सत्य निकली। उसी समय बाईने विद्या बाईकी माताजीसे कहा—आप संकल्प लेकर उस प्रेतात्माको भाड़ेके रूपमें जो ऋण है, उस ऋणसे मुक्त कर दें।

माताजीने प्रसन्नतापूर्वक यह संकल्प ले लिया। अब भागवत सप्ताहको करवानेके लिये बाईने विद्या बाई मस्करासे बात की। उनके प्रयत्नशील होनेसे एक पण्डितजी भी तुरन्त मिल गये। वे थे कोशीकला वाले श्रीकिशनलालजी शास्त्री। पण्डितजीने कई विवशताएँ बतलाते हुए कहा—मैंने कभी भागवत सप्ताह नहीं की है। केवल मूल पाठ कर सकता हूँ।

बाईने कहा—आप भागवत सप्ताहकी कथा कह सकते हैं और आपको ही कहनी है।

अन्ततः पण्डितजीको प्रस्ताव स्वीकार करना पड़ा और भागवत सप्ताहकी तैयारी होने लगी। जिन बहिनोंसे इस प्रेतात्माकी चर्चा होती, सुननेवाली बहिनोंके लिये वह चर्चा मनोरञ्जन और हास्यकी वस्तु बन जाती। उन हँसने वाली बहिनोंसे बाई कहती थीं कि वासनाकी निवृत्ति हुए बिना भजनका उचित फल नहीं मिलता।

उसी प्रेतात्माने बतलाया था—मृत्युके बाद छत्तीस घण्टेतक बड़ी कठोर और कष्टप्रद यातना भोगनी पड़ी थी। यातनाकालमें यातनाके चार कारण बतलाये गये—

१. तुम्हारे मनमें सदा यह विचार रहता था कि ऋण घरवालोंने लिया है, अतः मुझसे भला क्या सम्बन्ध है। मुझे तो खाने-पीनेको मिल ही जाता है। मैं घरकी सब चीजोंपर अपना अधिकार समझती थी, परन्तु कर्जके प्रति सदैव उदासीन रहती थी।

२. तुम्हें साड़ी पहननेका बड़ा चाव रहता था। दिनमें दो-तीन बार साड़ी

बदल लेती थी, परन्तु तुमने कभी भी किसीको भी एक साड़ीका दान नहीं किया।

३. तेरी पड़ोसन कई बार तेरे पास कुछ माँगनेके लिये आयी। घरमें होते हुए भी तुमने ना कर दिया।

४. तुझे अपने भजनका बहुत अभिमान था। भजनका अभिमान ही तेरी दुर्दशाका कारण बन रहा है। भजनके साथ वासनाका अभाव, सत्कर्मके प्रति सजगता, दैन्य, अभिमान-शून्यता बहुत आवश्यक है।

बाईके मुखसे प्रेतात्माके कष्टके कारणोंको सुनकर बैठी हुई बहिनोंकी चिन्तन धारा बदली। वे सब सोचने लगीं कि यह तो मनन करके जीवनमें सावधानी बरतनेका विषय है। बाईकी रूचिके अनुसार वही श्याम बजारवाले मकानके उसी फ्लैटमें श्रीमद्भागवत-सप्ताह होना निश्चित हो गया। विद्या बाईकी माँ एवं विद्या बाईकी बहिनें, सभी सक्रिय हो गयीं। सारी व्यवस्था हो गयी। भागवत-सप्ताहकी कथा सुनानेके लिये पण्डितजी आसनपर विराज गये। श्रीमद्भागवत पुराणकी अर्चना और आरती भक्ति सहित की गयी। अब सप्ताह कथा आरम्भ होने ही वाली थी कि बाई अपने कमरेसे बाहर आयीं और विद्या बाईको बुलाकर पूछा—आपने उन माताजीके लिये आसन लगाया या नहीं?

बाईने आसन लगानेके लिये कहा तो था, पर उसकी स्मृति नहीं रही। विस्मृतिके कारण जो चूक हुई, उसकी जानकारी होते ही बाईने बतलाया—आसन न देनेके कारण वह प्रेतात्मा घूम रही है। व्यासासनके सामने ही उनको आसन देना चाहिये।

अब केवल उसी प्रेतात्माके लिये नहीं, बल्कि उनके साथ अन्य सात अर्थात् कुल आठ आसन लगाये गये। किसीको कुछ दिखलायी तो नहीं पड़ रहा था, परन्तु यह आभास होता था कि यहाँ कोई बैठा है। कथा आरम्भ हो गयी। चौथे दिन प्रेत योनिसे मुक्त वे माताजी प्रसन्न मुद्रामें बाईके सामने आयीं। आज वह नग्न नहीं, अच्छे परिधानमें थीं। अब वे भयंकर नहीं, सुन्दर लग रही थीं। वे प्रसन्न मुद्रामें बाईसे बोलीं—बाई! तुम्हारी कृपासे मेरा उद्धार हो गया। अब मैं जा रही हूँ। जानेसे पहले तुमसे मिलने आयी हूँ। तुम्हारी कृपासे ही यह सब सम्भव हो सका।

बाईको खुली आँखसे दिखलायी दिया कि प्रेत योनिसे मुक्ति मिलते ही

उन्हें विष्णु लोककी प्राप्ति हो गयी और इस प्राप्तिमें मुख्य कारण था, उनका गंगास्नान, सत्संग, जप, ठाकुर सेवा आदि।

भागवतकी पूर्णाहूतिके अवसरपर एक सौ आठ ब्राह्मणोंको भोजन करवाया गया। दक्षिणामें द्रव्यके साथ एक-एक धोती और एक-एक गमछा दिया जाना था। बाजारसे घटिया धोती आ गयी। बाईको घटिया काम पसन्द होता ही नही था। तुरन्त एक सौ आठ धोतीकी व्यवस्था कैसे हो? यह भी बड़ा कठिन था। ब्राह्मण भोजनमें केवल कुछ घण्टोंकी देर थी। विद्या बाईके लिये बाईकी खिन्नता असह्य थी। उन्होंने तुरन्त बाईसे कहा—आप चिन्ता न करें। मैं तुरन्त इसकी व्यवस्था करती हूँ।

यही उत्तर बाई सुनना चाहती थीं और विद्या बाईकी श्रद्धा-भावनाने भी चमत्कार दिखला दिया। विद्या बाईके घरके अन्य लोग ब्राह्मण भोजनकी व्यवस्थामें लगे रहे, परन्तु विद्या बाईने बाजारसे तुरन्त एक सौ आठ बढ़िया धोती लाकर और पीले रंगमें रंगकर बाईके सामने रख दी। बाईके नेत्रोंसे आह्लाद झरने लगा। ब्राह्मणोंको भली प्रकार सन्तुष्ट करके विदा किया गया। बाईने पूछा—पहले आयी हुई एक सौ आठ धोतियोंका क्या उपयोग होगा?

विद्या बाईको उत्तर देनेमें देर नहीं लगी और उन्होंने कहा—बाई! श्रीमद्भागवत महापुराणपर न्योछावर करके दरिद्रनारायणके मध्य बँटवा दी जायेगी।

मस्करा बाईकी इस उदारतापर बाईका मन रीझ उठा और बाईकी प्रसन्नताका सर्वाधिक हेतु यह था कि उन माताजीको विष्णुलोककी प्राप्ति हो गयीं।

* * * * *

कलकत्तेमें लघु 'श्रीमहिला संघ'

क्या ऐसा कहनेका साहस कर लिया जाय कि करना कुछ और होता है और बहाना कुछ होता है। बाईको कलकत्तेमें उस दाईके हृदयमें भक्ति-भावका बीजारोपण करना था, उन आठ प्रेतात्माओंकी मुक्ति करनी थी और भजन-सत्संग-संकीर्तनकी गंगा बहानी थी, इसके लिये बहाना लिया भाभीजीकी सेवा-सँभालका। भाभीजीकी सेवा-सँभालका निमित्त बना करके भाभीजीके साथ आनेवाली बाईने कलकत्तामें विद्या बाईके माध्यमसे सत्संग और उत्सवकी जो गंगा बहायी, वह अनोखी थी।

विद्या बाई मस्कराका कुछ परिचय देना आवश्यक लग रहा है। विद्या बाईके पति अपने परिवारका भरण-पोषण करनेके लिये कलकत्तेमें व्यापार किया करते थे। भाभीजीसे विद्या बाई श्रीमहिला संघकी इन रुक्मिणी बाईका गुणगान सुन चुकी थी और दर्शनकी प्रबल चाह थी। भागलपुरमें बाईसे मिलकर उनको बड़ी प्रसन्नता हुई और उनके मनमें विश्वास जम गया कि इन बाईके आश्रयसे मुझे सब कुछ मिल सकता है, लौकिक-पारलौकिक दोनों दृष्टिसे मंगल ही होगा। विद्या बाईका मन बाईके प्रति विनत हो गया और वे बाईकी प्रेरणासे कलकत्तेमें अपने घरपर प्रत्येक शुक्रवारको सत्संग करने लगीं।

बाईके मुखसे श्रीभाईजीकी प्रशंसा सुनकर विद्या बाईके मनमें ऐसी उत्सुकता बनी हुई थी कि कभी बाईके साथ उनका दर्शन करूँ। ठाकुरने संयोग भी बैठा दिया। बाई और भाभीजी गोरखपुर आयी हुई थीं। यह जानकारी मिलते ही विद्या बाई कलकत्तेसे गोरखपुर आ गयीं। बाईसे मिलकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। इधर बाईको भी बहुत प्रसन्नता हुई। ऐसा लगता है कि पारमार्थिक दृष्टिसे विद्या बाईके भाग्योदयका समय आ चुका था। विद्या बाईको साथ लेकर बाई श्रीभाईजीके पास गयीं और संयोग ऐसा बना कि श्रीभाईजीने विद्या बाईको मंत्र प्रदान किया। उन्होंने साथ-साथ यह भी कहा—घरमें ठाकुर-सेवा बड़े भावसे करना और ठाकुरजीका उत्सव भी बड़े उत्साहसे मनाना। सदा सत्संग करना और सत्संगमें लोगोंको लगाना। इसके अलावा लोगोंकी सेवा करना।

विद्या बाई गोरखपुरसे कलकत्ते चली आयीं, परन्तु उनके मनमें

श्रीभाईजीके शब्द सदा घुमड़ते रहते थे। सत्संग प्रति शुक्रवारको होता ही था तथा अभावग्रस्त लोगोंकी सेवा-सहायताका कार्य भी चलता रहता था। घरमें ठाकुर सेवा थी ही, बस एक बात चुभती रहती थी कि श्रीभाईजीने उत्सव मनानेके लिये कहा था, वह कैसे मनाया जाय? चुभनका यह दर्द दूर हो गया सन् १९७१ में बाईसे मिलनेपर। बाई भाभीजीके ऑपरेशनके लिये कलकत्ते आयी हुई थी। जब ऑपरेशनका कार्य पूर्ण हो गया, तब विद्या बाईने बाईसे इस सम्बन्धमें बातचीत की। विद्या बाईको विश्वास था कि मेरी समस्या अवश्य हल होगी। विद्या बाईने बाईसे कहा—बाई! मेरी भावनाके अनुसार मेरा घर श्रीमहिला संघ ही है। इस मान्यताको पकड़नेके पीछे कुछ कारण है। श्रीभाईजीने आपको आश्वासन दिया था कि श्रीमहिला संघमें ही वृन्दावनका प्राकट्य हो जायेगा। अब यदि मैं अपने घरको महिला संघ समझूँगी तो मेरे गुरूदेव श्रीभाईजीके अव्यर्थ वचन यहाँ भी वृन्दावनका प्राकट्य कर देंगे। दूसरी बात यह है कि मैं तो आपपर निर्भर हूँ और मेरा विश्वास है कि आपके आश्रित रहनेसे मेरा लोक-परलोक-परमार्थ सब सुधरेगा। आप यदि भागलपुरके श्रीमहिला संघमें स्थूल रूपसे रहती है, तो मेरे घर रूपी श्रीमहिला संघमें सूक्ष्म रूपसे निवास करेगीं। अब मेरी प्रार्थना यह है कि मेरे घर रूपी श्रीमहिला संघको भागलपुरवाले श्रीमहिला संघका वास्तविक रूप प्रदान करनेके लिये यहाँ भी उत्सव और कीर्तनका ढंग बना दीजिये।

श्रीभाईजी बाईके जीवन सर्वस्व थे और उन भाईजीके प्रति विद्या बाईकी श्रद्धा और निष्ठा देखकर बाईका मन रीझ उठा। बाईने उत्सवके लिये आठ बहिनोंका एक भक्त-मण्डली बनायी, जिसकी सदस्याएँ थीं—

१-विद्या बाई मस्करा
२-साबो बाई मस्करा
३-प्रेमा बाई मस्करा
४-मनोरमा बाई कामानी
५-मंजु बाई हिम्मतसिंहका
६-कुसुम बाई बागला
७-लक्खी बाई अग्रवाल
८-गिन्नी बाई सरावगी

इनको श्रीबाईने पीत परिधान प्रदान किये, जिससे कि उत्सवमें प्रिया-प्रियतमके भावराज्यका अवतरण हो सके। भागलपुरके श्रीमहिला संघमें चार महोत्सव और तीन उत्सव प्रधान थे, उन्हीं सातों उत्सवोंको मनानेक लिये बाईने

विद्या बाईसे कहा। जो विशद रूप भागलपुरमें था, वैसा तो नहीं, किन्तु उसका लघु रूप विद्या बाईके घररूपी श्रीमहिला संघमें अवश्य उतर आया। अब केवल ये सात उत्सव ही क्यों, उत्साह-उत्साहमें विद्या बाई और भी कई उत्सव मनाने लगीं। कलश स्थापन, तीन दिनका अखण्ड श्रीराधानाम संकीर्तन, बन्दनवार, नैमित्तिक पूजन, नैवेद्य आदि-आदि इन सभी उत्सवोंकी मुख्य विशेषताएँ थीं। सबसे बड़ी विशेषता थी जीमनवार। विद्या बाईके घरपर शुक्रवारके दिन होनेवाले सत्संगमें नियमित आनेवाली लगभग दो सौ बहिनें तो निमन्त्रण पर आती ही थीं, इनके अलावा जीमनवारके समय प्रसाद पाने वालियोंकी संख्या एक हजारसे भी अधिक हो जाया करती थी। जिन्हें कभी भी सत्संगमें नहीं देखा गया वे भी पंगतमें दिखलायी देती थीं। अपने रूप और रंग, मधुर और मृदुल स्वभावसे सहज ही सबको आकृष्ट करनेवाली इन बहिनोंको देखकर जिमानेवाली बहिनें विद्या बाईसे पूछतीं—इन्हें तो आजतक कभी देखा ही नहीं, ये कौन हैं?

विद्या बाईके सामने अनेक बहिनें अनेक प्रकारसे प्रश्न करती थीं, किन्तु उन अनेकोंका एक ही उत्तर होता था—श्रीबिहारीजीकी कोई सखी, सहेली होगी। यहाँ श्रीबिहारीजीका उत्सव हो रहा है, उन बिहारीजीके बिना बुलाये कोई आ ही नहीं सकता। आपलोग अपनी बाहरी आँख बन्द कर लें। जो भी आकर पंगतमें बैठ जाये, उसको जिमाते जाइये।

विद्या बाईका यह भाव भरा उत्तर सभीमें अलौकिक और अगाध उमंग भर देता, पर यह उमंग एक आशंका भी खड़ी कर देता कि कहीं रंगमें भंग न हो जाय। जिमानेके लिये भण्डारमें सामग्री सीमित है और जीमनेवालोंकी संख्या बढ़ती जा रही है। रसोईके कम पड़ते ही सारा मजा किरकिरा हो सकता है। शंकाग्रस्त बहिनें आ-आ करके विद्या बाईको झकझोरतीं। फिर उनका सभीके समक्ष एक ही उत्तर रहता। तुम सब निरी सांसारिक हो। यह श्रीबिहारीजीका उत्सव है और बिहारीजीका भण्डार है। उन बिहारीजीके आमंत्रणपर ही ये सब लोग आये हैं। फिर भला बिहारीजीके भण्डारमें कमी कैसे आयेगी?

सदा ही देखा जाता जीमनवार हो जानेके उपरान्त और समागत श्रद्धालु बहिनोंके लौट जानेके उपरान्त भी भण्डारमें पर्याप्त प्रसाद रहता ही था। एक बात और विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। जब-जब वे उत्सव मनातीं, तब-तब एक अनहोनी बात घट जाया करती थी। उत्सवके लिये उन्होंने अपने पतिसे

रूपया माँगा और वह रूपया वे उत्सवके निमित्तसे पर्समें रख देती थीं। उसी पर्समेंसे उत्सव-कार्यके लिये रूपया खर्च होता रहता। उत्सवके बादमें जब सारा खर्च जोड़ा जाता तो यही ज्ञात होता कि जितना रूपया पर्समें रखा गया था, उससे तीन-चार गुना अधिक व्यय हुआ है और पर्समें रखे हुए धनसे जो अधिक धन व्यय हुआ, वह धन कहाँसे आया, इसका कोई उत्तर नहीं। इन सामुदायिक कार्यक्रमोंमें उनकी व्यस्तता बहुत अधिक रहा करती थीं। इस प्रकारके बड़े-बड़े कार्यक्रमोंमें भाग लेनेवाले सभी लोगोंका मानसिक धरातल एक-सा होता नहीं है। विभिन्न स्तरके लोगोंको साथ लेकर चलनेमें विविध और विचित्र बाधाओं और उलझनोंका काफी सामना करना पड़ता है, परन्तु श्रीभाईजीकी कृपासे विद्या बाईका उत्साह कभी कम नहीं हुआ। उनके मनकी भावना यही रहती थी कि श्रीभाईजीके आदेशके पालनमें परेशानी या भारीपनकी बात भला कैसी? उनके अनुभवमें बार-बार यही आता कि मैं तो निमित्त मात्र हूँ। बस, श्रीभाईजी पद-पदपर सारी सँभाल कर रहे हैं और श्रीभाईजीका अनुग्रह हर उत्सवको आशातीत सफलता प्रदान कर देता है।

बाईके निर्देशानुसार विद्या बाईने कलकत्तेके अपने इस 'लघु श्रीमहिला संघ' में उत्सवोंका जो समारम्भ किया, वह बाईके संकल्पानुसार बारह वर्षके लिये था। बारह वर्षके स्थानपर यह बड़े उत्साह और उल्लासके साथ चौदह वर्ष चला। सन् १९७१ की बिहार-पञ्चमी (मार्गशीर्ष शुक्ल पञ्चमी) से उत्सव मनाना आरम्भ हुआ था और यह क्रम अखण्ड रूपसे सन् १९८६ की बसन्त-पञ्चमी (माघ शुक्ला पञ्चमी) तक चलता रहा। जिस समय बसन्त-पञ्चमीके उत्सवकी तैयारी विद्या बाई कलकत्तेमें कर रही थीं, उनके पास भागलपुरसे बाईका समाचार आ गया था कि बसन्त-पञ्चमीके उत्सवमें जिन कलशोंको प्रतिष्ठित किया जायेगा, उनको विसर्जित मत करियेगा, बल्कि ठाकुरबाड़ीमें ज्योंका त्यों सुरक्षित रखियेगा तथा उन कलशोंका प्रतिदिन सभक्ति वन्दन-अर्चन करते रहियेगा। इस निर्देशका विद्या बाईने अक्षरशः पालन किया।

महाशिवरात्रिके अवसरपर भागलपुरके श्रीमहिला संघके लिये कलकत्तेमें भागवत सप्ताहकी कथा होनेवाली थी और इस कथाके व्यासासनको सुशोभित किया था वर्तमान युगके शुकदेव पूज्य श्रीडोगरेंजी महाराजने। यह कथा २८ फरवरी, १९८६ से आरम्भ हुई थी। इसके एक दिन पहले बाई भागलपुरसे कलकत्ते आयीं। उनके आनेका प्रकट रूपसे उद्देश्य यह था कि पूज्य श्रीडोगरेंजी महाराज वाली सप्ताह कथाको भली प्रकार सफल बनाना है और यह

प्रकट उद्देश्य भली प्रकारसे पूर्ण हुआ भी, परन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है, संतके खेल बड़े विचित्र और चुपचाप हुआ करते हैं। उसीके अनुसार बाईके इस कलकत्ता आगमनका एक प्रच्छन्न उद्देश्य भी था, जिसका परिज्ञान बहुत दिनों बाद हो पाया।

कलकत्ते पहुँचकर बाई उसी दिन विद्या बाईके घर गयीं। उनके आगमनसे घरमें उल्लास छा गया। भक्त-मण्डलीकी आठ बहिनोंने पीत परिधान धारण किये हुए उनका स्वागत किया। बसन्त-पञ्चमीके उत्सवपर जो कलश स्थापित किये गये थे, वे ठाकुरबाड़ीमें पूर्ववत् विराज रहे थे। उसी उल्लासके साथ एक बार फिर विद्या बाईके घर बसन्तोत्सव मनाया गया। उत्सवकी सम्पन्नतापर बाईने उन दोनों कलशोंका जल वहीं सबके सामने अपने ऊपर डाल लिया। कलश-जलसे बाईको स्नान करते हुए देखकर, सभी उपस्थित बहिनें अत्यन्त हर्षित हो गयीं, परन्तु उन बहिनोंको बादमें पता चला कि यह स्नान ही उस कलकतिया श्रीमहिला संघमें उत्सवोंकी पूर्णाहुति थी।

अगले दिन २८ फरवरीसे ही श्रीमद्भागवत महापुराणकी कथाका शुभारम्भ हुआ। इस महान कथा यज्ञको सफलता मिली प्रभु-कृपासे ही, परन्तु प्रभुने जिन-जिनको निमित्त बनाया, उनमेंसे एक विद्या बाई भी थीं। विद्या बाईने भरपूर सहयोग दिया और अपने सारे परिवारको सेवा-कार्यमें लगा दिया। स्वयंको लगाया और सारे परिवारको लगाया, यह कथन भी उनके सेवोत्साहको व्यक्त नहीं कर पा रहा है। 'लगाया' शब्दके स्थानपर कहना चाहिये कि उन्होंने परिवार सहित स्वयंको झोंक दिया।

इस कथा-यज्ञमें ही अवसर देखकर बाईने विद्या बाईको संकेत दे दिया— अब 'जाने' का समय समीप ही लग रहा है, अतः जो भी लेना देना हो सब सलटा देना चाहिये।

इस संकेतके मिलते ही वे उसी समय 'विदाई' के लिये मनसे प्रस्तुत हो गयीं। सब ओरसे उन्होंने अपने मनको समेट लिया और अपने सारे जागतिक कार्य-दायित्वको, कार्य-व्यवहारको तत्काल सलटाना आरम्भ कर दिया। घरवाले पूछते कि तुम यह क्या कर रही हो तो वे कुछ भी न बतलाकर केवल यही कहतीं—सबका हिसाब तो नक्की करना ही चाहिये। जिसको जो देना था, वह दे दिया, जिसके निमित्तसे कुछ करना था, वह कागजपर लिखकर रख दिया और कुछ समय बाद ही वे हार्ट-अटैकसे परमधाम सिधार गयीं।

उनके इस महाप्रयाणका अर्थ हुआ उस कलकतिया श्रीमहिला संघका पटाक्षेप। उन्हींकी भावनानुसार यह लघु श्रीमहिला संघ घरकी छोटी-सी परिधिमें प्रकट हुआ था और उन श्रद्धालु विद्या बाईके जाते ही तिरोहित हो गया। उस लघु श्रीमहिला संघके तिरोहित होते ही उत्सवोंका विराम अपने आप आ गया।

विद्या बाईके निधनका समाचार भागलपुर भी आया। भाभीजीके मनको बड़ा धक्का लगा। भाभीजीका शोकाकुल मन अपनी अभिन्न-हृदया विद्या बाईके प्रति भाव-सुमन चढ़ाने लगा। बार-बार भाभीजीको विद्या बाईकी याद आ रही थी। विद्या बाईकी सुगतिके बारेमें संदेहके लिये स्थान था ही नहीं, परन्तु वृन्दावनके प्रसंगने उस संदेह-रहित-आस्थाको और भी उल्लासपूर्ण बना दिया।

एक बार बाई हितकुलावतंस श्रीहित हरिवंशजीके सेव्य श्रीराधावल्लभ लालजीके मंदिरके पासवाली एक गलीमेंसे जा रही थीं, वहीं विद्या बाईके दिव्य रूपमें दर्शन हुए। भगवान् श्रीकृष्णके पीताम्बर जैसे चमकदार वस्त्रकी साड़ी उन्होंने पहन रखी थी, जिसमें चौड़ी-चौड़ी लाल-लाल किनारी थी। आकृति तो पहले जैसी थी, परन्तु मुख-मण्डलकी, भुज-लताओंकी, पद-पल्लवकी कान्ति दिव्य थी। दिव्य ही नहीं, परम दिव्य थी। अंग-प्रत्यंगकी दीप्ति अनोखी थी। यह स्पष्ट दिखलायी दे रहा था कि अलौकिक आभासे उनका सम्पूर्ण वपु आवृत्त है। उस रूपमें देखकर ऐसा लगता था मानो आह्लाद और उल्लासने साक्षात् शरीर धारण कर लिया हो। नखसे शिखतक सुन्दर-से-सुन्दर आभूषणोंसे वे समलंकृत थीं। बाईसे मिलते ही श्रीधाम-निवासिनी दिव्य-रूप विद्या बाईने सभक्ति वन्दन किया। केवल वन्दन ही नहीं, वे कुछ दूर तक साथ-साथ चलीं और बातचीत की। इसके बाद वे अदृश्य हो गयीं।

विद्या बाईके जीवनमें जो परिवर्तन आया, वह अपने ढंगका अनोखा ही था। संतकी अहैतुक कृपा क्या अद्भुत परिणाम उत्पन्न कर सकती है, इसीका उदाहरण है विद्या बाईका जीवन। उस अहैतुक कृपाके अवतरणका ही यह अद्भुत परिणाम था कि विद्या बाईका जीवन यदि इस पार साधारणसे असाधारण बन गया तो उस पार भी असाधारण स्थितिका अधिकारी बन गया।

* * * * *

संघकी सुगुप्त निधि

बाईके जीवनमें वृद्धा माता राधा बाईका एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। बाई श्रीमहिला संघमें आयीं, उसके पहलेसे ही राधा बाई श्रीमहिला संघमें रह रही थी। आप अत्यन्त वृद्धा थी। इनका भक्त-जीवन ऐसा सुगुप्त था कि जगत उनके व्यक्तित्वको पहचान नहीं पाया। पहचाननेकी कौन कहे, गरिमाकी भनक तक किसीको नहीं मिल पायी। यदि बादमें कुछ आभास मिल पाया तो वह भी बाईके द्वारा। राधा बाई श्रीमहिला संघकी एक सुगुप्ततम निधि थीं।

श्रीभाईजी कहा करते थे कि भले जगत न जाने और जान कर भी न माने, परन्तु किसी स्थानपर यदि सच्चा भक्त निवास करता है तो उसकी उपस्थिति मात्र उस स्थानके वातवरणको लोकोत्तर दिव्यता और भक्तिमयता प्रदान करती है। यह बात राधा बाईके बारेमें अक्षरश: सत्य है। राधा बाई श्रीमहिला संघके एक कमरेमें रहा करती थीं। उनका जीवन बड़ा निरीह था। नन्दनन्दन श्रीकृष्णके प्रति उनका वात्सल्य भाव था। लालाके प्रति इतना अधिक वात्सल्य था कि उसीसे बात करना, उसीको डाँटना, उसीको दुलराना, उसीको खिलाना, उसीको सुलाना, उसीको उलाहना देना आदिमें उनका सारा दिन कब व्यतीत होता था, पता ही नहीं चलता था। यहाँतक कि उन्हें भोजनकी सुधि भी नहीं रहती थी। श्रीमहिला संघकी किसी बहिनने भोजनकी थाली सामने रख दी, तो वे खा लेती थीं, पर वे स्वयं कहकर भोजन माँगती नहीं थीं। दुर्भाग्यसे एक बार ऐसा हो भी गया। दोपहरके समय भोजन देनेकी बात न इधर याद रही और न उधर माँग हुई। रातको जब अन्य बहिनोंको पता चला तब सबका मन खेदसे भर गया। अब तो बाईके निर्देशानुसार विशेष ध्यान दिया जाने लगा।

उनके कमरेमें जिस चौकीपर वे सोया करती थीं, उसके बगलमें एक चित्र था, जिसमें यशोदा मैया बालकृष्णको हाथमें छड़ी लिये हुए डाँट रही है और श्रीकृष्ण माँ यशोदाकी ओर भयभीत आँखोंसे देख रहे हैं। स्वयं यशोदा भावमें रहते हुए उसी लालाको जब देखो तब डाँटती और दुलराती रहती थीं। उनकी डाँट-फटकार कमरेमें चलती रहती थी और श्रीमहिला संघकी बहिनें

बाहर छिपकर खड़ी-खड़ी सुनती रहती थी।

एक बार एक बहिनने सुना कि राधा बाई डाँटते हुए कह रही हैं—तू बदमाशी करेगा तो मैं तुमको मारूँगी। सचमुच मारनेकी उतावलीमें छड़ीकी ओर हाथ बढ़ाया। कमरेमें जहाँ उन्होंने छड़ी रखी थी, वहाँ वह नहीं मिली। अब राधा बाईने कमरेके कोने-कोनेमें और चौकीके नीचे छड़ीको बहुत खोजा, पर वह छड़ी नहीं मिली। खोजनेपर जब नहीं मिली, तब फिर उसी लालासे कहने लगीं—तू बड़ा बदमाश है। बता, तुमने वह छड़ी कहाँ छिपायी है? खोज कर दे। तुम मुझ बुड्ढीको तंग करते हो। यह तुमको अच्छा लगता है क्या? इतना कहते-कहते वे थक कर बैठ जातीं। फिर देर बाद पुनः कहने लगीं—अच्छा, अब तू सो जा। तुझे दूध पिला दिया है, अब भूखा तो है नहीं; बदमाशी मत कर, चुपचाप सो जा।

बस इसी प्रकार डाँट-फटकार-दुलार-प्यारमें सुबहसे शाम हो जाती। राधा बाईकी यह फटकार और दुलार उनकी भावोपासना थी। भले यह भावोपासना अन्य बहिनोंके लिये मनोरंजनका विषय रहा हो, परन्तु बाईने कभी इसको मनोरञ्जनकी दृष्टिसे नहीं देखा, अपितु अधिक-से-अधिक महत्त्व दिया और वृद्धा माता राधा बाईके भावोंके तारोंकी झनझना देनेके लिये कभी-कभी शिकायत करती हुई उनसे कहती—माँ! आप अपने लालाको समझाइये। ये मुझे बहुत खिझाते हैं। मुझे बहुत तंग करते हैं।

इस उलाहनेको सुनकर राधा बाईका वात्सल्य छलक उठता और वे बाईको सान्त्वना देते हुए कहने लगतीं—तू बुरा मत मानना। वह बड़ा नटखट है। मैं उसे समझा दूँगी। अब वह ऐसा नहीं करेगा।

कभी-कभी बाई विनोद पर उतर आतीं और शिकायतकी झड़ी लगा देतीं। उस समय एक विचित्र रसकी सृष्टि होती। जिस प्रकार सास नव-विवाहितासे अपने पुत्रकी चर्चा सुननी चाहे, भले वह शिकायत हो, उसे सुनकर जो रस मिलता है, वही रस बाईकी शिकायत सुनकर वृद्धा माता राधा बाईके मानसमें उफन आता और वे वात्सल्यमें भरकर बाईको अक्षय सुहागका आशीर्वाद देती। बाईमें भी तदनुरूप भावोन्मेष हो उठता और वे सकुचायी हुई बहूके समान राधाके युगल चरणोंपर माथा टेक देतीं। माँ अपने दोनों चरण सामने कर देतीं और बाईके शीशपर हाथ फेरते हुए अनेकानेक मांगलिक

आशीर्वाद देतीं।

एक बार ज्यों ही बाई बहूके रूपमें वृद्धा माता राधा बाईके पास आयीं और वे कुछ शिकायत करें, इसके पहले राधा बाई ही अपने लालाकी शिकायत करने लगीं—मैंने उसे आज बहुत डाँटा है। मैंने उससे कहा कि तू रुक्माके पास बदमाशी मत किया कर। तुमको जो कुछ चंचलता करनी हो, यहीं कर। मैं क्या करूँ, वह बहुत चंचल है। बड़ा नटखट है। मैं उसे बहुत समझाती हूँ, पर वह मेरी एक नहीं सुनता। सबेरे-सबेरे मक्खन माँगने लगता है। मैं मक्खन निकाल लूँगी, तभी तो दूँगी। उसको इतनी सबुरी भी नहीं है। भूखा ही सखाओंके साथ खेलने चला जाता है। मक्खन निकाल कर बुलाती हूँ, तो आता ही नहीं। मुझे बड़ा खिझाता रहता है। तू ही बोल मैं उसके पीछे-पीछे कहाँतक डोलूँ। आज सबेरेसे कुछ भी नहीं खाया है। तेरे पास आये तो प्यारसे खिला देना। उसे बहुत भूख लगी होगी।

सचमुच राधा बाईका अपना अलग ही एक भाव राज्य था। वर्ष भरमें राधा बाई चोक-चानणी नामक केवल एक उत्सव भाद्र शुक्ल चतुर्थीके दिन मनाती थीं। राजस्थानी प्रथाके अनुसार यह उत्सव छोटे-छोटे बालकोंके हर्षोल्लासका दिवस होता है। नवीन वस्त्र पहना कर माता-पिता बालकोंको सुस्वादु भोजन कराते हैं और खेलनेके लिये उपकरण देते हैं। छोटे-छोटे बच्चे खेलते-कूदते हुए सारे दिन आनन्दित रहते हैं। राधा बाई सालभर सिल-सिल करके बटुए बनाती रहती थी और इस दिन मोहल्ले भरके तथा दूर-दूरके बच्चोंको एक-एक बटुआ बाँटा कराती थीं। बटुआ बाँटती थीं और मिठाई खिलाती थीं। उन्होंने अपने जिम्मे एक और सेवा कार्य अपना रखा था। बटुए सिलनेके अलावा जिस किसीके फटे-पुराने कपड़ोंको सिल दिया करती थीं। जब वे सिलाई करती थीं, तब उनकी डाँट-फटकारसे कमरेमें एक हो-हल्ला सा मचा रहता था। उनका लाल उन्हें तंग करता था, सिलनेमें अड़चन डालता था और वे उसे डाँटा करती थीं।

इन भोली-भाली राधा बाईको जगतके लोग न समझ पाये और न उनके भाव-राज्यमें गहरे उतर पाये। बस, केवल एक बाई थीं, जो उनके लिये बहू थीं और बाईके लिये वे सास थीं। बाई राधा बाईके लाला पर न्यौछावर थीं। सन् १९७३ की श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीके चार दिन पहले जब उन्होंने अपने स्थूल

कलेवरका परित्याग किया, तब बाईका रोदन सबके लिये विस्मयका विषय बन गया। बाई बुरी तरह फूट-फूटकर रो रही थीं। वृद्धा माता राधा बाईकी उस 'महा विदाई' के कारण बाईके मनमें जहाँ अपार शोक और व्यथा थी, वहींपर एक अपार आनन्द भी था, एक दिव्य दृश्यको देखकर। बाईने देखा कि गोलोक धामसे एक विमान आया है। उस विमानमें यशोदा-भावापन्ना उन वृद्धा माताजीको सुन्दर सिंहासनपर विराजित किया गया है और उनके दोनो ओर अनुचरियाँ चँवर डुला रही हैं। वह विमान गोलोकसे अवतरित हुआ था और गोलोक धामकी ओर प्रस्थित कर गया।

भगवती गंगाके तटपर वृद्धा माता राधा बाईके पावन शवको चिता पर लिटा दिया गया। शव दो अढ़ाई घण्टेमें ही जलकर सर्वथा भस्मीभूत हो गया। वह तो कर्पूरकी भाँति जल रहा था। उस समय श्मशान घाटका सारा वायुमण्डल दिव्य-सुगन्धसे भर गया। श्मशान घाटसे वापस आनेवाले हर स्वजनने एक स्वरसे और उन्मुक्त भावसे यही कहा कि ऐसी दिव्य-सुगन्ध आज तक हमारे अनुभवमें कभी आयी ही नहीं। निश्चित-निश्चित रूपसे वह सुगन्ध सर्वथा अलौकिक थी। वृद्धा माता राधा बाईके निमित्तसे बाईने श्रीमहिला संघमें बड़ा विशाल भण्डारा किया।

* * * * *

भागवती दृष्टि

कलकत्तेसे भाभीजी ऑपरेशन करा करके लौट तो आयीं, परन्तु कष्ट बना रहता था। चिकित्सकोंने राय दी कि स्वास्थ्य-लाभके लिये भाभीजीको राजगिरि जाना चाहिये। वहाँ गरम पानीके जो झरने हैं, उससे सेक करनेसे अवश्य लाभ होगा। भाभीजीके बच्चोंने राजगिरि जानेका कार्यक्रम बना दिया। बाईने भी साथ जानेका निश्चय कर लिया। बाईने सोचा कि मेरे साथ कीर्तन-मण्डलीकी कोई एक सदस्या बहिन अवश्य चले, अतः ज्ञान बाईको साथ ले लिया। राजगिरि पहुँच कर भाभीजीकी उष्ण जलसे प्राकृतिक चिकित्सा तो हो रही थी, परन्तु बाई अपने ही भावोंमें खोयी रहती थीं। वहाँ अष्टमी-नवमीकी पूजा होती और नियमित कीर्तन होता। बाई जहाँ भी रहतीं, वहाँ श्रीराधा नाम संकीर्तन आवश्यक था।

बाई कहा करती थीं—मैं भोजन बिना एक-दो दिन रह सकती हूँ, परन्तु राधा नाम संकीर्तनके बिना एक दिन बिताना भी कठिन है। बाई जहाँ कहीं भी रहतीं, वहाँ व्यर्थ सांसारिक चर्चा करनेका साहस किसीको नहीं होता था। जागतिक बातचीतके सुनते ही बाई अन्दर कमरेसे ही आवाज देने लगतीं कि यहाँ कोई बातचीत न करें, सब कीर्तन करें। व्यर्थ-चर्चाको सुनते ही बाई उद्विग्न हो जातीं। उन्हें जगत-चर्चा असह्य थीं। मुखसे राधा-नाम, करसे सेवा-काम, यही उन्हें अभीष्ट था।

ज्ञान बाईको साथ लेकर बाई पहाड़ोंपर चली जाती थीं, और घण्टों वहीं बैठीं रहती थीं। बाई जहाँ कहीं भी चली जायें, उन्हें कभी भी ऐसा नहीं लगता था कि मैं किसी अपरिचित नये स्थानपर आयी हूँ। वे निर्भय होकर रातमें बहुत देर तक पहाड़ोंपर बैठी रहतीं। भाभीजी उन्हें बहुत समझातीं, पर वे अपनी मस्तीमें ही मस्त रहतीं। वहाँ पर्वतोंके एकान्त रमणीय स्थानोंमें ज्ञान बाई ही बाईके साथ-साथ रहा करती थीं। बाई कभी पहाड़पर बैठतीं और कभी खुले मैदानमें बैठतीं। वहाँका दृश्य बड़ा मनोहारी होता था। मन्द-मन्द चलती हवा, हरे-हरे झूमते पेड़, कल-कल करते झरने और ऊँची-नीची अनेक पहाड़ियाँ मनको बरबस लुभा लेती थीं। इन प्राकृतिक छटाओंको देखकर बाई तो इस जगत्‌से अतीत किसी अन्य जगतमें विचरण करने लग जाती थीं। वह बाईका अपना लीला-राज्य होता था। बाईने अपने सुन्दर लीला-राज्यकी कुछ ललित चर्चा की। उस वर्णनको सुनकर ज्ञान बाईने बाईसे कहा—मुझे तो आपका वह लीला-राज्य दिखता नहीं।

पर्वतोंसे लौटकर आनेपर ज्ञान वहाँके प्रसंगोंको और बाईके उद्‌गारोंको बड़े उल्लसित मनसे सुनाया करती थीं। ज्ञान बाईके उस वर्णनपर साधारण सांसारिक व्यक्तिको विश्वास होना कठिन ही है। ज्ञान बाईने सुनाया—मैंने तो वहाँके प्राकृतिक सौन्दर्यको देखकर स्वाभाविक ही बाईसे कह दिया, 'बाई! सामनेका यह दृश्य कितना सुन्दर है।'

इतना सुनते ही बाई बोल उठीं—देखिये ज्ञान बाई! हमारे यहाँ उस लीला राज्यमें तो एक-एक पेड़ अगणित फल-फूलोंसे लदे रहते हैं। वहाँ पतझड़ होता ही नहीं। सदा बसन्त ऋतुका ही साम्राज्य रहता है। हमारे यहाँके वृक्ष और पर्वत जड़ नहीं हैं, सभी चैतन्य हैं। हमारी-आपकी तरह बोलते हैं। प्रिया-प्रियतमके मधुर स्पर्श-प्राप्तिकी प्रतीक्षामें वे सदा झुके ही रहते हैं। हमारे लीला राज्यमें कोई भी वृक्ष इतना ऊँचा है ही नहीं, जिसे छूनेमें प्रिया-प्रियतमको तनिक भी असुविधा हो। हरे-हरे सुन्दर-सुन्दर वृक्षोंपर भाँति-भाँतिके लाल, पीले, नीले, गुलाबी, केशरिया, सिन्दूरी, सुआपंखी रंगोंके फूल लगे होते हैं। एक ही पेड़की एक-एक डालपर अलग-अलग रंगके फूल खिलते हैं और सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि उन सभीके मनमें युगलके सुख-सम्पादनके अतिरिक्त अन्य कोई कामना है ही नहीं। पेड़ोंसे लताएँ इस प्रकार लिपटी होती हैं मानों कुञ्ज हों। उन्हें कोई बनाता नहीं है। हमारे यहाँ इनकी कटाई-छटाँई नहीं होती। कहीं तो एक ही पेड़में विभिन्न लताएँ इस प्रकार लिपटी होती हैं मानो अनेक कुञ्ज एक ही स्थान पर प्रिया-प्रियतमके विहार-विलासके लिये बन गये हैं और उनमें प्रिया-प्रियतम आँख-मिचौनीका खेल खेलते हैं। खेलके बीच-बीचमें स्वतः पुष्पवृष्टि होती रहती है। मैं पहले ही बता चुकी हूँ कि ये पेड़ और ये लताएँ जड़ नहीं हैं। प्रिया-प्रियतमके खेलमें वे वृक्ष, वे लताएँ, वे पशु, वे पक्षी, सभी पूर्ण सहयोग देते हैं। प्रत्येक पेड़ और लताको यह प्रतीक्षा रहती है कि आज युगल हमारे कुञ्जमें ही क्रीड़ा करें और पशु-पक्षीको उत्सुकता बनी रहती है कि हम अपने कौतुकसे प्रिया-प्रियतमको आनन्दित करें। वे वृक्ष-लता-पशु-पक्षी कभी निराश नहीं होते। निरन्तर प्रतीक्षा ही उनका जीवन है और उस प्रतीक्षाका अन्त सुखद आनन्द-विलासमें होता है। हमारे यहाँ पर्वत भी कठोर नहीं हैं। जहाँ-जहाँ युगल चरण धरते हैं, वहाँ-वहाँ वे कुसुमसे भी अधिक कोमल हो जाते हैं। देखनेमें पहाड़ ही लगते हैं, परन्तु उनमें कठोरताका सर्वथा अभाव होता है।

ज्ञान बाई! आपको मैं अपने लीला-राज्यकी क्या-क्या बात बताऊँ? क्षमा

कीजियेगा, आपलोग जड़ नहीं, चेतन हैं, परन्तु चेतन होकर भी उन जड़ पहाड़ोंसे अधिक कठोर है। समझमें नहीं आता कि आपलोगोंको सचेतन कहा जाय अथवा चेतना-शून्य। मुझे तो यही लगता है कि आपलोगोंको चेतन कहलानेवाला हृदय वस्तुतः चेतना शून्य हो गया है। आपको अवकाश ही कहाँ है कि हमारे लीला-राज्यकी बात सुनें। आपके अन्तरमें प्रतीक्षा ही कहाँ है युगलके आगमनकी। जिस प्रकार आप मेरे पास बैठी हैं, परन्तु आप अपने इस पाञ्चभौतिक जगतको भूली नहीं हैं, उसी प्रकार मैं आपलोगोंके बीचमें रहते हुए भी आपके बीचमें नहीं हूँ। आपके ये दृश्य आपको आकर्षित करते हैं और मेरे वे दृश्य मुझे आकर्षित करते हैं। और मैं आपसे क्या कहूँ?

बाईका अपने एक अलग लीला-साम्राज्य था। उसमें विहरण करने वाली बाईका वह देखना-सुनना-कहना-बोलना जगतसे न्यारा ही होता था। राजगिरिमें भाभीजी गरम जलकी चिकित्साके लिये लगभग एक मासतक रहीं, उसके बाद भाभीजी बाईको तथा अन्य बहिनोंको साथ लेकर भागलपुर लौट आयीं। यह एक मासका निवास बाईके अन्तरमें लोकोत्तर रंग ही भरता रहा। बाई जब-तब ज्ञान बाईको साथ लेकर पर्वतीय एकान्त स्थानोंमें चली जातीं और श्रीप्रिया-प्रियतमके नित्य लीला-विलासमें कभी उनके साथ रह करके और कभी उस विलासका दर्शन करके, आनन्द निमग्न रहतीं।

बाईके साथ-साथ या आगे-पीछे रहनेवाली बहिनोंकी चञ्चल आँखें भले सचेतन थीं, किन्तु बाईकी भावनाके अनुसार सचेतन होकर भी अचेतन थीं। बाई कहा करती थीं कि आपलोगोंकी आँखें तो वास्तविक चेतनासे शून्य है साधारण स्तरवाली उन बहिनोंकी वे चेतन शून्य आँखें बाईके लीला-राज्य और लीला-विहारको देख ही नहीं पाती थीं और उस दृष्टिके अभावमें अनेक बार प्रतिकूलता भरी परिस्थिति उपस्थित हो जाया करती थी।

श्रीमहिला संघमें अनेक उपासना स्थलियाँ हैं। उन उपास्योंकी सेवामें किञ्चित भी चूक बाईको चिन्तित और विचलित कर देती थी। बाईने जहाँ श्रीगिरिराजजीकी स्थापनाकी थी, वहाँ एक बार सफाईके नामपर बहुत कुछ उलट-फेर कर दिया गया। सफाईके नामपर उलट-फेर करते हुए जो छेड़-छाड़ हुई, वह बाईकी मान्यताके अनुसार स्थापित ठाकुर-विग्रहकी अवहेलना थी और यह अवहेलना एक सेवापराध है। शामको जब बाई प्रणाम करनेके लिये गयीं, तब श्रीगिरिराजजीको समुचित रूपमें नहीं देखकर उनका मन अत्यन्त खेदसे भर गया। श्रीगिरिराजजीकी अवहेलना देखकर वे फूट-फूटकर रोने लगीं। बहिनें उनको घेरकर बैठ गयीं। कितना ही समझाया जाय, पर बाईका रोना रुक

ही नहीं रहा था। वे बार-बार कह रही थीं कि स्थापित ठाकुर विग्रहकी अवहेलना मेरे लिये असह्य है, अतः अब मैं यहाँ नहीं रहूँगी। हवेलीमें सूचना भेजी गयी। अस्वस्थ होते हुए भी भाभीजी तुरन्त आयीं। बहुत अधिक मनावन और बहुविध आश्वासनके उपरान्त बाईकी भावनाओंको कुछ राहत मिल पायी। उलट-फेरको दूर करके श्रीगिरिराजजीको पूर्ववत् स्थापित किया गया। वहाँ गिरिराजजीमें जो उलट-फेर किया गया था, भले ही यह उलट फेर अनजानेमें हुआ था, पर था तो वह अपराध ही। इस अपराधके प्रायश्चित्त स्वरूप क्षमा-याचनाके लिये वहाँ कीर्तन-मण्डली और भक्त-मण्डलीके द्वारा सात घण्टे श्रीराधानाम संकीर्तन हुआ। विधिवत् दुग्धाभिषेक हुआ। नैवेद्य समर्पित हुआ, तब कहीं बाईकी व्यथा दूर हो पायी।

यह तो सेवापराध हुआ था, वह सर्वथा अनजानेमें हुआ था। सभीकी भावना अत्यन्त पवित्र थी। इसके बाद भी यह सेवापराध क्यों हुआ? इसके उत्तरमें इतना ही निवेदन किया जाता है कि बाईवाली दिव्य दृष्टि अन्योंके पास नहीं थीं। उस दृष्टिके अभावमें ही तो यह विकट परिस्थिति सामने आयी थी और इसी कारण भविष्यमें भी आती ही रहती थी।

पुनः बहिनों द्वारा एक चूक हो गयी। गर्मीके दिनोंमें रात्रिके समय आश्रमवासिनी बहिनें श्रीबरसानेवालीके मंदिरके सामने वाले बरामदेमें सोती थीं। वहाँ अच्छी-अच्छी ठण्डी हवा लगती थी। ठण्डी हवाके लोभमें बहिनोंका रात्रिमें वहाँ सो जाना स्वाभाविक था, परन्तु ऐसी बात शीत ऋतुमें नहीं थी। जाड़ेके दिनोंमें ठण्डकी अधिकताके कारण वहाँ बरामदेमें कोई भी सोनेका साहस कर ही नहीं सकती थी। जाड़ेमें तो सभी बहिनें अपने-अपने कमरोंमें दरवाजा बन्द करके सोया करती थीं।

अब गर्मीके दिनोंकी घटना है। बाईने न जाने कितनी बार आश्रमवासिनी बहिनोंको सावधान करते हुए कहा था—हमारे नव-वृन्दावनके ठाकुर रात्रिके समय मन्दिरके बाहर आकर सामनेवाले बगीचेमें विहार करते हैं और वे अकेले नहीं, अपने परिकरोंके सहित आते हैं। उनके साथ अनेकों सखियाँ, सहेलियाँ, मञ्जरियाँ, अनुचरियाँ होती हैं। आपलोगोंको बगीचेमें पूर्ण स्वच्छता रखनी चाहिये। विहार करते-करते प्रिया-प्रियतम अपने परिकरोंके सुख संवर्धनके लिये नृत्य भी करते हैं। बगीचेका आनन्दमय वह विहार और वह नृत्य आपलोग नहीं देख पातीं, पर मैं देखती हूँ। आपलोगोंकी भावना यह है कि मन्दिरमें विराजित ठाकुर तो पीतलकी मूर्ति हैं, परन्तु सच्ची बात यह है कि वे सजीव हैं। हमारी तरह चलते-फिरते, खाते-पीते हैं। आपलोग बरामदेमें सोते

समय बगीचेमें जानेका मार्ग छोड़कर सोया करिये, जिससे उनके आने-जानेमें कोई बाधा न हो।

बाई द्वारा सावधान किये जानेके बाद भी बहिनें उतनी सतर्कता नहीं रखती थीं। बाईकी बातोंके प्रति अपेक्षित महत्त्व-बोध नहीं रह गया था। रात्रिको सोते समय कभी जगह छोड़ी जाती और कभी नहीं छोड़ी जाती। एक दिन बिजलीके पंखेकी हवाके लोभमें जगह नहीं छोड़ी गयी। बहिनें सुखसे सो रही थीं। मध्य रात्रि लगभग बीत चुकी थी। तभी बाई अपने कमरेसे निकलकर नीचे बरामदेमें आयीं। जो भी सो रही थीं, उन सबको उठाया और उनसे बोलीं—आपलोग यहाँ नहीं सो सकतीं। सब अपने-अपने कमरेमें जाकर सोइये।

रात्रिमें इस प्रकार उठाया जाना बहिनोंको रुचिकर नहीं लगा। सोनेके लिये कोई बहाना मिलना चाहिये, अतः बात बनाकर वे कहने लगीं—हम सब कमरेमें जाकर सो जायेगीं तो यहाँ मन्दिरके सामने पहरा कौन देगा?

बहिनोंकी यह बहानेबाजी बाईको बड़ी अप्रिय लगी। उन्होंने तत्क्षण उलटकर तीव्र स्वरमें प्रश्न किया—जाड़ेके दिनोंमें जब आपलोग कमरेमें घुस-घुस करके और दरवाजा भली-प्रकारसे बन्द करके सो जाती हैं, तब यहाँ कौन पहरा देता है?

किसी बहिनके पास कोई उत्तर नहीं था। कुछ क्षणोंके लिये मध्य रात्रिवाला सन्नाटा छा गया। बाई अब समझाते हुए कहने लगीं—मैं क्या करूँ? श्रीप्रिया-प्रियतमके साथवाली कभी कोई मञ्जरी, कभी कोई सखी आकर मुझे बतला जाया करती है कि क्या गड़बड़ी हो रही है। अभी तो मैं अपने कमरेमें थी। मुझे बतलाया गया कि आपके बिछावनकी चादरमें लाडिलीजीके चरण उलझ गये। उलझ जानेसे वे गिरते-गिरते बचीं। आपलोगोंको यह सब नहीं दिखता है तो मैं क्या करूँ। जिसने यह सब बातें आकर बतलायीं, उसने स्पष्ट रूपसे निर्देश दिया है कि यहाँ पर वही सो सकती है, जो वर्षभर प्रत्येक दिन सोनेको तैयार हो।

किसी भी बहिनका यह साहस नहीं हो पाया कि बाईका प्रतिवाद कर सके। गर्मीके दिनोंमें परेशानीमें तो अवश्य होती, परन्तु सभी बहिनें अपने-अपने कमरेमें सोनेके लिये चली गयीं। अब तो प्रायः ऐसा होने लग गया कि भले बाई अपने कमरेमें ऊपर रहती हों, परन्तु नीचे होनेवाली बातोंकी जानकारी उन्हें हो ही जाती थी और यह जानकारी कोई सखी, सहेली या मञ्जरी आकर दे जाती थी। एक

बार रामप्यारी बाई स्थलीकी सफाई कर रही थीं। स्थलीकी जलसे धुलाई करके उसको भली प्रकारसे पोंछ दिया गया था। रामप्यारी बाईने अपने समझसे भली प्रकारसे पोंछा लगा दिया था। थोड़ी देर बाद ही बाईने रामप्यारीको अपने कमरेमें बुलाया और पूछा—आपने स्थलीमें पानी क्यों बिखेर रखा है?

बाईकी बात सुनकर रामप्यारी बाईको बड़ा विस्मय हुआ। जो धुलाई, पोंछाई उन्होंने की थी, उसीको विस्तारसे बतलाते हुए रामप्यारी बाईने कहा—बाई! मैंने स्थलीकी धुलाई करके भली प्रकारसे पोंछाई कर दी है।

बाईने कहा—अभी भी कहीं पानी बिखरा हुआ है। आप स्वयं देखकर आइये और बताइये।

रामप्यारी बाई नीचे जाकर निरीक्षण करने लगीं, करते-करते ध्यान आया कि एक जगह थोड़ा सा जल भूलसे रह गया है। उन्होंने ऊपर जाकर बाईको यह बात बतलायी। फिर बाईने स्पष्टीकरण किया—जहाँपर जल रह गया है, वहींपर एक छोटी सी सखीका पाँव फिसल गया। फिसलनेसे उसके पाँवकी छोटी अंगुलीमें ईंटकी ठोकर लग गयी। उसीने आकर मुझे शिकायत रूपमें यह बात बतलायी। वह पाँव फिसलने और चोट लगनेसे उदास हो गयी थी।

बाईके मुखसे यह बात सुनकर रामप्यारी बाईको विस्मय और खेद दोनों हो रहा था। विस्मय इसलिये हो रहा था कि ऊपर कमरेमें बैठे-बैठे ही अनेक बातोंकी जानकारी बाईको हो जाती है और खेद इसलिये हो रहा था कि मेरे कारण इस सखीको कष्ट हुआ। रामप्यारी बाईने नम्र स्वरमें पूछा—अब मेरे लिये क्या उचित है?

बाईने प्यारपूर्वक कहा—वहाँ जाकर आप प्रणाम कर लीजिये और क्षमा माँग लीजिये तथा आगेसे ऐसी असावधानी नहीं होनी चाहिये।

एक बार बाईका जनकपुरकी यात्राका कार्यक्रम बन गया। जनकपुरमें पहुँचते ही बाईका रंग-ढंग बदल गया। हँसने-हँसाने और आँख-से-आँख मिलाकर बात करनेवाली बाईके स्थानपर कोई और ही उस कलेवरमें आ गयी थी। तद्भावभाविता बाई कहने लगीं—यह तो मेरा पूर्व परिचित स्थान है। सब कुछ अपना-अपना लग रहा है।

जनकपुरमें स्थान-स्थानपर जाकर दर्शन-वन्दन करने लगीं। जनकपुरसे धनुषाजी कई मील दूरीपर है। धनुषाजीका रास्ता टायर गाड़ी द्वारा तय किया गया। ऊबड़-खाबड़ मार्गमें टायर गाड़ीके चलनेसे झूलना और झटका लगना स्वाभाविक था। जब भी गाड़ीसे या आपसमें सिर टकराता, बाई खूब हँसतीं। रास्ते भर भजन

और कीर्तन होता रहा। लौटते समय विहारकुण्डके किनारे बैठ गयीं, जो जनकपुरसे दो मीलकी दूरीपर है और जो जनकपुरका सर्वाधिक रमणीय स्थान है। विहारकुण्डके चारों ओर रसिक संतोंके आश्रम या कुटीर है और यह वही कुण्ड है, जहाँ दुल्हा सरकार अवधेश कुमार अपनी जीवन-सर्वस्वा विदेहनन्दिनीके साथ नौका विहार किया करते थे। कुण्डके तटपर बैठी-बैठी बाई सरोवरमें उठती-गिरती हुई छोटी-बड़ी लहरियोंसे रसालाप करने लगीं। यह रसालाप बहुत देरतक होता रहा। कुछ देर बाद जब बाई प्रकृतिस्थ हुई तो कौतुहलवशात् सावित्री बाई उनसे पूछ बैठीं—आप कुण्डपर बैठी-बैठी किनसे बात कर रही थीं?

सावित्री बाईसे बाई प्रायः कोई बात छिपाया नहीं करती थीं। बाईने हल्की सी मुस्कान बिखेरते हुए कहा—तुम सबको मैं कितना-कितना बतलाऊँ? कुण्डके सतहपर जो छोटी-छोटी लहरियाँ-उर्मियाँ उठ रही थीं, वे वस्तुतः छोटी-छोटी सखियाँ थीं, जो लुका-छिपी खेल रही थीं। उन्हीं हँसती-खेलती हुई सखियोंसे मेरी बात हो रही थी। वे सब मेरी पूर्व परिचिता सखियाँ हैं।

विहारकुण्ड, धनुषाजी, जनकपुरका विवाह-मण्डप, दुल्हा सरकारका मन्दिर तथा विवाह-लीलाकी रसमयी चर्चा करते-करते बाई जनकपुरसे सीतामढ़ी और फिर बेगुसराय होते हुए भागलपुर आ गयीं।

जनकपुर यात्रामें विहारकुण्ड पर उर्मियोंसे बातचीत करना, श्रीमहिला संघकी स्थलीमें फिसलनके कारण सखीके पाँवमें चोट लगना, मन्दिरके सामने रात्रिके समय लाडिलीजीका पाँव उलझना, श्रीगिरिराजजीके स्वरूपमें उलट-फेर होना, राजगिरिकी पर्वतीय रमणीयतामें चिन्मय-वृन्दावनका दर्शन करना, यह सब देख पायीं बाई अपनी भागवती दृष्टिके कारण। बाईके साथ-साथ रहने या जानेवाली बहिनोंके युगल नेत्र पञ्चभूतोंसे निर्मित थे। उन पाञ्चभौतिक नेत्रोंकी स्थूल दृष्टि-पथपर यह सूक्ष्म दैवी-राज्य कहाँ था।

यही तो अन्तर है सांसारिक और संतकी दृष्टिमें। बाई कहीं भी रहें, उनकी भागवती दृष्टिके पथपर दिव्य रसमय राज्य उतर ही आता था।

* * * * *

मन्दिर-निर्माण

सन् १९७३ की बात है। अनेक भीतरी और बाहरी कारणोंके फलस्वरूप यह आवश्यक हो गया कि श्रीमहिला संघके दक्षिणकी ओर निजी दीवाल बनायी जाय और पहले जो दीवालें चहारदीवारीके रूपमें बनी हुई है, उनको ऊँचा किया जाय। दक्षिण दिशामें पहले जो दीवाल थी, वह पड़ोसीकी थी और उसी दीवालमें अनेक देव स्थानोंकी स्थापना भावनाके द्वारा कर दी गयी थी। नयी दीवाल खड़ी करनेका प्रश्न ज्यों ही उठा, बाईने कहा—नींव खोदनेका काम दो-तीन दिनके लिये रोक दें। मुझे अवश्य ही दैवी जगतकी ओरसे कोई संकेत मिलेगा। तदनुसार कार्य किया जायेगा।

पड़ोस वालेकी दीवालमें सिन्दूर द्वारा चित्रांकित करके श्रीकात्यायनी माँकी प्रतिष्ठा कर ली गयी थी और एक कोनेमें पाँच ईंट द्वारा श्रीगिरिराजजीकी स्थापना कर ली गयी थी। अब इन दोनोंके भावी स्वरूपके बारेमें बाई दैवी संकेतकी प्रतीक्षा करने लगीं। दो दिन बाद प्राप्त संकेतके आधारपर बाईने कहा—ताम्रपत्रपर मंत्र खुदवा करके उसीमें श्रीश्रीमाँकी विधिवत् प्रतिष्ठा कर देनी चाहिये। श्रीगिरिराजजीके पाँच ईंट रूपी श्रीविग्रहको भक्ति सहित श्रीबरसानेवालीके मन्दिरकी छतपर कुछ दिनोंके लिये विराजित करवा लेना चाहिये।

संकेतानुसार नींव खोदनेका काम एक बार सर्वथा रोक दिया गया। ताम्रपत्रपर मंत्र खुदवा कर सुयोग्य पण्डितों द्वारा श्रीकात्यायनी माँकी प्रतिष्ठा करवायी गयी और गुफामें उसे पधरा दिया गया। वहींपर श्रीकात्यायनी माँका श्रद्धा सहित पूजन-अर्चन पूर्ववत् होने लगा। श्रीगिरिराजजी रूपी उन पाँच ईंटोंको ताँबेकी एक परातमें पधराया गया और बाईने सुमित्रा बाईसे कहा—यह आपको ज्यों-का-त्यों, बिना कोई परिवर्तन या उलट-फेर किये हुए श्रीबरसानेवालीकी छतपर ले जाना है और वहाँ इसी रूपमें पधरा देना है।

शरीरसे दुर्बल सुमित्रा बाई इस आदेशको सुनकर हतप्रभ हो गयीं और सोचने लगीं कि मैं तो ईंटोंसे भरी यह परात उठा ही नहीं सकती। परात उठाकर सीढ़ीपर चढ़ना मेरे बसकी बात नहीं है। वे बार-बार अपनी लाचारी बताने लगीं। बाईने उनसे पुनः कहा—आप अपने अहंकारका विसर्जन करिये। देह-भावसे ऊपर उठिये। श्रीगिरराजजीको प्रणाम करके साथ चलनेके लिये प्रार्थना

करिये। आप ऐसा कीजिये, फिर देखिये क्या होता है?

बाईके प्यार भरे समझावनसे सुमित्रा बाईमें एक अनोखी स्फूर्ति और अद्भुत शक्तिका संचार हो गया। बाईने जैसा कहा था, उसीके अनुसार प्रणाम और प्रार्थना करके जैसे ही उस परातको उठानेके लिये सुमित्रा बाईने हाथ फैलाये, उन्हें यह अनुभव हुआ कि इनमें कुछ भार है ही नहीं। ये तो पुष्पके समान हल्के लग रहे हैं। सुमित्रा बाईका मन हर्षसे भर गया और उल्लसित मनसे उन्होंने उस परातको मन्दिरकी छतपर बाईके आदेशानुसार पधरा दिया। छतपर श्रीगिरिराजजीका पूजन-अर्चन पूर्ववत् चलता रहा।

अब दीवालके निर्माणमें भावात्मक दृष्टिसे आपत्तिवाली कोई बाधा नहीं रह गयी थी। उधर राजमिस्त्री और मजदूरोंके द्वारा नींव खोदकर दीवाल उठायी जा रही थी और इधर बाईने प्राप्त दैवी संकेतके आधारपर कहा—दक्षिण दिशामें नव-वृन्दावनकी जो नयी दीवाल खड़ी हो रही है, उसमें यह ध्यान रखना चाहिये कि दीवालसे सटे तीन लघु मन्दिरोंका निर्माण करना है, जिनमें श्रीकात्यायनी माँ, श्रीयमुनाजी और श्रीगोपेश्वर महादेवकी प्रतिष्ठाकी जा सके।

बाईके निर्देशानुसार दीवालको खड़ी करनेके साथ-साथ इन तीन लघु मन्दिरोंका निर्माण हो गया। पश्चिमवाली दीवालमें श्रीगिरिराजजीकी स्थापना करनी थी, परन्तु स्थान कम पड़ गया। इस कमीकी पूर्तिके लिये दक्षिण-पश्चिमके कोनेमें लगभग सात फीट गहरा गड्ढा खोदा गया। गड्ढेमें कार्य करनेका ज्यों ही अवसर आया, बाईने तुरन्त निर्देश दिया—अब राजमिस्त्री और मजदूर नहीं अपितु कीर्तन-मण्डली और भक्त-मण्डलीकी बहिनें कार्य करेंगी और कार्य करेंगी निर्जल व्रत रखते हुए।

यह बड़ा कड़ा निर्देश था, पर इसका अक्षरशः पालन किया गया। सिमेंट बालूसे मसाला तो मजदूर लोग बना देते थे, परन्तु मसाला और ईंट ढोनेका काम बहिनें कर रही थीं और गड्ढेमें मसाला रखकर ईंटकी दीवाल उठानेका कार्य मीरा कर रही थी। यह कार्य शामतक होता रहा, फिर भी कार्य अपूर्ण ही रहा। भाभीजीका ममतापूर्ण हृदय बहिनोंकी परेशानी और कष्टको देखकर तड़प उठा। उन्होंने बाईको बार-बार समझाना चाहा और कहा—बाई! तुम अन्तर्जगतसे आदेश ले लो कि यह कार्य राजमिस्त्री और मजदूरों द्वारा हो सके।

भाभीजीके कराह भरे हृदयकी सच्ची कसकने सचमुच कार्य किया और मनोवांछित संकेत देवीकी ओरसे मिल भी गया। इतना अवश्य था कि मिस्त्री और मजदूरोंको निर्जल व्रत रखना होगा और श्रीराधा नाम संकीर्तनके उपरान्त कार्यका आरम्भ नवीन शुद्ध वस्त्र धारण करके करना होगा। जबतक राजमिस्त्री और मजदूर कार्य करेंगे, तबतक कीर्तन-मण्डली और भक्त-मण्डलीकी बहिनें वाद्य सहित उच्च स्वरसे श्रीराधा नाम संकीर्तन करती रहेंगी। यह सब भाभीजीको स्वीकार था। उपर्युक्त नियमोंका पालन करते हुए लगभग छः दिनोंमें श्रीगिरिराजजीकी स्थली बनाकर तैयार हो गयी।

श्रीमहिला संघमें जो सुधार, निर्माण और जीर्णोद्धार इन दिनों हुआ, वह सब बाईके संकेतानुसार हो रहा था और बाईके संकेतका आधार था अन्र्तजगतका दिव्य भावराज्य। श्रीमहिला संघके प्रवेश द्वारके बाँयी ओर एक चौकी रखी हुई है। यह चौकी लकड़ीकी बनी हुई है। मुख्य प्रवेश द्वारके बाँयी ओर इस चौकीको रखवानेका एक विशेष हेतु है। यह श्रीमहिला संघके नव-वृन्दावनकी सुरक्षा हेतु पहरा देनेवाली सखियोंका दिव्य पीठ है।

इस दिव्य पीठको प्रणाम करनेसे दर्शनार्थ आनेवाली बहिनों और भाइयोंको अनेक लाभ है। बाई कहा करती थीं—प्रवेश करते ही इस दिव्य पीठको प्रणाम करनेसे पहरा देनेवाली सखियोंका आशीर्वाद मिलता है और उनसे आज्ञा मिलती है। उस आशीर्वाद और आज्ञाके फलस्वरूप श्रीमहिला संघके नववृन्दावनका भावराज्य उनके लिये सुगम्य हो जाता है। वह प्रणाम दर्शनार्थीके अन्तरके द्वारको खोलता है, जिससे नव-वृन्दावनकी भाव धारा उनके भीतर प्रवेश कर सके। भले दर्शनार्थीको प्रत्यक्ष रूपसे पता न चले, परन्तु दिव्य पीठको प्रणाम करते ही श्रीमहिला संघमें यत्र-तत्र प्रतिष्ठित देवी-देवोंके श्रीविग्रह उनके ऊपर अनुग्रहकी वर्षा करने लगते हैं।

बाईने प्रवेश द्वारपर दिव्य पीठको इसलिये भी रखवाया था कि वहाँपर पहरा देनेवाली सखियोंके रहनेसे आसुरी भावोंका प्रवेश श्रीमहिला संघमें नहीं हो पायेगा। आसुरी भावोंका प्रवेश तभी सम्भव है, जब उस दिव्य पीठको प्रणाम न करके उन सखियोंके प्रति मनमें उपेक्षाके भावका जाने-अनजाने उद्भव हो जाय। यह भी एक प्रधान कारण है कि बाई हर एक दर्शनार्थीको वहाँ अपना प्रणाम अवश्य निवेदित करनेके लिये कहा करतीं थीं। बाईने यह भी बतलाया था कि प्रत्येक दर्शनार्थीको वापस जाते समय भी प्रणाम करना चाहिये। यह प्रणाम दर्शनार्थीकी अनेक भूलोंका परिमार्जन करवा देता है। अनेक बार

दर्शनार्थी द्वारा न चाहते हुए भी छोटी बड़ी भूलें प्रमादवशात् घटित हो ही जाया करती हैं। वे देवापराध उन भाई-बहिनोंकी आध्यात्मिक प्रगतिमें बाधा उपस्थित करते हैं। जाते समय निवेदित किया जानेवाला प्रणाम सभी भूलोंके लिये क्षमा दिलवा देता है। बाईकी दृष्टिमें पहरा देनेवाली सखियोंकी इस दिव्य पीठका सदैव बहुत महत्त्व रहा है।

बाईके संकेतानुसार आवश्यक सुधार और निर्माण हो जानेके पश्चात् ऐसा निश्चय हुआ कि मंदिरोंमें प्रतिष्ठा करानेके लिये पूजनका क्रम अक्षय तृतीयासे आरम्भ कर दिया जाय और पञ्चमीको श्रीविग्रह-प्रतिष्ठाकर दी जाये। सारे कार्य अत्यधिक विधिपूर्वक भक्ति सहित हो रहे थे, किन्तु इस पूजा विधानमें एक जगह परीक्षाकी घड़ी आ गयी। हवनका आरम्भ हुआ। शामियाना लगाकर हवन हो रहा था। अचानक भयंकर आँधी चल पड़ी। उस आँधीमें शामियाना ठहर नहीं सकता था। हवन-कुण्डकी लपटें हवाके वेगसे बहुत ऊँची-ऊँची उठने लगी थीं। वहीं उपस्थित एक-एक व्यक्तिका मन अत्यधिक भयाक्रान्त हो उठा। तभी घनघोर वर्षा शुरू हो गयी। यदि वर्षाके कारण हवन-कुण्डकी अग्नि बुझ जाती है, तो यह परम अशुभका सूचक है। इसकी सूचना तुरन्त बाईको दी गयी। बाई अपने कमरेसे बाहर आकर बरामदेकी खिड़कीमेंसे आकाशकी ओर देखने लगी। देखनेके स्थानपर कहना यही चाहिये कि बादलोंकी ओर घूरने लगीं। इसका सहज परिणाम यह था कि छः सात मिनटके भीतर-भीतर वर्षा बिल्कुल बन्द हो गयी। पण्डितोंको भला क्या पता कि वर्षाका बन्द होना बाईकी सुगुप्त सक्रियताका परिणाम है। वे तो यही कह रहे थे—भगवती जगदम्बाका यह प्रत्यक्ष चमत्कार है। ऐसी आँधी, ऐसा तूफान, ऐसी वर्षा दस मिनटके अन्दर-अन्दर रुक जाये, यह न तो कभी देखा गया और न कभी सुना गया।

हवन सानन्द सम्पन्न हुआ। अगले दिन एक सौ आठ ब्राह्मण भोजनके लिये आमंत्रित थे। ब्रह्म-भोज तथा स्वजन-भोजकी दृष्टिसे बूँदी, भुजिया, पूड़ी, साग आदिका रंधन कार्य चल रहा था। तभी बाईने भाभीजीको बुलाकर कहा—आप एक सौ आठ बाँसकी डलिया बाजारसे मँगवा दीजिये। सवा सेर बूँदी डलियामें डालकर और उसको पीले कपड़ेसे बाँधकर प्रत्येक आमंत्रित ब्राह्मणको दक्षिणाके सहित देना चाहिये।

भाभीजी घबरा उठीं। इस दृष्टिसे भोजन सामग्रीका रंधन हुआ ही नहीं था, यदि हर डलियामें सवा सेर बूँदी रखी जाय और ऐसी एक सौ आठ डलिया देनी पड़े, इस दृष्टिसे जितनी बूँदी चाहिये, उतनी बनी ही नहीं थी और

ब्रह्म-भोजमें परोसना-खिलाना तो अलग रहा। भाभीजीके मुखसे सर्वथा विवशताकी बात सुननेके बाद भी बाईका आग्रह बना रहा। बाईने भाभीजीसे कहा—आप चिन्ता न करें। बस, एक बातका ध्यान रख कि भण्डारमें कोई झाँक करके देखे नहीं। जिसे मैं कहूँगी, वही एक पण्डितजी भीतर रहेंगे। वे ही भण्डारसे निकाल-निकाल करके आवश्यक वस्तु देते रहेंगे।

बाईपर जैसा विश्वास था, उसके अनुसार भाभीजीन आश्वस्त हो गयीं और मान लिया कि खाद्य सामग्रीमें न्यूनता आयेगी ही नहीं; परन्तु प्रश्न था कि तत्काल एक सौ आठ डलिया कहाँसे मिले। हमलोग डलिया बनानेके लिये कहते थे, तब डोम लोग डलिया बना करके देते थे। बाजारमें बहुत खोजनेपर मुश्किलसे दस-बारह डलिया मिल पायेगी। भाभीजीने ज्यों ही डलिया सम्बन्धी अपनी चिन्ता व्यक्त की, बाईने उनसे कहा—आप अपने व्यक्तिको उस डोमके घर भेजिये तो सही।

भाभीजीने अपना आदमी भेजा और क्या ही आश्चर्यकी बात है कि कुछ ही दूर जानेपर वह डोम सामनेसे आता हुआ दिखलायी दिया। उस डोमने गिनती की एक सौ आठ डलिया अपने सिरपर ले रखी थी और वह श्रीमहिला संघकी ओर ही आ रहा था। उस व्यक्तिने डोमसे पूछा—तुमने इतनी डलिया कैसे बना ली?

डोमने कहा—मुझे अचानक बाँस अधिक मिल गये और आपलोगोंके यहाँसे प्रायः माँग आती ही रहती है, उसी आशाके आधारपर मैंने बना ली थी।

अब एक सौ आठ डलिया भी आ गयी और प्रत्येक डलियामें सवा सेर बूँदी भी रख दी गयी। ब्रह्म-भोज, स्वजन-भोज भी हो गया, फिर भी भण्डार रिक्त नहीं हो पाया। भाभीजीने मन-ही-मन कहा—लाज रह गयी। इतना ही नहीं सभी कार्यक्रमोंकी सानन्द सम्पन्नता हो पायी अपनी बाईकी भागवती क्षमताके कारण ही।

बाईने जैसा-जैसा चाहा था, उसी प्रकार देव-विग्रहोंकी नव-वृन्दावनमें भली प्रकार प्रतिष्ठा हो गयी।

* * * * *

भीषण रुग्णता

बाईने जब सन् १९७३ में जनकपुर धामकी यात्रा की थी, उसके कुछ दिन पहलेसे ही बाईके बाएँ हाथमें थोड़ा-थोड़ा दर्द रहने लगा था। चिकित्सा सम्बन्धी बाईके कुछ कठोर नियमोंके कारण लापरवाही भी हो रही थी। जनकपुरसे आनेके बाद कुछ दिन बीतने पर यह दिखलायी दिया कि बाईका बायाँ हाथ सूख रहा था। दाहिने और बायें हाथको एक साथ देखनेपर मोटे-पतलेका अन्तर स्पष्ट दिखलायी देता था। हाथको सूखते हुए देखकर भाभीजीको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने डॉक्टरको बुलवाया। डॉक्टर साहबने कहा—यह एक प्रकारका कुष्ठ रोग है, जो हड्डियोंमें हुआ करता है। यदि इसकी चिकित्सा समय रहते नहीं की जायेगी, तो सारा शरीर सूखने लगेगा।

डॉक्टरकी बात सुनकर सभी सचिन्त हो गये। डॉक्टरने इन्जेक्शनके लिये राय दी थी, पर बाईको सूई लगवाना अत्यन्त अप्रिय था। डॉक्टर साहबकी रायके अनुसार भाभीजी सूई लगवानेके लिये आग्रह करती रहीं। अत्यन्त अप्रियता होते हुए भी भाभीजीके अनुरोधको सम्मान देनेके लिये एक लेडी डॉक्टरसे बाईने सूई लगवा दी। यह सूईका लगवाना विघातक और कष्टदायक सिद्ध हुआ। जहाँ सूई लगायी गयी थी, वहाँ गाँठ बन गयी और यह गाँठ गोलाकार फैलाकर छः इंचके व्यास वाली हो गयी। पुनः लेडी डॉक्टरको दिखाया गया। उसने कहा—यह गाँठ तो पक गयी है। अन्दर मवाद भरी हुई है। चीरा लगाकर स्वच्छ करना आवश्यक है।

भाभीजीने बाईके हितको ध्यानमें रखते हुए ही उनकी रूचिकी उपेक्षा कर दी थी, पर अब पुनः उपेक्षा करनेका साहस नहीं हो रहा था। अब तो वही करना था, जैसा बाई चाह रही थीं। उस भीतरी घावके कारण बाईको प्राणान्तक कष्ट हो रहा था। बहुत तीव्र ज्वर रहता था। चौबीसों घण्टा बैचेनी बनी रहती थी। इस हालतमें भी बाई यही कहा करती थीं—श्रीकृष्ण जो करेंगे, उचित ही करेंगे। उनकी इच्छा पूर्ण हो। उनसे तो कुछ छिपा नहीं है। वे जिस परिस्थितिमें रखेंगे, वही मुझे स्वीकार है। उनकी रुचि ही मेरी प्रसन्नता है। यह शरीर उनका है, अपनी वस्तुको किस प्रकार रखना है, इसे वे समझें। मैं और क्या कर सकती हूँ? रोगके रूपमें भी तो वे ही आये हैं। उनसे मुझे कोई डर है ही नहीं।

उन्हें देखकर श्रीभाईजीका पद याद आता है। श्रीभाईजीकी वाणी बाईके जीवनमें चरितार्थ थी—

देख दुःखका वेष धरे मैं नहीं डरूँगा तुमसे, नाथ!
जहाँ दुःख वहाँ देख तुम्हें मैं पकड़ूँगा जोरोंके साथ॥
नाथ! छिपा लो तुम मुँह अपना, चाहे अति अँधियारे में।
मैं लूँगा पहचान तुम्हें इक कोने में, जग सारे में॥
रोग-शोक, धन-हानि, दुःख अपमान घोर, अति दारुण क्लेश।
सबमें तुम, सब ही है तुममें, अथवा सब तुम्हरे ही वेश॥
तुम्हरे बिना नहीं कुछ भी जब, तब फिर मैं किस लिये डरूँ।
मृत्यु-साज सज यदि आओ, तो चरण पकड़ सानन्द मरूँ॥
दो दर्शन चाहे जैसा भी दुःख-वेष धारण कर, नाथ!
जहाँ दुःख वहाँ देख तुम्हें, मैं पकड़ूँगा जोरोंके साथा।

बाईका यह कष्ट भाभीजी द्वारा देखा नहीं जा रहा था। वे बार-बार अनुनय-विनय करती थीं—अब तुमको कभी भी तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध न सुई दिलवाऊँगी और न डॉक्टरी दवा करवाऊँगी। इस बार तो जल्दी ठीक हो जाओ।

भाभीजीकी स्नेह भरी वाणीसे बाईका मन द्रवित हो उठा। बाईने होमियोपैथिक दवा लेना स्वीकार कर लिया। एक सप्ताह बाद बेचैनी कम हो गयी। घाव भी अपने आप ठीक होनेकी राहपर आ गया। ज्वर भी उतर गया। इतना ही नहीं, एक और चमत्कार हो गया, वह यह कि छः मास बाद देखा गया कि वह सूखना अब है ही नहीं और बायाँ हाथ दाहिने हाथकी तरह सम और सुन्दर हो गया है।

इसी तरहकी एक घटना और है। एक बार बाई गोरखपुर आयी हुई थीं। वहाँ कमलजी और मुन्नीजीके रहनेवाले कमरेमें ठहरी हुई थीं। अचानक एक दिन कमलजी और मुन्नीजीसे बाई बोलीं—मेरे पाँवमें लकवाका झटका आने वाला है।

मुन्नीजीने कहा और उन्हींके स्वर मिलाते हुए कमलजीने कहा—इस तरहकी अशुभ बात मुँहसे नहीं निकलनी चाहिये।

सत्य स्थितिको बतलानेके लिये बाईने उनसे कहा—यह चर्चा अशुभकी नहीं, सत्य स्थितिकी है। यह झटका तो आने ही वाला है।

दो-तीन दिन बाद बाई भोजन करनेके लिये बैठी थीं, वहीं बैठी-की-बैठी रह गयीं। वे उठ ही नहीं सकीं। बाईके दोनों पाँव लकवासे ग्रस्त हो

चुके थे। अब मुन्नीजी ही उन्हें कुर्सीपर बैठाकर शौचालय ले जाया करती थीं। शौच-स्नान आदि सम्पूर्ण कार्योंके लिये मुन्नीजी और एक अन्य बहिनकी सहायता अपरिहार्य हो गयी। लकवा ग्रस्त हो जानेकी सूचना श्रीबाबाको दी गयी। श्रीबाबा डॉक्टरोंको लेकर बाईके पास आये और डॉक्टरोंसे चिकित्सा सम्बन्धी विचार-विशर्म होता रहा। बहुत देरतक सोच-विचार होनेके बाद भी बाईकी कठोर नियम-निष्ठाके कारण चिकित्साका कोई सही ढंग सुनिश्चित नहीं हो पाया। इसी सोच-विचारकी स्थितिमें पाँच-छ दिन निकल गये। एक दिन कमलजी-मुन्नीजीके पास बैठी-बैठी बाई अचानक बोल पड़ी—आज रातके बारह बजे मेरा पाँव बिल्कुल ठीक हो जायेगा।

मुन्नीजी, कमलजी, नर्मदा बाई और अन्य बहिनें आतुर मनसे मध्य रात्रिकी प्रतीक्षा करने लगीं। सूर्यास्तके बाद जैसे-जैसे रात बीतती जा रही थी, सबकी नजर घड़ीपर टिकी हुई थी। बाई कमरेमें लेटी हुई कमलजी और मुन्नीजीसे बात कर रही थीं। ज्यों ही रातको घड़ीने बारह बजाये, बाईने कहा—मुझे लघुशंकाके लिये जाना है।

मुन्नीजी कुर्सी लानेके लिये जाने लगीं, परन्तु यह क्या? बाई तो बिना किसी सहारेके झटसे उठकर साधारण ढंगसे चलने लगी। उनके पाँवमें लकवाके झटकेका कोई चिह्न शेष नहीं रह गया था। इस प्रकार अचानक ठीक हो जानेका रहस्य मुन्नीजीने बाईसे पूछा, तब उन्होंने हँस-हँस करके बतलाना आरम्भ किया—मेरी चिकित्साके लिये डॉक्टरोंको लेकर पूज्य बाबा मेरे पास आये थे। वह तो तुमलोगोंको दिखानेके लिये और सन्तोष दिलानेके लिये एक नाट्य मात्र था। सच्ची बात यह है कि जब-जब मैं अस्वस्थ होती हूँ, वे बाबा ही मेरे पास आकर बैठ जाते हैं और अन्तर्जगतके द्वारा ही वे मेरी चिकित्सा करवाते हैं।

बाईका अल्पकालके लिये रोगसे ग्रस्त होना और फिर उस रोगसे स्थायी रूपसे मुक्त हो जाना, ये सब कुछ ऐसी बातें हैं, जो साधारण प्राणीके लिये एक अगम्य तथ्य है। यह तथ्य जगतके लिये सदैव ही एक पहेली रहा है और सदैव ही पहेली रहेगा। किसीकी कर्मराशिको अपने ऊपर ले लेना और उस अशुभ कर्म राशिको स्वयं पर झेलकर उसका हिसाब निपटा देना यह उनकी कुछ ऐसी मानवातीत प्रक्रिया रही है, जिसकी नीति-रीतिको लौकिक कसौटी पर कसा ही नहीं जा सकता। बाईकी रुग्णता और स्वस्थताके खेल सदा ही विचित्र रहे हैं।

* * * * *

जसीडीह-देवघर यात्रा

राजगिरिमें एक मास रहनेके बाद भी भाभीजीके स्वास्थ्यमें अपेक्षित सुधार नहीं आया। वे भागलपुर लौट आयीं। परिवारकी तथा श्रीमहिला संघकी विविध जिम्मेदारियोंको निभाते हुए समय निकल रहा था। डॉक्टरोंकी रायके अनुसार स्वास्थ्य-लाभके लिये जसीडीह जाना निश्चित हुआ। यह स्थान बिहार (झारखंड) में अपनी प्राकृतिक सुषमाके लिये विख्यात है। जसीडीहसे एक किलोमीटरकी दूरीपर कुण्डा नामक एक स्थान है। वहाँ भाभीजीके दौहित्रके ससुरालवालोंका एक बड़ा बगीचा था, जिसमें रहनेके लिये कोठी भी थी। वहीं भाभीजी सन् १९७४ के अप्रैल मासमें स्वास्थ्य सुधारके लिये गयीं। साथमें बाई भी गयीं और अन्य छः-सात बहिनें भी गयीं। वहाँका प्राकृतिक दृश्य बाईके लिये उद्दीपनका कार्य करता था। जंगलमें मंगलका समा बँध गया। वहाँ पूर्ण स्वतन्त्रता थी, अतः उमंगके साथ घण्टों-घण्टों संकीर्तन और पद-गायन होता रहता था। बहिनें उल्लासके साथ नृत्य करने लगतीं थीं और उस नृत्योल्लासमें अनेक बार बाई ही सर्वाग्रगण्या बन जाती थीं। यह भी देखा गया कि बाई कभी किसी वृक्षके नीचे और कभी हरी-हरी सब्जियोंके खेतोंमें अपनी मौजमें बैठती-घूमती रहती थीं।

कुण्डासे देवघर तीन या चार किलोमीटरकी दूरीपर स्थित है। नाथनगरकी एक बहिनका ससुराल देवघरमें था। उसकी पुत्री उषा बचपनमें ही पोलियोंसे ग्रस्त हो गयी। एक बार उषा अपनी माँके साथ नव-वृन्दावनमें आयीं। उषा अपनी माँके साथ श्रीबरसानेवालीका दर्शन कर रही थी। बाई भी वहीं थीं। श्रीजीके श्रीअंगोंपर जो चूनड़ी विराज रही थी, बाईने उसीको प्रसादी रूपसे उसको ओढ़ा दिया और कहा—अब श्री कृष्ण ही तेरे पति हैं।

यह घटना सन् १९७२ की है। इसके दो साल बाद सन् १९७४ में जब बाई कुण्डामें थीं, तब उषा देवघरसे बाईके पास मिलनेके लिये आयी। फिर बाईने उसे सदाके लिये अपने पास रख लिया। अब वह श्रीमहिला संघकी आश्रम-निवासिनी बनकर नव-वृन्दावनमें नित्य वास करने लगी।

कुण्डामें ही एक बार स्नानघरमें भाभीजीकी साड़ी खूँटीपर टँगी हुई थी।

बाई स्नानघरमें गयीं और माचिसकी तिल्ली जलाकर उस साड़ीमें आग लगा दीं। यह एकदम नयी और अत्यधिक विस्मयकारिणी घटना थी। बाई स्वयं ही साड़ीको प्रज्ज्वलित करें, वस्तुतः यह बड़ी अटपटी बात थी। यह सब काम इतनी त्वरापूर्वक हुआ कि कोई समझ ही नहीं सका कि क्या हो रहा और क्यों हो रहा है? साड़ीके जल जानेके बाद भाभीजीने जलानेका कारण पूछा। बाईने बतलाया—आपको दिखलायी नहीं दे रहा था, पर मैं खुली आँखोंसे देख रही थी कि एक प्रेत वहाँ आया था और वह आग लगानेकी सोच रहा था। उस प्रेतके कारण आग तो लगती ही, और पता नहीं आग लगा करके वह क्या-क्या जला देता। वह प्रेत आग लगाये, इसके पहले ही मैंने आगे बढ़कर आग लगा दी। इसका सहज परिणाम यह हुआ कि साड़ी जल गयी, परन्तु साड़ीके साथ-साथ प्रेत भी जल गया।

वहाँ रहते हुए बाई अनेक बार श्रीबैजनाथधाम भगवान् शिवके दर्शनोंके लिये गयीं। बाई तो स्वयं गयीं ही, अपने समीप आनेवाली बहिनोंको भी बार-बार भेजती थीं।

बाईमें कभी-कभी बड़े विचित्र भावोंका उन्मेष हुआ करता था। बाई जिस कोठीमें रहती थीं, वहाँका माली सन्थालका था। वहाँके जंगलोंमें रहनेवालोंकी एक जातिका नाम सन्थाल है। मालीकी पत्नीको बाई कई बार बुला लिया करती थीं। संकोच खुलनेपर अब वह अपने आप आने लगी। वह नाच-नाच करके अपनी सन्थाली भाषामें सुनाया करती थी। उसकी भाषा तो केवल बाईके लिये सुबोध हुआ करती थी, अन्य लोगोंको क्या पता, वह क्या गा रही है और किस लीलाका वर्णन कर रही थी। उस सन्थाली बहिनसे बाईकी बड़ी आत्मीयता हो गयी थी। एक दिन तो बाई भी उसके साथ नृत्य करने लगीं और उसी भाषामें गीत गाने लगीं। इन्हीं दिनों बाईने अपनी सखीके नाम एक पत्र लिखवाया था, जिसमें अटपटी भाषा थी। यह पत्र अरण्यनिवासिनी कृष्णाराधिकाकी ओरसे लिखा गया था।

क्रमशः दिन-पर-दिन, सप्ताह-पर-सप्ताह और मास-पर-मास व्यतीत होते-होते भाद्र मासका शुक्लपक्ष आ गया। अष्टमी तिथिको वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाका जन्म दिवस है। अष्टमीका दिन भी आ गया। कुण्डा ग्रामकी इस कोठीमें राधा-जन्मोत्सव मनाया गया। इस दिन वयस्का बाई वयस्का नहीं रह

गयी थीं, अपितु लग रही थीं, एक शिशु, जिसकी बाल-चेष्टाएँ, बाल-मुद्राएँ, बाल-दृष्टि, बाल-अभिलाषा आसपासकी बहिनोंके अन्तरमें वात्सल्यकी सृष्टि कर रही थी। बाल-भावका यह जो भावावेश हुआ, उसमें रुक-रुक करके थोड़ी-थोड़ी देरमें परिवर्तन भी दिखलायी दे रहा था और उस परिवर्तनसे स्पष्ट आभास मिल रहा था कि अब शिशु ललिताका, फिर शिशु विशाखाका, फिर शिशु चित्राका इस प्रकार शिशु वयवाली सभी अष्ट सखियोंका भावाविर्भाव हो रहा था। अष्टमी तिथिके सारे दिन बाई इस भावाविर्भावसे अभिभूत रहीं और जब-जब भाव परिवर्तन होता, सभी बहिनें सभक्ति वन्दन करतीं। नवमी तिथिको बड़े उत्साहके साथ बधाई दिवस मनाया गया। बाईका बड़ा प्रिय वाक्य था कि 'हँसते-हँसते, खेलते-खेलते भगवत्प्राप्ति कर लो।' यह बाईका उपदेश सूत्र था। प्रिया-प्रियतमकी मनसे-तनसे सेवा और भजन करो। इस प्रकार हास-परिहासके द्वारा भगवत्प्राप्ति सहज ही है।

यहाँ भी भाभीजीको अपेक्षित स्वास्थ्य लाभ नहीं हुआ, तब प्राकृतिक चिकित्सा करानेका विचार होने लगा। जसीडीहमें सम्माननीय श्रीमहावीरप्रसादजी पोद्दार द्वारा स्थापित आरोग्य भवन है। श्रीमहावीरप्रसादजी पोद्दारका श्रीभाईजीसे निकट सम्पर्क रहा है। वे गोरखपुरके गीताप्रेसके आरम्भिक दिनोंमें बड़े सहकारी रहे हैं। उन्हींके आरोग्य भवनमें प्राकृतिक चिकित्सा करानेके लिये भाभीजी कुण्डा ग्रामसे जसीडीहमें आयीं। भाभीजी और बाईको ज्ञात था कि जसीडीहके समीपकी एक पहाड़ीपर ही श्रीभाईजीको सन् १९२७ में भगवान् विष्णुके दर्शन हुए थे। वह पहाड़ी आरोग्य भवनके पासमें ही थी। बाई कभी अकेले और कभी अनेक बहिनोंके साथ उस पहाड़ीपर जातीं और घण्टों-घण्टों भाव निमग्न रहतीं। जिन श्रीभाईजीसे मन्त्र प्राप्त हुआ था, उन्हींके आध्यात्मिक जीवनका यह एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। यह विचार बाईको भाव-सिन्धुमें गहरे उतार दिया करता था। कुछ मास जसीडीहमें निवास करनेके बाद बाई भाभीजीके साथ भागलपुर चली आयीं।

* * * * *

जीवन दान

बाई जहाँ भी रहती थीं, अपने भाव-राज्यमें डूबी रहतीं थीं। लोकमें रहकर भी उनका जो लोकोत्तर जीवन था, इसका एक ही अनुपम उदाहरण है जलमें कमलवत् रहना। बाईके पास भाव-राज्यकी कभी कोई - कभी कोई सखी, सहेली, सहचरी, मञ्जरी आती रहती थीं। देवघर और जसीडीहमें सात-आठ मास व्यतीत करके जब बाई भागलपुर आयीं, तब उनके जीवनमें एक और नवीन भाव-स्थितिका उन्मेष हुआ। बालकृष्ण प्राय: उनके साथ खेलते रहते थे। आगे-पीछे चलते रहते थे। उन्हींके साथ बाईका हास-विलास, उठना-बैठना चलता रहता था। वे श्रीकृष्ण अल्पायुके थे, अत: बाईके बहुत मुँह लग गये थे। मुँह लगे होनेके कारण कभी बाल्योचित चपलता और चर्या करते और कभी नव-वृन्दावनमें होनेवाली चूक या त्रुटियोंकी शिकायत भी करते। बाईका प्रयास यही रहता कि अब ऐसी कोई भूल श्रीमहिला संघके भीतर न होने पावे, जो इन बाल श्रीकृष्णको अप्रिय लगे। ये बालकृष्ण इतने चंचल थे कि यदि बाई स्नानघरमें जातीं तो वहाँ भी पहुँच जाते थे। बालक ही तो ठहरे, वहाँ भी नहाते-नहाते उनसे रसालाप चलता-रहता।

एक बार भाभीजीको बहुत चोट लग गयी। प्रत्येक सप्तमीको भाभीजी श्रीमहिला संघ आ जाया करती थीं और अष्टमी-नवमीकी पूजा करके नवमी तिथिको रातमें वापस हवेली आतीं। महीना तो ज्ञात नहीं है, सन् १९७५ में भाभीजी सप्तमीके दिन श्रीमहिला संघ रिक्शेसे आ रही थीं। हवेलीसे करीब चालीस गज भी नहीं गयी होगीं कि रिक्शा उलट गया। भाभीजी गिर गयीं। माथा फटनेसे खून निकलने लगा। सामने ही ज्ञान बाईका घर था। हल्ला सुनकर उनके घरसे कुछ लोग बाहर आ गये। भाभीजीको ज्ञान बाईके घरके अन्दर लाया गया। प्राथमिक उपचार प्रारम्भ हुआ। इधर एक व्यक्ति डॉक्टरको बुलाने गया और उधर एक व्यक्ति श्रीमहिला संघ भाभीजीके गिरनेकी सूचना देने गया।

बाई उस समय छतपर बैठी हुई थीं। पासमें थीं मीरा और सावित्री बाई। बाईके पास सूचना पहुँचते ही मीरा और सावित्री बाई तो भाभीजीके पास दौड़

गयीं। सायंकालका समय था। बाईको ऐसा लगा कि भाभीजीका जीवन-दीप बुझनेवाला है और उनसे अब मेरा मिलन नहीं होगा। यदि वहाँ जाना ही है तो पूजा करके ही चलना ठीक रहेगा। जल्दी ही सूर्यास्त होनेवाला है। बाईकी दिनचर्या तो निश्चित नहीं रहती थीं। बाईके उठने, नहाने, पूजा करने, खाने आदिका समय सर्वथा अनिश्चित रहता था। कभी सूर्यास्तके समयतक भी बाई स्नान नहीं कर पातीं तो प्रणाम करके मानसिक पूजा ही कर लिया करती थीं। आज भी मानसिक पूजा करके ही जाना चाह रही थीं। बाईका मन पूजामें नहीं लग रहा था। भाभीजीसे होनेवाले महावियोगकी कल्पनासे हृदय विदीर्ण हो रहा था कि तभी मुँह लगे बालकृष्ण आकर बाईसे बोलने लगे—बाई! क्या तुम यहाँ पूजा कर रही हो? वहाँ भाभीजीको बड़ी चोट लगी है। खून निकल रहा है। तुम क्यों नहीं जा रही हो? भाभीजीके नेत्र बार-बार तुम्हींको खोज रहे हैं। वे किसीसे कुछ बोल नहीं रही हैं। बाई! तू पूजा पीछे करना। अभी जल्दी चल। इस समय तुझे भाभीजीके पास रहना चाहिये।

बाई पूजा करते-करते ही उन बालकृष्णका मुख देखने लगीं। बालकृष्णसे सारी बातें सुनकर बाईको यह विश्वास तो हो ही गया कि अभी श्वास चल रही है और मुझे तुरन्त चलना चाहिये। बाई भाभीजीके पास आ गयीं। बाईके आते ही भाभीजीको बड़ा चैन मिला। बाईके निर्देशानुसार भाभीजीको हवेली लाया गया। डॉक्टरको बुलाया गया। उन्होंने विधिवत् चिकित्सा की। रात भर बाई भाभीजीके पास हवेलीमें रहीं। दूसरे दिन अष्टमीको बाई भाभीजीके पाससे श्रीमहिला संघ पूजा करनेके लिये चली आयीं। उन्होंने भाभीजीको आश्वासन दिया था कि मैं पूजा करके जल्दी ही हवेली वापस आ जाऊँगी। श्रीमहिला संघमें आकर बाईने श्रीबरसानेवालीका पूजन किया और प्रणाम करके श्रीगिरिराज परिसरमें चली गयीं। वहीं वे लेट गयीं।

इधर हवेलीमें भाभीजी प्रतिक्षण बाईकी प्रतीक्षा कर रही थीं। विलम्ब होते देखकर भाभीजीने किसी व्यक्तिको श्रीमहिला संघ भेजा। उसने लौटकर सूचना दी कि बाई श्रीगिरिराज परिसरमें बेहोश पड़ी हैं। अब भला भाभीजीको चैन कहाँ? भाभीजी मीराके साथ तुरन्त श्रीमहिला संघ आयीं और श्रीगिरिराज परिसरमें देखा कि बाईके शरीरमें जीवनका कोई चिह्न शेष नहीं है। देखते ही भाभीजीके मुखसे भीषण चीत्कार फूट पड़ा और वे जोर-जोरसे रोने लगीं।

लगभग पाँच मिनट बाद कुछ-कुछ हलचल शरीरमें दिखायी दी और कुछ मिनट बीतनेके बाद बाईने आँखें खोलीं। इस समय बालकृष्ण ही बाईके मुखसे बोल रहे थे। बोल निकल रहे थे बाईके दो अधरोंसे, परन्तु वह बोलन बाईकी नहीं थी। बोलनकी शैली ही बता रही थी कि बाईके भीतरसे बाल श्रीकृष्ण बोल रहे हैं। वे बोलने लगे—भाभीजी! बाई तो बहुत दूर चली गयी थी। तुम्हारी आवाज सुनकर लौट आयी है। भाभीजी! तुम अभी नहीं आती तो बाई तो सचमुच जा चुकी थी। फिर तुम बाईको बुला ही नहीं सकती थी। रिक्शेपरकी यह दुर्घटना तुम्हारे लिये निधनका निमित्त बननेवाली थी। बाईने इसे अपने ऊपर झेलकर तुमको जीवनका दान दिया है।

बहुत देर बाद बाई उठकर बैठ गयीं। बाई जब तक उठीं नहीं, तब तक बाईके पास श्रीराधा नाम संकीर्तन होता रहा। कीर्तनको विराम दिया गया तब, जब बाई उठकर ऊपर अपने कमरेमें चली गयी।

* * * * *

सूक्ष्म-सुदूर दृष्टि

संतके पास आनेवाले सभी व्यक्तियोंका स्तर एक सा नहीं होता। कामना-वासना शून्य हृदय लिये हुए आनेवालोंकी संख्या अत्यल्प हुआ करती है। प्रायः जागतिक समस्याओंसे उलझे हुए व्यक्ति ही संकटसे त्राण पानेकी आशा लेकर आते हैं। यही बात बाईके बारेमें है। अनेक स्थानोंकी अनेक बहिनें बाईके पास आया करती थीं। एक बहिनने भाभीजीको पाँच भरी सोना और पाँच हजार रुपये देकर निवेदन किया—इसे आप श्रीबरसानेवालीकी सेवामें लगा दीजियेगा।

श्रीमहिला संघका सतत् उत्कर्ष चाहनेवाली भाभीजीको इससे प्रसन्नता ही हुई। उन्होंने सोना और रुपया लेकर रख लिया और रात्रिमें इसकी सूचना बाईको दी। बाई कुछ क्षणोंतक मौन रहीं। मौन रहकर भीतरी आँखोंसे वे कुछ देखना-टटोलना चाहती थीं। उन्हें ज्ञात हो गया कि दानदात्रीकी भावनाएँ लौकिकतासे ग्रस्त है और इस दानको स्वीकार करना एक महँगा सौदा है। बाईने भाभीजीसे कहा—भाभीजी! उन माताजीका सोना और रुपया तुरन्त वापस कर दीजिये। वह ऐसी लौकिक कामनासे रुपया दे रही है, जो सराहनीय नहीं है। वह स्वर्ण और द्रव्य लाडिलीकी सेवामें लगानेसे हमारे नव-वृन्दावनकी सात्त्विकता मुरझा कर मलिन हो जायेगी। आपको ऐसा रूपया नहीं लेना चाहिये।

अब भाभीजीके लिये विचारका कोई प्रश्न था ही नहीं। उन्होंने बाईको तत्काल उत्तर दिया—ठीक है, मैं सुबह ही उसे लौटा दूँगी।

नर्मदा बाईने प्रतिवाद किया। उनको ऐसा लगा कि पासमें आयी हुई एक अच्छी रकम हाथसे निकल रही है। उन्होंने प्रतिकार करते हुए बाईसे कहा—श्रीबरसानेवालीके सेवाके लिये धनकी आवश्यकता तो है ही, इसके अलावा दूसरी बात यह है कि आनेवाले धनको लौटाना संस्थाके लिये शोभनीय नहीं है। सभी दान देनेवालोंसे यह पूछकर दान लिया ही नहीं जा सकता कि आप किस भावसे दान दे रहे हैं। बहुतोंने हमारे श्रीमहिला संघको दान दिया है, क्या सभीसे हमने पूछा कि दान देनेकी प्रेरणा क्या है? मेरा तो कहना यह है कि आये हुए धनको लौटाना नहीं चाहिये। इतना अवश्य है कि इसका उपयोग श्रीबरसानेवालीके मंदिरके लिये न करके किसी और कार्यमें कर लिया जायेगा।

सचमुच कभी-कभी बड़ा कठिन हो जाता है तथ्यकी वास्तविकताको

बतला सकना। नर्मदा बाईके कथनको अमान्य नहीं किया जा सकता, परन्तु जहाँतक इस दान-विशेषकी बात है, उस देनेवालीके उद्देश्यको बेपर्द करना ठीक नहीं। बाईने पुनः आग्रहपूर्वक कहा—भाभीजी! माँ इस बातकी गहराईमें झाँक नहीं पा रही हैं। आप इन रुपयोंको लौटा दीजिये।

भाभीजीने कहा—बाई! अभी तो रात हो गयी है। तुरन्त लौटा सकना तो सम्भव नहीं, सुबह लौटा दूँगी। तुम्हें जो स्वीकार नहीं है, वह लेकर मैं क्या करूँगी? यह तो बहुत छोटी राशि है। यदि इसकी सौ गुना भी होती, तो भी तुम्हारी स्वीकृतिके बिना उसे ले लेना मुझे अभीष्ट नहीं।

प्रातःकाल भाभीजीने वह सोना और रुपया उन माताजीको लौटा दिया। लौटाते समय नर्मदा बाई उन माताजीसे प्यार और आग्रहके मिलेजुले रूपमें पूछने लगीं कि यह दान आप किस उद्देश्यसे कर रही थीं। पहले तो उन माताजीने बतानेमें आना-कानीकी, परन्तु जब तथ्य सामने आया तो नर्मदा बाईको यही लगा कि इस दानकी स्वीकार न करनेमें ही हित है।

* * * *

उन दिनों श्रीमहिला संघमें चूहोंका बहुत उपद्रव हो रहा था। बड़े-बड़े चूहे रात भर इधर-उधर दौड़ते रहते थे। खानेका सामान तो छोड़ते ही नहीं थे, कपड़े भी कुतर डालते थे। यहाँतक कि लकड़ीके दरवाजोंमें भी छेद कर डालते थे, परन्तु वे इतने चतुर थे कि चूहादानीमें तो फँसते ही नहीं थे। बाईको कहा जाता—बाई! ये चूहे बहुत उपद्रव कर रहे हैं, इनका कोई उपाय बताइये ना!

बाई कहतीं—तुमलोग समझती हो कि केवल हमलोग ही भक्त हैं और भजन करते हैं, पर ये चूहे भी भजन करते हैं। ये चूहे श्रीगिरिराज परिसरमें भजन करते हैं। इनके पास छोटी-छोटी पाठकी पुस्तक है, माला है। रातमें तुमलोग सो जाती हो, तब ये अपने परिवारके साथ श्रीगिरिराज परिसरमें बैठकर भजन करते हैं। ये भी यहाँ श्रीमहिला संघमें भजन करनेके उद्देश्यसे ही रहते हैं।

झुँझलाहटमें बाईसे कहा जाता—बाई! यह तो देखिये कि ये नुकसान कितना अधिक करते हैं?

बाई हँसकर कह देतीं—तुमलोगोंसे तो कम ही करते हैं।

बाईके मुखसे इस उत्तरको सुनकर आश्रमवासिनी बहिनोंकी झुँझलाहट

बढ़ जाती। फिर बाई उन बहिनोंसे कहतीं—इनलोगोंके आचरणसे आपलोग नाराज होकर इन्हें भगानेका उपाय पूछती हैं। उसी प्रकार यदि ठाकुर आपलोगोंसे नाराज होकर आपलोगोंको भगाने लगें, तब क्या होगा?

इस मुँह तोड़ उत्तरके रूपमें क्षुब्ध बहिनोंके चिन्तन पर एक तीखी चोट थी। अब तो सबके मनमें सीमातीत झुँझलाहट थी, परन्तु सब निरूपाय थीं। एक दिन गौतमी माताजीकी चोटीको चूहोंने रातमें सोते समय काट दिया। प्रात:काल गौतमी माताजी चोटीके टुकड़ेको लेकर बाईके पास आयीं और बोलीं—बाई! मेरी तो चोटीको ही चूहोंने दो टुकड़े बना दिया।

प्रत्येक आश्रमवासिनी बहिनकी शिकायत सुनकर भी बाई यही कहती रहीं—आपलोग स्वयं देख लीजिये कि रातमें ये चूहे श्रीगिरिराज परिसरमें बैठकर साधना करते हैं।

विश्वास तो किसीको नहीं होता था, पर बाईकी बातकी सच्चाईको देखनेकी इच्छासे एक दिन मीराने रात्रिमें श्रीगिरिराज परिसरमें देखा-चूहे दो टाँगोंपर पंक्तिबद्ध बैठे हैं। पंक्ति तो टेढ़ी-मेढ़ी थी, पर यह दिखलायी पड़ा कि सब शान्त भावसे एक ही मुद्रामें बैठे हैं। पुस्तक, माला तो दिखलायी नहीं पड़ी, पर ऐसा अवश्य लग रहा था कि वे साधना मग्न हैं।

चूहे इतनी शान्तिसे अविचल बैठे हुए पहले कभी नहीं देखे गये थे। अब तो मीराने एक-एक करके कई बहिनोंको बुला-बुलाकर करके दिखलाया। सब आश्चर्यचकित होकर साधना परायण उन चूहोंकी प्रशंसा करने लगीं। सभीके मनमें इन चूहोंके प्रति भरपूर सम्मान तो था, परन्तु सभी उनके उपद्रवसे परेशान भी थीं। खाने-पहननेकी चीजोंको नष्ट-भ्रष्ट कर देनेके अलावा कभी किसीका कान कभी किसीकी अँगुली ही काट देते थे। परेशानीके कारण अब भी बाईसे चूहोंकी शिकायतकी जाती थी, परन्तु अब शिकायतका स्वरूप बदला हुआ था। चूहोंके उपद्रवसे त्रस्त बहिनें बाईसे कहतीं—आपके भक्त चूहे बहुत उपद्रव मचा रहे हैं, इस उपद्रवसे बचाइये।

एक दिन बाईने मीरासे कहा—मीरा! तुम चूहोंके सरदारको एक पत्र लिखकर इन चूहोंकी शिकायत करो।

मीराको पत्र लिखना नहीं आता था, अत: बाईने स्वयं पत्र लिखवाया। वह पत्र एक लिफाफेमें बन्द कर दिया गया। उस लिफाफेपर बाईने पता लिखवाया—

सरदार अनिल कुमार घोष,
अहीर पाड़ा,
अमाल पर्वत

फिर बाईने उस पत्र सहित लिफाफेको अपने कमरेकी खिड़कीपर रखवा दिया। प्रात:काल वह लिफाफा वहाँ नहीं था। उसी दिन रात्रिमें एक भी चूहा दिखलायी नहीं दिया। आश्चर्य यह है कि बारातकी तरह निकलनेवाले चूहे अचानक एक साथ न जाने कहाँ गायब हो गये। अनुमान है कि सरदारने उन सबको वहाँ जानेसे रोक दिया होगा। बाईने उसी दिनसे श्रीगणेशजीको नित्य भोग लगवाना प्रारम्भ किया।

* * * *

एक दिन भाभीजी अपने कमरेमें बैठकर चूड़ी पहन रही थीं। चूड़ी पहननेमें उन्हें बहुत कष्ट हो रहा था। हाथ जगह-जगहसे कट भी जाता था। कष्टसे उनकी आँखोंमें आँसू आ गये। बाईने पूछा—भाभीजी! आप यह चूड़ी श्रीबद्री विशालजीके निमित्तसे पहनती हैं या बिहारीजीके।

भाभीजीके पतिदेवका नाम था श्रीबद्रीविशालजी ढानढनियाँ। इसी तथ्यका बाई सत्योद्घाटन करवाना चाहती थीं। भाभीजीने सहज उत्तर दिया—बिहारीजीके निमित्तसे।

बाई भी भाभीजीके पीछे ही पड़ गयीं और पूछ बैठीं—श्रीबद्री भाईजीका शरीर चल जायेगा, तब भी क्या आप चूड़ी पहनेगीं?

भाभीजीने सहज ही उत्तर दे दिया—बाई! लोक रीतिके अनुसार फिर तो चूड़ी नहीं पहन सकती।

बाईने कुरेदते हुए कहा—तब तो चूड़ीका पहनना बिहारीजीके निमित्तसे नहीं हुआ। भाभीजी! अब आप सावधान हो जाइये, अब जल्दी ही चूड़ी उतरने वाली है।

बाईकी बातको किसीने गम्भीरतासे नहीं लिया। गम्भीरतासे लेनेका ढंग भी नहीं था। श्रीबिद्रीविशालजी पूर्ण स्वस्थ थे। उनकी मृत्युकी कल्पनाकी भी नहीं जा सकती थी।

इस प्रसंगके कुछ दिनों बाद भाभीजीका गोरखपुर पूज्य बाबाके दर्शनोंके लिये जाना हो गया। भाभीजी बाबाके पास बैठी हुई थीं। बाबासे बात करते

समय बात-की-बातमें बद्रीविशालजीकी चर्चा चल पड़ी। बाबाको बद्रीविशालजीके व्यवहारकी रूक्षता और तुनक मिजाजी पसन्द नहीं थी। इसीपर प्रहारात्मक स्वरमें टिप्पणी करते हुए श्रीबाबा भाभीजीसे बड़े स्वाभाविक रूपमें बोल पड़े—यह बद्री बढ़-बढ़कर ज्यादा क्या बोलता है, अब तो उसका जीवन-दीप बुझने ही वाला है।

बाईने भी इसकी पूर्व सूचना दे दी थी, वही बात अब बाबाके मुँहसे सुनकर भाभीजी स्तंभित हो गयीं।

कुछ दिनों बाद वाराणसीमें सासूजीकी अस्वस्थताकी सूचना पाकर भाभीजी वाराणसी चली गयीं। उनके पति श्रीबद्रीविशालजी भी वहीं थे। एक दिन रिक्शेसे गिर जानेके कारण उनके पाँवकी हड्डी टूट गयी। उन्हें अस्पतालमें भर्ती करवा दिया गया। उनकी हालत गम्भीर थी।

इस दुर्घटनाकी सूचना भागलपुर बाईको फोन द्वारा दी गयी। बाईने भाभीजीसे कहा—भाभीजी! मैं श्रीबद्री भाईजीको देखने वाराणसी आना चाहती हूँ।

भाभीजीने कहा—अभी तो वे अस्पतालमें है, उन्हें वहाँ समय लगेगा। यहाँ सासूजी भी बीमार है। परिवारके लोगोंका आना-जाना लगा हुआ है, तुम्हें सुविधा नहीं रहेगी। तुम अभी मत आओ।

कई दिनोंतक बाई बार-बार भाभीजीसे अनुरोध कर रही थीं कि एक बार श्रीबद्री भाईजीसे मिलनेके लिये मुझे वाराणसी आने दें और भाभीजी बार-बार परिस्थितियोंसे लाचार होकर उन्हें भागलपुरमें ही रोक देती थीं। बाईका अनुरोध और भाभीजी द्वारा निषेध लगातार दो हफ्ते तक चलता रहा। दो हफ्तेके बाद श्रीबद्रीविशालजीकी हालत इतनी बिगड़ गयी कि डॉक्टरोंने जवाब दे दिया। इस जवाबके मिलते ही भाभीजीने बाईको फोन किया—बाई! अब तुम आ जाओ। हालत गम्भीर है।

बाईने कहा—भाभीजी! अब मेरे हाथमें कुछ नहीं रहा, अब मैं आकर क्या करूँगीं?

भाभीजीने कहा—तुम्हारा मिलनेका मन था, आकर मिल लो।

बाईने कहा—भाभीजी! होनीको नमस्कार है। आपकी बुद्धि उस समय वैसी ही हो गयी। मैं जब आना चाहती थी, तब आपने रोका, अब आप बुला रही हैं, तो मैं नहीं आना चाहती। मेरे हाथमें अब कुछ नहीं रहा। मैं आकर क्या करूँगी?

सत्रहवें दिन श्रीबद्रीविशालजीकी हालत गम्भीर रूपसे चिन्ताजनक हो गयी और २१ दिसम्बर, १९७६ को रात्रि आठ बजे उन्होंने प्राण त्याग कर दिये। यदि भाभीजीने बाईको बुला लिया होता तो सुहागकी रक्षा हो सकती थीं, परन्तु सचमुच होनीको नमस्कार है।

* * * *

वाराणसीका ही एक और प्रसंग है। १६ फरवरी, १९७७ शिवरात्रिके दिन बाईने भाभीजीसे कहा—भाभीजी! आज आनन्दमयी माँका दर्शन करने चलेंगे।

भाभीजीने डलियामें कुछ फल, फूल और मालाएँ मँगवा करके चलनेकी तैयारी कर ली। भाभीजी, नर्मदा बाई, सावित्री बाई तथा अन्य एक-दो बहिनोंके साथ बाई आनन्दमयी माँके आश्रमपर पहुँच गयीं। पूज्या माँ ऊपर अपने कमरेमें थीं। भक्तगण हाथमें पुष्प आदि लिये हुए एक ओरकी सीढ़ीसे ऊपर चढ़ते, कमरेमें जाकर माँको प्रणाम करते और दूसरी ओर सीढ़ीसे नीचे उतर आते। इन्हींके पीछे-पीछे बाई भी ऊपर जानेके लिये आगे बढ़ने लगीं। सीढ़ीके द्वारपर पहरेके लिये नियुक्त एक भक्त बहिनने इन्हें रोक दिया और भीतरसे सीढ़ीका द्वार बन्द करके वह भी ऊपर चली गयी। सीढ़ीके नीचे द्वारके बाहर केवल ये लोग रह गयीं। द्वार बन्द होते ही भाभीजीने कहा—बाई! अब माँके दर्शन तो होंगे नहीं, चलना चाहिये।

बाईने कहा—भाभीजी! माँ अवश्य दर्शन देंगी। आप थोड़ी देर प्रतीक्षा तो कीजिये!

लगभग आधा घण्टेका समय और बीत गया। भाभीजी बहुत अधिक थक गयीं। उनके लिये और खड़ा रहना असम्भव-सा हो गया। बार-बार कहनेपर भी बाई दर्शन किये बिना वापस जानेके लिये तैयार नहीं हो रही थीं। अब बाई भाभीजीको सहलाने-फुसलानेके लिये भिन्न-भिन्न प्रकारकी बातें करने लगीं और बात-बातमें पुट देती जाती थीं—बस, भाभीजी! अब दर्शन तो माँके दर्शन हो ही जायेंगे। दर्शन करते ही हम लोग चलेंगे।

अचानक सीढ़ीका द्वार खुला। द्वार स्वयं माँने ही खोला था। द्वारके सामने माँ खड़ी थीं। माँने प्रेम भरे स्वरमें कहा—आओ! अन्दर आओ!!

आगे-आगे माँ थीं और पीछे-पीछे थीं भाभीजी और बाई अपने परिकर बहिनोंके साथ। सीढ़ीसे चढ़ते ही एक बरामदा था, वहाँ पहुँचकर माँने स्वयं अपने हाथसे डलियामें-से फूलमाला उठाकर पहन ली। पहनी हुई माला उतार-

उतार करके भाभीजी, बाई तथा अन्य सब बहिनोंको पहना दी और फलोंको लेकर उन्होंने बरामदेमें अपने पास रख लिया। फिर वे भाभीजीसे बोलीं—तुमलोग किसी बातका विचार मत करना, फिर आना।

पूज्या आनन्दमयी माँसे विदा होकर सभी प्रसन्न मनसे नीचे आ गयी।

* * * *

९ सितम्बर, १९७३ की बात है। बाई सुबह नौ बजे श्रीमहिला संघसे बाहर आ गयीं। उन्हें बाहर जाते देख सावित्री बाई भी पीछे-पीछे चल पड़ी और उनसे पूछा—बाई! आप कहाँ जा रही हैं?

बाईने कहा—तुम चुपचाप मेरे साथ-साथ चलती चलो।

सावित्री बाईने एक दो बहिनोंको और साथ लेना चाहा, परन्तु बाईने बिल्कुल मना कर दिया। सावित्री बाईने बहुत तरहसे पूछा कि बाई आप कहाँ जा रही हैं, बता तो दीजिये। भाभीजीको बिना बताये जानेसे यहाँ हलचल मच जायेगी, पर बाईके आगे सावित्री बाईकी एक न चली। बाईने कहा—तुम अपने और मेरे पहननेके एक-एक जोड़ी कपड़े ले लो और चुपचाप मेरे साथ चलती चलो।

चलते-चलते बाई गंगाजीके बरारी घाटपर जाकर बैठ गयीं। वहाँ एक मन्दिर भी है और घाटपर छतरियाँ बनी हैं। उनमेंसे एक छतरीमें जाकर सो गयीं। उस दिन श्रीकृष्णका छठी महोत्सव था। बाईकी मान्यताके अनुसार श्रीमहिला संघमें षष्ठी-पूजन रात्रि दस बजकर दस मिनटपर होता है। सावित्री बाईके अथक प्रयास करनेके पश्चात् भी बाई दिन भर वहीं लेटी रहीं, न तो उठीं और न ही स्नान किया। सायंकाल सात बजे स्वयंमेव उठकर स्नान किया और मंदिरमें पूजा करके बोलीं—सावित्री! मंदिरके पुजारीजीसे कुछ खानेके लिये माँगकर ला।

सावित्री बाईने पुजारीजीसे जाकर खानेके लिये कुछ माँगा। वहाँ उष्णा चावल और रसेदार सब्जी बनी थी। पुजारीजीके घरसे वही दोनों वस्तुएँ पत्तलपर लाकर सावित्री बाईने बाईके समक्ष रख दीं। बाई बड़े प्रेमसे खाने लगीं। उन उष्णा चावलोंको बाई इतने चावसे खा रही थीं, मानों ऐसे स्वादिष्ट चावल बाईने कभी खाये ही न हों। षष्ठीका व्रत होनेपर भी बाईको इस प्रकार खाते देखकर सावित्री बाई मन-ही-मन बहुत ही कुढ़ रही थीं। खाते-खाते बाईने सावित्री बाईके मनोभावको ताड़ लिया और रहस्यमयी हँसी हँसते हुए

बोलीं—सावित्री! तुम भी खा करके देखो, कितने स्वादिष्ट चावल हैं।

बाईकी आज्ञाका पालन करनेके लिये बेमनसे वे खाने तो बैठ गयीं, पर ग्रास गलेसे नीचे नहीं उतर रहा था। एक तो उन्होंने मोटा उष्णा चावल कभी खाया ही नहीं था और दूसरे इस भयके कारण उनका बुरा हाल था कि घर पहुँचते ही भाभीजीको वे क्या जवाब देगीं?

उधर भाभीजी प्रातःकालसे ही परेशान थीं। चारों तरफ खोज करवानेपर भी बाईका कहीं पता नहीं चल रहा था। उनकी चिन्ता बढ़ती जा रही थी। सावित्री बाईके बहुत अनुनय विनय करनेके पश्चात् बाई घर चलनेको तैयार हुई, पर अब रातके दस साढ़े दस बजे वहाँ रिक्शा कहाँ मिलता। उस अँधेरी रातमें दोनों पैदल चल पड़ीं। बहुत दूर जानेपर एक रिक्शा मिल गया। रात्रिके समय उस सुनसान पथमें सावित्री बाई तो भयसे काँप रही थीं, परन्तु बाई सर्वथा भय-शून्य थीं।

श्रीमहिला संघ पहुँचनेसे पूर्व बाईने सावित्री बाईसे कहा—देख सावित्री! घर पहुँचनेपर सब नाराज होगी ही, मैं तो मौन रहूँगी। तुम भी नीची नजर करके चुपचाप सब सुन लेना, किसी बातका भी उत्तर मत देना।

रिक्शा श्रीमहिला संघके सामने आकर रुका। वहाँ सब व्याकुलतासे प्रतीक्षा कर ही रही थीं। रिक्शा रुकते ही नर्मदा बाईने गेट खोलकर देखा और बाईको देखते ही बरस पड़ीं। बाईसे कुछ कहे, तो क्या कहे? क्योंकि वे तो भावमें ही डूबी रहती थीं। सभीने क्रोधमें भरकर सावित्री बाईपर प्रश्नोंकी झड़ी लगा दी—कहाँ गयी थी? क्यों गयी थी? समाचार क्यों नहीं दिया? दिन भर कहाँ थी? इतनी रात क्यों कर दी? बाई तो भावमें रहती हैं, तुमको तो होश-हवास था। हमलोगोंपर क्या बीत रही है यह भी नहीं सोचा, इत्यादि।

एक-एक करके सबने अपने गुस्सेका बोझ हल्का कर लिया। पूर्व योजनाके अनुसार बाईने मौन धारण कर ही रखा था, सावित्री बाई भी चुप थीं। बाईने हॉलमें जाकर श्रीबरसानेवालीको प्रणाम किया और ऊपर अपने कमरेमें आकर लेट गयीं। षष्ठी देवीका पूजन करनेके लिये बाईकी पल-पल प्रतीक्षा हो रही थीं कि वे कब कमरेसे नीचे आवें और मन्दिरमें पूजन-अर्चन हो। रातके बारह बजेतक बाईकी प्रतीक्षा करनेपर भी जब बाई नहीं आयीं, तब भाभीजी पूजा-आरती सम्पन्न करके ऊपर बाईके पास आयीं। भाभीजीने भी बाईसे अनेकों प्रश्न किये, परन्तु बाई मुस्कुराती हुई मौन ही रहीं।

इस सारी घटनाका रहस्योद्घाटन हुआ तीन दिन पश्चात्, जब श्रीमहिला संघमें भागवत पाठ करनेवाली सुमित्रा बाई शर्माने आकर बताया—मैं अपने अस्वस्थ पतिको चिकित्सा हेतु वेलोर ले गयी थी। षष्ठी पूजनके एक दिन पूर्व वाली रात्रिके समय वेलोर अस्पतालमें ही उनकी मृत्यु हो गयी। उनका शव अस्पताल वाले नहीं दे रहे थे। मैं मन-ही-मन बाईको पुकारने लगी—बाई! इनकी मृत्यु हुई, सो तो हुई; परन्तु किसी प्रकार शव मिल जाये तो अन्तिम संस्कार किया जा सके। मेरी प्रार्थना बाईने सुनी और सायंकाल बहुत प्रयासके बाद शव मिल सका। सायंकाल लगभग छः बजे दाह संस्कार हो पाया। वहाँकी कानूनबाजीके कारण शीघ्र शव मिलनेकी कोई सम्भावना दिखलायी नहीं दे रही थी। मैं ऐसा ही मानती हूँ कि यह बाईकी कृपासे ही सम्भव हो सका।

अब वह अज्ञात कारण ज्ञात हो सका कि क्यों तो बाई दिन भर बरारी घाटपर पड़ी रहीं और फिर क्यों सात बजे उठ करके स्नान किया। बाह्य जगतमें वेलोरसे सूचना नहीं आयी तो क्या हुआ? बाईको तो मानवातीत स्तरसे अदृश्य जगतके द्वारा सूचना मिल ही गयी थी और फिर उन्हें जो करना था, वह किया ही।

बहुत-सी बातें जिन्हें संसारके लोग नहीं देखते, नहीं समझते, उन अनेक तथ्योंका बाईको भलीभाँति परिज्ञान मानवातीत परोक्ष स्तर द्वारा हो जाया करता था। उनकी सूक्ष्म दृष्टि सुदूरदर्शिनी थी। वह सूक्ष्म सुदूरदर्शिनी दृष्टि कालके पटलको भेद करके और उस पार जा करके भूत-भविष्यके मर्म भरे तथ्योंको देख-जान-समझ लेती थी।

इस तथ्यको प्रमाणित करते हैं इस अध्यायमें वर्णित कुछ प्रसंग।

* * * * *

भावमय-अर्चन-विधान

श्रीमहिला संघमें मंगला आरती प्रातःकाल चार बजे प्रारम्भ हुआ करती है। ऋतु कोई भी हो, चाहे घोर जाड़ा हो और चाहे भीषण गर्मी हो, समयमें व्यतिक्रम या विलम्ब बाईको सर्वथा अप्रिय था। बाईके निर्देशानुसार श्रीमहिला संघमें मंगला आरतीका एक सुनिश्चित क्रम है। सर्वप्रथम मातृ-मन्दिरमें मंगला आरती होती है। यह आरती ग्यारह धूपबतीसे की जाती है। आरतीके समय कीर्तन होता है—

जय माँ जय माँ जय जय माँ।
जय करूणामयी मेरी माँ॥

आरतीके बाद श्रीमाँको प्रणाम करके जयकार की जाती है—

जगज्जननी माँ की जय।
करूणामयी माँ की जय॥
वात्सल्यमयी माँ की जय।
श्रीकृष्ण प्रेम-प्रदायिनी माँ की जय॥

श्रीमाँकी मंगलाके बाद गोपेश्वर महादेवकी मंगला होती है। मंगला करते हुए कीर्तन किया जाता है। कीर्तनके बोल होते हैं—

जय गोपेश्वर महा-महेश्वर,
जय जय जय जय जय महादेव॥

मंगला आरती करके जयकार की जाती है इसके बाद श्रीयमुनाजी की मंगला आरती करते हुए कीर्तन होता है—

जय जय जय श्री यमुना रानी,
जय जय जय हरि की पटरानी॥
श्री यमुना जी की जय।
श्रीधारा जी की जय।
हरि की पटरानी की जय॥

इसके बाद श्रीगिरिराजजीकी पाँच धूपबत्तीसे आरती करते हुए कीर्तन किया जाता है—

जय जय जय गिरिराज धरण।
जय जय जय श्रीनील वरण॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे।
ब्रजवासी जन को मन मोहे॥
श्रीगिरिराज धरण की जय।
श्रीगिरिराज महाराज की जय॥

इसके बाद श्रीगौरांग महाप्रभुजीकी कुटियाका क्रम आता है—

जय शचीनन्दन कष्ट निकन्दन,
जय जय जय प्रभु गौर हरि॥
जय जय जय विश्वम्भर हरि॥

कीर्तन करते हुए मंगला आरती होती है। प्रणाम करके जयकार होती है—

गौर हरि की जय।
विष्णु प्रिया कान्तकी जय॥

इसके बाद पाँच अगरबत्तीसे प्रिय सखी कुञ्ज, श्रीवृन्दावन धाम एवं श्रीवृन्दावन-अधिष्ठात्री-देवीकी मंगला आरती होती है। इसके बाद दो धूपबत्तीसे श्रीराधाकुण्ड, कृष्णकुण्डकी मंगला करते समय कीर्तन होता रहता है—

राधाकुण्ड, श्यामकुण्ड, गिरि गोवर्धन।
मधुर-मधुर वंशी बाजे, श्रीवृन्दावन॥

स्थलियोंकी मंगलार्चना करनेके बाद मंगला करनेवाली बहिनोंके लिये दो परिक्रम करना आवश्यक है।

बाईके रसमय अर्चन-विधानके अनुसार श्रीबरसानेवालीकी मंगलाके कई सोपान है। मंगलाके समय मन्दिरके द्वारको चट खोलकर पट प्रवेश कर जाना बाईको सदैव अप्रिय रहा है। ऐसा चटपट करनेका अर्थ है, अर्चना करनेवालीको निकुञ्जात्मक भावराज्यके लीला-विहारकी रसमयतासे तनिक भी परिचय नहीं है। लीला राज्यमें निशान्त होते ही द्वारपर सखी समुदाय दर्शनकी

प्रतीक्षा करता रहता है और उनके मनमें श्रीप्रिया-प्रियतमके वन्दन-दर्शनका बड़ा चाव होता है, अतः बाई अपने समीप रहनेवाली बहिनोंसे सदैव यही कहा करती थीं कि मंगला करनेवालीको बहुत सावधानीपूर्वक श्रीप्रिया-प्रियतमको निद्रासे विरत करना चाहिये। मंगला करनेवालीको सर्वप्रथम मन्दिरके बाहर वन्दन-प्रार्थना करनी चाहिये—अब सूर्योदय समीप है, अतः हे श्रीप्रिया-प्रियतम शय्याका त्याग करके सखी समुदायको प्रात:काल दर्शन देनेकी कृपा करें।

बाईकी भावनासे अनुप्राणित बहिन प्रार्थना करके धीरे-धीरे मन्दिरमें प्रवेश करती है। दो धूपबत्तीसे आरती करती है। फिर श्रीप्रिया-प्रियतमको उठाकर बैठाती है। फिर आचमन करा करके भोग धराती है। इसके बाद पाँच बजकर पचपन मिनटपर द्वार खुलता है। फिर पाँच धूपबत्तीसे आरती होती है। फिर पर्दा हटता है और अन्तमें घृतवर्तिकासे आरती होती है। आरतीके बाद मन्दिरके द्वार बन्द हो जाते हैं। अब आधे घण्टेतक द्वार खुलेगा ही नहीं। गर्भ गृहके एकान्तमें श्रीप्रिया-प्रियतम अपने आलस्यका परित्याग करते हैं और एक दूसरेके वस्त्र-केश आदिको सुव्यवस्थित करते हैं। आधे घण्टे बाद द्वार खुलता है और पुजारिन गर्भगृहमें जाकर श्रीप्रिया-प्रियतमको गंगाजलसे भली प्रकार स्नान कराती है, वस्त्र पहनाती है तथा शृंगार करती है। फिर भोग धराकर आरती करती है।

एक बार अर्चना करनेवाली पुरानी बहिनको कोई अन्य कार्य सौंप दिया गया और एक अन्य बहिनको श्रीप्रिया-प्रियतमकी सेवाका अवसर दिया गया। उसमें श्रद्धा तो थी, परन्तु स्वभावमें दीर्घसूत्रता होनेके कारण वह समयपर अर्चन-विधान विधिवत् पूर्ण नहीं कर पाती थी। बाईके निर्देशानुसार सारे कार्य घड़ीकी सुईकी नोकपर चला करते थे। वह नयी पुजारिन अपनी दीर्घसूत्रताके कारण होनेवाले विलम्बको छिपानेके लिये श्रीप्रिया-प्रियतमको नहलाती ही नहीं थी। केवल वस्त्र बदल देती थी। उसके इस प्रमादका परिणाम यह हुआ कि बाईके सर्वांगमें अतीव जलन होने लगी। सच पूछा जाय तो बाईका व्यक्तित्व श्रीप्रिया-प्रियतमके अस्तित्वसे एकाकार हो गया था और उसीके कारण यह जलन हुई थी। कोई भी जलनका हेतु समझ नहीं पा रहा था। भाभीजीने एक-दो दिन बहुत अधिक शीतल उपचार किये, पर कोई लाभ नहीं मिल रहा था। लाभ भला मिलता कैसे? मन्दिरके भीतर अर्चन-विधानकी कुछ न कुछ

अवहेलना हो ही नही रही थी। फिर दैवी प्रेरणासे उसी नयी पुजारिनमें विवेक जागा और स्वयं बाईके पास जाकर उसने अपनी भूल स्वीकार की। फिर तो श्रीप्रिया-प्रियतमको विधिवत् स्नान कराया गया। इधर तो स्नान कराया गया और उधर वह जलन सर्वथा शान्त हो गयी। नव-वृन्दावनमें स्थापित जितने भी देव-विग्रह थे, उनकी अर्चना-आराधनामें प्रमाद न होते हुए भी यदि कोई चूक या भूल होती थी, उसका प्रभाव बाईपर तुरन्त परिलक्षित होने लगता था अथवा उस भूल या चूककी सूचना उन देवी-देवके परिकर बाईको जाकर कमरेमें दे दिया करते थे।

दिनमें ग्यारह बजे राजभोग पधराया जाता था और बारह बजे श्रीप्रिया-प्रियतमको मध्याह्न शयन करा दिया जाता था। राजभोगसे भी सम्बन्धित अनेक प्रसंग ऐसे हैं, जो बाईकी रसमयताके परिचायक हैं। यह कहा ही जा चुका है कि श्रीमहिला संघके सारे कार्य घड़ीके समयके अनुसार चलते हैं। रामप्यारी बाईने राजभोगके समय थाली परोसकर पधरा दी और पट लगा दिया। यह पट आधे घण्टेतक रहा करता है। एक दिन बाई राजभोगके समय मन्दिरके सामने बैठी हुई थीं। आधे घण्टे बाद रामप्यारी बाई पट खोलनेवाली थीं तो बाईने मना कर दिया। रामप्यारी बाईको विस्मय हुआ और उन्होंने पूछा—आपने क्यों मना किया? अब तो भोगके थालको उठानेका समय हो गया है।

बाईने कहा—मन्दिरमें श्रीप्रिया-प्रियतम तो इस समय हैं ही नहीं। वे तो विहारके लिये अन्यत्र गये हुए हैं।

रामप्यारी बाईने कहा—बाई! हमारे पास आपवाली न दृष्टि है और न पहुँच है। हमलोग तो बतलाये गये नियम अथवा निर्देशके अनुसार कार्य करते रहते हैं। यदि थाल नहीं उठाया जायेगा तो फिर मध्याह्न शयन कैसे हो पायेगा?

बाईने कहा—आपका कहना ठीक है, परन्तु इस समय तो बात कुछ अन्य ही है। अब तो यही हो सकता है आप भोगके थालको वहीं पर रहने दें।

बाईके निर्देशानुसार रामप्यारी बाईने वही किया। वह थाल डेढ़ बजेतक वहीं रहा। जब बाईको यह परिज्ञात हो गया कि श्रीप्रिया-प्रियतमने लौटकर नैवेद्य आरोग लिया है, तब बाईने सूचना दी और फिर वह थाल मन्दिरसे उठाया गया। मध्याह्न शयनके उपरान्त चार बजे श्रीप्रिया-प्रियतमका उत्थापन कराया जाता है और फलका भोग लगाया जाता है।

इसी समय श्रीप्रिया-प्रियतमके समक्ष बड़े हॉलमें चार बजेसे लगभग डेढ़ घण्टेतक सत्संगका कार्यक्रम रहता है और सूर्यास्तके समय घृतवर्तिकासे आरतीकी जाती है। इसके बाद आठ बजे श्रीप्रिया-प्रियतमको नैवेद्य निवेदित होता है। फिर शयन आरती कराकर श्रीप्रिया-प्रियतमको पौढ़ा दिया जाता है।

आश्रममें रहनेवाली बहिनोंसे पूजन-अर्चनमें कभी-कभी जो चुक या प्रमाद होता था, उसके पीछे मुख्यत: दो ही कारण हो सकते हैं, जान बूझकर करना अथवा अनजानेमें होना। जान बूझकर कोई चूक तभी होती थी जब त्वरा हो, दीर्घसूत्रता हो, उदासीनता हो या अश्रद्धा हो और अनजाने चूक तो बाई वाली दिव्य दृष्टिके अभावमें जब-तब होती ही रहती थी। जो चूक अनजानमें होती, वह क्षम्य कही जा सकती है, परन्तु जान बूझकर की जानेवाली चूक बाईके अन्तरमें बड़ी चुभती थी। बाईका सतत प्रयास यही रहता था कि सम्पर्कमें आनेवाली प्रत्येक बहिनका जीवन अत्यधिक सुन्दर हो। वह सुन्दर जीवन ऐसा सद्‌गुणी हो कि घरमें पड़ोसमें दैवी भावका साम्राज्य हो जाये। इसी उद्देश्यको लेकर बाई कहा करती थीं—हर भाई-बहिनको अपना जीवन दैवी गुणोंसे भरपूर बनाना चाहिये। भरपूर बनानेमें बड़ी सहायक होती है ठाकुरकी सेवा-चर्या। यद्यपि घरमें विराजित ठाकुर धातुसे निर्मित है अथवा चित्रांकित है, परन्तु वे हमलोगोंकी सेवा स्वीकार करते हैं। वे सजीव है। भगवत्प्राप्त संतोंकी गाथायें कपोल कल्पित नहीं है। उनके साथ ठाकुर वैसे ही बोलते, उठते, बैठते, हँसते, खाते, पीते रहे हैं, जैसे हमलोग आपसमें करते हैं। इस समय हमारे सामने वर्तमानमें प्रत्यक्ष प्रमाण है गोरखपुरके परम श्रीभाईजीका। हमारी भाव-साधना पुष्ट होते ही ठाकुर हमारे साथ भी वैसा ही व्यवहार करने लगेंगे। ठाकुरकी प्रत्यक्ष उपस्थिति वाला भाव जितना ही पुष्ट होगा, उतना ही श्रीप्रिया-प्रियतमकी कृपा हमारे जीवनको रसमय बना देगी। रसमय जीवन तो आनन्दका पुञ्ज रहेगा ही, सम्पर्कमें आनेवालेको भी आनन्दित बना देगा। घरमें विराजित ठाकुरको सचेतन-सप्राण ही मानना चाहिये। यदि विश्वास नहीं होता है, तो कल्पना करिये। कल्पनाके आधारपर सुबहसे शामतक रसमयी अर्चना कीजिये। वह कल्पना ही भविष्यमें एक सहज विश्वास बन जायेगी और जीवन रसागार बन जायेगा।

बाईका जीवन स्वयं इसका उदाहरण था। किसी बहिनसे जो कोई भी चूक या भूल जाने-अनजाने हो जाती थी, उसकी जानकारी बाईको मिल ही जाती थी। उस भूलको कितना ही छिपाया जाय, किसी-न-किसी सूत्रसे वह भेद खुल ही जाता था और वे तत्क्षण सक्रिय हो जाती थीं उस भूलके सुधारके लिये। भूल सुधारकी उस सक्रियतासे यदि एक ओर अर्चन-विधान भली प्रकार सम्पन्न होता था, तो दूसरी ओर बाईकी वाणीपर विश्वास करनेके लिये बाध्य हो जाना पड़ता था कि वस्तुतः आराध्य देव धातुके होकर भी सजीव हैं।

एक दिन श्रीबरसानेवालीके मंदिरमें भोग पथरा दिया गया। बाई ऊपर वाले अपने कमरेमें थीं। भोग पधरानेके लगभग दस मिनट बाद बाई नीचे आयीं और रामप्यारी बाईको बुलाकर पूछने लगीं—आज भोग बनानेमें कोई चूक हुई है क्या?

रामप्यारी बाईने सहज रीतिसे कहा—बाई रसोई घरमें सभी नियमोंका पूर्णतः पालन हुआ है।

इस उत्तरसे बाईको सन्तोष नहीं हुआ। अपनी अधीरता व्यक्त करते हुए बाईने कहा—आज श्रीप्रिया-प्रियतम नैवेद्य नहीं आरोग रहे हैं। यह तो ठीक नहीं है। ऐसा क्यों हुआ?

रामप्यारी बाईने कहा—बाई! मैं तो भोगकी थाली रख देती हूँ। थालीमें तुलसी-पत्र छोड़ देती हूँ। नजर घड़ीकी सुईपर रहती है। आधा घण्टा बाद आचमन करवा करके थाली उठा लेती हूँ। मेरी समझमें तो भोगकी प्रक्रियाको पूर्ण करनेकी यही रीति है।

बाईको ऐसा लगा कि रामप्यारी बाई मेरी बात नहीं समझ पा रही हैं। अपनी बातको अधिक स्पष्ट करनेके लिये बाईने प्रश्न किया—आपने थाली रख तो दी, परन्तु थालके पदार्थ ठाकुर नहीं आरोग रहे हैं। नहीं आरोगनेका कारण क्या है? नैवेद्य निर्माणके समय कोई भूल-चूक हुई है क्या?

बहुत प्रकारसे पूछताछ करनेके बाद भी सही बात सामने नहीं आ पायी। श्रीप्रिया-प्रियतमको तुरन्त भोग लगाना जरूरी था, अतः बाईने नर्मदा बाईको बुलाकर कहा—माँ! आज ठाकुरने भोग स्वीकार नहीं किया है। आप स्नान करके और शुचि वस्त्र धारण करके पूड़ी और एक साग बनाकर भोग लगा दीजिये।

जब नर्मदा बाईने तुरन्त पूड़ी, साग तैयार करके श्रीप्रिया-प्रियतमको भोग लगा दिया, तब बाईको बड़ा सन्तोष मिला। सन्तोष तो मिला, पर बाईका सतत प्रयास यह भी था कि वह क्या गड़बड़ी हुई, जिसके फलस्वरूप श्रीप्रिया-प्रियतमने थालीकी भोज्य वस्तु स्वीकार नहीं की। बात करते-करते रामप्यारी बाईके मुखसे ही यह तथ्य प्रकट हो गया कि आज रसोई घरमें रन्धन करते समय उनका मन बड़ा अशान्त और उद्विग्न था। इस तथ्यकी जानकारी होते ही बाईने कहा—हमारे भावोंका संक्रमण भोज्य पदार्थमें होता है। ऐसा नहीं मानना चाहिये कि जैसा-तैसा पदार्थ थालीमें परोस दिये जानेपर श्रीप्रिया-प्रियतम स्वीकार कर लेंगे। वे तो प्यारके भूखे हैं और अत्यन्त सुकुमार हैं। प्रेमसे दी हुई वस्तु ही वे ग्रहण करते हैं। यदि मन मलिन है तो वह मलिनता संक्रमित होकर भोज्य पदार्थमें आ जाती है और वह दूषित हो जाता है। भाव-दोषसे दूषित अन्न लीला-राज्यपर कुप्रभाव डालता है।

रामप्यारी बाईने अपनी भूल स्वीकार की। रामप्यारी बाईको प्रायः बाईके उपालम्भका शिकार बनना पड़ता था। एक अन्य दिनकी बात है। मन्दिरमें भोग लग चुका था और आचमन करवा दिया गया था। आचमन कराते समय जो ताली बजायी गयी उसकी ध्वनि कानमें पड़ते ही अपने ऊपरवाले कमरेमें बाई अचानक चौंक पड़ी। पासमें बैठी हुई बहिनने चौंकनेका कारण पूछा। उससे बाईने बतलाया—नीचे मंदिरमेंसे भोगकी थाली उठा ली गयी, यह उचित नहीं हुआ। लाड़िली प्रियतम श्रीकृष्णको छोटे-छोटे ग्रास देकर खिला रही थी और ठाकुर लाडिलीको प्रीतिपूर्वक ग्रास दे रहे थे। परस्परमें विनोद करते हुए यह भोजन लीला चल रही थी। उनका भोजन अभी पूर्ण नहीं हुआ था, तभी थालीको उठा लिया गया और श्रीप्रिया-प्रियतम भूखे ही रह गये।

थोड़ी देर बाद पासवाली बहिनने नीचे आकर रामप्यारी बाईसे पूछा—आपको भोगकी थाली उठाये कितनी देर हुई। रामप्यारी बाईने जो उत्तर दिया, उससे उस बहिनके मनको जँच गया कि बाईने ऊपर जो कहा वह ठीक ही कहा।

एक बार श्रीगिरिराजजीको सवा मन बूँदीका भोग लगा। भोग लगनेके बाद बाईने पूछना आरम्भ किया—आज भोगके तौलमें कुछ कमी क्यों की गयी?

यह तो बड़ा विचित्र प्रश्न था कि भोगकी मात्रा कम बतायी जा रही है।

जिन-जिनने भोगके निर्माणमें कार्य किया था, सबने एक स्वरसे कहा—हम सभी पदे-पदे सजग थे और भरपूर प्रयास था कि तनिक भी चूक न हो।

बाईने कहा—आप जो कहती हैं, मैं आपपर विश्वास करती हूँ, परन्तु श्रीगिरिराज महाराज मुझे बतला रहे हैं कि भोगकी मात्रामें न्यूनता है।

इस बातकी छानबीन करनेमें सात-आठ बहिनें लग गयीं। किसने तौला? कहाँ तौला गया? कैसे तौला गया? आदि-आदि बातोंकी पूछताछ होने लगी। अब इस पूछताछमें कई घण्टे लग गये, फिर भी पता नहीं चल रहा था। तब फिर बाईने कहा—जिस तराजूसे तौला गया है, उसे मँगवाइये।

तराजू सामने लाया गया। बाईके कहनेपर खाली तराजूको उठाकर देखा गया। उसमें पासंग था। इसी पासंगके कारण नियतमें सच्चाई होते हुए भी तौलमें न्यूनता आ गयी थी। फिर बाईने सभीसे नम्रतापूर्वक कहा—मेरी बहिनों! विश्वास करो, श्रीगिरिराज महाराज कभी मिथ्या सूचना नहीं देते।

सारी बहिनें नत मस्तक थीं। नित्य प्रति कभी कोई कभी कोई प्रसंग सामने आ ही जाते थे और अर्चन-विधानमें होनेवाली भूलके कारण कभी किसी बहिनको, कभी किसी बहिनको बाईका उलाहना सुनना पड़ता था। बाई नहीं चाहती थीं कि मैं किसीमें दोष दर्शन करूँ, परन्तु इन दोषोंकी ओर संकेत न करनेसे उन बहिनोंके द्वारा सेवापराध होते ही रहेंगे और उन बहिनोंमें जीवनका वह आदर्श प्रतिष्ठित हो ही नहीं पायेगा। सेवा-विधान विधिवत्-सम्पन्न हो और सभी बहिनोंका जीवन सद्‌गुणोंसे भरपूर हो, इसलिये इन भूल-चूककी ओर संकेत करना पड़ता था।

* * * * *

मीराकी रुग्णता

मीरा जबसे बाईके पास आकर रहने लगी, तबसे प्राय: बीमार रहा करती थी। उदरशूल और ज्वर बना रहता था। बाईने भाभीजीको बतलाया—दो जन्म पहले मीरा राजपुत्र थी। उस समय यह राजपुत्र अभेध्य पशुओंको शिकार करता था। उस जन्मके ऐसे अनेक रजोगुणी-तमोगुणी कृत्योंके कारण इस समय इसे यह कष्ट भोगना पड़ रहा है।

प्राय: रुग्ण रहनेवाली मीराके प्रति बाईकी बड़ी ममता थी और उन्होंने एक दिन बतलाया—एक काला भुजंग व्यक्ति इसके आसपास चक्कर लगाता हुआ मुझे दिखलायी देता है।

बाईने उसके बिस्तरके पास ही दो दिन तक अखण्ड रामरक्षास्तोत्रका पाठ करवाया। फिर कुछ दिन बीत गये, अचानक बाईको ऐसा आभास मिला कि आजकी रात अति रुग्णा मीराके लिये कालरात्रि हो सकती है। बाई मीराके कमरेके बाहर चटाई बिछाकर बैठ गयीं और बोलीं—आज रातभर मैं यहाँ पहरा दूँगी।

रात्रिके दो-तीन बजे बाईको तन्द्रा आ गयी। लेटते ही आँख लग गयी। पाँच मिनट बाद नींद खुली। बाई हड़बड़ाकर उठ बैठीं और पास बैठी बहिनसे बोलीं—लगता है छोरी गयी! विघ्नके रूपमें ही मुझे नींद आ गयी।

बाई घबड़ायी हुई कमरेके अन्दर गयीं। मीरा सो रही थी। तीव्र उदर-शूलके कारण उसे मर्फियाकी सुई देकर सुला दिया गया था। बाईने हिलाया-डुलाया, पर वह तो मार्फियाकी सुईके प्रभावमें अचेत थी। बाईने मान लिया कि यह मीरा तो चली गयी। बाई बोलीं—मैं भला लेटी क्यों? लेटते ही मुझे नींद आ गयी। नींद आते ही यमदूतको अन्दर प्रवेश करनेका अवसर मिल गया। मैं कितनी लापरवाह हूँ।

साथवाली बहिनने कहा—बाई! इसकी श्वास चल रही है। यह तो दवाके नशेमें मत्त होकर सो रही है। मरी नहीं है।

श्वास चलनेकी बात सुनकर बाईकी भावनाओंको आराम मिला। वे आश्वस्त होकर कमरेमें चली गयी। मीराकी बीमारी बढती ही जा रही थी।

पेटमें होनेवाले दर्दका कारण समझमें नही आ रहा था। चिकित्सा और देवानुष्ठान दोनों ही हो रहे थे कि मीरा शीघ्र स्वास्थ्य लाभ कर ले। बाई स्वयं रोज थोड़ी देरके लिये मीराके पास अवश्य बैठतीं। उस समय बाईकी आँखोंको और चेष्टाओंको देखकर यही लगता कि इतनी ममता शायद जन्म देनेवाली माँके हृदयमें भी नहीं हो सकती। किसी प्रकार भी जब रोग ठीक होनेके ढंगपर नहीं आ रहा था, तब बाईने गोरखपुरके पूज्य बाबाकी शरण ली। उन्होंने मीराको बाबाके पास गोरखपुर भेज दिया। बाबाके पास भेजकर बाई पूर्णतः निश्चिन्त हो गयीं। मीराके लिये बाबाने एक अलग कोठी किराये पर ली और वहाँ मीरा परिवारके कुछ सदस्योंके साथ रहने लगी। मीरा इतनी रुग्ण थी कि कोठीसे बाबाके पास कुर्सीपर बैठकर आया करती थी। तीन मासतक बाबाकी छायामें रहते हुए उसकी चिकित्सा चलती रही। क्रमशः वह पूर्ण स्वस्थ हो गयी और फिर बाबाने उसे वापस भागलपुर भेज दिया।

गोरखपुरसे आनेके बाद दो वर्षतक मीराका स्वास्थ्य ठीक रहा। फिर मीरा बीमार रहने लगी। एक दिनकी घटना है। मीरा हवेलीमें थी और उसकी सँभालका दायित्व सावित्री बाईको सौंपा गया था। बाई श्रीमहिला संघमें अपने कमरेमें थी। अचानक बाईको दो शब्दोंका एक वाक्य आकाशके शून्य अवकाशमें दिखलायी पड़ा 'मीरा-खतरा'। इसको पढ़ते ही बाई बहुत चिन्तित हो गयीं। उसी समय सावित्री बाई हवेलीसे श्रीमहिला संघ आयीं और आकर बाईसे मिलीं। बाईने पूछा—मीरा कैसी है?

सावित्री बाईने कहा—ठीक है।

बाईने तीन बार पूछा और सावित्री बाईने तीन बार वैसे ही कहा। तब पुनः बाईने प्रश्न पूछा—आज यह वाक्य मुझको बार-बार पढ़नेके लिये मिल रहा है, इसका क्या अर्थ लगाया जाय?

सावित्री बाईने कहा—यह तो किसी दुर्घटनाकी सूचना है।

बाईकी मुख-मुद्रासे ऐसा लग रहा था कि वे किसी भावी अनर्थकी सम्भावनासे आशंकित और आतंकित हैं। सावित्री बाई लौटकर हवेलीमें मीराके पास आ गयीं और रामरक्षास्तोत्रका पाठ करने लगीं। जो वाक्य बड़े-बड़े अक्षरोंमें बाईके सामने आया था, उसका रहस्य कुछ देर बाद ही खुल गया। भागलपुरकी एक सत्संगी बहिन गीता बाईकी सुपुत्रीका नाम मीरा है। उसके

गिर जानेसे शरीरकी हड्डी कई जगहसे टूट गयी। इस समाचारसे अब बाईको पता चला कि जो खतरा गीता बाईकी सुपुत्रीके लिये था, उसीकी सूचना दी गयी थी। इस सूचनासे उस दैवी संकेतका सही अर्थ लग पाया।

फिर सन् १९८० में मीरा बहुत बीमार पड़ गयी। कलकत्ता चिकित्साके लिये भेजा गया। डॉक्टरोंने कहा—पेटमें गाँठ है। यदि वह कैंसरकी हुई, तब तो बचना मुश्किल है। यदि वह अन्य कुछ हुई तो चिन्ता की बात नहीं है, परन्तु इसका निर्णय ऑपरेशनके बाद ही हो सकता है।

ऑपरेशन करवाना तो निश्चित हो गया, परन्तु मीरा हठ कर बैठी कि बाईके समीप रहनेपर ही मैं ऑपरेशन करवाऊँगी। उन दिनों बाई वृन्दावनमें वास कर रही थीं। यह सूचना फोन द्वारा बाईको दी गयी। बाईने भी कलकत्ते आनेकी स्वीकृति दे दी। इस स्वीकृति देनेके दो दिन बाद ही रात्रिमें श्रीबिहारीजीने बाईसे कहा—मीराको मैं सँभाल लूँगा। यदि तुम जाओगी तो बात विपरीत हो जायेगी। तुम चिन्ता मत करो। वह ठीक हो जायेगी।

रात्रिमें इस समाचारके मिलते ही बाईने निश्चय कर लिया कि मुझे कलकत्ते नहीं जाना है, परन्तु मीराने भी बाल-हठ ठान रखा था। कितना ही समझाया गया, परन्तु जिद्दी मीरा अपना बाल-हठ छोड़नेको तैयार नहीं थी। तब बाईने फोनसे मीराको कहा—देखो! मैं तुम्हारे साथ हूँ। वृन्दावनमें मैं शरीरसे हूँ, परन्तु मैं निरन्तर तुम्हारे साथ हूँ और रहूँगी। ठाकुरने कलकत्ता जानेके लिये मना कर दिया है। ठाकुरकी आज्ञा बिना मेरा जाना सम्भव नहीं है। तुम निर्भय हो जाओ। निश्चिन्त होकर ऑपरेशन करवा लो।

अब मीरा ना नहीं कर सकी। ऑपरेशनकी तिथि निश्चित हो गयी और ऑपरेशनके एक घण्टे बाद ही डॉक्टरोंने बतला दिया—मीराको कोई भी खतरनाक बीमारी नहीं है।

ऑपरेशनका कार्य बहुत जल्दी सम्पन्न हो गया। मीरा सत्रह दिन अस्पतालमें रही। इसके बाद उसे घरपर लाया गया। इधर मीरा कलकत्तेसे भागलपुर आयी और उधर बाई वृन्दावनसे भागलपुर आ गयीं। मीराको स्वस्थ देखकर बाईके मनमें बड़ा आह्लाद था।

* * * * *

रसमयी विलक्षणता

सन् १९८१ की बात है। बाई वृन्दावन गयी हुई थी। वहाँ बाई श्रीसदन नामक मकानमें ठहरी हुई थीं, जो श्रीबिहारीजीके मंदिरके लगभग पास है। रात्रिके समय बाई श्रीसदनसे बिहारीजीका दर्शन करनेके लिये गयीं। साथमें भाभीजी थीं। रात्रिके लगभग नौ बजे थे। श्रीबिहारीजीके दिव्य सौन्दर्यका दर्शन करते-करते बाई अत्यधिक अन्तर्मुखी हो गयीं। बाह्य जगतका भान रहा ही नहीं। अपने भावमें डूबी-डूबी बाई भाभीजीसे कहने लगीं—मैं श्रीयमुनाजी जाऊँगीं।

रात्रिके नौ बजे यमुना किनारे ले जाना सम्भव था ही नहीं। यमुना तटके घोर अन्धकार और भयानक सन्नाटेका अनुमान ही सबके मनको आतंकित कर देता है। बाह्य ज्ञान भूली हुई बाईको भावराज्यकी कलित सलिला यमुनाका रमणीय तट बार-बार मन-ही-मन बुलावा दे रहा था और उसी भाव धारामें निमग्न बाईका बार-बार आग्रह था यमुना तटपर चलनेके लिये। भले बाई इस जगतको सर्वथा भूल चुकी थीं, परन्तु भाभीजी उन्हें कैसे जाने दें? बाईको बिहारीजीके मंदिरसे श्रीसदन लाना बड़ा कठिन हो रहा था। भाभीजीने एक बहाना बनाया और कहा—बाई! मैं तो पैदल चलनेमें असमर्थ हूँ, अत: रिक्शेपर बैठकर चलेंगे। रिक्शे पर तुम बैठो और फिर हम दोनों यमुनाजी चलते हैं।

यह तो बाईके लिये अनुकूल अनुरोध था। बाई और भाभीजी रिक्शेपर बैठ गयीं। भाभीजीके संकेतानुसार रिक्शा श्रीसदनके सामने आकर रुक गया। भाभीजी उतर गयीं, पर बाई उतरनेका नाम नहीं ले रही थीं। वे बार-बार यही कह रही थी—मैं यमुना जाऊँगी।

भाभीजीने बहुत समझाते हुए कहा—एक बार ऊपर चल, फिर अपने लोग यमुनाजी चलेंगे।

बाई रिक्शे परसे किसी प्रकार भी उतरनेके लिये तैयार नहीं थीं। भाभीजीने ऊपरसे एक बहिनको आवाज देकर बुला लिया। उसने नीचे आकर सारी परिस्थिति समझ ली और बोली—बाई! चलिये यमुनाजी चलते हैं।

बाईने प्रश्नवाचक दृष्टिसे उसकी ओर देखा। उसने बाईसे तुरन्त कहा—बाई चलिये! यमुनाजी आपको बुला रही है। आप मेरे साथ चलिये।

बाई रिक्शेसे उतर पड़ीं और उस बहिनके साथ चलने लगीं। वह बहिन

बाईको लेकर ऊपर आ गयी। ऊपर पहुँच कर बाईने पूछा—यमुनाजी कहाँ है?

बाईके मंदिरमें एक-दो कलशोंमें यमुना जल सदा रहता ही है। उस बहिनने यमुना जलका कलश मँगवाया और श्रीयमुनाजीकी जय, श्रीधाराजीकी जय, श्रीकालिन्दीजीकी जय, श्रीकृष्ण प्रियाजीकी जय' बोलकर बाईपर कलशका यमुना-जल उड़ेल दिया। बाई पहले स्नान कर चुकी थीं, किन्तु यमुनाजीके दर्शनका आग्रह देखकर उस बहिनने कलशके यमुना जलसे स्नान करवा दिया। यमुना जलका स्पर्श होते ही बाईको ऐसा अनुभव हुआ मानो वे यमुनाजीका आलिंगन कर रही हैं। अब उनका यमुना तट जानेका आग्रह विलुप्त हो गया। स्नान करके और नये वस्त्र पहनकर बाई कमरेमें चली गयीं। शयनतक उनकी स्थिति सामान्य नहीं थीं। अनुमान यही होता है कि श्रीयमुना बहिनके मिलनकी स्मृति उन्हें प्राकृत धरातलपर आने नहीं दे रही थी। रात बीती, अगले दिन बाई अवसर देखकर नर्मदा बाईके साथ यमुना तटपर गयी हीं। अब ये यदा-कदा यमुना तटपर जाती ही रहती थीं।

एक दिन बाई श्रीयमुनाजीके किनारे बैठी हुई थीं। उन्होंने श्रीबिहारीजीके पण्डा श्रीहरिमोहन शर्माको बुलाया। श्रीशर्माजीकी बाईके प्रति बड़ी श्रद्धा है। उनसे बाईने बहुत देरतक बात की। बाईसे मिलकर वे गोवर्धन गये और वहाँसे भागलपुरके लिये प्रस्थान कर दिया। इधर बाईने दूसरे दिन भागलपुर फोन द्वारा यह समाचार दिया—आपलोगोंके पास ब्रजसे कोई आ रहे हैं, आप उनकी पूजाकी तैयार रखियेगा।

यब बात दोपहरके लगभग एक बजे फोनसे हुई थी। बात करके आश्रमवासिनी बहिनें आपसमें विचार करने लगीं—कौन आ रहे हैं? उनकी पूजाकी कैसी तैयारी की जाय? किस प्रकार उनकी पूजा करनी होगी? इन सब बातोंके बारेमें क्या निर्णय लिया जाय? बाईने इस बारेमें तो कुछ संकेत दिया ही नहीं।

इस प्रकारके पारस्परिक विचारमें समय निकाल रहा था कि वे पण्डाजी श्रीमहिला संघ पहुँचे। उन्होंने श्रीगिरिराजजीके एक बड़े, एक छोटे इस प्रकार दो शिलाखण्ड देते हुए कहा—श्रीगिरिराज महाराज गोवर्धनसे यहाँ पधारे हैं। आप इन्हें सभक्ति समुचित स्थानपर विराजित कीजिये। फिर स्नान करवाकर दूधसे अभिषेक कीजिये। घाघरेकी तरह चुनन लगाकर धोती पहनाइये, चादर ओढ़ाइये, यज्ञोपवीत धारण करवाइये और भोग लगाइये।

तत्काल तदनुसार किया गया। पूर्व प्रतिष्ठित श्रीगिरिराजजीके पास ही सद्यागत श्रीगिरिराज महाराजको पधराया गया। दूध लानेके लिये व्यक्ति चला गया। पूजाकी तैयारी उल्लसित मनसे होने लगी। कीर्तन-मण्डलीकी सभी बहिनें इकट्ठी हो गयीं। वाद्य-वादनके साथ कीर्तन होने लगा। अर्चनोपरान्त आरती करके नैवेद्य निवेदित किया गया। अत्यधिक उल्लासमय वातावरणमें श्रीगिरिराज महाराजका पूजन सम्पन्न हुआ। रात्रिके समय बाईका फोन आया और उन्होंने पूजनका सारा विवरण पूछा। विवरणसे सन्तुष्ट और प्रसन्न बाईने फोनपर ही निर्देश दिया—इन श्रीगिरिराज महाराजकी पूजा प्रतिदिन दोनों समय करनी है। इन्हें धोती गमछा नित्य पहनाना चाहिये। बृजमंडलके इष्टदेव ही इस रूपमें आपके यहाँ पधारे हैं। नव-वृन्दावनकी सार सँभालके लिये ही आपका शुभागमन हुआ है। इनकी कृपासे सभी अमंगलोंका निवारण होगा। आपका अनुग्रह सर्वत्र मंगलका विस्तार करेगा।

यहींपर एक और भी तथ्य उल्लेखनीय है। इन सद्यागत श्रीगिरिराज महाराजके अलावा भविष्यमें एक डेढ़ साल बाद बाईने पुनः श्रीगिरिराज महाराजके वैसे ही एक बड़े और एक छोटे दो शिलाखण्ड भिजवाये और इन्हें भी उनके साथ प्रतिष्ठित कर दिया गया। सचमुच इनकी प्रतिष्ठा होते ही श्रीमहिला संघमें मंगलमयताका प्रसार हो गया।

यहींपर एक तथ्य और भी उल्लेखनीय है। इस तथ्यका उल्लेख करते हुए आश्चर्य भी हो रहा है कि बाईको नव-वृन्दावनकी छोटी-छोटी बातें न जाने कैसे ज्ञात हो जाती थीं। थोड़े दिन बाद ही फोनपर बात करते हुए बाईने कहा—आपलोगोंने दीपावलीकी सफाई करवा ली, परन्तु तीन तल्लेकी छतकी सफाई अभीतक नहीं हो पायी है। छतपर कूड़ेका ढेर लगा हुआ है। श्रीमहिला संघके प्रवेश द्वारपर मकड़ीके जाले लगे हुए हैं। प्रिय सखी कुञ्जके पासका एक गमला सूखा हुआ है। वहाँ श्रीप्रिया-प्रियतम विहार करते हैं। विहारस्थलीपर अस्वच्छता शोभा नहीं देती।

आश्रमवासी बहिनें फिर आपसमें बात करने लगीं। बात करते-करते एक बहिनने कहा—हममेंसे किसीने भी यह बात बाईको न पत्रमें लिखी और न फोनपर बतलायी। ये छोटी-छोटी बातें कहने-बतलानेकी हैं भी नहीं, फिर भी न जाने कैसे बाईको अनेक भूल-चूककी जानकारी हो जाती है।

तत्काल दूसरी बहिनने कहा—बाईका दैवी जगत और भावराज्य बड़ा

अनोखा और बहुत विस्तृत है। उनके कलेवरमें न जाने किन-किन सखियों, सहचरियों, मञ्जरियोंका भावावेश होता रहता है और न जाने कितनी-कितनी अनुचरियाँ उनसे सम्भाषण करनेके लिये उत्सुक रहा करती हैं। उनमेंसे जिस किसीको यह अस्वच्छता दिखलायी दी होगी, उसने ही अवश्यमेव बाईको जानकारी दी होगी। भले हमारी भूल-चूक बाईके ध्यानमें आयी, पर इसीके साथ यह भी तो एक सत्य है कि बाईको हमारा और हमारे इस श्रीमहिला संघका कितना ध्यान बना रहता है। वृन्दावनमें रहकर भी वे सदैव सँभाल करती रहती है और उत्कर्षके लिये प्रोत्साहन देती रहती है।

वृन्दावनमें बनखण्डी महादेवके पास श्रीगौरांग महाप्रभुका एक छोटा-सा मन्दिर है, जो पिसी माँकी साधना स्थली रही है। अन्योंके लिये गौरांग महाप्रभु चाहे जो रहे हों, परन्तु पिसी माँके लिये वे एक लाल्य शिशु थे और वात्सल्य भावकी साक्षात् प्रतिमा पिसी माँ उनका अत्यधिक लाड़-चाव किया करती थीं। एक दिन बाई उसी मन्दिरमें श्रीगौरांग महाप्रभुका दर्शन करनेके लिये पहुँच गयीं। पहुँचते ही वहाँ तो स्थिति दूसरी हो गयी। प्रणाम करते ही वे भावाविष्ट होकर मूर्तिवत बैठ गयीं। बाईको देहकी सुधबुध नहीं रही। मंदिरकी बंगाली माताओंके लिये यह एक नयी बात थी। उन्होंने बाह्यज्ञान शून्य बाईको वहींपर धीरेसे लिटा दिया। थोड़ी देर बाद लेटे-लेटे ही बाई बंगला भाषामें बोलने लगीं। इस बोलन तथा अन्य चेष्टाओंको देखकर बाईके साथ जानेवाली बहिनने यह अनुमान लगा लिया कि श्रीचैतन्य महाप्रभुका भावावेश हो आया है। वह बहिन भागी-भागी भाभीजीको श्रीसदनसे बुलाने चली गयी। इधर उन बंगाली माताओंने यह सोचा कि इस श्रद्धालु बहिन अर्थात् बाईके दिमागमें गर्मी चढ़ गयी है, अतः माथेपर जल डालना चाहिये। एक बहिन श्रीगौरांग मन्दिरसे चरणामृत लायी और बोली—इसे पिला दो, पिलाते ही चैतन्य लाभ होगा।

चैतन्य लाभका आश्वासन देनेवाली बहिन समझ ही नहीं पायी कि वह जिनका चरणामृत दे रही है, वे स्वयं ही इस समय बाईके गौर कलेवरमें आविष्ट हैं। चैतन्य महाप्रभुकी भावाविष्ट स्थितिमें बाई पिसी माँके लाड़-प्यारका वर्णन सहज रीतिसे बंगला भाषामें कर रही थी। इसी समय भाभीजी मन्दिरमें आ गयीं। भाभीजीको देखकर बाई इतनी आह्लादित हो गयीं कि न जाने कितने दिनोंके बिछुड़े हुए आत्मीय जनसे मिलन हो रहा हो। इधर

भाभीजी चैतन्य भावाविष्ट बाईसे बात कर रही थीं और उधर मध्याह्न होते ही मन्दिरमें राजभोग पधराया और घण्टी बजायी गयी। घण्टी बजते ही बाई प्राकृत धरातलपर आ गयीं और अब भाभीजीसे चैतन्य भावाविष्ट बाई नहीं, भाभीजीकी चिर संगिनी बाई ही बात कर रही थीं। उपस्थित बंगाली माताओंको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि एक क्षणमें वह भावावेश कहाँ तिरोहित हो गया। उनके आश्चर्यकी पहेलीको सुलझाना भी नहीं था, परन्तु उस पहेलीकी कुञ्जी भाभीजी जानती थीं कि मन्दिरमें घण्टी बजते ही बाईके कलेवरमें व्यक्त श्रीचैतन्य महाप्रभु तत्काल अन्तर्हित हो गये और मन्दिरके गर्भगृहमें विराजित होकर राजभोग आरोगने लगे। सामान्य स्थिति होते ही भाभीजी बाईको साथ लेकर श्रीसदन आ गयीं। यहाँपर यह बतलाना आवश्यक है कि इसके बाद जब भी तीन-चार बार बाई उस श्रीगौरांग मन्दिरमें गयीं, हर बार वे श्रीचैतन्यमहाप्रभुके भावसे आविष्ट हो जाती थीं और उनकी वह दिव्य भावमयी स्थिति सभीको विस्मय और आह्लाद प्रदान करती थी।

बाई जब-जब वृन्दवन रहती थीं, तब-तब बरसाने जाया करती थीं और अनेक बार ऐसा भी हुआ है कि बरसानेकी यात्रा तीन-चार बार हो जाया करती थी। वृन्दावनसे बरसाना जाना उन्हें अत्यधिक आनन्दप्रद हुआ करता था। एक बार भाभीजी, नर्मदा बाई और दो तीन बहिनोंको साथ लेकर बाई श्रीधाम बरसाना गयीं। बरसाने जानेपर बाईका रंग-ढंग सर्वथा बदल जाया करता था। नव विवाहिता किशोरीका जीवन ससुरालमें गम्भीरता और मर्यादासे अत्यधिक अवगुण्ठित रहता है, किन्तु उसीका आचार-व्यवहार अपने पीहरमें सहज रूपसे उन्मुक्त और स्वच्छन्द रहता है। भावोंका और चेष्टाओंका ऐसा ही चढ़ाव-उतार बरसानेकी सीमामें प्रवेश करते ही बाईके व्यवहारमें परिलक्षित होने लगता था। बाई बरसाना आकर उन्मुक्त रूपसे हास-विलास करती रहती थीं, मानों पीहरमें आ गयी हों।

बरसाना पहुँच कर बाई, भाभीजीको साथ लेकर ऊपर श्रीजीका दर्शन करनेके लिये गयीं। श्रीबरसाने ग्राममें लाडिलीजीका मन्दिर एक छोटी-सी पहाड़ीके ऊपर स्थित है और लगभग डेढ़ सौ ऊँची-ऊँची सीढ़ियोंको चढ़ करके ही दर्शनार्थी वहाँ पहुँच पाते हैं ऊँची सीढ़ियोंपर चढ़ना स्वस्थ व्यक्तिको भी थका देता है और वृद्ध या दुर्बल या रुग्णको तो पालकीमें बैठकर जाना

पड़ता है। बाई श्रृंगार आरतीके समय मन्दिरमें आयी थीं। श्रृंगार आरतीका दर्शन करके बाई कुछ देरके लिये श्रीजीके प्रांगणमें बैठ गयीं और ब्रजवासी महिलाओंसे पद सुनती रहीं। क्या ही संयोगकी बात है कि ये सभी महिलाएँ प्राय: बाईकी समवयस्का हुआ करती थीं। पद सुनानेवाली इन महिलाओंसे बाईको ठिठोली करनेमें न हिचक थी, और न संकोच था। पद सुनते-सुनते और हँसी-विनोद करते-करते मध्याह्न हो आया। तभी मन्दिरमें राजभोग आ गया। राजभोगके बाद आरती करके पट लगा दिया गया। इसके बाद मन्दिरमें ही बाई, भाभीजी आदि सभीने प्रसाद पाया, फिर मन्दिरको प्रणाम करके पहाड़ीसे उतर कर सभी विश्राम करनेके लिये नीचे आ गयीं।

सायंकाल पुन: ऊपर मन्दिर जानेके लिये तैयार होकर बाई भाभीजीसे बोलीं—भाभीजी! चलिये, लाड़िलीके पास चलते हैं।

भाभीजीने कहा—बाई! मैं तो दोबारा चढ़कर ऊपर मन्दिरमें नहीं जा सकूँगी। जा, तू दर्शन कर आ। मैं तो पहलेसे ही बहुत थकी हुई हूँ।

बाईने जिद्द करके भाभीजीको भी साथ ले लिया और ऊपर मन्दिरमें आ गयी। वे रात्रि शयनतक मन्दिरमें ही बैठी रहीं। वहाँ ब्रजवासिनी महिलाएँ आतीं और बाई उनसे इस प्रकार घुल-मिलकरके बातें करतीं मानों वे अपनी-से-अपनी हों। सचमुच यही लगता था कि वे सब बाईकी अत्यधिक आत्मीय निजजन हैं। देखने-सुननेवाले यही समझते कि बाई अपने पारिवारिक जनोंके मध्य बैठकर खुले मनसे बातें कर रही हैं। मन्दिरमें श्रीजीके शयन हो जानेके बाद बाई, भाभीजी आदि सभी नीचे आ गयीं। रात्रिमें सोते समय बाईने भाभीजीसे पूछा—आपके पाँवमें दर्द हो रहा है तो तेल लगवा लीजिये।

भाभीजीने कहा—बाई! जो-जो बहिनें अपने साथ आयी हैं, वे सभी तो थक गयी हैं। मेरे पाँवमें तेल कौन लगायेगा?

बाई सोचने लगीं कि भाभीजीके पाँवमें तेल मालिश हो जाना जरूरी है। मालिशसे पाँवका दर्द ठीक हो जायेगा। तभी मैं कल भाभीजीके साथ घूम सकूँगी। यदि पाँवमें पीड़ा रही तो भाभीजीका घूमना हो ही नहीं पायेगा। बाईने चटसे हँसते हुए कहा—भाभीजी! आपके पाँवमें तेल तो मैं ही लगा दूँगी।

इस प्यार भरे प्रस्तावने भाभीजीके हृदयके तारोंको छेड़ दिया। देह दर्दसे पस्त थी, परन्तु भाभीजीका रोम-रोम स्नेहसे सिहर उठा। भाभीजीको यह स्वीकार था ही नहीं कि बाईसे मैं अपनी शारीरिक सेवा करवाऊँ।

श्रीभाईजीने जो दिव्य धरोहर बाईके रूपमें सौंपी थी, उसकी वे मन-ही-मन वन्दना किया करती थीं। प्रसंगको टालनेके लिये पुलकित-मुकुलित अधरोंसे विकलित-विगलित स्वरोंमें भाभीजीने धीरेसे कहा—बाई! तेरे प्यारसे दर्द अपने आप ठीक हो जायेगा।

बाईके लिये भाभीजीकी पीड़ा अनदेखी करना असह्य हो उठा। उन्होंने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि मालिशकी कोई व्यवस्था कर देनी चाहिये। व्यवस्थाका ढंग क्या होगा, बाईने सोच तो लिया, परन्तु उस व्यवस्थाकी रीतिका रञ्चमात्र भी आहट न देते हुए बाईने भाभीजीसे कहा—भाभीजी! मैं अभी तेल लगानेवालीको बुलावा देती हूँ। उससे आप अच्छी तरह तेल लगवा लीजियेगा।

रातके लगभग साढ़े दस बजे चुके थे। बरसाना स्वयंमें एक छोटा-सा ग्राम है। सभी इस समय अपने-अपने घरोंमें खा-पीकरके आराम कर रहे हैं। जगह-जगह खोजनेपर कोई भी तेल लगानेके लिये मिल ही नहीं सकती। निराशा भरे स्वरमें भाभीजीने बाईसे कहा—रात्रिके साढ़े दस बज चुके हैं। इस समय तेल लगानेवाली कहाँ मिलेगी?

भाभीजीके कथनके उत्तरमें बाई रहस्यमयी हँसी हँसकर चुप हो गयीं और नहाने-धोनेके लिये चली गयीं। मन्दिरमें दो बार जानेके लिये जो दो बार चढ़ना और दो बार उतरना हुआ, उससे अत्यधिक थकी भाभीजी मन मारकर बिस्तरपर चुपचाप लेट गयीं। आधा घण्टा ही बीता होगा कि दो किशोरियाँ आयीं। उनके हाथमें तेलकी शीशी थी। नख-शिख ब्रजवासी वेश था। भाभीजीने इतना ही देखा कि उन गोरी-गोरी किशोरियोंने घाघरा पहन रखा है और सिरपर चुनरी डाल रखी है। वे दोनों किशोरियाँ उस कमरेके द्वारपर आयीं, जहाँ भाभीजी लेटी हुई थीं। कमरेके द्वारपर आकर दोनोंमेंसे एक किशोरीने मधुर स्वरमें पूछा—कोई तेल लगवायेगी क्या?

उस किशोरीके प्रश्नको सुनकर भाभीजीके मनमें चिन्तनकी दो धारायें चल पड़ीं; पहली बाईके लिये और दूसरी इन किशोरियोंके लिये। किशोरीके मुखसे तेल लगानेकी बात सुनकर भाभीजी बड़े रीझे-रीझे मनसे बाईको याद करती हुई मन-ही-मन कहने लगीं कि बाईकी प्रेम-परवशतापर रोम-रोम बलिहार है। वह अपने मनकी बातको पूरी करनेक लिये आकाशके तारे भी जमीनपर ला सकती है। उसे रातको भी चैन नहीं मिला और न जाने कहाँसे तेल लगानेवालीको बुला लायी। बाईकी भेजी हुई ये दोनों किशोरियाँ ही आकर

मुझसे तेल लगानेके लिये पूछ रही हैं। दूसरी धारा इन किशोरियोंके प्रति थी। वे साधारण स्तरकी बालिकाएँ क्या इतना मीठा बोल सकती है, और क्या इतना शील उनके पूछनेमें हो सकता है? उस प्रश्नकी बोलन ऐसी थी जिसके शब्द-शब्दमें शील और मिठास भरी हुई थी। उस बोलनकी मधुरतामें मनसे डूबी हुई और शरीरमें थकी हुई भाभीजीने कहा—भीतर आ जाओ।

वे दोनों किशोरियाँ छम-छम करती अन्दर आ गयीं। एक तो अन्दर आते ही बैठ गयी और दूसरी तेल लगाने लगी। तेल लगवाते समय भाभीजीने उससे पूछा—तुम्हारा घर कहाँ है?

किशोरी—मैं यहीं पासमें रहती हूँ।

भाभीजी—तुम्हारे घरमें कौन-कौन हैं?

किशोरी—मैया, बाबा, बहिन, भैया सभी हैं।

भाभीजी—तुम्हारी शादी हो गयी क्या?

इस प्रश्नसे वह किशोरी शरमा गयी। लज्जाके मारे अधर खुल नहीं पाये। यह प्रश्न सुनते ही उसकी सलज्ज आँखें कुछ झुक सी गयीं और वह चुपचाप तेल मालिश करती रही। उसके मौनने स्वतः ही प्रश्नका उत्तर दे दिया।

तेल मालिश होनेसे दस मिनटके अन्दर ही भाभीजीको नींद आ गयीं। वे किशोरियाँ कब गयीं, भाभीजी जान नहीं सकीं। संयोगसे तेल लगावाते समय भाभीजीके कमरेमें अन्य कोई भी बहिन नहीं थी, इसलिये उन तेल लगानेवाली किशोरियोंको किसीने भी देखा नहीं। प्रातःकाल उठकर भाभीजीने कहा—बाई! रातमें जो छोरियाँ तेल लगाने आयी थीं उन्होंने इतनी बढ़िया मालिश की कि मुझे तो शीघ्र ही नींद आ गयी और अब मेरे पाँवका दर्द बिल्कुल ठीक है।

भाभीजीकी बात सुनकर बाई वहीं रहस्य भरी हँसी हँसते हुए बोलीं—भाभीजी! आज भी उन्हीं छोरियोंसे तेल लगवा लीजियेगा।

भाभीजीने कहा—मैं जबतक बरसाना रहूँ, तू उन्हींको तेल लगानेके लिये कह दे।

बाईने कहा—भाभीजी! उन्हें जो बुलाकर लाया था, उसीसे कह दीजिये कि रोज बुलवा देगा।

भाभीजी आश्चर्यसे बाईको देखते हुए बोलीं—उनको तो तुमने ही बुलवाया होगा? किसको कहकर तुमने बुलवाया था?

बाईको तो रहस्योद्घाटन करना था नहीं, अतः उन्होंने कहा—उन

किशोरियोंको बुलानेके लिये मैंने तो किसीसे भी नहीं कहा।

अब तो सबसे पूछताछ होने लगी। घरमें किसीने भी उन किशोरियोंको आते या जाते देखा ही नहीं था। कोई तेल लगानेवाली भी रात्रिके दस ग्यारह बजे आयी थी, यह बात ही सबको आश्चर्यमें डाल रही थी। सबसे अधिक आश्चर्य तब हुआ, जब पण्डाजीके पूरे परिवारसे पूछनेपर किसीने भी तेल लगानेवालीको भेजनेकी बात स्वीकार नहीं की। आसपासमें जिन-जिनके घर थे, वहाँ-वहाँ बहुत पूछताछकी गयी, परन्तु सभीने अपनी अनभिज्ञता ही बतलायी। अन्तमें यह बात बाईको बतलायी गयी। सब कुछ जानते हुए भी अनजान बनकर बाईने साश्चर्य भाभीजीसे पूछा—भाभीजी! वे किशोरियाँ कैसी थीं?

भाभीजी बोलीं—बाई! वे थीं तो लगभग तेरह-चौदह वर्ष आयुकी, परन्तु गोरी-गोरी घाघरा पहने, छम-छम करती चल रही थीं और मेरे विचारसे वे अभी नव-विवाहिता ही थीं।

बाईने पूछा—भाभीजी! उनके विवाहित होनेकी जानकारी आपको कैसे मिली?

भाभीजीने कहा—मैंने उनसे पूछा था तो शील-सकुच भरी बात करनेके ढंगसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उनका विवाह हो गया है। बरसानेमें तो छोटी आयुमें ही छोरियोंका विवाह कर दिया जाता है।

भाभीजी बड़े भोलेपनसे सारी बातें बता रही थीं। उनकी भोली-भाली बातें सुनकर बाई खिलखिलाकर हँसती हुई बोलीं—भाभीजी! आप लाडिलीके पीहर आयी है न! कहीं लाडिलीने आपके आतिथ्य हेतु तेल मालिश करनेके लिये तो उनको नहीं भेज दिया था?

बाईकी बात सुनकर सबका ध्यान उस रहस्यकी ओर गया और अब सभीको विश्वास होने लगा कि वास्तवमें लाडिलीने ही अपनी किन्हीं सहचरियोंको इस रूपमें भेजा होगा। भाभीजी तो लाडिलीके प्यारकी स्मृति मात्रसे गद्गद हो रही थीं।

* * * *

लाडिलीजीके पीहर बरसानेमें जो स्वागत-सत्कार हुआ जो स्नेह-सम्मान मिला; उसने भाभीजीके, केवल भाभीजी ही नहीं, संगकी सभी बहिनोंके मनमें एक स्थायी छाप छोड़ दी और इस स्वागत-सत्कारके नमूने बार-बार बरसाना

यात्रामें मिलते रहे हैं।

कुछ दिनों बादकी बात है। एक दिन बाईने भाभीजीसे कहा—भाभीजी! मेरे घर बरसाने चलिये। देखिये आपकी कैसी खातिरदारी होती है।

भाभीजीने हँसते हुए कहा—बाई! बरसाने तो मैं बहुत बार गयी हूँ। आज कोई नयी बात है क्या?

बाईने कहा—भाभीजी! आप कई बार गयी होगीं, परन्तु आज चलकर देखिये कि कैसी खातिरदारी होगी।

भाभीजीका मन बरसाने जानेका नहीं था, परन्तु सीधे मना करना भी सम्भव नहीं था, अतः बात टालनेके लिये कहा—अच्छा! मैं पता लगवाती हूँ। कोई मोटर कार मिल जायेगी तो चले चलेंगे।

इतना कहकर भाभीजी अन्दर चली गयीं। इधर ज्यों ही भाभीजी बाईके पाससे गयीं, त्यों ही बाईसे मिलनेके लिये धानुका मैया आ पहुँची। बाईने उन्हें देखते ही कहा—मैया! तू भली आयी। मेरेको बरसाना जाना है। तू कोई गाड़ीका इन्तजाम कर सकती है क्या?

धानुका मैया बोली—मैं पता लगाती हूँ। अगर कोई कार मिल गयी, तो अभी भिजवाती हूँ।

इतना कहकर धानुका मैया चली गयीं। थोड़ी ही देरमें मोटर कार आ गयी। भाभीजीको कुछ पता ही नहीं था कि बाई कारकी व्यवस्था कर रही है। कारके आते ही बाईने भाभीजीसे कहा—भाभीजी! गाड़ी तो आ गयी, अब चलनेकी तैयारी कीजिये।

भाभीजी सुनकर स्तब्ध रह गयीं और बोली—बाई! कब तो तुमने गाड़ी मँगवा ली और जानेके लिये तैयार भी हो गयी? क्या सचमुच चलना है?

बाईने कहा—भाभीजी! आज तो बरसाना चलना ही है। आपको लाडिली बुला रही है।

सभी बरसानेके लिये चल पड़े। बरसाना पहुँचते-पहुँचते चार बज गये। सीधे ऊपर मन्दिरमें जाकर दर्शन किये। कुछ देर वहाँ बैठकर वापस आने लगे। वापस लौटते समय बहुत सी सीढ़ियोंसे उतरना पड़ता है। जब मन्दिरसे नीचे उतर रहे थे, तब सीढ़ियोंके मध्यमें प्रौढ़ आयुके एक ब्रजवासी बोले—मैया! मेरे घर आज छप्पन भोगका उत्सव है। अन्दर आकर दर्शन कर लो।

बाई रहस्य भरे ढंगसे हँसते हुए भाभीजीकी ओर देखने लगी। भाभीजीने

उन ब्रजवासीको प्रणाम करते हुए कहा—बाबा! हमलोग आज तो यहींसे दर्शन कर लेते हैं। अभी वृन्दावनसे आये ही हैं, फिर कभी आपके यहाँ आयेंगे।

भाभीजीकी बात पूरी भी नहीं हो पायी थी कि बाईने भाभीजीका हाथ पकड़ लिया और वे लगभग खींचती हुई सी उन ब्रजवासीके घरमें चली गयीं। वहाँ ब्रजवासी बाबा तथा ब्रजवासिनी मैयाने उन्हें बैठाया और छप्पन भोगकी एक-एक चीज पत्तलमें परोस कर दी। सब प्रसाद पाने लगीं। प्रसाद देते-देते उनका मन भर ही नहीं रहा था। मना करनेपर भी वह ब्रजवासिनी मैया मानती ही नहीं थी तथा और प्रसाद परोस ही देती थी। प्रसाद पा लेनेके बाद भाभीजी उनको कुछ भेंट देने लगीं, तो उन्होंने लेनेसे इन्कार कर दिया। यह तो भाभीजीके लिये विस्मयका विषय था। जो ब्रजवासी प्राय: माँग-माँगकर लेते हैं, वे आज देनेपर भी नहीं ले रहे हैं।

सीढ़ियोंके नीचे आते-आते एक अन्य वृद्ध ब्रजवासी बोला—मैया! थोड़ा-सा दही खा लो।

आज तो विचित्र दृश्य देखनेको मिल रहा था। सीढ़ियोंसे उतरते समय हर तीसरी-चौथी सीढ़ीपर कोई-न-कोई मनुहार आ ही जाती थी और मनुहार करनेवाले या वाली कहते या कहती थीं—मट्ठा पी लो, छाछ पी लो, माखन खा लो।

ब्रजवासियोंकी वह मनुहार भाभीजीके लिये एक उलझन बन गयी। उनके स्नेहको देखते हुए ना कहना भी बन नहीं रहा था और भरे पेटकी हालत देखते हुए हाँ करना भी सम्भव नहीं था। जब भी मनुहार आती, भाभीजी नेह भरी विनम्र वाणीमें अपनी विवशता बलतातीं। कोई मान जाता और कोई मनुहार करता ही रहता। वह मनुहार जब आग्रहका रूप ले लेती तो भाभीजी कहीं कुछ चख लेतीं और कहीं कुछ रख लेतीं। इस प्रकार कभी चखते और कभी रखते भाभीजी नीचे डेरेपर आयीं। डेरेके कमरेमें घुसते-घुसते प्रफुल्ल स्वरमें भाभीजीने कहा—बाई! आज जैसा स्वागत तो कभी नहीं हुआ।

अब एक अन्य बरसानेकी यात्राका प्रसंग है। जिसमें बाई, नर्मदा बाई, सावित्री बाई और पुष्पा बाई गयी हुई थीं। इस यात्रामें भाभीजी साथमें नहीं थीं। बरसाने पहुँचकर और डेरेपर सामान रखकर सभी परिक्रमाके लिये चल पड़ी। परिक्रमा करते-करते साँकरी खोरपर एक बूढ़ी मैया मिली और बोली—लाली! नैक सी छाछ पी ले।

उसके प्यार भरे आग्रहको टालना असम्भव था ही नहीं। छाछ देनेके बहाने उसका वात्सल्य झर रहा था। आगे चलनेपर थोड़ी देर बाद ही एक भाभीजी मिली। बाईके लिये तो बरसाने ग्रामकी समयवस्का सभी बहुएँ एक प्रकारसे भाव-सम्बन्धमें भाभी ही लगती थी। वह भाभी तरबूज खानेके लिये आग्रह करने लगी। तरबूज देखकर पुष्पा बाईके मुँहमें पानी आ गया कुछ-कुछ पानी तो बाईके मुँहमें भी आ रहा था। पीहरका लाड़-चाव किसे प्यारा नहीं लगता। बाई सभीके साथ वहीं बैठकर तरबूज खाने लगीं। पूरी परिक्रमामें कभी कोई भाभी, कभी कोई भाई, कभी कोई मैया, कभी कोई बाबा मिलते थे और वे कभी लस्सी, कभी सत्तू, कभी पेड़ा, कभी जल, कभी मिश्री और कभी टेंटीके आचारसहित बेझरकी रोटीके लिये प्यार भरा मनुहार करते थे। इन सभी मनुहारोंको बाई सम्मान देते हुए प्रसन्न मनसे स्वीकार करती रहती थीं।

परिक्रमाके मार्गमें चलते-चलते टिप्पणी करती हुई कभी सावित्री बाई और कभी पुष्पा बाई कहती रहती थीं—आज तो कदम-कदमपर अनोखा स्वागत हो रहा है। एक अनोखी बात और है। आज तो पूरी परिक्रमामें एक भी लड़की या मेहतर या छोटे-छोटे बालक नहीं मिले, जो हमलोगोंसे पैसा माँगे। पुष्पा बाई और सावित्री बाईकी टिप्पणीमें सहारा लगाते हुए नर्मदा बाईने कहा—सचमुच यह शायद पहली यात्रा है, जब कि कोई भी हाथ फैलानेवाला मँगता नहीं मिला।

उन सभी टिप्पणियोंका सरल शब्दोंमें उत्तर देते हुए और सभीकी जिज्ञासाओंका समाधान करते हुए बाईने उनसे कहा—तुम्हीं बताओ! पीहरमें लड़कीसे माँगा जाता है या लड़कीको दिया जाता है? यह तो अपने हिंदुओंकी सनातन रीति है कि पीहरवाले लड़कीसे माँगते नहीं, देना ही देना चाहते हैं और कितना दिया जाता है तथा किस मनसे दिया जाता है, उसका प्रमाण आज हम सभीको इस परिक्रमाके समय पद-पद पर मिल रहा है। आपलोग ही देख लीजिये कि यह कितना प्रत्यक्ष सत्य है।

इस प्रकार मीठी-मीठी, भीनी-भीनी बात करते हुए वह परिक्रमा पूर्ण हुई, जो लाड़-प्यारसे तर थी।

* * * * *

कष्टदायिनी रुग्णता

एक बारकी बात है। बाई श्रीमहिला संघके हॉलके बरामदेमें प्रणाम कर रही थीं। वे प्रणाम करनेके लिये जैसे ही झुकीं, उनका माथा खिड़कीकी चौखटसे टकरा गया। टकराते ही जोरसे खटकी आवाज हुई। टकरानेसे चोट बहुत आयी और इसीके साथ चोटका बुरा प्रभाव आँखकी ज्योतिपर भी आया। माथा उठाते ही बाईने भाभीजीसे कहा—मुझे बहुत कम दीख रहा है।

भाभीजीको बड़ी चिन्ता हो गयी। शहरमें आँखकी चिकित्सा करनेवाली कोई लेडी डॉक्टर नहीं थी, अतः विवशता थी। चोटसे होनेवाला शारीरिक कष्ट तो क्रमशः दूर हो गया, परन्तु ज्योति-अल्पता ज्यों-की त्यों-बनी रही। कम दिखलायी देनेके कारण चलते-फिरते समय भी बाईको किसी बहिनका सहारा लेना पड़ता था। पढ़ना, लिखना सम्भव था ही नहीं।

यह स्थिति लगभग छः मासतक रही। यह रुग्णता जिस प्रकार अचानक आयी उसी प्रकार एक दिन अचानक विदा भी हो गयी। विदा हुई श्रीराधा-अष्टमी महोत्सवके छः दिन बाद। छठीवाले दिन रात्रिमें षष्ठी देवीकी पूजा करके घीका दीपक जलाया जाता है और उसका काजल श्रीवृषभानुनन्दिनी राधाजीके आँखोंमें आँजा जाता है। पूजनसे बचा हुआ काजल सभी बहिनें लगाया करती है। बाई भी अपनी आँखमें काजल लगाकर सो गयीं। प्रातःकाल जब उठीं तो वे कहने लगीं—मुझे सब कुछ भली प्रकार दिखलायी दे रहा है। माँ षष्ठी देवीकी कृपासे आँखकी ज्योति पूर्ववत् हो गयी है।

भाभीजी तथा अन्य बहिनोंके लिये यह सुखद समाचार था। भाभीजी तो हमेशा ही कहा करती हैं कि बाईकी बीमारीका इलाज हम नहीं, लीला-राज्यके परिकर ही किया करते हैं।

सन् १९८० में बाईकी तबियत बहुत खराब हो गयी। छातीमें और हाथमें बहुत दर्द रहने लगा। छातीमें ज्यादा दर्द था। लेडी डॉक्टरने बतलाया कि हृद-रोग है और हृद-रोगीके लिये विश्राम आवश्यक है। चिकित्सकोके आराम विषयक सुझावको सुनकर भाभीजी बाईसे विश्रामके लिये बार-बार अनुरोध

करती, परन्तु बाई अपने दैनिक नियमोंमें तनिक भी उलट-फेर करनेके लिये तैयार नहीं थी। जब दर्द बहुत अधिक बढ़ जाता तो वे कुछ देरके लिये लेट जाती। चिकित्साके रूपमें होमियोपैथिक दवा दी जाती थी, पर उससे कोई अपेक्षित लाभ दिखलायी नहीं दे रहा था। भाभीजीको चिन्ताग्रस्त देखकर बाईने सान्त्वना देनेके लिये उनसे कहा—अब मुझे रहकर क्या करना है? अब तो मुझे अपने 'घर' जाना है।

भाभीजीको सान्त्वना देनेके लिये कहे गये ये शब्द और अधिक मनका मन्थन करने लगे। बाईके स्वास्थ्य-लाभके लिये भाभीजी देवाराधन और जपानुष्ठान करवाने लगीं। इससे भी बाईकी स्थितिमें कोई सुधार दिखलायी नहीं दिया। हो रहे देवाराधनकी जानकारी मिलनेपर भाभीजीसे बाईने कहा—मेरा सब कुछ उन श्रीकृष्णके हाथमें है। वे जब और जो चाहेंगे, वही होगा। मुझपर कालका नियन्त्रण नहीं है। काल अपना प्रभाव मुझपर नहीं डाल सकता। आयु और स्वास्थ्यके लिये किया गया देवाराधन कालको अनुशासित अवश्य करता है, परन्तु मैं तो कालके नियन्त्रणसे परे हूँ। यही कारण है कि आपके अनुष्ठानका अभिलषित फल आपके सामने नहीं आ रहा है। मेरा रहना और न रहना सब कुछ मेरे ठाकुरके अधीन है। वे जब चाहेंगे, अपनी वस्तुको ले जायेंगे। वैसे मुझे संकेत भी दिया गया है कि अब चलनेका समय समीप है।

बाईके इन उद्गारोंको सुनकर भाभीजीका मन बड़ा विकल हो गया। वे देख रही थीं कि बाईके भोजनमें अत्यधिक अनियमितता है और उसमें भी थालीकी चीज भली-प्रकार नहीं खा पाती है। विकल होकर भाभीजी मन-ही-मन पूज्य बाबाको याद करने लगीं और उन्हें अपनी व्यथा कहने लगीं। इसी समय बाईने भाभीजीसे कहा—मैं नहीं कह सकती कि यह जीवन कितने दिन रहेगा, परन्तु एक बार आप मुझे पूज्य बाबाका दर्शन करवा दीजिये। आप मेरे साथ गोरखपुर चलिये।

भाभीजी बाईको लेकर गोरखपुर आ गयीं। गीतावाटिकामें रहनेसे स्वास्थ्यमें कुछ सुधार आया। भाभीजीकी भावनाओंको बड़ा चैन मिला। भाभीजीने मान लिया कि पूज्य बाबाकी कृपासे यह सुधार आ रहा है और दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक सुधार होता चला जायेगा। बाईके स्वास्थ्यको कुछ

अच्छा देखकर भाभीजीने वापस भागलपुर जानेका कार्यक्रम बना लिया।

वे १७ मई, १९८१ को वापस जानेवाली थीं। उसी दिन एक विशेष प्रसंग है इसी दिन प्रात:काल बाईकी तबियत अचानक बहुत ज्यादा खराब हो गयी। आज उसने भीषण रूप धारण कर लिया। यह तो बड़ी भली बात हुई कि प्रस्थान करनेके पहले ही स्थितिकी विकटता सामने आ गयी। यदि यह विकटता मार्गमें आती तो जीवनके अस्तित्वके आगे गहरा प्रश्न चिह्न अवश्य लग जाता। तबियतकी विकटताको देखकर हमलोगोंको सन्देह होने लग गया कि क्या जीवन-दीपक बुझनेवाला है? हाथमें भीषण दर्द परिव्याप्त था। सारा शरीर बुरी तरह काँप रहा था। मुख तो वक्र हो ही गया था, वह विधातक वक्रता शरीरमें भी आ गयी थी। आँखे उलट गयी थीं। मुखमें फेन आने लग गया था। बाईकी ऐसी स्थिति देखकर सभी घबरा उठे। नित्य साथ रहनेवाली और सदा सँभालनेवाली नर्मदा बाई करुणाकुल-शोकाकुल होकर जोर-जोरसे 'राधे-राधे-राधे-राधे' पुकारने लगीं मानो बाई अब कुछ ही क्षणों 'प्रस्थान' करने वाली हैं। आत्मीयजनोंके मध्य हलचल और भगदड़ मच गयी। सभीकी आँखोंमें कचोटने वाला भय भरा हुआ था। भयाक्रान्त आँखोंको उस समय एकमात्र सहारा था श्रीबाबाका। भाभीजी तथा अन्य कई लोग दौड़ते-दौड़ते श्रीबाबाके पास गये।

उधर तो लोग श्रीबाबाके पास गये और इधर कालके गालमें अटकी हुई बाईके मुखसे अस्पष्ट शब्दोंमें एक वाक्य निकल गया—हे प्रियतम! अब अपने पास बुला लो।

इस वाक्यको सुनते ही नर्मदा बाई तो सर्वथा निराश हो गयीं। उनके अन्तरमें और आँखोंमें निराशाका ताण्डव मचा हुआ था। तभी श्रीबाबा बाईके पास आये। बाबाने देख लिया कि स्थिति वस्तुत: गम्भीर है तथा ऐसा लगता है कि जीवन-लीला अब समाप्त होने वाली है; परन्तु श्रीबाबाको यह अभीष्ट नहीं था कि बाई अभी चली जाये। स्थितिकी भीषणताको भाँप करके और अपना मौन तोड़ करके श्रीबाबाने पूछा—क्यों बहिनी! जाना चाहती हो?

बाईने सिर हिलाकर इशारेसे 'हाँ' कह दिया। इसपर श्रीबाबा बोले—देखो! यदि तुम्हारे मनमें सचमुच यह बात हो कि अब मुझे जाना है, तो मैं अभी अपने हाथमें गंगोत्रीका गंगाजल लेकर श्रीकृष्णसे कहूँगा

तो वे तुझको ले जायेंगे। आज या कलमें तुम चली जावोगी। श्रीकृष्ण मेरी बात टालेंगे नहीं, पर मेरी राय यह है कि अभी कुछ दिन तुम यहाँ और रहो। तुम्हारे द्वारा बहुतसे लोग भगवान्‌की ओर लगे हैं और अध्यात्म-पथ पर चल रहे हैं। लोगोंको भगवदोन्मुखी बनाना भगवदीय कार्य है। यह एक असाधारण कार्य है। तुम्हारे द्वारा यह महान कार्य हो रहा है। अभी मुझको तुमसे बहुत काम करवाना है। मेरी राय है कि तुमको अपना शरीर अभी रखना चाहिये। इसपर भी यदि तुम जाना चाहती हो तो मैं श्रीकृष्णसे कह सकता हूँ।

समर्पण-भावकी साकार स्वरूपा बाईने तुरन्त कहा—आपकी जैसी इच्छा।

श्रीबाबाने सराहना करते हुए कहा—तुमसे इसी उत्तरकी अपेक्षा थी और यही उत्तर शोभा भी देता है।

यह सारी गम्भीर बातचीत हमलोगोंके सामने ही हुई। इस गम्भीर किन्तु महत्त्वपूर्ण बातचीतसे सबको राहत मिली। अमावस्याकी काली रात पूर्णिमाकी चाँदनीमें बदल गयी। रुग्णताकी भीषणता तो अब भी थी, परन्तु बाई कालकी विकरालतासे मुक्त थीं। यथोचित उपचार आरम्भ हो गया और क्रमशः तबियत ठीक होने लगी। फिर लगभग डेढ़-दो माह गीतावाटिकामें रहना पड़ा और क्रमशः स्वास्थ्यकी स्थिति सन्तोषजनक हो गयी।

भाभीजीको भी भागलपुरके अनेक पारिवारिक और सामाजिक दायित्व मनपर दबाव डाल रहे थे कि भागलपुर चलना चाहिये और बाईको साथ लेकर भाभीजी भागलपुर चली आयीं।

अब सन् १९८४ का प्रसंग है। भाभीजीके पेटमें बड़ा दर्द रहने लगा। उनका एक्सरे करवाया गया। डॉक्टरोंने बतलाया—पेटमें एक गाँठ है और ऐसा सन्देह हो रहा है कि गाँठके रूपमें कैंसरका रोग शरीरमें जड़ पकड़ रहा है। कैंसरका नाम ही भयानक है। स्वजन-परिजन-निजजन सभी भयभीत हो उठे। सभीकी रायसे ऐसा निश्चय किया गया कि एक बार फिरसे एक्सरे करवा कर और तीन अनुभवी डॉक्टरोंको बुलाकर सलाह लेनी चाहिये।

इधर तो चिकित्सकोंसे परामर्श लेनेके लिये तत्परतापूर्वक भाग-दौड़ हो रही थी और उधर बाईको कोई विशेष दैवी संकेत मिला, जिससे वे भाभीजीके लिये अत्यधिक भयाक्रान्त हो उठीं। बाईने मन-ही-मन कुछ संकल्प किया,

जिसका परिणाम दो दिन बाद ही सबके सामने आ गया। डॉक्टरोंने पुनः एक्सरे करवाकर रोगका निदान करना चाहा। भाभीजीके पेटका एक्सरे करवाया गया। डॉक्टरोंने देखा कि भाभीजीके पेटमें वह गाँठ है ही नहीं, जो दो दिन पहले वाले एक्सरे प्लेटमें थी। दोनों एक्सरे प्लेट सामने हैं। दो दिन पहले वाली एक्सरे प्लेटमें गाँठ है और आज वाली एक्सरे प्लेटमें नहीं है। सारे डॉक्टर, कम्पाउन्डर आदि आश्चर्य करने लगे कि वह गाँठ कहाँ गयी? अब उन लोगोंका बतला कर विश्वास दिलाना कठिन ही है कि एक संतके संकल्पका क्या चमत्कारिक परिणाम हो सकता है।

सत्य संकल्प बाईने भाभीजीका कैंसर रोग अपने ऊपर ले लिया और इसीका परिणाम था कि दोबारा वाली एक्सरे प्लेटमें वह गाँठ नदारद थी। यह परिणाम तो सामने आ गया दो दिन बाद ही, किन्तु यह तथ्य घरवालोंके सामने आ पाया दो-तीन साल बाद। बाईने संकल्पसे वह गाँठ बिना किसीको बतलाये हुए अपने ऊपर ले ली। इस गाँठकी पीड़ा तुरन्त नहीं, धीरे-धीरे बाईके शरीरको कष्टदायिनी बन गयी। इस गाँठने बाईके शरीरमें अपना स्थायी स्थान बना लिया और पेटमें ट्यूमरका रूप धारण कर लिया। ट्यूमर जीवनके लिये एक अति विघातक रोग है। यह रोग क्रमशः अधिकाधिक कष्टप्रद बनता चला गया। यह बात अलग है कि अपनी आध्यात्मिक क्षमताके कारण बाई उस कष्टकी उपेक्षा करके अपने दिव्य-भाव-सिन्धुमें निमग्न रहती थीं और समीपमें आनेवालोंके मध्य दिव्य भावका वितरण और विस्तार करती रहती थीं।

यह तथ्य तो बड़े भारी मनसे स्वीकार करना पड़ रहा है कि बहुत आगे चलकर भविष्यमें यह रुग्णता ही बाईके जीवनके लिये विघातक सिद्ध हुई।

* * * * *

विचित्र लीला प्रसंग

अँधेरी रातमें मुस्कुराना और चाँदनी फैलाना चन्द्रमाका ही काम है और घोर कष्टमें हँसते रहना और पासमें आनेवालेको हँसाते रहना संतके लिये ही सम्भव है। बस, यही जीवन बाईका था। श्रीमहिला संघमें चाहे सत्संग हो, चाहे उत्सव हो, बाई भावोंका उन्मुक्त वितरण करती रहती थी।

आषाढ़ी पूर्णिमाका दिन था। इस दिन गुरु स्वरूपा प्रिय सखी श्रीललिताजीका उत्सव सोत्साह मनाया गया। बाईके निर्देशानुसार इस दिन हलुएका भोग लगता था। हाथके पीसे हुए तेरह सेर आटेका हलुआ बनता था और यह बहुत गाढ़ा हुआ करता था। गाढ़े हलुएको बड़ी परातमें जमाकर छोटी-छोटी चक्की नुमा बना लिया जाता था। तेरह सेर आटेसे बनी हुई चक्कियोंको छः थालियोंमें सजा लिया गया और ठाकुरको भोग लगाया गया। इस प्रसादका वितरण सायंकाल होनेवाला था। प्रसाद वितरणका समय होते ही भक्तोंके मध्य प्रसाद बाँटनेके लिये बाई आगे आयीं। यह तो सर्वथा नवीन बात थी। बाईने आजतक तो स्वयं कभी प्रसाद नहीं बाँटा था। वितरण प्रक्रिया नवीन होकर भी यह बात सबके लिये आनन्ददायक थी। श्रीबरसानेवालीके मन्दिरके सामनेसे स्थलियोंमें जानेवाला जो मार्ग है, वहींपर बाईने उन छः थालियोंको मँगवा लिया। वे छः थालियाँ छः बहिनोंके हाथमें दे दी गयी। बाई भी सीढ़ियोंपर खड़ी हो गयीं। समीपमें प्रसाद देनेके लिये पत्तल रख दी गयी। बाई उन्मुक्त भावसे प्रसाद बाँटने लगीं जो भी प्रसाद लेने आती, उससे बाई पूछती कि आपके घरमें कितने व्यक्ति हैं? कोई चार या पाँच या छः या सात बताती, तो बाई उनको उतना ही प्रसाद देतीं। कोई-कोई बारह या पन्द्रह बताती तो उनको भी मनमाना प्रसाद दिया जाता। एकने तो अपने घरके लोगोंकी संख्या पच्चीस कह दिया। उस समय बाई बहुत जोरसे ठहाका लगाकर हँसी। जो जितनी संख्या बतलाती, उसे अनुसार बाई प्रसाद देतीं। लगभग तीन सौ स्त्रियोंको प्रसाद दे दिया गया। जिनके ऊपर भोगके निर्माणका दायित्व था, वह बहिन और उस बहिनकी सहेलियाँ, वे सब कानाफूसी करने लगीं कि वितरणका ढंग देखते हुए प्रसाद तो कम पड़ ही जायेगा और कई बहिनोंको खाली हाथ लौटना पड़ेगा। वे बहिनें भले चिन्ता करें, परन्तु थाली खाली होती हुई दिखलायी ही नहीं देती थी। छहों थालियाँ बाईके सामने थी, और लगातार दिये जानेके बाद भी ज्योंकी त्यों

भरी दिखलायी दे रही थी।

प्रसाद वितरणमें आज एक और विशेषता थी। समझनेके लिये ऐसा मान लें कि छः थालियोंकी क्रमशः छः संख्या है। बाई पहली थालीमें-से ही सभीको प्रसाद दे रही थीं। दूसरीमें-से कभी-कभी देती थीं। तीसरीमेंसे तो यदा-कदा ही देती थीं। इन दो थालियोंमें-से कभी-कभी चक्कीको खण्डित करके कुछ प्रसाद दिया जाता था। ऐसा मान लेना चाहिये कि प्रसाद लेनेवाली बहिनकी पात्रताके अनुसार यह क्रिया हो रही थी। प्रसाद बाँटते समय चौथी थालीका नम्बर क्वचित् ही आता था।

धीरे-धीरे प्रसाद लेनेवाली बहिनोंकी संख्या बढ़ती चली गयी। अनुमानतः सौ-सवा सौ बहिनें और आ गयी होंगी। इस बढ़ती हुई संख्याको देखकर एक बहिनने श्रीमहिला संघका प्रवेशद्वार बन्द करना चाहा। ज्यों ही वह द्वार बन्द करने लगी, बाईने मना करते हुए कहा—द्वार बन्द न करें। यहाँ सभी आ ही नहीं सकते। जिन्हें अन्तर्जगत स्वीकार करता है, वही यहाँ आ पायेगा। आप नहीं देख रही हैं, परन्तु मैं देख रही हूँ कि अन्तर्जगतके परिकरों द्वारा यहाँ पहरा लग रहा है। जिसे परिकर नहीं चाहेंगे, वह प्रवेश कर ही नहीं पायेगी और यह पहरा तब तक रहेगा, जब तक प्रसादका वितरण होता रहेगा।

आज प्रसादका वितरण रहस्यात्मक ढंगसे हो रहा था। ऐसा तो पहले कई बार हो चुका है कि नैवेद्य सामग्री भले कम थी, परन्तु भक्तोंकी संख्या बहुत होनेके बाद भी नैवेद्यमें न्यूनता नहीं आयी। आज तो विशेषता यह थी कि प्रसादका वितरण करते समय कुछ थालियोंका स्पर्श भी नहीं किया गया। कोई बड़ी भाग्यवान बहिन थी, जिसको चार थालियोंसे प्रसाद दिया गया। प्रायः एक या दो या तीनसे आगे बढ़ना हो ही नहीं पाया। जब बाहरवाली बहिनोंको प्रसाद दिया जा चुका, तब बाईने सभी घरवाली बहिनोंको एक साथ बुला लिया। इन सबको पंक्तिबद्ध खड़ा किया गया। इस पंक्तिमें-से सबसे आगे भाभीजी थीं। भाभीजीको पाँच थालियोंमेंसे प्रसाद दिया गया। भाभीजीके बाद जो-जो बहिन आयी, उनमें किसीको एकमेंसे किसीको दोमें-से, किसीको तीनमें-से और किसीको चारमें-से प्रसाद दिया गया। सबसे विस्मयकारिणी बात यह थीं कि बाईने छठी थालीका स्पर्श भी नहीं किया और छठी थाली लिये हुए बहिन खड़ी-खड़ी आश्चर्यमें डूबी जा रही थी कि क्या मैं अछूती हूँ?

जब पंक्तिमें खड़ी सभी बहिनोंको प्रसाद मिल गया, तब सर्वान्तमें दिया गया एक बालिकाको, जो पंक्तिसे बाहर खड़ी होकर प्रसाद-वितरणकी लीला

देख रही थी। बाईने उस बालिकाको बुलाया। उसने समझ लिया कि मुझको प्रसाद देनेके लिये बुलाया जा रहा है। आते ही उसने पत्तल उठानेके लिये हाथ बढ़ाया। बाईने उसको मना कर दिया और कहा—तुम पत्तल मत लो। अपनी हथेली फैलाओ। मैं प्रसाद देती जाऊँगी। और तुम खाती चली जाओ। अब बाई उसे प्रसाद देने लगीं। बाईने उसको सभी थालियोंमें-से क्रमशः प्रसाद दिया। जो थाली अबतक पूर्णतः अछूती थी उसमें-से भी प्रसाद दिया। जिस-जिस थालीसे बाई प्रसाद देतीं, वह बालिका तुरन्त खा लेती।

इसके बाद बाई वहीं बैठ गयीं। उपस्थित बहिनोंके मनमें उत्सुकता बनी हुई थी कि इन छः थालियोंका रहस्य क्या है? छठवीं थालीका प्रसाद केवल इस बालिकाको ही क्यों दिया गया? सभी बहिनोंको जिज्ञासाका प्रतिनिधित्व करते हुए नर्मदा बाईने प्रश्न कर ही लिया—बाई! तुमने किसी बहिनको एक थालीमें-से, किसीको दोमें-से, किसीको तीनमें-से प्रसाद दिया और इस छोरी मीराको छओं थालीमें-से प्रसाद दिया, इसका क्या कारण है?

बाई मुस्कुराती हुई बोलीं—आपलोग यह समझ रही हैं कि इन छः थालियोंमें मात्र चक्की रखी हुई है, परन्तु ये मात्र चक्कियाँ नहीं है। पहली थालीमें भक्ति, दूसरीमें लक्ष्मी, तीसरीमें भाव, चौथीमें प्रेम, पाँचवींमें ऐश्वर्य और छठवींमें कीर्ति ही चक्कीके रूपमें इन थालियोंके अन्दर विराजित हैं। जिसको पहली थालीमेंसे प्रसाद दिया गया, उसे भक्तिका वरदान मिला है। इसी प्रकार अन्य थालियोंके बारेमें भी अर्थ घटा लेना चाहिये। जिसको चार या पाँच या छः थालियोंमेंसे दिया गया है। उनको उतनी वस्तुकी प्राप्ति हुई है। मैं किसीको दूसरी थालीमेंसे प्रसाद देनेके लिये हाथ बढ़ाती थी, तो लक्ष्मीजी तुरन्त संकेत करके मना कर देतीं, अतः विवश होकर मैं नहीं दे पाती थी। भक्ति देवी उदार हैं, अतः उन्होंने सबको उन्मुक्त दान दिया है। लक्ष्मी देवी वहीं जायेंगी, जहाँ उनका मन होगा। भाव और प्रेमके अधिकारी कम ही होते हैं। ऐश्वर्य तो भाभीजीको दिया गया। इस बालिकाको अन्तर्जगत यह षट् सम्पत्ति प्रदान करना चाहता है, अतः इसको सभी थालियोंसे प्रसाद दिया गया। पहली थाली ही ऐसी थी, जिसमेंसे सबको प्रसाद मिला और इसका अर्थ यह है कि आज श्रीबरसानेवालीके द्वारपर भक्तिका खुले हाथों वितरण हुआ है। आज तो अन्तर्जगत हमारे नव-वृन्दावनपर बड़ा प्रसन्न है, मनसे बलिहार है, तभी तो भक्तिका उन्मुक्त दान सबको मिला है।

विलम्ब होते देखकर नर्मदा बाई कहने लगीं—अब उठो। चलो कमरेमें।

नर्मदा बाई इस प्रकार थोड़ी-थोड़ी देरपर कहती रहतीं और बाई उठनेका नाम ही नहीं ले रही थीं। जब नर्मदा बाईका आग्रह बहुत होने लगा, तब बाईने कहा—जबतक यहाँ दिव्य भाव राज्यकी परिधि पड़ी हुई है, तबतक मैं कैसे उठ सकती हूँ? परिधि उठे, तब ना मैं उठूँ।

नर्मदा बाईने पूछा—यह परिधि क्या वस्तु है?

नर्मदा बाई प्रायः परिधि शब्द बाईके मुखसे सुना करती थीं और आज उसके बारेमें पूछ ही लिया। बाईने उदाहरण देकर समझाना आरम्भ किया—एक स्थानपर संगीतज्ञोंके गायनका कार्यक्रम होनेवाला है। कार्यक्रम प्रारम्भ होनेके बहुत पहले स्थानकी स्वच्छता, मंचकी सजावट, वाद्योंको रखना, गायकोंका स्वागत, श्रोताओंको यथास्थान बैठाना आदि-आदि जब हो जाता है, तब गायनके कार्यक्रमका शुभारम्भ होता है। कार्यक्रमके पूर्ण होनेपर फिर श्रोताओंका जाना, गायकोंकी विदाई, वाद्योंको रखना, मंचकी सजावटको समेटना आदि-आदि कार्य करनेके बाद ही व्यवस्थापक अपने स्थानसे हट पाता है। गायक तो ठीक समयपर आते और चले जाते हैं। परन्तु व्यवस्थापकको बहुत पहले आना और बहुत बादमें जाना पड़ता है। व्यवस्थापकके कार्य भारको आप परिधि कह सकती हैं। आपलोग उत्सवमें कार्यक्रम खत्म होते ही चटसे दरी उठाकर किनारे रख देती हैं, यह ठीक नहीं होता। अन्तरिक्षचारी अनेक ऋषि-मुनि-भक्त-गन्धर्व आदि आते हैं। उनके उठने और विदा होनेके लिये कुछ समय देना ही चाहिये। यह भूल अपने श्रीमहिला संघमें कई बार होती है, जो बड़ी अप्रिय लगती है।

इन रहस्यभरी और रसमयी चर्चाको करते-करते रात्रिके ग्यारह बज गये। प्रसादकी थालियाँ तो लगभग नौ बजे ही भीतर भेज दी गयी थीं। उनमें पर्याप्त प्रसाद बचा हुआ था। बाईके भावानुसार जब परिधि उठी, तभी वे रात्रिके ग्यारह बजे अपने कमरेमें जा पायीं।

बाई एक दिन ज्ञान बाईके साथ उनके बगीचेमें घूमनेके लिये चली गयीं। ज्ञान बाईका बगीचा श्रीमहिला संघसे काफी दूर था। बगीचेमें जाकर वहाँकी हरियालीको देखते हुए बाई इधर-उधर घूम रही थी। उस बगीचेमें एक हरिजन परिवार रहता था। हरिजनकी पञ्चवर्षीया बालिका सिरपर लकड़ियोंका छोटा-सा गट्ठर लेकर आ रही थीं। उस हरिजन बालिकाको देखते ही बाई भावाविष्ट होकर वहीं बैठ गयीं। वह हरिजन बालिका तो चली गयी, परन्तु उस दिशामें बाई एकटक निहारने लगीं। बाईको एकटक निहारते देखकर ज्ञान बाईने पूछा—

आप क्या देख रही है?

बाईने कहा—यहाँ श्रीराधारानीका दिव्य किञ्चिदंश ही प्रछन्न रूप धारण करके विहरण कर रहा है।

बाईके भावोंकी गहरायीको ज्ञान बाई समझ नहीं सकीं और बाई चारों और घूम-घूम करके उस बालिकाको ढूँढ़ने लगीं। थोड़ी देर बाद पुनः वही बालिका छोटी-छोटी लकड़ियोंका गट्ठर सिरपर लिये हुए आती हुई दिखलायी दी। इस बार बाईने उस बालिकाको रोका। बालिकाके सिरपरका गट्ठर उतारनेके लिये बाईने अपना हाथ ज्यों ही बढ़ाया, त्यों ही ज्ञान बाईने बाईको रोकते हुए कहा—बाई! स्पर्श नहीं करना चाहिये। यह हरिजन बालिका है।

बाई उस बालिकाका गट्ठर उतारते हुए बोलीं—ज्ञान बाई! आप जिसे हरिजन बालिका कह रही हैं, उसे ही मैं तो श्रीराधारानीकी विशेष कृपापात्री देख रही हूँ। इसी बालिकाके पाञ्चभौतिक कलेवरको आवरणके रूपमें स्वीकार करके श्रीराधारानीका दिव्य किञ्चिदंश यहाँ विहार कर रहा है। किसी विशेष कारणसे ही उस दिव्य किञ्चिदंशने यह पाञ्चभौतिक चोला स्वीकार किया है।

ज्ञान बाईको समुचित उत्तर दे देनेके बाद बाई उस बालिकाकी ओर उन्मुख हुई। बाईने उस बालिकासे पूछा—तुम्हारा नाम क्या है?

बालिका—सूकरी।

बाई—तुम यह लकड़ी कहाँ ले जा रही हो?

बालिका—माँने घरमें रखनेके लिये कहा है।

बाई—तुम मेरे साथ चलोगी?

बालिका—माँसे पूछना होगा।

इस बार बाईने ज्ञान बाईसे कहा—ज्ञान बाई! आप इसकी पूजा कीजिये।

ज्ञान बाई पाँच रुपये निकल करके उस बालिकाको देने लगीं। तभी बाईने उनसे कहा—आप यह क्या कर रहीं हैं?

ज्ञानबाई—आपने ही तो पूजा करनेके लिये कहा है।

बाई—पूजा ऐसे नहीं होगी। इसको घाघरा, चुनरी, चूड़ी, फीता, काजल आदि पहना कर मिष्टान्नका भोग लगाइये, गलेमें कंठी और पाँवमें पायजेब अवश्य हो।

बाई इतना कहकर चुप हो गयीं। परन्तु ज्ञान बाई कुछ भी उत्तर नहीं दे सकीं। एक हरिजन बालिकाके लिये पूजनके नामपर इतना खर्च करना ज्ञान बाईकी समझसे परेकी बात थी। कुछ देर बाद बाई पुनः बोलीं—ज्ञान बाई!

आप पूजाका संकल्प कर लीजिये। पूजा तो भाभीजी करेंगी।

बाईके कथनानुसार ज्ञान बाईने संकल्प कर लिया। वह हरिजन बालिका गृहकार्यसे बार-बार इधरसे उधर आ जा रही थी और उस आती-जाती हुई बालिकाको बाई स्नेहभरी दृष्टिसे देखती रहती थीं। बाई बहुत रात्रि होनेपर ज्ञान बाईके साथ घर आयीं। घर आकर भी बाई हरिजन बालिकाकी चर्चा बहुत देर तक भाभीजीसे करती रहीं और कहा—भाभीजी! आपको उसकी पूजा करनी है।

बाईकी प्रत्येक अभिलाषाको पूरा करना ही भाभीजीका जीवन था। प्रसन्नतापूर्वक भाभीजीने कहा—हाँ बाई! तू जैसे बतलायेगी, वैसे ही पूजा हो जायेगी।

बाईने पुन: कहा—भाभीजी! आप एक बात सोच लीजिये कि वह हरिजन बालिका है।

भाभीजीने मुस्कुराते हुए कहा—वह कौन है, इससे मेरा कोई मतलब नहीं। मुझे तो तुम्हारे बतलाये अनुसार पूजा करनी है। मेरी दृष्टि तो वहाँतक नहीं पहुँच सकती, जहाँतक तेरी पहुँच है। मैं तो इसीमें अपना सौभाग्य समझती हूँ कि तुम यत्र-तत्र छिपी हुई विभूतियोंको ढूँढ़-ढूँढ़ करके हमें दर्शन कराती हो।

भाभीजीके उत्तरसे बाईको बहुत अधिक प्रसन्नता हुई। पूजाकी तैयारी करनेमें तीन-चार दिन लग गये। तीन-चार दिन बाद भाभीजी, नर्मदा बाई और कई बहिनोंको साथ लेकर बाई पहुँच गयीं। बगीचेमें प्रवेश करते ही वही बालिका उसी प्रकार लकड़ीका गट्ठर सिरपर रखकर ढोती हुई मिली। बाईने नाम लेकर उसको बुलाया। वह मुस्कुराती हुई आयी। उसकी मुस्कानमें निश्चित रूपसे कुछ विशेषता थी। बाईने स्वयं उसके सिरसे गट्ठर उतारा और उसे समीपस्थ शिलाखण्ड पर बैठा दिया। साथ ही सभी बहिनोंने उसे सादर प्रणाम किया। फिर सभी बहिनें उसका श्रृंगार करने लगीं। घाघरा, चुनरी, चूड़ी, कंठी, पायजेब पहना कर काजल लगाया गया। तेल लगाकर केश सँवारे गये। पुन: उसे शिलाखण्डपर बैठा करके उसके भालमें तिलक लगाया गया। इत्र, फूल आदिसे अर्चना करके भोग पधराया गया। श्रृंगार और पूजनमें काफी समय लगा, किन्तु वह बालिका चुपचाप श्रृंगार एवं पूजन करवाती रही। भोग रखते ही उसने अपनी गम्भीरताका परिचय दिया। बाल सुलभ चपलतासे नहीं, बल्कि गम्भीरतापूर्वक मिष्टान्नका एक खण्ड उठाकर मुँहमें रख लिया। सभीको उसकी गम्भीरतापर आश्चर्य हो रहा था।

सबने मन-ही-मन मान लिया कि इस हरिजन बालिकाके आवरणमें श्रीराधारानीको कोई विशेष शक्ति छिपी हुई है। पूजनके बाद सभीने उसका सभक्ति वन्दन किया।

संतके हृदयोदधिमें उठनेवाली भाव तरंगोंकी विपुलता-विविधता-विचित्रता आदिका अनुमान साधारण सांसारिक प्राणियोंके लिये अगम्य ही है। वह अगम्य तथ्य जब कभी व्यक्त होकर जगतके सामने आता है, तब वह विविधता और विचित्रता विनोदकी वस्तु बन जाती है। विनोदके दो अर्थ हैं, अरसिकोंके लिये उपहासास्पद और रसिकोंके लिये आह्लादकारी।

ऐसी ही बाईकी घुघ्घी लीला रसिकों और अरसिकों, दोनोंके लिये अत्यन्त विनोदिनी है। बाईने एक बार भाभीजीसे कहा—भाभीजी! दो सफेद साड़ी अथवा सफेद कपड़ेका बड़ा थान मँगवा दीजिये। भले भाभीजीको इसकी उपयोगिता समझमें नहीं आ रही थी, परन्तु इतना अनुमान तो लगा ही गया कि यह किसी विचित्र लीलाकी भूमिका है। भाभीजीने तुरन्त दो साड़ी मँगवा करके बाईको दे दी। बाईने एक साड़ीका घाघरा बनाकर पहन लिया और दूसरी साड़ीमें चुनन लगा करके तथा एक सिरा बाँध करके सिरपर टोपीकी तरह रख लिया। आज एक अनोखा ही वेश था। इस अनोखे वेशमें बाई श्रीबरसोवालीके सामने नृत्य करने लगीं। नृत्य पूर्व-दृष्ट आभीर बालिकाके नृत्यके समान था। नृत्य करते समय नयी-नयी भंगिमाओं और मुद्राओंके दर्शन हो रहे थे। ऐसी भंगिमाओं और मुद्राओंका दर्शन पहले कभी नहीं हुआ था। उनकी विचित्रता सभीमें विस्मय उत्पन्न कर रही थी। बहुत देर वह भाव शामित हुआ, तब बाई प्रकृत धरातल पर आ पायीं और सामान्य व्यवहार करने लगीं।

उस समय पूछनेपर बाईने बतलाया—श्रीराधारानीकी अरण्यनिवासिनी अनुचारियोंका ऐसा ही वेश होता है और आरण्यक भाषा होती है। जब कभी श्रीराधारानी वन विहार करते-करते उनके मध्य पहुँच जाती हैं, तब वे नृत्य करके लाडिलीजीको रिझाया करती है। आज वही अरण्य-निवासिनी अनुचरी आयी थी। इस अरण्य-निवासिनी अनुचरीके परिकरकी सारी सहेलियाँ घुघ्घी पहनती है। जो साड़ी पहनती है, वह पाँवसे काफी ऊँची रहती है। इनके घाघरेकी चुनन अट्ठारह गजकी होती है और घुघ्घी चौदह गजकी होती है। उस राज्यमें इस समुदायको घुघ्घीवालीके नामसे पुकारते हैं।

अगले दिन पुनः घुघ्घीवाला भावावेश हुआ। बाईने कीर्तन-मण्डलीकी

सभी बहिनोंको घुघ्घी वाला वेश धारण करनेके लिये कहा। सबके लिये चार-चार साड़ियाँ मँगवायी गयी, दो सफेद साड़ी, और दो नीली या पीली साड़ी। नीले परिधान वाली बहिनोंके लिये नीली साड़ी और पीले परिधान वाली बहिनोंके लिये पीली साड़ी दी गयीं। दो सफेद साड़ियोंको बहिनोंने घाघरेके रूपमें धारण कर लिया। जिन्हें पीत परिधान धारण करना था, उन्होंने एक पीली साड़ीकी घुघ्घी बनाकर सिरपर रख लिया और दूसरी पीली साड़ीको चुनरीकी तरह शरीरपर ओढ़ लिया। ऐसा ही नील परिधान वाली बहिनोंने भी किया। आज यह बड़ा अनोखा दृश्य था। सफेद घाघरेपर लहराती हुई रंगीन चुनरी और घुघ्घीकी शोभा अत्यधिक निराली और आकर्षक थी। अब सभीने मिलकर नृत्य आरम्भ किया। बाईकी नृत्य शैलीका अनुकरण तो असम्भव ही था, पर कुछ-न-कुछ अनुकृति तो ही रही थी। अनुकृतिके अटपटेपनमें भी एक अनोखी स्वाभाविकता थी, जो सभीके लिये मनोरंजनकी वस्तु बन रही थी। घुघ्घीवाला यह भावावेश थोड़े दिनतक ही रहा।

घुघ्घीवाले भावावेशके शामित होनेके कुछ दिन बाद बाईने भाभीजीसे इत्र माँगा। भाभीजी तो मनचाही वस्तु प्रदान करनेके लिये सदैव तत्पर रहा करती थीं। उन्होंने इत्रकी शीशी लाकर बाईको दे दी। उस शीशीको देखते ही बाईने कहा—इत्रकी इतनी छोटी-सी शीशी?

शीशीका आकार बहुत छोटा था। वह छोटा आकार बाईके लिये विस्मयकी वस्तु बन गया। बाईने पहले भी कई बार ऐसी छोटी शीशियोंको काममें लिया था, परन्तु इस प्रकारकी टिप्पणी तो पहली बार ही की गयी। उनकी टिप्पणी सभीके लिये आश्चर्यकारिणी बन रही थी। बाईने कहा—क्या आपके यहाँ इत्र इतनी छोटी-छोटी शीशियोंमें दिया जाता है? उस राज्यमें तो बड़ी-बड़ी बोतलोंमें भरे हुए इत्रसे प्रिय सखी पथपर छिड़काव करती है। बड़ी-बड़ी झारियोंमें इत्र भरा रहता है। उस इत्रके छिड़कावसे सारा प्रान्त महमहा उठता है। उनमें सुगन्ध भी अनेक प्रकारकी होती है। वह गन्ध इतनी मधुर होती है कि सभीका मन लुभा लेती है।

बाईका इत्र-वर्णन सुनते-सुनते भाभीजीने हाथ जोड़ लिये और विनम्र स्वरमें कहनी लगीं—बाई! हमारे जगतमें तुम्हारे जगतवाली चीजें भला कहाँसे मिलेगीं? हमारे यहाँ छोटी शीशी मिल जाती है, यही बहुत है। वे बड़ी-बड़ी शीशियाँ और झारियाँ तो हमारी कल्पनामें भी नहीं आ सकतीं।

इस प्रकार भाभीजीने बाईको बातोंमें लगाकर भुला दिया और इसका

फल यह निकला कि बाईमें भाव-परिवर्तन दिखलायी देने लगा। भावोंका शमन और परिवर्तन तो हो गया, परन्तु पूर्व स्मृतिके आधारपर बाई बतलाने लगीं—उस राज्यमें कुछ ऐसी भी सखियाँ हैं, जो एकमात्र इत्र-सेवा करती हैं। उनके यहाँ इत्रका कभी अभाव होता ही नहीं। सहस्रों-सहस्रों कुञ्जोंमें इत्रोंके बड़े-बड़े भाण्ड प्रदान करने बाद भी उनके इत्र-भण्डारमें कभी न्यूनता आती ही नहीं। उनके इत्र-भण्डारमें इत्रोंके प्रकार भी अगणित हैं। विश्वमें जितने प्रकारके पुष्प हो सकते हैं, उनके पुष्पसार अर्थात् इत्र तो वहाँ हैं ही, इनके भी अनेक भेद-प्रभेद होते हैं। उनकी इत्र-सेवापर श्रीप्रिया-प्रियतम सदैव ही रीझे रहते हैं।

बाईके मुखसे इत्र-भण्डार और इत्र-वितरणका विस्तृत वृत्त सुनकर भाभीजीको, नर्मदा बाईको, सावित्री बाई तथा अन्य बहिनोंको बड़ा सुख मिला। ये बहिनें बीच-बीचमें छोटे-छोटे प्रश्न भी करती रहती थीं। प्रश्न करनेका उद्देश्य यही था कि बाईके भावोंको उभारना, जिससे अन्यान्य छोटी-मोटी बातें सुननेको मिल सके।

इस प्रकार कुछ दिन निकल गये, तब बाईमें एक और नवीन भावावेश हुआ। बाई स्नान करने जा रही थीं। स्नान कर चुकनेके बाद ज्यों ही स्वच्छ वस्त्र धारण करनेवाली थी तभी बाईने शशीसे कहा—मैं तो ये वस्त्र नहीं पहनूँगी।

शशीने समझनेके लिये पूछा—बाई! इसमें क्या हो गया है?

बाई—ये वस्त्र पुराने हैं।

शशी—भले पुराने हैं, पर आप जो पहनती है, वही हैं।

बाई—तुम क्या कह रही हो? मैं कभी भी पुराने वस्त्र नहीं पहनती। प्रतिदिन प्रिय सखी स्वयं बनाकर मुझे नये वस्त्र प्रदान करती हैं। मैं प्रतिदिन तीन बार स्नान करती हूँ और तीनों बार नये वस्त्र पहनती हूँ।

जाड़ेके दिन थे। नये वस्त्र न मिलनेके कारण बाई गीले कपड़ें ही बैठ गयीं। शशी घबरायी। वह भागी-भागी भाभीजीके पास गयी और उनको सारी बात बतला दी। भाभीजी पीले रंगकी साड़ी लेकर आयीं। बाईने साड़ी देखकर कहा—घाघरा कहाँ है? क्या मैं केवल चुनरी पहनूँगी।

भाभीजीने कहा—आज साड़ी पहन लो, कल घाघरा बनवा दूँगी।

बाईने कहा—मुझे साड़ी पहननी ही नहीं आती। प्रिय सखी मुझे घाघरा, चुनरी देती है और मैं तो वही पहनती हूँ।

भाभीजीके सामने धर्म संकट आ गया। वे बाईकी बातोंका अक्षरशः

पालन करना चाहती थीं, परन्तु कुछ क्षणोंके भीतर ही घाघरा, चुनरी भला कहाँसे आये? कहाँ बाईका वह भाव राज्य और कहाँ हमलोगोंका यह साधारण पाञ्चभौतिक जगत। भाभीजी मन-ही-मन लाडिलीजीसे प्रार्थना करने लगीं कि इस धर्म संकटसे मुझ उबारो और व्यक्त स्तरपर बाईसे कहने लगीं—तू आज यह पीली साड़ी धारण कर ले, कल मैं तेरे लिये घाघरा, चुनरी बनवा दूँगी।

भाभीजीके मुखसे आश्वासन पाकर बाईकी आँखोंमें अनुकूलताके भाव झलकने लगे और भाभीजीने स्वयं अपने हाथोंसे पीली साड़ी धारण करवा दी। अगले दिन बाईके लिये नवीन घाघरा और नवीन चुनरी तैयार होकर आ गयी। स्नानोपरान्त बड़े प्रसन्न मनसे बाईने घाघरा और चुनरी धारण किया।

एक सिद्धान्तकी बात है, जैसा राजा वैसी प्रजा होती है। ज्यों ही बाईने घाघरा पहना, उनकी देखा-देखी आश्रमवासिनी बहिनोंने, कीर्तन-मण्डली और भक्त-मण्डलीकी सदस्याओंने भी घाघरा-चुनरी धारण कर लिया और घाघरा-चुनरी धारण किये हुए ही विविध सेवायें सम्पन्न की जाने लगीं। चौकेमें रसोई बनाना, मन्दिरमें अर्चना करना, बगीचेमें फूल तोड़ना, भक्तोंमें प्रसाद बाँटना आदि-आदि सभी सेवायें घाघरा, चुनरी धारण किये हुए ही होतीं। चुनरी भी ऐसी कि उसके भीतर मुख छिपा रहता। छाती तक घूँघट निकला रहता। कोई पहचान ही नहीं पाता कि इस बहिनका नाम क्या है? शरीरकी बाहरी आकृतिके आधारपर भले कोई नामका अनुमान लगा ले, पर देखनेमें सभी ब्रजकी ग्रामीण महिलायें लगतीं। यह कहना अधिक ठीक लग रहा है कि इस वेश-भूषामें श्रीमहिला संघ ब्रजवासिनीयोंका आवास बन गया था। कोई भी नयी आनेवाली पहचान नहीं पा रही थी कि इनमें बाई कौन सी हैं? जो भी नयी बहिन श्रीमहिला संघमें आती, उसे यह दृश्य देखकर आश्चर्य होता। पहले किसीनें श्रीमहिला संघमें किसीको भी घाघरा-चुनरी धारण किये हुए कभी देखा ही नहीं था। वे स्वाभाविक ही प्रश्न करतीं—ये कौन हैं?

एकने उत्तर दिया—ब्रजवासिनी बहिनें हैं। वृन्दावनसे आयी हैं।

इतना सुनते ही सभी श्रद्धासे उन्हें प्रणाम करनी लगीं। फिर एकने पूछा—आज बाई कहाँ हैं? कीर्तन-मण्डलीकी बहिनें कहाँ हैं?

एकने उत्तर दिया—बाई यहीं हैं और कीर्तन-मण्डलीकी बहिनें सेवा कर रही हैं।

इसपर भी वह समझ नहीं पायी और बाईको खोजती रही। यह घाघरा लीला उसे भ्रममें डाले रही। जब रहस्य खुला, तब उस नवागन्तुका बहिनके

आनन्द और आश्चर्यका अन्त नहीं रहा और विस्फारित नेत्रोंसे, अधरोंसे बोल पड़ी—ब्रजवासिनी बहिनोंकी जय हो। फिर बाईकी ओर उन्मुख होकर वह कहने लगी—आप इसी वेशमें अच्छी लगती हैं। बड़ी प्यारी लगती हैं। आप सदैव इसी तरह घाघरा-चुनरी धारण किया करें।

जो भी इस वेशमें बाईको देखती वह अपनी एक-दो सहेलियोंको बुलाकर दिखलाना चाहती और कहती—चलो-चलो, चलकर देखो! बाईने कैसा अनोखा शृंगार धारण कर रखा है। घाघरा-चुनरी धारण करके पूर्णतः ब्रजवासिनी लग रही हैं। ब्रजवासिनी वेशमें उनकी अपार शोभा है। एक बार चलकर देख तो लो।

फिर तो नयनोंका लाभ लेनेके लिये बहिनोंकी श्रीमहिला संघमें भीड़ लग जाती। भावका यह प्रवाह पाँच दिन तक लगातार बना रहा। छठे दिन भाभीजीने बाईसे कहा—तुम्हारे भाव-राज्यकी बात दूसरी है। इस मर्त्यलोकके हम साधारण प्राणी एक निर्बल जीव है। तुम्हारे भावराज्यके अनुरूप कार्य करनेकी क्षमता हममें नहीं है। कोई रंक राजाकी बराबरी नहीं कर सकता। हम तो तुमसे क्षमाकी याचना कर रहे है।

भाभीजीके इस दैन्य पर क्या कहें, बाई रीझीं या भावराज्य रीझा; जो भी रीझा हो या दोनों रीझे हों, बाईमें तुरन्त भाव परिवर्तन आया और सामान्य स्तरपर आकर बाई भाभीजीसे कहने लगी—आप छोटे-छोटे तीस घाघरे बनवा करके मन्दिरमें चढ़ा दीजिये और प्रणाम कर लीजिये।

* * * *

एक दिनकी बात है। श्रीमहिला संघके हॉलमें बाई भाभीजीके पास बैठी हुई थीं। पासमें अन्य कई बहिनें भी थीं। परस्परमें भगवच्चर्चा हो रही थी। उस चर्चाकी रसमयतामें सभी डूबी हुई थीं। समयका भान भूला हुआ था। अचानक बाईका भाव बदला और वे चौक उठीं। विस्फारित नेत्रोंसे पूर्व दिशा की ओर देखती हुई चौका देनेवाले स्वरमें बोलीं—भाभीजी! भाभीजी!! यह देखिये! यह देखिये! क्या ही आश्चर्य है! जो कभी नहीं देखा, नहीं सुना, वह दिखलायी दे रहा है। समुद्र देवता उमड़े हुए चले आ रहे हैं। इनकी शीघ्र पूजा करनी चाहिये, अन्यथा वे सब कुछ बहा ले जायेंगे। मैं देख रही हूँ, अभी तो ये दूर है, परन्तु समुद्र देवताका नीला-नीला जल-ज्वार अपनी ओर बढ़ता चला आ रहा है।

इतना कहते-कहते बाई खड़ी हो गयीं और एकटक प्रवेश द्वारकी ओर देखने लगीं। श्रीबरसानेवालीका मन्दिर तो पास था ही। भाभीजीने तुरन्त वहाँसे

पूजनकी सामग्री मँगवाकर अर्चना करनी चाही। उसी समय भूलको सुधारनेके लिये सावधान करते हुए बाईने कहा—भाभीजी! इस सामग्रीके अलावा धानका लावा और नारियल आवश्यक है। समुद्र देवताकी पूजा धानके लावा और नारियलसे करनी चाहिये। ये दोनों सामग्री उस समय श्रीमहिला संघमें नहीं थी। तुरन्त बाजारसे मँगवायी गयी और बाईने समुद्र देवताकी सभक्ति पूजा भाभीजीसे करवायी।

पूजाके सम्पन्न होते-होते बाई समुद्र देवताके स्वरूपका वर्णन विस्तारसे सुनाने लगीं और बतलाया—भाभीजी! समुद्र देवताका प्रत्येक अमावस्याको लावा और नारियलसे पूजन करवाइयेगा। यह पूजन बड़ा फलप्रद है। समुद्रका दूसरा नाम रत्नाकर है। रत्नके भण्डार समुद्रके गर्भमें रहते हैं। जब समुद्र देवता यहाँ पधारे हैं, तो उनके साथ रत्नका भण्डार भी यहाँ आया है। आप भगवती लक्ष्मीके पूज्य पिताजी हैं। ये जहाँ रहते हैं, वहाँ श्रीलक्ष्मीजीकी कृपासे धन-धान्यकी कभी कमी नहीं रहती। घरके भण्डार भरे रहते हैं।

इतना सुनाते-सुनाते बाईने जयकारका घोष किया—श्रीसमुद्र देवताकी जय। श्रीजगन्नाथ स्वामी जय। श्रीसुभद्रा दीदीकी जय। श्रीबलदाऊ भैयाकी जय। श्रीसुदर्शन चक्रकी जय। श्रीजगन्नाथ पुरीकी जय।

जयकारके उपरान्त बाईने कहा—भाभीजी! श्रीजगन्नाथ स्वामी भी पधारे हैं। इनका भी पूजन कीजिये।

श्रीमहिला संघकी गुफामें भगवान् श्रीजगन्नाथजीका चित्र पहलेसे ही विराजित था। भाभीजी तत्काल गुफामें श्रीजगन्नाथ स्वामीजी पूजा करने चली गयीं। वहाँ भक्तिपूर्वक पूजन हुआ। विभिन्न वाद्योंकी ध्वनिसे गुफा गूँज उठी। मिष्टान्नका भोग लगाया गया, कीर्तन हुआ और आरतीके उपरान्त जयकार हुई—श्रीजगन्नाथ स्वामीकी जय। दीनबन्धु भगवान्की जय। सचल जगन्नाथकी जय। नीलाचल नाथकी जय।

बाईका कहना वस्तुतः अक्षरशः यथार्थ निकला। अवश्य ही यह यथार्थता भविष्यके गर्भमें छिपी हुई थी। इस यथार्थताकी सिद्धिको प्रमाणित करती है श्रीमद्भागवतकी कथा, जिसका वर्णन अगले अध्यायमें होगा।

* * * * *

श्रीभागवत कथा

व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजीने कलियुगके आरम्भमें राजर्षि परीक्षितको श्रीमद्भागवत महापुराणकी कथा सात दिनमें सुनाकर उन्हें परम पदका अधिकारी बना दिया था और आजके घोर कलिकालमें वही कथा सुनाते रहे हैं परम पूज्य श्रीडोगरेजी महाराज। उनकी कथाने यदि अनेकों भक्तोंको परमपदका अधिकारी बनाया तो अनेकों सांसारिकोंको परमपदकी ओर चलनेके लिये प्रेरित भी कर दिया। वर्तमान युगके शुकदेव पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजने सन् १९८६ में श्रीमहिला संघके लिये कलकत्तेमें कथा कही।

यह कथा श्रीमहिला संघके इतिहासमें एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। यह कथा-प्रसंग अनोखी आस्थाकी एक ऐसी गाथा है, जिसका पदे-पदे आशंकासे टकराव होता रहा है, परन्तु सर्वान्तमें विजयनी आस्था ही हुई। इस कथाका बीजारोपण तब हुआ, जब पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराज गोरखपुरकी गीतावाटिकामें पूज्या माँ (परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी सहधर्मिणी) को कथा सुना रहे थे।

गीतावाटिकामें सन् १९८५ की ८ से १७ फरवरीतक पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराज द्वारा श्रीमद्भागवत् महापुराणकी कथा कही गयी। इस कथाके आयोजनका एक आनुसांगिक उद्देश्य यह भी था कि इस कथासे इतना धन संग्रह हो जाय कि गीतावाटिकाके श्रीराधाकृष्ण साधना मन्दिरको व्यय-भारकी चिन्तासे मुक्ति मिल सके। इस कथामें भारतके कोने-कोनेसे लोग आये थे। जिनका कुछ भी लगाव श्रीभाईजी, श्रीबाबा एवं पूज्या माँके प्रति था, उन सभीके मनमें इस कथाको सुननेका चाव था। बहुतसे लोग अपनी पारिवारिक अथवा सांसारिक अड़चनोंके कारण नहीं आ पाये, किन्तु जो आये, उनकी भी संख्या कम नहीं थी। गीतावाटिका आगन्तुक अतिथियोंसे भरी हुई थी। चारों ओर बड़ा उत्साहपूर्ण वातावरण था।

इसी भागवत कथाको सुननेके लिये भागलपुरसे भाभीजी, मीरा और अन्य चार-पाँच माताएँ एवं बहिनें भी आयी थीं। सभी लोग श्रद्धापूर्वक कथा सुन रहे थे। इसी बीच चोपड़ाजीने अवसर देखकर मीरासे एक बात कही। भीमसेनजी चोपड़ा श्रीबाबाके अन्तरंग-अनन्य परिकर हैं। श्रीबाबाके प्रति

चोपड़ाजीकी जो निष्ठा और श्रद्धा, समर्पण और सेवा है, वह शब्दातीत है। कार्य-तत्परता, प्रखर-बुद्धिमता, व्यवहार-कुशलता आदि अनेक सद्‌गुणोंसे सुभूषित व्यक्तित्व होनेके कारण उनको कठिन-से-कठिन कार्योंमें सराहनीय सफलता मिली है। चोपड़ाजीको भली प्रकार ज्ञात था कि भागलपुरके श्रीमहिला संघकी आर्थिक स्थिति सोचनीय है और अर्थाभावमें कोई भी संस्था ठीक प्रकारसे न चल पाती है और न खड़ी रह पाती है। चोपड़ाजीने मीराको सुझाव दिया यहाँ पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजकी श्रीमद्भागवत महापुराणकी कथाके माध्यमसे गीतावाटिकाकी समितिको एक अच्छी धनराशिके प्राप्त हो जानेकी सम्भावना है। यदि तुमलोग भी कथा करवा लो, तो तुम्हारे संघका भी आर्थिक संकटसे उबार हो सकता है।

यह तो बड़ा सुन्दर सुझाव था। मीराके मनको भा गया। मीरा अवसर देखकर किसी प्रकार श्रीबाबाके पास पहुँच गयी और बोली—बाबा! चोपड़ाजीने ऐसा सुझाव दिया है, क्या यह ठीक रहेगा?

पूज्य बाबाने सुनते ही कहा—बिटिया! श्रीडोंगरीजी महाराज अच्छे पण्डित है, विद्वान हैं, सात्त्विकता तो उनके जीवनका सहज स्वरूप है। त्यागकी मूर्ति हैं। उनसे कथा करवानेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं दिखलायी देती। हर प्रकारसे लाभकी आशा है। चन्दा बाईसे जाकर कह दो कि वह डोंगरेजीसे इस विषयमें बात करे और उसका विवरण मुझे बतलाये।

श्रीबाबाके इन शब्दोंने मीराकी सद्‌भिलाषा पर एक मुहर लगा दी और वह कथाके सपने देखने लगी। वह तत्काल दौड़ी हुई भाभीजीके पास गयी और बोली—माँ! चोपड़ाजीने कथा करवानेका सुझाव दिया है, जिससे गीतावाटिकाकी तरह हमारी संस्थाकी भी आर्थिक समस्या दूर हो सके। बाबासे मिलकर मैंने इस बारेमें पूछा। बाबाने कहा कि यह कथा हो तो अच्छा ही है और आपको डोंगरेजीसे मिलकर इस विषयमें बात करनेके लिये कहा है।

भाभीजीको मीराकी बात सुनकर बड़ी हँसी आयी और उससे कहा—हवाई महल बनानेसे क्या लाभ? अपने भागलपुरमें कथा नहीं हो सकती। कथा करवानेमें लाखों रुपयोंकी जरूरत पहले ही पड़ जाती है। कथाकी व्यवस्थाके लिये न पैसा है, न व्यक्ति है और न अपनी पहुँच बड़े लोगोंतक है। तुम व्यर्थ ही हवामें उड़ती रहती हो।

भाभीजीके निराशापूर्ण उत्तरको सुनकर मीरा चोपड़ाजीके पास आयी। चोपड़ाजी भाभीजीसे मिले। चोपड़ाजीने बहुत समझाया, पर भाभीजीके मनमें

होनेवाली आशंकाकी शिलामें कहीं दरार भी नहीं पड़ पायी। वे हर बातको संदेहकी निगाहसे देख रही थीं। कार्यकी गुरुताको देख करके वे कल्पनाके रूपमें भी सोचनेके लिये तैयार नहीं थीं इस दिशामें एक कदम भी बढ़ाया जाय। यद्यपि भाभीजी इस ओर कुछ भी करनेके लिये तनिक भी प्रस्तुत नहीं थीं, परन्तु श्रीबाबाने कहा था कि डोंगरेजीसे मिलकर जो बात हो, वह बतलानी चाहिये। इस आदेशका मात्र पालन करनेके लिये भाभीजी पूज्य श्रीडोंगरेजीके पास गयीं और जाते समय अपनी बहिन सावित्री बाई सेक्सरिया और परम आत्मीयजन रामनिवासजी ढंढारियाको अपने साथ ले लिया। डोंगरेजीसे ढंढरियाजीने श्रीमहिला संघका संक्षिप्त परिचय देकर कथा कहनेके लिये प्रार्थना की। पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराज तो जहाँ-तहाँ कथा इसीलिये कहा करते थे कि संस्थाओंको, मंदिरोंको, विद्यालयोंको, चिकित्सालयोंको, विद्यार्थियोंको, विधवाओंको, अनाथोंको, साधुओंको वह सुविधा मिले, जिससे संस्थाओंको निज-निज कार्यक्षेत्रमें सफलता मिल सके और अभावग्रस्त लोग अपने जीवनको भगवान् श्रीशुकदेवजीके कथनानुसार सुन्दर और सफल बना सकें।

श्रीडोंगरेजी महाराजने इस अनुरोधको स्वीकार करते हुए कहा—एक सौ भजन करनेवाली माताओं-बहिनोंको भोजनके लिये प्रति मास एक सौ रुपये देनेकी योजना तुमलोग बनाओ, तभी मैं कथा करूँगा। आजके छः मास बाद पुष्करराजमें मेरी कथा होगी; योजना बनाकर वहाँ आओ, तब मैं कथाके लिये निश्चित तिथि बताऊँगा।

डोंगरेजीके पाससे उठकर सभी लोग चले आये। भाभीजी मन-ही-मन कुढ़ रही थी। हिन्दीमें एक कहावत है—चौबेजी गये थे छब्बे होने, पर वो बन गये दूबे। भाभीजी तो मात्र आदेश पालनके लिये गयी थीं; परन्तु स्थायी धन-कोषकी व्यवस्थाके स्थानपर स्थायी धन-व्ययके कार्यक्रमका प्रस्ताव सामने आ गया। अब भाभीजी कुढ़ते हुए मन-ही-मन सोच रही थीं, यह छोरी मीरा तो न जाने क्या-क्या खुराफात सोचती रहती है और उत्पात मचाती रहती है।

श्रीबाबाने कहा था कि पूज्य श्रीडोंगरेजीसे होनेवाली बात मुझे बतलाना, उसे ही बतलानेके लिये भाभीजी और मीरा ये दोनों लोग श्रीबाबाके पास गये। बाबाने मुस्कुराते हुए पूछा—डोंगरेजीसे बात हो गयी क्या? उन्होंने कथाके लिये कौन-सा समय दिया है?

श्रीबाबाने जो प्रश्न किया उससे तो स्पष्ट यही झलक रहा था कि उन्होंने

कथाके आयोजनको मन-ही-मन भली प्रकारसे स्वीकार कर लिया है और भविष्यमें वह कथा होनेवाली है। केवल शेष रह गया है, कथाकी तिथियोंका निश्चित करना। इसी सम्भावनाको लिये हुए बाबाने वैसा प्रश्न भाभीजीसे किया था। भाभीजीने बाबाको डोंगरेजीसे हुई भेंटका सारा विवरण सुना दिया और श्रीडोंगरेजीने जो शर्त लगायी थी, उस शर्तको सुनकर भी बाबाने कथाके आयोजनका समर्थन करते हुए उत्साहित ही किया।

अब अगले दिनकी बात है। अचानक डोंगरेजी महाराजने भाभीजीको बुलवाया और वे कई आत्मीयजनोंको साथ लेकर उनके पास गयीं। बैठनेपर श्रीडोंगरेजीने भाभीजीसे कहा—अगले वर्ष इन्हीं तिथियोंमें मैं आपके लिये कथा कहूँगा।

इतना कहकर श्रीडोंगरेजी महाराज एक लाल गमछेको हाथमें लेकर खोलने लगे। कई तहके बाद उस लाल गमछेमें-से ग्यारह हजार रुपये निकाले। ग्यारह हजार रुपयोंकी यह विशाल धनराशि देते हुए वे बोले—यह ग्यारह हजार रुपये मैं एक महिलाकी सहायताके लिये दे रहा हूँ। इस प्रकार सौ सेठोंसे ग्यारह-ग्यारह हजार रुपयोंकी धन राशि लेकर इकट्ठी कर लो। इस प्रकार संगृहीत धन-कोषके ब्याजसे भजन करनेवाली सौ माताओंको प्रति माह सौ रूपये जीवन-यापन करनेके लिये दिया जा सकेगा। मैं एक ऐसी महिलाहको जानता हूँ जिसके पतिकी मृत्यु हो चुकी थी और स्वयं जन्म दिये हुए चार पुत्रोंने उसे घरसे बाहर निकाल दिया था। वह असहाय माता अपनी पुत्रीके यहाँ रहकर जीवनके दिन काट रही थी। लड़कीके घर रहना उसे अच्छा नहीं लग रहा था, पर वह सर्वथा असहाय, करे भी तो क्या करे? उस असहाय माताको देखकर मेरे मनमें आया कि ऐसी विवश माताओंसे भगवन्नाम महामन्त्रकी माला जपवा कर उन्हें प्रति मास सौ रूपया देना चाहिये। आपकी संस्था महिलाओंके लिये ही है, अतः इस रूपमें मेरा आपको सहयोग है।

पूज्य श्रीडोंगरेजी द्वारा कथाकी स्वीकृतिका मिलना और एक विशाल धनराशिका प्राप्त होना मीराके मनको उल्लसित बना रहा था। वह तो भविष्यमें होनेवाली कथाके सपनोंमें डूबी हुई थी, परन्तु इससे ठीक उल्टी मनोदशा थी भाभीजीकी। भले मीरा कथाके सपने देख रही थी, भले डोंगरीजीने शर्तपर कथा स्वीकार कर ली थी और भले पूज्य बाबाने कथाके आयोजनका समर्थन किया था, इतना होकर भी भाभीजी इस कथाके लिये रंचमात्र भी प्रस्तुत नहीं

थीं। अपनी अनेक विवशताओंको सोचकर वे कथाके आयोजनको सर्वथा-सर्वथा दुस्साहसिक कार्य समझ रही थीं। अनेक प्रकारकी विवशताओं और आशंकाओंसे जिनका मन अत्यधिक आतंकित था, वे भाभीजी यही सोच रही थीं कि अपनेको डोंगरेजीसे कथा नहीं करवानी है। गीतावाटिकाकी कथाके पूर्ण होनेपर भाभीजी, मीरा तथा अन्य सभी माताएँ-बहिनें भागलपुर आ गयीं।

भागलपुर आकर भाभीजी बाईसे मिलीं और पारस्परिक चर्चाका सर्वप्रथम विषय रहा श्रीमद्भागवत कथाका आयोजन। आयोजनकी बात सुनकर बाईको आन्तरिक प्रसन्नता हुई और उन्होंने भाभीजीसे कहा—श्रीमद्भागवतकी कथाके लिये श्रीबाबाकी अनुमति मिल गयी, इससे बढ़कर और क्या चाहिये।

इस उत्तरने भाभीजीके मनमें खलबली मचा दी। उनसे नहीं रहा गया और तरह-तरहकी शंकायें, झंझटें, लाचारी आदि बतलाने लगीं। सबको शान्त मनसे सुनकर बाईने कहा—भाभीजी! इस कथाका आयोजन तो भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणासे हुआ है। चोपड़ाजी तो मात्र निमित्त बन गये हैं। आप उन श्रीकृष्णके खेल देखते जाइये। सब कुछ वे श्रीकृष्ण ही करेंगे। आपके चाहने या न चाहनेसे सर्वथा स्वतन्त्र उनका खेल है।

अब तो प्राय: प्रतिदिन ही कथाके प्रश्नपर बाई और भाभीजीके बीच ऐसी नोक-झोंक होने लगी जो सर्वभाव समर्पित भाभीजीके बारेमें सोचा तक नहीं जा सकता। जब-जब बातचीत होती, तब-तब बाई कथाका समर्थन करती और अनेक आशंकाओंसे ग्रस्त-त्रस्त भाभीजी अपनी विवशता दिखलाती हुई बाईसे कहतीं—तुझे सांसारिक जगतके रवैयोंकी तो जानकारी है नहीं। तू तो सदा अपने भाव-राज्यमें रहती है। तुझे क्या पता कि किसी कार्यका जिम्मा लेनेके बाद व्यावहारिक जगतमें कितनी परेशानियाँ उठानी पड़ती है। मैं अपने बड़े लड़के महेशसे इस बारेमें पूछूँगी कि क्या वह कथाके व्यवस्था-भारको सँभाल लेगा? मुझे तो उसकी व्यस्तताको देखते हुए तनिक भी आशा नहीं है।

मीराके लिये महेश भैया अत्यधिक सम्माननीय हैं और बहुत प्यार भी करते हैं, परन्तु वह यह भी समझ रही थी कि महेश भैया इस कामकी जिम्मेदारीको स्वीकार करेंगे नहीं। अपनी इस निराश मनोदशाको मीराने बाईसे कहा। बाईने मीराको बड़ी सान्त्वना दी और बोलीं—मीरा! कथा तो होगी ही, तुम भगवान् श्रीकृष्णका खेल देखती जाओ। महेश भैयाके ना कहनेसे कथा थोड़े

ही रूक जायेगी।

केवल एक बाईको छोड़कर सभीके मनमें कथाके होने या न होनेके बारेमें न्यूनाधिक झंझावात उठा हुआ था। झंझावातके झोंकोंमें उठते-गिरते हुए भाभीजी, मीरा तथा अन्य सहयोगी बहिनोंके दिन निकल रहे थे कि एक दिन बाईने स्वप्नमें देखा—एक बहुत बड़ा स्थान है। वह फूलोंसे सजा है। वहाँ एक बहुत ऊँचा मञ्च है। उस मञ्चपर एक सिंहासन बना है। वह सिंहासन अर्ध गोलाकार है। सिंहासनके पीछे एक बड़ा वृक्ष है। वृक्षके नीचे भगवान् विष्णु खड़े हैं। तभी एक ऋषि-जीवन महापुरूष पधारे। वे नाटे हैं और मुखमण्डल गोल-गोल है। उनके चेहरेपर अपार तेज है। नग्न बदनपर जनेऊ दीख रही है। धोती ऊँची-ऊँची है और कंधेपर लाल रंगका गमछा है। थोड़े-थोड़े झुके हुए और हाथ जोड़े हुए वे चले आ रहे हैं। वृक्षके नीचे भगवान् विष्णुके चरणोंमें विराजित होकर वे भगवत्कथा कह रहे हैं। उनके दोनों ओर अनेक ऋषि-मुनि मञ्चपर सुशोभित हो रहे हैं तथा सामने सहस्त्रों स्त्री-पुरुष बैठे हुए हैं। भीड़का अन्त दिखलायी नहीं देता है। अथाह भीड़ होते हुए भी अपार शान्ति है। केवल कथाके शब्द सभामें गूँज रहे हैं। सभी श्रोतागण व्यासासीन तेजस्वी महापुरुषकी ओर एकटक देखते हुए कथा सुन रहे हैं। कथामें अमृत बरस रहा है। उस भीड़में मैं बैठी हूँ, भाभीजी हैं, और मेरी माँ हैं। कीर्तन-मण्डलीकी बहिनें भी पीला-परिधान धारण किये बैठी है। कथाका दृश्य और वातावरण अत्यधिक प्रभावोत्पादक है।

अपना सपना मीराको सुनाकर बाईने कहा—अरी! यह परम शुभका सूचक है। तुम तनिक भी निराश मत होना अब कथा होनेमें संदेह है ही नहीं।

मीराने कहा—बाई! आपने-अपने स्वप्नमें जिन व्यासानीन कथावाचकजीका वर्णन किया है, वे तो श्रीडोंगरेजी महाराज हैं। आपने उनको देखा नहीं हैं, अब स्वप्नमें आपने देख लिया। मैंने उन्हें देखा है, जैसा उनका तेजस्वी व्यक्तित्व है, वही आपने स्वप्नमें देखा है।

बाईने धीरेसे कहा—मैं नहीं देखती हूँ। श्रीकृष्ण जो दिखाते हैं, वही मेरे समक्ष आता है। मैंने श्रीडोंगरेजी महाराजको नहीं देखा तो क्या हुआ, उन भगवान् श्रीकृष्णने तो देखा ही है। उन्होंने यह स्वप्न दिखला करके कथाका पूर्वाभास करवाया है। यह तो होनेवाली कथाका पूर्व संकेत है। अब तो कथा होकर ही रहेगी। इसको कोई टाल ही नहीं सकता। इस कथाका श्रेय किस

भाग्यशालीको मिलेगा, परदेमें छिपा हुआ है, परन्तु कथाका खेल तो होकर ही रहेगा।

बाईका स्वप्न सुनकर और बाईकी आस्था देखकर मीराको भी यह पूर्ण विश्वास हो गया कि कथा तो होकर ही रहेगी। कथाके सम्बन्धमें बात करनेके लिये भाभीजीने अपने बड़े सुपुत्र महेशके पास कलकत्ता जानेका कार्यक्रम बना लिया। साथमें बाई, मीरा तथा अन्य कुछ बहिनें थीं। कलकत्तेमें आदरणीय श्रीमोहनलालजी नोपानी मिलनेके लिये आये। श्रीनोपानीजी कलकत्तेके एक अति प्रतिष्ठित व्यक्ति थे और भाभीजीके देवर भी लगते थे। भाभीजीने नोपानीजीसे कथाके सम्बन्धमें पूछा। नोपानीजीने कहा—भागलपुरमें यदि कथा होती है, तो वह स्थान मेरे लिये नवीन है। वहाँ मेरे द्वारा कोई सहयोग बन पायेगा, यह कहना कठिन है। यदि कलकत्तेमें कथा हो तो मेरा पूरा सहयोग होगा। जहाँतक महेशकी बात है, उसकी व्यस्तता मैं देख रहा हूँ और उससे सहयोगकी सम्भावना दिखलायी नहीं देती।

श्रीनोपानीजीके जानेके बाद फिर भाभीजी और बाईमें नोक-झोंक शुरू हो गयी। भाभीजीने कहा—महेश दायित्व सँभालेगा नहीं, नोपानीजी सामने आयेंगे नहीं, अपने पास खर्च करनेके लिये हजार रूपया भी है नहीं। मीरा और तुम कथाकी ऊँची-ऊँची बातें सोच और कर रही हो। तुम जानो तुम्हारा काम जाने। यदि कथा हुई तो उस समय मैं भागलपुर ही नहीं रहूँगी। समाजके लोगोंका ताना कौन सहेगा? तुम कमरेमें बैठ जाओगी, मीरा छोरी कहलायेगी, बोलीकी सारी बौछार मुझपर होगी। पता नहीं तुमलोगोंके दिमागमें रेंगता हुआ यह कीड़ा कब बाहर निकलेगा।

बाईने पूछा—भाभीजी! क्या आप कथाके समय सचमुच नहीं रहेंगी?

बहुत झुँझलाते हुए भाभीजीने कहा—समाजमें सब लोग सवाल मुझसे ही तो करेंगे। जब खर्चेका हिसाब सामने आयेगा, उसका चुकता-पायी करना मेरे मत्थे पड़ेगा, तब मैं क्या जवाब दूँगी? मेरी बात मानो तो इस कार्यको दूरसे ही हाथ जोड़ लो। न जाने भगवान् तुमको सुबुद्धि कब देगा?

बाईने सरलतासे कहा—आप इतना क्यों बिगड़ रही हैं? आपकी प्रसन्न अनुमतिके बिना तो हमें कथाका आयोजन करना ही नहीं है। कथा तो तभी होगी, जब आपकी सहर्ष सहमति रहेगी।

उसी झुँझलाहटमें झनझनायी हुई भाभीजी उठकर दूर चली गयीं। उनके जाते

ही मीराने बाईसे पूछा—आज तो आपने भी माँकी हाँमें हाँ मिला दी। क्या आपकी आस्थामें कुछ अन्तर आ गया है?

बाईने कहा—मीरा! तुम सचमुच पगली हो। क्या कभी ऐसा हो सकता है कि भाभीजीकी उपेक्षा करके हमलोग कोई कदम उठावें और कोई कार्य करें। इस समय भाभीजीकी जैसी उखड़ी-उखड़ी मन:स्थिति थी, उसको देखते हुए एक बार यही कहना उचित था।

कलकत्तेमें अवसर देखकर भाभीजीने अपने पुत्र महेशका भी मन टटोला, पर वे कथाके दायित्वको स्वीकार करनेमें अत्यधिक झिझक रहे थे। भाभीजी जिन दो व्यक्तियोंके सहारेसे कथाके आयोजनका कुछ साहस कर सकती थीं, उन दोनों ही व्यक्तियोंसे अर्थात् अपने पुत्र महेश और श्रीनोपानीजीसे सहयोगकी आशा समाप्त हो गयी। पुन: बात बाईके सामने आयी। उस नितान्त निराशा पूर्ण परिस्थितिमें बाईके लिये एकमात्र आशा और सहारा बाबाका था। इसी आशा और सहारेपर टिकी हुई बाईने कहा—कथाके आयोजनकी आज्ञा बाबासे ली गयी है और उन्होंने प्रसन्न मनसे यह आज्ञा दी है। अब कथाके सम्बन्धमें हाँ या ना करनेका अधिकार हमारे पास नहीं है। यदि कथा नहीं करवानी है तो इसके लिये बाबासे ही आज्ञा लेनी पड़ेगी। पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजसे ग्यारह हजार रुपयेकी धनराशिका ले लिया जाना और कथाके बारेमें एक-दो बार मिलकर चर्चाका हो जाना, इस प्रकारसे बात इतनी बढ़ चुकी है कि अपनी असमर्थता दिखलानेके लिये भी बाबाकी आड़ आवश्यक है; अत: इसके बारेमें बाबासे ही निर्णय लेना चाहिए और मीराको गोरखपुर भेजना चाहिये।

यह तय हो गया कि मीरा गोरखपुर जायेगी और जाकर बाबासे बात करेगी, पर भाभीजीके मनमें बड़ी आशंका थी कि यह मीरा कहीं केवल एक पक्षीय बात न करे। इस आशंकासे अत्यधिक दबी हुई भाभीजीने मीराको आदेशात्मक स्वरमें कहा—तुम केवल एक तरफा बात मत करना। जो बात है सारी बात साफ-साफ कहना। मनमानीपना मत करना और यह भी कहना कि माँ कथाके पक्षमें सर्वथा नहीं है। पक्षमें न होनेके सारे कारण बतलाना, फिर जो बाबा कहेंगे, वह ठीक ही कहेंगे।

मीराने भाभीजीकी बात नत-मस्तक होकर स्वीकार कर लिया। बाईने भी यही कहा कि भाभीजीके आदेशका अक्षरश: पालन करना। मीरा कलकत्तेसे गोरखपुर आयी और आते ही चोपड़ाजीको सारी बात बतायी। चोपड़ाजीका

मस्तिष्क अत्यधिक सक्रिय हो उठा कि कैसे भागलपुरके श्रीमहिला संघको पर्याप्त धनराशि मिल जाय और एतदर्थ पूज्य श्रीडोंगरीजी महाराजकी कथा हो जाय। सोचते-सोचते तुरन्त ही चोपड़ाजीने कहा—मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनो। यदि भागलपुरमें कथा होती है तो वहाँ पर्याप्त धन चढ़ावेके रूपमें नहीं आ पायेगा। कथा तो वहीं होनी चाहिये जहाँ श्रद्धालु धनिकोकी संख्या अधिक हो और यह स्थान कलकत्ता ही है। महेश भैयाकी आवश्यकता तब होती, जब कथा भागलपुरमें होती। यदि कथा भागलपुरके स्थानपर कलकत्तेमें होती है तो वहाँ श्रीनोपानीजी हैं तथा अन्य अनेक परिचित जन हैं, जो कथाकी व्यवस्थाको सँभलानेके लिये आगे आ सकते हैं। अपना मुख्य उद्देश्य तो श्रीमहिला संघके लिये धन संग्रह है और यह कार्य कलकत्तेमें ही हो सकता है।

चोपड़ाजीकी बात मीराके मनमें गहरे रूपसे पैठकर बैठ गयी। उसने चोपड़ाजीको साथ लेकर श्रीबाबासे बातचीत की। बातचीत करते समय मीराने थोड़ी चतुराई अवश्य बरती। उसने भाभीजीकी सारी बात बतलायी तो अवश्य, किन्तु संक्षेपमें बतलायी। इसी अवसरपर चोपड़ाजीने सहारा लगाया और बाबाने कलकत्तामें कथा करवानेके लिये अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी।

जिस समय मीरा गोरखपुरके लिये चलने लगी, तब बाईने उससे एकान्तमें कहा था कि यदि बाबाकी ओरसे अनुमति मिल जाये तो तुम भगवान् श्रीकृष्णका नाम लेकर आगे कदम बढ़ा लेना। बाईके इस कथनके आधारपर मीरा पुष्करजी चली गयी और वहाँ पूज्य श्रीडोंगरेजीसे मिलकर यह निश्चित कर लिया कि श्रीमहिला संघके लिये होनेवाली कथा कलकत्तेमें २८ फरवरी, १९८६ से ९ मार्च १९८६ तक होगी।

पूज्य श्रीडोंगरेजीसे स्वीकृति मिलते ही मीरा बाबाको सूचना देनेके लिये गोरखपुर आ गयी। अवसर पाकर मीराने बाबाको बतला भी दिया कि आगामी फाल्गुन मासमें पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजकी कथा कलकत्तेमें होगी।

इसी यात्राकी बात है। सूर्यास्तके समय बाबा भिक्षा कर रहे थे और चोपड़ाजी बाबाकी पत्तलमें कभी दाल, कभी भात, कभी साग परोस रहे थे। आज बाबाकी मुद्रा गम्भीर थी। वातावरण एकदम शान्त था। कोई कुछ भी बोल नहीं रहा था। चोपड़ाजी किसी वस्तुके लिये पूछते तो बाबा सिर हिलाकर अथवा हाथके इशारेसे हाँ या ना कर देते। उसी समय भिक्षा करते-करते अचानक श्रीबाबाने अपनी गरदन ऊँची की और एक ओर देखते हुए पूछा—यह

कौन है?

चोपड़ाजी—भागलपुर वाली मीरा है।

पूज्य बाबा—यह यहाँ क्यों बैठी है?

चोपड़ाजी—बाबा! यह तो आपको यह बतलानेके लिये आयी हुई है कि श्रीडोंगरेजी महाराजकी कथा कलकत्तेमें होगी।

तभी एक विचित्र आवेशसे आविष्ट हुए गम्भीर स्वरमें बाबा बोल पड़े—यह लड़की श्रीमहिला संघको पच्चीस लाख रुपये देनेवाली है।

चोपड़ाजीने कहा—बाबा! आप क्या कह रहे हैं? यह भला पच्चीस लाख देगी? यह पूरी बिक जायेगी तो भी पच्चीस सौ रूपये नहीं दे पायेगी। फिर यह पच्चीस लाख कहाँसे लायेगी।

इस बार बाबा बहुत जोरसे कड़कते हुए बोले—चोपड़ा-खोपड़ा! तुम्हारी बुद्धि सदा ही उल्टी रहती है। मैं कह रहा हूँ कि यह पच्चीस लाख देगी।

पूज्य बाबाने जिस कड़कती आवाजमें गरजते हुए कहा था, उसका प्रतिवाद या प्रतिकार भला कौन करता? बाबा चुपचाप भिक्षा करने लगे और कुटियामें सन्नाटा छा गया।

अगले दिन मीराने कथाकी व्यवस्थाके लिये कलकत्ता जानेका निश्चय किया और जानेके लिये बाबासे अनुमति माँगी। बाबाने मीराके साथ चोपड़ाजीको भी भेज दिया। वे जानते थे कि चोपड़ाजीके रहनेसे बहुत-सी बाधाएँ दूर हो जायेगी और कथाका आयोजन भली प्रकारसे सम्पन्न हो जायेगा।

गोरखपुरसे प्रस्थान करनेके पूर्व मीराने फोन द्वारा भागलपुर सूचना दे दी—बाबाने कथाके लिये सहर्ष सहमति प्रदान कर दी है। पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजने कलकत्तेमें कथा करना स्वीकार कर लिया है। मैं बाबाके कथनानुसार कथाकी व्यवस्थाके लिये चोपड़ाजीके साथ कलकत्ता जा रही हूँ।

इस समाचारको सुनकर भाभीजीने अपने मनका संतुलन एक बार सर्वथा खो दिया। उनकी भावनाएँ अत्यधिक क्षुब्ध हो उठीं। उन्होंने आक्रोश भरी वाणीमें बाईसे कहा—भागलपुर जो अपना घर है, वहाँ कथा करवाना सम्भव लग ही नहीं रहा था; और कलकत्ता, जो सर्वथा पराया स्थान है, वहाँ कथा करवानेकी सोचना मानो पानीपर बालूकी दीवाल उठाना है। मैं तो बहुत परेशान हूँ कि तुमलोग तो पानीमें आग लगाने जैसी बात सोच रही हो। मेरी बात तुमलोगोंके कानमें घुस ही नहीं रही है। अब भगवान् ही लाज रखेंगे। तुम भले

मेरी हाँ-में-हाँ न मिलाओ, पर मैं अच्छी तरह यह भी समझ रही हूँ कि तुम्हारी सह पाकर ही मीरा इतनी उछल रही है। तुमलोग किसके बलपर उछलनेका इतना साहस कर पा रही हो?

बाईने बड़े मीठे शब्दोंमें कहा—भाभीजी! इतना धैर्य मत खोइये। सारा कार्य श्रीमहिला संघके हितके लिये ही हो रहा है और हो रहा है एकमात्र भगवान् श्रीकृष्णके बलपर। आकाशके शून्य अवकाशमें बड़े-बड़े अक्षरोंमें लिखा हुआ बार-बार मेरे सामने आ रहा है 'कथा होगी, कथा होगी'। मैं समझ रही हूँ कि अपने पास जागतिक स्तरपर ऐसी कोई सामर्थ्य नहीं है कि इस कथाके दायित्वको स्वीकार करनेकी बात सोची जाय, किन्तु आप ठण्डे दिलसे विचार करते हुए अपनी आस्थाको भगवान् श्रीकृष्णपर टिकाएँ और विश्वास करें उन सर्व-समर्थ भगवान् श्रीकृष्णके बलपर यह कथा सुन्दर और सफल होगी।

बाईके इन भाव भरे आस्था पूर्ण शब्दोंको सुनकर भाभीजीके मनको बड़ा टिकाव मिला और अब वे श्रीराधारानीसे मन-ही-मन प्रार्थना करने लगीं—मेरी लाडिली! मीराकी लाज तेरे हाथमें है।

कलकत्ते पहुँचकर मीरा और चोपड़ाजी अपने सभी आत्मीयजनोंसे मिलने लगे। भले कोई अपरिचित हो, यदि धार्मिक और सामाजिक कार्यमें उनकी रुचि हो, तो उनसे भी मिलनेमें संकोच नहीं किया गया। मिलनेपर कइयोंने सहयोगका आश्वासन दिया, किन्तु अधिकांश लोगोंने हतोत्साहित करनेका ही प्रयत्न किया। अल्प मति, अल्प गति, अल्प दृष्टि और अल्प आस्थावाले सांसारिक लोग भले हतोत्साहित करनेका प्रयत्न करें, किन्तु मीरा और चोपड़ाजीके भीतर परम सिद्ध संत पूज्य श्रीराधा बाबा और दिव्यभावस्वरूपा रुक्मिणी बाईकी आध्यात्मिक शक्ति भरी हुई थी और उसी शक्तिके बलपर अनेक प्रतिकूलताओंके मध्य रास्ता बनाते हुए वे आगे बढ़ते चले जा रहे थे। इस कार्यमें अनेक लोगोंने अपनी क्षमताके अनुसार सहयोग दिया, उनमें सात व्यक्तियोंके नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं—

(१) श्रीजीवनरामजी अग्रवाल (२) श्रीचन्द्रकान्तजी फोगला (३) श्रीरामनिवासजी ढंढारिया (४) श्रीवासुदेवजी झुनझुनवाला (५) श्रीसुशीलजी मूँधड़ा (६) श्रीकिशनलालजी भुवालका (७) श्रीविद्याबाई मस्करा।

इन सातमें भी श्रीजीवनरामजी अग्रवालकी सराहनाके लिये शब्द नहीं।

भागवत कथाके कार्यको सँभालनेके लिये ये अपना घरबार और व्यापार छोड़कर नौ मासतक निरन्तर लगे रहे। उनकी सेवाका पुरस्कार तो वे भगवान् श्रीकृष्ण ही देंगे।

बहुत प्रयत्न करनेपर सेना-विभाग वालोंने कथाके लिये आई० टी० एफ० ग्राउण्ड देना स्वीकार कर लिया। इसी स्थानपर पूज्य श्रीरामसुखदासजी महाराजकी कथा होनेवाली थी। स्वामीजीकी कथा जिस दिन पूर्ण हुई, उनके दस दिन बाद ही भागवत कथा होनेकी तिथि निश्चित थी।

स्वामीजीकी कथा करवानेवालोंने अपना सामान हटानेमें पाँच दिन लगा दिया। अतः मीराके पास सभा स्थलकी व्यवस्थाके लिये केवल पाँच दिन रह गये, जबकि कम-से-कम हाथमें बारह-तेरह दिनका होना आवश्यक था। भगवान्का नाम लेकर कार्य शुरू किया गया। कथाके लिये केवल तीन दिन शेष रह गया था, पर कोई भी व्यवस्था सम्यक् रूपसे पूर्ण नहीं हो पायी थी। व्यवस्थाके कार्य विस्तारका अनुमान लगाकार मीराका मन सचिन्त था। अगले दिन भागलपुरसे बाई भी अनेक बहिनोंके साथ कलकत्ते आ गयीं। भाभीजी तो एक माह पहले ही आ चुकी थीं। बाईके आनेपर मीरा उन्हें प्रणाम करने गयी। बाईको मीराने सादर प्रणाम किया। बाईके नेत्रोंसे अमित और अपूर्व वात्सल्य झर रहा था। बाईने मीराकी सचिन्त आँखोंसे परिस्थितिकी विकटताको भाँप लिया और मीराको पूर्ण आश्वस्त बनानेके लिये गम्भीर स्वरमें बोलीं— मीरा! तुम मुझे प्रणाम कर रही हो, तो एक बात अपनी गाँठमें बाँध कर रख लो। कथाके आरम्भसे लेकर अन्ततक किसीकी बातकी सफलतामें आशंका मत करना। आशंका ही असफलता प्रदान कर देगी। आशंका तुमको छूने भी न पाये। तुम देखोगी कि भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे असम्भव लगनेवाले कार्य भी पलक मारते-मारते सहज ही सम्पन्न हो जायेंगे। तुमपर कार्यका बहुत बड़ा भार है, अतः मेरे पास बार-बार आनेकी आवश्यकता नहीं है।

बाईके वात्सल्य पूर्ण हृदयसे फूट पड़नेवाली इस दैवी वाणीने मीराके अन्तरमें अटूट आस्था और अदम्य उत्साहका सृजन कर दिया। इस विश्वासको डिगा देनेकी क्षमता किसी भी विकट प्रतिकूलतामें नहीं रह गयी थी। अडिग विश्वास लिये हुए वह मीरा व्यवस्थाके कार्यमें जुट गयी। कथासे एक दिन पहले पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजके शुभागमनने मीराके उत्साहको और बढ़ा दिया।

मीरामें उत्साह तो पूर्ण था, किन्तु व्यवस्थाके कार्यकी सम्पन्नता पर्याप्त श्रम और समयकी अपेक्षा रखती ही है। पण्डालकी व्यवस्था पूर्ण करनेके लिये जितना कार्य शेष था, उसके लिये कम-से कम तीन दिन जरूरी थे। घूमते-फिरते लोग आते-जाते रहते थे और उनके मुखसे एक ही बात निकलती थी कि कलतक पण्डाल पूरा हो ही नहीं सकता और अब अधूरे पण्डालमें कथा करवानी पड़ेगी। एक ओर कथा होती रहेगी और दूसरी ओर सजावट चलती रहेगी। कुछ लोगोंने यह भी कहा कि कथाकी तिथि तीन दिन बढ़ा देनी चाहिये। सबसे बड़ा प्रश्न था मञ्चका? भले पण्डालमें बिछावन, बिजली, पंखे, टी.वी. आदिकी व्यवस्था न हो, परन्तु कम-से-कम कथा-व्यासजीके लिये मञ्च तो तैयार होना ही चाहिये। वह मञ्च भी तैयार नहीं था। प्रत्येक ओर देखनेपर आँखके सामने निराशाजनक अँधेरा था। दिन बीत गया। अब कथा होनेमें मात्र बारह घण्टे रह गये थे। सभा-स्थल लगभग पौने दो लाख वर्ग फीट था। इसपर झाड़ू भी नहीं लगी थी। झाड़ू लगाना एक दो व्यक्तियोंके वशकी बात भी नहीं थी। झाड़ू लगनेके बाद ही बिछावन हो सकता था। व्यवस्था सँभालनेके नामपर कोई भी स्वयं सेवक नजर नहीं आ रहा था।

परिस्थितिकी प्रतिकूलता भयंकर रूपसे छायी हुई थी, तभी प्रभुकी अपार कृपाका अप्रत्याशित रूपसे अनुमानातीत और अनोखा प्रकाश हुआ। रात्रिके दस बजे चालीस मजदूर बीस झाड़ू और दो टंकी चायकी लेकर आये। ये चाय पीते जायें और झाड़ू लगाते जायें। इन्होंने आधा घण्टामें सारे सभा-स्थलपर झाड़ू लगाकर भली प्रकार सफाई कर दी। इस कार्यके पूरा होते-होते पच्चीस नवयुवकोंका दल आया। वे खूँटा गाड़कर रस्सी बाँधने लगे और पण्डालकी सजावटमें लग गये। इन्हीं युवकोंने चटपट मञ्च भी बना दिया। देखते-देखते व्यासासन तैयार हो गया। अद्धरात्रिके समय बिजलीवाले काममें लग गये। सुबह होते-होते सारे पण्डालमें बिजलीके पंखे और बल्व यथास्थान लटका दिये गये और टी.वी. वालोंने भी अपना कार्य पूरा कर लिया।

प्रभुके अहैतुक अनुग्रहसे इन मजदूरों और युवकोंमें उस अपार भगवदीय सामर्थ्यका ऐसा संचार हो गया कि जो कार्य पचास-साठ घण्टेमें होता, वह उन्होंने पाँच-छ घण्टेमें कर दिया। इसी मध्यरात्रिमें चन्दू भैया (चन्द्रकान्तजी फोगला) ने मीराको बुलवाया। चन्दू भैया श्रीभाईजीके दौहित्र हैं और इन्हें बचपनसे ही श्रीभाईजी और श्रीबाबाका अत्यधिक लाड़-प्यार मिला है। इन्हें

अन्यजनोंसे यही सूचना मिल रही थी कि पण्डालकी तैयारीमें कम-से-कम तीन-चार दिन और लग सकते हैं, अतः कथामें विलम्ब करना ही चाहिये। इस विलम्बकी आशंकासे एक बार तो चोपड़ाजीकी भी आस्था डिग गयी। मीराको देखते ही चोपड़ाजीने पूछा—कथा कबसे होगी?

मीराने सहज उत्तर दिया—कलसे। आप इस प्रकार क्यों पूछ रहे हैं?

चोपड़ाजी—प्राप्त सूचनाके अनुसार पण्डालके तैयार होनेमें कम-से-कम तीन चार-दिन लगेंगे।

मीराने कहा—जो भी हो, कथा कलसे ही होगी।

चोपड़ाजी मीराका उत्तर सुनकर साश्चर्य नेत्रोंसे मीराकी ओर देखते रह गये। तभी चन्दू भैयाने पूछा—यह बात छोड़ो, पहले मेरे प्रश्नका उत्तर दो। कथाकी समाप्तिपर तुमको कितने रुपये बचनेकी आशा है?

मीराने झटसे उत्तर दिया—पच्चीस लाख।

चन्दू भैया—क्या खर्च काटकर पच्चीस लाख?

मीरा—सचमुच सारे बिल चुकानेके बाद श्रीमहला संघको पच्चीस लाख रूपये मिलेंगे।

चन्दू भैया—किस आकाशमें उड़ रही हो? थोथी भावुकतासे बात नहीं बनती। मैंने अपने दिन पूज्य नानाजी और बाबाके पास बिताये हैं। वहाँके अनेक उत्सवोंको मैं देखता रहा हूँ। मैं तो इसीको बहुत बड़ा लाभ समझता हूँ कि कथाके अवसरपर खर्च होनेवाले सारे बिलोंको चुकता कर दिया जाय।

बड़े विनम्र किन्तु दृढ़ स्वरमें मीराने कहा—आप देखते जाइये कि भगवान् श्रीकृष्ण क्या करते हैं।

मीराकी भावुकता भरी बातें सुनकर चन्दू भैया बहुत अधिक विचार-ग्रस्त हो गये। मीराका लड़कपन उन्हें बहुत नापसन्द था। समझानेके तौरपर उन्होंने पूछा—तुम किस बलपर ऐसा हौसला कर रही हो?

मीराने कहा—मेरे तो एक ही बल है और वे हैं बाबा। मैं बाबाके शब्दोंको ही दोहरा रही हूँ कि यह लड़की श्रीमहिला संघको पच्चीस लाख रुपये देगी। मेरी तो विनम्र प्रार्थना यही है कि आप भगवान् श्रीकृष्णके खेल देखते जाइये। बस, आपका सहयोग बना रहे। मैं यही मानती हूँ कि आपके रूपमें आपके नानाजी अर्थात् श्रीभाईजी और श्रीबाबा ही हमारे कार्यको सँभाल रहे हैं।

अब चन्दू भैयाके पास कुछ कहनेके लिये जगह नहीं रही। मीरा चन्दू

भैयाके पाससे पुन: पण्डालमें आ गयी और सूर्योदयतक वहाँ रहीं। वह मन-ही-मन भगवान्‌को आर्द्र अन्तरसे साधुवाद दे रही थी कि आपकी अहैतुकी कृपा और असम्भव-सम्भव-कारिणी-शक्तिने अधूरे काम पूरे कर दिये और कथाके योग्य पण्डालकी सजावट हो गयी। वह तुरन्त जाकर स्नान आदिसे निवृत्त होकर बाईके पास गयी। बाईको प्रणाम करके पण्डालमें आ गयी। पण्डालकी सुसज्जा, उसमें भी मञ्चकी व्यवस्था देखकर मीराका मन आह्लादसे भर गया। उसी समय उसने देखा कि पण्डालमें लगभग एक सौ स्वजन खड़े थे और सब विस्मय भरी दृष्टिसे मीराकी ओर लपक-लपक करके प्रश्न कर रहे थे—तुमने क्या आश्चर्य कर दिया? क्या भगवान् विश्वकर्मा पण्डालकी सजावट करनेके लिये आये थे, जिन्होंने एक रातमें द्वारका नगरीका निर्माण कर दिया था? तीन-चार दिनमें पूरा होनेवाला कार्य रातके पाँच-छ घण्टेमें कैसे पूरा हो गया?

मीरा सहास्य, सस्नेह सभीको एकमात्र यही सविनय उत्तर देती—करनेवाले तो प्रभु हैं, पर प्रभु निमित्त आपलोगोंको ही बना रहे हैं।

आनेवाले आत्मीयजनों, श्रद्धालु भक्तों, दर्शनार्थी व्यक्तियोंका मीरा प्रसन्न मनसे स्वागत कर रही थी और उसके संकेतके अनुसार स्वयं-सेवक लोग सभीको यथास्थान बैठा रहे थे। महारानी विजयाराजे सिंधिया और आदरणीय श्रीमती अरूणा देवी डालमियाको मीराने स्वयं साथ जाकर मञ्चपर बैठाया। इसी समय पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजका पण्डालमें शुभागमन हुआ। जय-जयकारकी ध्वनिसे पण्डाल गूँजा उठा। भगन्नाम संकीर्तनके मधुर स्वरसे चारों दिशाएँ निनादित हो रही थीं। पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराज ज्यों ही मञ्चपर विराजित हुए, उसी समय बाईका पण्डालमें शुभागमन हुआ। व्यासपीठ बैठे हुए पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजको बाईने सभक्ति प्रणाम किया फिर संगकी सभी बहिनोंने प्रणाम किया। बाईको महिला कक्षमें यथास्थान सम्मानपूर्वक बैठाया गया। कथाके प्रथम दिवसका यह सुन्दर महारम्भ ही हमारी महान सफलताका पूर्वाभास बन गया। सारी प्रतिकूलताएँ अद्भुत रीतिसे अनुकूलतामें बदल गयी थीं। इस परिणतिने उन लोगोंकी भी भावनाएँ-कामनाएँ बदल दीं, जो कथाके सम्बन्धमें भिन्न-भिन्न प्रकारके प्रश्न उठाते थे और आशंका करते थे। प्रथम दिन कथाकी सुन्दर सम्पन्नताने सभीको आनन्दित और आस्थावान बना दिया। कथाका विश्राम होते ही पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराज अपने वास-स्थानपर पधारे और श्रोता लोग अपने-अपने घर चले गये। पण्डाल लगभग खाली हो चुका था।

पण्डालकी सफाईका काम शुरू हो गया। बाईने मीरासे कहा—मुझे एक बार मञ्चपर ले चलो।

मीराको अपनी भूल समझमें आ गयी। कार्यकी व्यवस्ततामें डूबी रहनेके कारण मीराको यह याद ही नही आया कि बाईको मञ्चपर ले जाना आवश्यक था। आवश्यक था केवल मञ्च दिखलानेके लिये नहीं, अपितु एक सुगुप्त महत्त्वपूर्ण हेतुसे। मञ्चका दिखलाना तो साधारण कार्य था। इस साधारण कार्यके गर्भमें एक असाधारण हेतु सन्निहित था। मीराकी और जो मीराकी माँ हैं उन भाभीजीकी, दोनोंकी आन्तरिक अमिट आस्था थी कि दिव्यभावस्वरूपा बाईकी चरण-रजसे अभिषिक्त होते ही मञ्चकी आभामें निखार आ जायेगा; केवल निखार ही नहीं, अमित प्रभाका विकास हो जायेगा। बाईके पधारनेका अर्थ ही है सम्पूर्ण अमंगलोंका निवारण और निरवधि मंगलका विधान।

अपनी भूल ध्यानमें आते ही मीरा यह भूल गयी कि मैं इस कथा पण्डालकी एक प्रधान व्यवस्थापिका हूँ, अपितु उसमें बाईको देखकर एक बाल सुलभ चंचलता उभर आयी और उसने अपने दोनों कान पकड़कर हँसते हुए बाईसे कहा—अरे! मैं तो भूल ही गयी थी, यह तो बहुत बड़ी गलती हो रही थी। मेरी भूल आपने सुधार ली। चलिये, चलिये, तुरन्त चलिये मञ्चपर।

बाई, भाभीजी तथा अन्य अनेक बहिनोंको साथ लेकर मीरा मञ्चपर आयी और मञ्चकी सुसज्जा सम्बन्धी अनेक व्यवस्थाओंका वर्णन करके बताने लगी। मीरा तो वर्णन कर रही थी, पर बाई आश्चर्यमें डूबी जा रही थीं। बाईने एक-एक चीज ज्यों-की-त्यों वही देखी, जैसा उन्होंने स्वप्न्में देखा था और मीराको बतलाया था। अपने स्वप्नमें देखे हुए दृश्यको यहाँ ज्यों-का-त्यों साकार देखकर बाईको जितना आह्लाद और आश्चर्य हो रहा था उसे वे कह करके भी कह नहीं पा रही थीं। सबसे अधिक आश्चर्य हुआ दो मोरोंको देखकर। उनकी ओर इशारा करके बाईने पूछा—ये मोर प्रभु कहाँसे आ गये?

मीराने कहा—बाई! गोरखपुर गीतावाटिकासे मुन्नी दीदी और कमल दीदीने भेजा है। जब मैं गोरखपुर थी, तो उन्होंने पूछा कि इतने बड़े आयोजनमें हम क्या सेवा करें? इस बातके एक दिन बाद उन्होंने मुझसे कहा कि ये मोर पंखसे बनाये हुए दो मोर हैं। इन दोनोंको मञ्चपर जहाँ ठीक समझो, वहाँ सजा देना।

बाईने कहा—मीरा! मैं अपने हृदयकी बात तुम्हारे भीतर कैसे उतार दूँ?

ये दोनों मोर ही इस मञ्चपर दिव्य-लीला-राज्यके पावन प्रतीक हैं। बहिन कमलजी और मुन्नीजीको मध्यम बनाकर और उनको प्रेरणा देकर श्रीबाबाने ही इन्हें भिजवाया है। मञ्चकी सारी सजावट सुन्दर-से-सुन्दर है, परन्तु ये दोनों मोर तो भावको बहुत ही उभार रहे हैं। यहाँ पर भगवान् विष्णु हैं, श्रीशेषजी हैं, व्यासजी महाराज हैं, गणेशजी हैं, सांदीपनि ऋषि हैं। यह सब बहुत अच्छा है, परन्तु श्रीवृन्दावन और वृन्दावनेश्वरी श्रीराधारानीका प्रतीक तो ये दोनों मोर ही हैं। मीरा! मैं तुमसे सच कह रही हूँ कि स्वप्नमें मैंने जो मञ्च देखा था, वहाँ भी दो मोर नृत्य कर रहे थे। यहाँ इन दोनोंको देखकर मुझे अपार सुख मिल रहा है।

एक-एक करके दिन बीतते जा रहे थे और लोगोंके कण्ठसे सराहनाके शब्द फूटते जा रहे थे। जो कथाके व्यवस्थापक थे, वे सराहना करें तो कोई बात नहीं, वे तो सराहना करेंगे ही। सच्ची सराहना तो वह है कि जो लोग कल हतोत्साहित कर रहे थे, वे ही लोग आज मुक्त स्वरसे सराहना कर रहे थे। यह सराहना केवल पारस्परिक चर्चाके मध्य नहीं, अपितु भारतके प्रमुख नगरोंमें टेलीफोन द्वारा और समाचार लिख-लिख करके पत्र द्वारा की जा रही थी। प्रतिदिन जो चढ़ावा आता था, उसको देखकर बैंकके मैनेजर दाँतों तले अँगुली दबाते थे। गोलक खोलनेवाले चढ़ावेकी धनराशिको देखकर टिप्पणी करते थे कि इतने रूपयोंको भक्तोंने चढ़ाया है या लक्ष्मीजीने बरसाया है। धीरे-धीरे नौ दिन बीत गये। कथा तो दस दिनतक होनेवाली थी, किन्तु पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजको शिवार्चनके लिये श्रीतारकेश्वर जाना था, अतः कथाकी पूर्णता नौ दिनमें करनी पड़ी।

कथाकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि श्रीमहिला संघको इस कथासे वस्तुतः पच्चीस लाख रूपयोंकी उपलब्धि हुई, न एक रुपया ज्यादा और न एक रूपया कम। संत वाणीका यह आँखों देखा एक अनोखा चमत्कार है कि पूज्य श्रीराधा बाबाके शब्द अक्षरशः सत्य निकले। मीरा तो अनेकोंको बार-बार साधुवाद दे रही थी, परन्तु सबसे अधिक दे रही थी श्रीबाबाके निजजन चोपड़ाजीको, जिनके सुझाव और श्रमसे श्रीमहिला संघका आर्थिक संकट दूर हो सका।

* * * * *

दिव्यभावापन्न दैवी व्यक्तित्व

कलकत्तेमें श्रीमहिला संघके लिये श्रीमद्भागवत महापुराणकी पावन कथा हुई और कथा कहनेके लिये पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजने व्यासपीठको सुशोभित किया। इस कथाकी सफलता यत्र-तत्र चर्चाकी वस्तु बन गयी। छोटे-बड़े, स्वजन-परिजन, गृहस्थ-विरक्त सभी मुक्त कण्ठसे कथाकी श्रेष्ठता और सफलताकी सराहना कर रहे थे। सफलताका श्रेय कोई भगवत्कृपाको, कोई पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजको और कोई व्यवस्थापकोंको दे रहा था। ये सभी साधुवादके पात्र हैं और इन सभीके सहयोगसे ही भागवत कथाका आयोजन आशातीत रूपसे सफल हुआ।

किन्तु एक बात कहनी पड़ ही रही है कि मूल तत्त्वतक लोग पहुँच नहीं पा रहे थे और इसतक पहुँच थी इने-गिने व्यक्तियोंकी। भाभीजी, नर्मदा बाई, सावित्री बाई, मीरा ऐसे इनी-गिनी बहिनें थीं, जो भली प्रकारसे समझ रही थीं कि इस सफलताका श्रेय बाईकी आध्यात्मिक क्षमताको है। देखनेमें बाई सर्वथा निष्क्रिय रही थीं। वे प्राय: चुपचाप एक स्थानपर बैठी रहती थीं किन्तु उस निष्क्रियताके आवरणमें कितनी सक्रियता थी, यह तथ्य तो इनी-गिनी अन्तरंग कुछ बहिनें ही जानती थीं।

बाईका आध्यात्मिक व्यक्तित्व बड़ा अद्भुत था। वे सदा ही दैवी भावसे अभिभूत रहा करती थीं। उनका दर्शन और उनका सानिध्य दिव्य भावराज्यकी सृष्टि करता था। उनसे सम्भाषण करनेवाले व्यक्तियोंको दिव्य और सात्त्विक भावोंका दान सहज और स्वत: मिलता रहता था। बाईकी दैवी दृष्टि और दैवी उपस्थिति स्वत: ही एक चमत्कार प्रस्तुत कर देती थी। वे जहाँ भी रहतीं, वहीं दैवी भावोंका साम्राज्य विस्तृत हो जाया करता था। वे प्रतिपल यही चाहती थीं कि भागलपुरके श्रीमहिला संघका उभार और निखार ऐसे वृन्दावनके रूपमें हो जाए, जहाँ प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-कृष्णका विहार अहर्निश चलता रहे। अपनी इस भावना और इस दृष्टिको समीपमें आनेवाली हर बहिनके भीतर वे भर देना चाहती थीं। उनकी हर चेष्टा, हर बोलन, हर अवलोकनसे समीपस्थ बहिनोंको यही संदेश देती थी कि इस नव-वृन्दावनमें श्रीप्रिया-प्रियतम विलस रहे हैं, केवल देखनेके लिये वे भावमयी आँखें चाहिये।

एक दिनका प्रसंग है। अपने नित्य नियमके अनुसार बाई स्नान करके श्रीबरसानेवालीके मन्दिरमें पूजा करनेके लिये आयीं। वहाँ पूजन-वन्दन करनेमें

उन्हें लगभग आधा घण्टा लग जाया करता था। बाई आकर मन्दिरके सामने बैठ गयीं। उनसे रामप्यारी बाईने कहा—बाई पूजा कर लीजिये ना।

बाईने प्रश्न किया—किसकी पूजा करूँ? जिनका पूजन-वन्दन करना है वे अभी यहाँ मन्दिरमें नहीं हैं। उनका श्रीविग्रह तो सामने अवश्य है, परन्तु वे अन्यत्र विहार कर रहे हैं। विहार-विलासके उपरान्त जब वे यहाँ पधारेंगे, तभी तो मेरी अर्चना हो पायेगी। आपलोग तो ऐसा समझती हैं कि ये श्रीप्रिया-प्रियतम दिनके बारह घण्टे और रातके बारह घण्टे अर्थात् चौबीसों घण्टे यहीं मन्दिरमें खड़े या सोये रहते हैं, परन्तु ऐसी बात नहीं है। उनका कभी दिवस-विहार और कभी रात्रि-विलास चलता रहता है और चलता रहता है कभी किसी कुञ्जमें, कभी किसी गुफामें। इतना कहकर बाई मौन हो गयीं। उन्हें प्रतीक्षा करते हुए चार-पाँच घण्टे बीत गये। श्रीप्रिया-प्रियतमके पधारनेके उपरान्त ही उनका पूजन-वन्दन सम्पन्न हो पाया।

इसी तरह बिहारपञ्चमीका भी एक प्रसंग है। यह महोत्सव श्रीबरसानेवालीके मन्दिरमें मनाया जा रहा है। अपराह्नकालमें कीर्तन और पद-गायनका कार्यक्रम चल रहा था। फिर बाईने श्रीबिहारीजीके प्राकट्यकी लीला सुनायी। तभी आरतीका समय हो गया। भाभीजीने मन्दिरमें श्रीप्रिया-प्रियतमका नीराजन किया। आरतीके बाद पुष्पाञ्जलि समर्पित करनेके लिये बाईके हाथमें पुष्प दिये गये। बाई तो हाथमें पुष्प लिये-लिये समाधिस्थ हो गयीं। समीपस्थ बहिनोंने अनुमान लगा लिया कि श्रीप्रिया-प्रियतमकी छविपर विमुग्ध-विलुब्ध बाई अब यहाँ नहीं हैं। तनसे यहाँ रहकर भी मनसे यहाँ नहीं है। उनका मन श्रीप्रिया-प्रियतमके सौन्दर्य-सिन्धुमें इतने गहरे उतर गया है कि तनकी सुध-बुध सर्वथा बिसर गयी है। हॉलके सारे दरवाजे बन्द कर दिये गये। बहिनें बाईको घेरकर खड़ी हो गयी और श्रीकृष्ण नामका संकीर्तन करने लगीं। सायंकालसे रात्रिके दस बजेतक बाई पाषाणवत् निश्चल खड़ी रहीं और तबतक श्रीकृष्ण नाम संकीर्तन निरन्तर होता रहा। जब बाई प्राकृत धरातल पर आ पायीं, तभी वे पुष्पाञ्जलि समर्पित कर पायीं।

अपराह्नकालके समय श्रीमहिला संघमें नित्य सत्संगका कार्यक्रम हुआ करता है। इस कार्यक्रममें आश्रमवासिनी बहिनें तो रहती ही हैं, नगरकी अनेक माताएँ-बहिनें आया करती हैं। सत्संगका कार्यक्रम आरम्भ होनेके पूर्व हॉलमें एक बहुत बड़ी दरी बिछायी जाती है, जिसपर सभी बहिनें आरामसे बैठ सके। दीपावलीके दिन नर्मदा बाईने बड़ी दरी नहीं बिछायी। उनका अनुमान था कि

त्यौहारका दिन होनेसे नगरकी माताएँ-बहिनें तो अपने-अपने घरमें व्यस्त होगी, अतः वे आ नहीं पायेगीं फिर बड़ी दरी क्यों कर बिछायी जाय। ऐसा सोचकर एक छोटी-सी चादर बिछा ली और उसीपर बैठकर सत्संगका कार्यक्रम चल पड़ा। कुछ ही मिनट बीते होंगे, बाईने ऊपर अपने कमरेसे आवाज लगा करके प्रश्न किया—आज हॉलमें सत्संगके लिये बिछायत नहीं की गयी है क्या?

एक बहिनने उत्तर दिया—बाई! विछायत तो कर ली गयी है, परन्तु बड़ी वाली दरी न बिछाकर एक छोटी चादर ही बिछायी गयी है।

बाईने कहा—मैं यहीं बैठे-बैठे देख रही हूँ कि सत्संगमें आनेवाले अनेक जन इधर-उधर घूम रहे हैं। उनको बैठनेके लिये स्थान नहीं मिल रहा है। आपलोगोंको दिखायी नहीं दे रहा है, पर यह सत्य है और मुझे स्पष्ट दीख रहा है कि सत्संगके लिये निर्धारित समयपर दैवी जगतके जो परिकर कथा-श्रवणके लोभसे यहाँ नियमित आया करते हैं, वे स्थानाभावके कारण इधर-उधर टहल रहे हैं। यहाँ जो कार्यक्रम भली प्रकारसे चल पा रहे हैं, वह आपके या हमारे प्रयाससे नहीं, अपितु उन दैवी-परिकरोंके मंगलाशीर्वादसे उनमें सुन्दरता आ पाती है। बाईके ऐसा कहते ही तुरन्त बड़ी दरी बिछायी गयी। दरीके बिछते ही बाईके नेत्रोंसे प्रसन्नता झरने लगी। बाईने खुली आँखों देखा कि वे दैवी परिकर दरीपर यथास्थान विराजित हो गये हैं।

बाईका प्रयास यही था कि श्रीप्रिया-प्रियतमकी पूजा-अर्चना-सेवा आदिका कोई भी कार्य, चाहे छोटे-से-छोटा हो या बड़े-से-बड़ा हो, वह अत्यधिक स्वच्छता-शुद्धता-पवित्रतापूर्वक होना चाहिये और भाव भरे हृदयसे करना चाहिये। बाईके द्वारा बतलाये गये नियमके अनुसार यह आवश्यक था कि रसोई बनानेवाली बहिन जब रसोई घरमें प्रवेश करे, तो रन्धन करते समय मन्द स्वरमें श्रीराधानाम संकीर्तन करती रहे, बाहरके किसी भी व्यक्तिसे बातचीत न करे और जबतक नैवेद्य थालीमें सजाकर मन्दिरमें न चला जाये, जबतक रसोई घरसे बाहर न आये। नियमका दृढ़तापूर्वक पालन करनेसे व्यक्तिमें, नैवेद्यमें और वातावरणमें दिव्यता और सात्त्विकताका समावेश होता ही है। सात्त्विक व्यक्ति द्वारा सात्त्विक वातावरणमें सात्त्विक रीतिसे बनायी गयी उस सात्त्विक और दिव्य नैवेद्यको श्रीप्रिया-प्रियतम स्वीकार करते ही हैं। एक दिन रामप्यारी बाईसे भूल हो गयी। रसोई घरमें रन्धन कार्य पूर्ण हो चुका था, किन्तु नैवेद्य निवेदन करनेमें आधे घण्टेकी देर थी। उचित तो यह था कि रामप्यारी बाईको रसोईके बाहर नहीं आना चाहिये था, किन्तु कार्य भारके आधिक्य और

समयके संकोचका विचार करते हुए उन्होंने यह सोचा कि आधा घण्टाका उपयोग भण्डार घरकी सफाईमें कर लिया जाय। वे एक सेवकको साथ लेकर स्वच्छताके कार्यमें जुट गयीं। इधर वे जुटीं और उधर लीला राज्यकी एक सखीने जाकर उस अनियमितताकी सूचना बाईको दे दी। बाई तुरन्त अपने कमरेसे भण्डार घरमें आयीं। असमयमें बाईका अचानक आना देखकर रामप्यारी बाई हतप्रभ हो गयीं। हतप्रभ रामप्यारी बाईने तत्काल अनुमान लगा लिया कि मेरे द्वारा कोई भूल हो गयी है और उस भूलकी सूचना दैवी जगतकी ओरसे बाईको दे दी गयी है।

बाईने रामप्यारी बाईसे पूछा—क्या रसोई बन गयी?

रामप्यारी बाई—हाँ।

बाई—क्या भोगकी थाली मंदिरमें चली गयी?

रामप्यारी बाई—अभी आधा घण्टा देर है।

बाई—फिर आप रसोई घरसे बाहर कैसे आ गयीं?

रामप्यारी बाई—भण्डार घरकी सफाई जरूरी थीं। आधा घण्टाका समय हाथमें था, अतः समयका सदुपयोग करनेके लिये सफाईका काम शुरू कर दिया।

बाई—आपके द्वारा नियमकी जो उपेक्षा हुई है, उसके कारण वह रसोई प्रिया-प्रियतमके योग्य नहीं रह गयी। मैं कैसे आपके भीतर यह भाव भर दूँ कि प्रिया-प्रियतम अत्यन्त सुकुमार है, अत्यन्त कोमल हैं। अवहेलना-उपेक्षा-प्रमाद आदिसे उत्पन्न होनेवाली असात्त्विकता-अशुचिता उनके भावोंकी कोमलता-मधुरता-सरसताको प्रभावित करती है। श्रीप्रिया-प्रियतमका मधुर रस विरस न हो, उनके लीला राज्यकी सुन्दरता धूमिल न हो, इसीलिये तो इन सारे नियमोंका पालन है। यदि इन नियमोंके प्रति आपकी महत्त्व बुद्धि होती तो यह प्रमाद नहीं बनता। अब मेरा प्यार भरा अनुरोध है कि श्रीप्रिया-प्रियतमके लिये नियमोंका विधिवत् पालन करते हुए पुनः रसोई बनाइये।

रामप्यारी बाईने पुनः स्नान करके शुचि वस्त्र धारण किये। फिर रसोई बनायी और श्रीप्रिया-प्रियतमको नैवेद्य निवेदित किया। यह घटना मध्याह्न कालकी है। अपराह्नकालमें मंदिरके हॉलमें सत्संग आरम्भ हुआ। सत्संगमें बाई पधारीं और दिनमें रामप्यारी बाई द्वारा जो भूल हुई, उसका उल्लेख करते हुए सभी बहिनोंसे बाईने बड़े प्यार पूर्वक समझाते हुए कहना आरम्भ किया—इतना संयम नियम-व्रत-उपवास-जप-पाठ कीर्तन आदि इसीलिये है कि हमारा मन जागतिक धरातलसे उठकर श्रीप्रिया-प्रियतमकी सेवामें रम जाय। सेवा इतनी भावपूर्ण हो कि वे प्रिया-प्रियतम आकर हमसे खेलें, बात करें और माँग-

माँगकर खायें-पीयें। सेवा भार स्वरूप न होकर हमारा जीवन बन जाय। यहाँ यदि हमारे द्वारा लाडिली-लालकी सेवा होगी तो मृत्युके उस पार प्रिया-प्रियतमके दिव्य भाव राज्यमें भी उसी प्रकार सेवा करनेका अवसर मिलेगा। हम आप धन्य हैं, जो यहाँ रहते हुए उनकी सेवा अपने तन-मनसे कर रहे हैं। हम उनको नहीं देख पाते, परन्तु वे तो हमारी सेवाको देख रहे हैं और स्वीकार कर रहे हैं।

बाई अपने मनकी बात प्यारपूर्वक समझा रही थीं कि भाभीजीने प्रश्न किया—तुम्हें न भूख लगती है, न प्यास लगती है और चौदह-चौदह घण्टा एक आसानपर बैठे रहनेपर भी न ऊबती हो, न थकती हो, न खीझती हो। यह सब कैसे होता है?

भाभीजीको उत्तर देना आवश्यक था, अन्यथा बोलना नहीं था और सत्य कहनेमें संकोच हो रहा था, किन्तु भाभीजीके सम्मानमें सांकेतिक रूपसे बाईने कहना आरम्भ किया—मेरा जीवन लाडिली-लालकी सेवाके लिये है। मुझे ऐसा करना नहीं पड़ता, अपितु सहज हो जाता है। मैं न कभी अपने किसी शारीरिक आवेगको रोकती हूँ और न मुझे भूख-प्यासकी याद आती है। आप सच मानिये कि मैं जो अमृतोमय दिव्य रसको पीती रहती हूँ, उसीमें सदैव छकी रहती हूँ।

भाभीजीको बाईकी किसी बातपर अविश्वास या आशंका करनेके लिये स्थान था ही नहीं। उन्हें अक्षरशः विश्वास था कि बाई पूर्णतः यथार्थ बोल रही हैं, किन्तु मनमें यह भी खेद था कि हम साधारण सांसारिक प्राणियोंके लिये बाई अपनी बलि चढ़ा रही है। अपने मानसिक खेदको व्यक्त करते हुए भाभीजीने कहा—तुम हमलोगोंको प्यारपूर्वक इतना समझाती और बतलाती हो, पर हमलोगोंके जीवनमें अभीतक कोई परिवर्तन नहीं आया। तुम क्यों हमलोगोंके लिये अपना बलिदान करने तुली हुई हो? तुम्हारा शरीर भी तो पञ्चभूतोंसे निर्मित है। कुछ तो अपने शरीरपर दया करो।

भाभीजीके अपनत्व और ममत्वपर बाईका एक-एक श्वास बलिहार था। अपने प्रति होनेवाली प्रियताका बखान करके बाईने पुनः प्यार भरा उत्तर दिया—भाभीजी! यह शरीर जिसका है, वे इसकी चिन्ता करें और वे करते ही हैं। उनके प्यारमें मैं सदा डूबी रहती हूँ। उनके प्यारका कोई प्रतिदान सम्भव ही नहीं! बस, एक भाव मनमें सदा लहराता रहता है कि मेरा बलिदान होकर भी यदि यहाँकी एक भी बहिनके जीवनमें लीला राज्यकी वह अनुपम भावमयता उतर आये, तो मैं स्वयंको धन्य मानूँगी। मेरे सामने

उनका लीला राज्य है। उस लीला-राज्यमें सेवाका जो आदर्श स्तर है, जो आदर्श स्वरूप है और सखियों, सहेलियों, मञ्जरियों द्वारा जो आदर्श आत्मोत्सर्ग है, वह मैं अपनी आँखोंसे देख रही हूँ। भाभीजी! मेरी आन्तरिक चाह है, वह लीला-राज्य इस वृन्दावनमें प्रत्यक्ष हो जाय। लीला-राज्यका मधुर रस यहाँ अबाध बहता रहे, छलकता रहे। इस नव-वृन्दावनमें सेवा करनेवाली प्रत्येक बहिनमें लीला-राज्यकी कोई सखी या सहेली या मञ्जरीका भाव-वपु सर्वांश अथवा किञ्चिदंशमें अवतरित हो जाय। इसी भावको पुष्ट करनेके लिये श्रीमहिला संघकी बहिनोंको राधा दासी, कृष्णा दासी, श्यामा दासी, किशोरी दासी, प्रिया दासी, यमुना दासी, ललिता दासी, गौर दासी आदि-आदि नाम प्रदान किये गये हैं। लीला राज्यकी नित्य प्रसन्न दासी, नित्य प्रपन्ना दासी, नित्य परायणा दासी, नित्य प्रसादिका दासीकी भाव-धारासे हम सभी सेवा संलग्न माताओं-बहिनोंका तन-मन-वचन-चिन्तन सदैव ओतप्रोत रहे। बहिनोंके लिये श्रीप्रिया-प्रियतमकी सेवा करना सहज जीवन बन जाये। अपनी सेवा द्वारा श्रीप्रिया-प्रियतमका सुख सम्पादन ही जीवनका लक्ष्य हो। हमारा आत्मोत्सर्ग इस स्तरका हो कि श्रीप्रिया-प्रियतमके हाथके हम यंत्र बन जायें। फिर जिस परम मधुर रसका उच्छलन होगा, वह मात्र अनुभव गम्य है।

बाईके कथनकी यथार्थता सिद्ध होती थी तब, जब श्रीमहिला संघमें उत्सव आयोजन होता था। बाईकी ऐसी भी मान्यता थी के ये स्त्रियाँ जो साधारण पढ़ी-लिखी हैं, साधारण सूझ-बूझ वाली हैं और गृहस्थाश्रममें रहते हुए साधारण जीवन व्यतीत करती हैं, इनके लिये उत्सव आयोजन एक ऐसा माध्यम है जो इनको सहज ही आध्यात्मिकताकी ओर झुका देगा। इन साधारण माताओं-बहिनोंसे बहुत ऊँचे ज्ञान और बहुत ऊँची साधनाकी आशा नहीं की जा सकती, किन्तु उत्सवको मनाते समय इनके चिन्तनमें, इनके व्यवहारमें, इनकी बोलनमें, उत्सव समाया रहेगा और उत्सवके बहानेसे इनके जीवनमें जीवनाराध्य श्रीप्रिया-प्रियतम छा जायेंगे। यही कारण था कि उत्सवोंके अवसरपर बाईके भीतर एक विशेष प्रकारकी उमंग छा जाती थी। बाई दस दिन पहलेसे ही उत्सवकी तैयारी करनेमें जुट जाया करती थी। स्वयं निरीक्षण करके एक-एक व्यवस्थाको सँभालती। हर दर्शनार्थीको उत्सवमें आनेके लिये निमंत्रण देतीं। नव-वृन्दावनके वातावरणमें विशेष उमंग व्याप्त हो जाती। श्रीमहिला संघके समीपसे गुजरनेवाले व्यक्तिको ऐसा आभास मिलने लगता कि यहाँ कुछ विशेषता

अनुभवमें आ रही है। कीर्तन-मण्डली और भक्त-मण्डलीकी ये सदस्या बहिनें तो सेवा-कार्य सोत्साह करती ही थीं, इनके अतिरिक्त जो भी बहिन श्रीमहिला संघमें आतीं, उनको भी बाई उत्सवमें भाग लेनेकी प्रेरणा देतीं। किसीसे कहतीं कि आप मन्दिरमें श्रीप्रिया-प्रियतमकी प्रसन्नताके लिये आधा घण्टा नित्य कीर्तन किया करिये। किसीको कहतीं आप प्रिया-प्रियतमको रिझानेके लिये नृत्य करिये, पद सुनाइये। प्रिया-प्रियतमको रिझाकर अपने जीवनको धन्य बनाइये। उत्सवका नगण्य कहलानेवाला कार्य भी बाईके लिये महत्त्वपूर्ण होता था। छोटे-से-छोटे कार्यको भी श्रीप्रिया-प्रियतमके लीला-राज्यके स्वरूपके अनुरूप करना और करवाना चाहती थीं। कलश निर्माणके लिये चार मिट्टीके घड़ोंका चुनाव करना था। कुम्हारके घरसे घड़े मँगवाइये गये। संदेश वाहकके आदेशके अनुसार कुम्हार लगभग सौ घड़े ले आया। घड़ोंसे आँगन भर गया। बड़ी कठिनाईसे आवश्यकतानुसार घड़ोंका चुनाव होता था और शेष घड़े कुम्हारको वापस कर दिये जाते थे। बाई बड़ी सूक्ष्मतासे सावधान रहती हुई पद-पदपर हर बातको परखती रहती थीं। परखने और नियमन करनेका एकमात्र उद्देश्य यह था कि श्रीप्रिया-प्रियतमके लीला राज्यकी वह दिव्य भावमयता इस नव-वृन्दावनमें अवश्य अवतरित हो उठे। जो सावधानी घड़ोंके चुनावमें रहती थी, वही सावधानी वस्त्रोंके, बर्तनोंके, पुष्पोंके, कार्यक्रमोंके चुनाव और सजावटमें रहती थी।

बाई प्रात:काल ही अपने कमरेसे नीचे आ जातीं और दिनभर खड़ी-खड़ी उत्सवकी तैयारीमें संलग्न रहतीं। एक बहिनने सहज ही कह दिया—बाई! आप अभीसे इतनी उतावली क्यों कर रही हैं? उत्सवमें तो अभी नौ-दस दिन बाकी है। अभीसे तैयारीकी परेशानी क्यों मोल ली जाय?

बाई मुस्कुराते हुए सहज भावसे समझानेके लिये बोलीं—तुमलोगोंके लिये उत्सव नौ दिन बाद आयेगा, पर हमारे राज्यमें उत्सव और उत्सवकी तैयारी ये दो चीज नहीं है। उत्सवकी तैयारी भी उत्सवका ही अंग है। तुमलोग नहीं देख सकती, पर मैं देख रही हूँ कि उत्सवका अवसर आते ही लीलाराज्यमें सहस्त्रों-सहस्त्रों सखियाँ, कोई एक सप्ताह पहले, या कोइ एक पक्ष पहले उत्सवकी तैयारीमें लग जाती है। कोई गा-गा करके मंगल कामना कर रही है, कोई चित्रकारी कर रही है। हमारे लीला राज्यमें एक-एक वृक्ष-लता-पशु-पक्षी सभी उत्सवमें सहयोग देते हैं। सखियाँ कुञ्जोंको सजाती हैं। वे वृक्ष-लता-पशु-पक्षी बोलकर सुझाव भी देते हैं कि इससे अधिक सुन्दर श्रृंगार कैसे हो सकता है।

बाईके इतना कहते ही समीप खड़ी दूसरी बहिन बोल पड़ी—बाई! हम भले ही न समझ पायें, पर इतना तो अनुभवमें आता ही है कि आपके यहाँ खड़े होनेसे वातावरणमें दिव्यता छा जाती है। ऐसा लगता है मानो बहुतसे व्यक्ति घूम-घूम करके कार्य कर रहे हैं।

बाईको ऐसा लगा कि जिस बहिनने ये उद्गार किये हैं, उसका मानस धरातल सराहनीय है। उसके सामने बाई गुरू पूर्णिमा उत्सवका वर्णन करने लगीं। बाईने बतलाया—हमारे लीला-राज्यमें गुरू पूर्णिमाके दिन एक मञ्च विशेष रूपसे सजाया जाता है। उस मञ्चकी शोभा निराली ही होती है। उस मञ्चपर प्रिय सखी श्रीललिताजीको सभी सखियाँ मनुहार करके विराजित करती हैं। सिंहासनसीना श्रीललिताजीका प्रिया-प्रियतम स्वयं पूजन करते हैं। प्रिय सखी श्रीललिताजीके चरणोंपर प्रियतम सहस्त्र-सहस्त्र कमल चढ़ा करके और दण्डवत प्रणाम करके यह याचना करते हैं कि मेरा अस्तित्व प्रियाजीके सुख सम्पादनके लिये हो। उनके अम्लान मुस्कानके दर्शनमें ही मेरे अस्तित्त्वकी सफलता है। प्रियतमको पूजा करते देखकर प्रियतमा श्रीराधारानी भी पूजा करती है और सहस्त्र-सहस्त्र कमल दल चढ़ा करके और प्रणाम करके आँचल फैलाकर याचना करती हैं कि मैं प्रियतमको सदा सर्वदा मुस्कुराते हुए देखूँ। प्रियतमका सुख ही मेरा सुख हो। एकमात्र प्रियतम ही मेरे जीवनाधार रहें। प्रिया-प्रियतमकी अर्चना सम्पन्न होनेपर प्रिय सखी श्रीललिताजी तथास्तु कहकर दोनोंका आलिंगन करती हैं और मञ्चपर अपने पास ही बैठा लेती हैं। फिर एक-एक करके सभी सखियाँ आती हैं। सखियोंके बाद सहेलियाँ, सहचरियाँ, मञ्जरियाँ आती है। सभी अर्चना करके यही आशीर्वाद चाहती हैं कि परम रसिक युगल रासेश्वरी-रासेश्वरकी नित्य सेवाका सौभाग्य बना रहे। इन मञ्जरियोंमें सबसे अन्तमें एक अत्यन्त छोटी उम्रकी मञ्जरी आती है। वह इतनी छोटी है कि प्रिय सखीको तिलक नहीं कर पाती है। उस छोटी मञ्जरीकी उलझन ज्यों ही ध्यानमें आती है, प्यारमें भरकर ललिताजी उसे गोदमें उठा लेती हैं और उसका लाड़ करने लगती हैं। अवसर पाकर वह छोटी मञ्जरी श्रीललिताजीको तिलक लगा देती है और याचना करती है कि श्रीप्रिया-प्रियतमकी विहारस्थली मैं सदा सजाती रहूँ। उसकी बात सुनकर पासमें बैठे हुए प्रियतम विनोद करते हुए कहते हैं कि यह तो इतनी छोटी है कि कमलके फूलोंके नीचे दब जायेगी और दबकर उठ भी नहीं पायेगी, फिर यह सुसज्जा कैसे कर पायेगी? इतना कहते-कहते प्रियतम श्रीकृष्ण उसे

गोदमें लेनेके लिये अपने हाथ बढ़ाते हैं। उनका हाथ बढ़ाना उस छोटी मञ्जरीको प्रिय नहीं लगा। वह तो अपनेको एकमात्र श्रीराधानिष्ठ मानती है और सदा सावधान रहती है कि मेरी स्वामिनी श्रीराधानी या मेरी अग्रगण्या सखीके अतिरिक्त कोई भी मेरा स्पर्श नहीं करे। छोटी मञ्जरीकी इस आन्तरिक निष्ठाका सहज प्रतिफलन यह हुआ कि प्रियतमके बढ़ाते हुए हाथोंको देखकर उसकी भृकुटिमें तनिक तनाव आ गया और वह वर्जना करनेके लिये तर्जना करती हुई बाल सुलभ बोलीमें बोलने लगी—आप वहीं बैठे रहिये। मेरा स्पर्श मत करिये।

प्रियतम श्रीकृष्णको उसे छोटी मञ्जरीकी वर्जनाके हतुको समझनेमें तनिक भी देर नहीं लगी और मंगलाशीर्वाद देते हुए कहने लगे—तेरी भावनिष्ठा सदा विजयनी हो।

श्रीप्रिया-प्रियतमके उस दिव्य लीलाराज्यमें प्रत्येक सखी, सहेली, सहचरी, मञ्जरी, अनुचरी आदिकी आदर्श भावनिष्ठा अपने-अपने ढंगकी है। उन अनेक निष्ठाओंके ढंग अनेक हैं, किन्तु सबका लक्ष्य एक है श्रीप्रिया-प्रियतमके लीला-विलासमें सतत् सहयोग देकर उनके सुखका संवर्धन करना। सबके मनमें नित्य नव-नव चाव चढ़ा रहता है। वहाँ न थकान है, न ऊबन है, न झुँझलाहट है; नित्य सेवाका अनोखा उत्साह है। मैं किसीको कीर्तन करनेके लिये या पद सुनानेके लिये कहती हूँ तो उसके पीछे भाव यही है कि आपलोग भी बहती गंगामें अपना काम बना लें।

बाईकी इन प्यार भरी दिव्य चर्चाको सुनकर समीप खड़ी सभी बहिनें अपने भाग्यकी सराहना कर रही थीं कि ऐसी बातें केवल आपके श्रीमुखसे सुननेको मिल पाती हैं।

बाईके पास फरियाद भी कम नहीं आती थी। हरियाली तीजका उत्सव सम्पन्न हो चुका था। कलश यमुनाजी पर ले जानेवाले दिनकी बात है। बन्दनवार खोलनेका कार्य नीचे हो रहा था। बाई ऊपर अपने कमरेमें थीं। इसी बीच बन्दनवारने आकर बाईके सामने अपने पुकार लगायी—बाई! देखो मुझे खरोंच लग गयी है। जिसने वन्दनावार उतारी है, उसने सावधानी नहीं रखी। धीरे-धीरे उतारनेके बजाय खींच-खींचकर उतारी और दीवालकी रगड़का यह परिणाम है।

बाईने बन्दनवारसे प्रार्थना करते हुए कहा—अरी बहिन! तू क्षमा कर दे। जिसने खींचकर उतारी है, वह अबोध है। उसकी मतिमें जड़ता है।

मैं उसकी ओरसे विनम्र क्षमा याचना करती हूँ, तू क्षमा कर दे। मैं उसे समझा दूँगीं कि ऐसी लापरवाही न बरते।

बाईकी इस विनम्र याचनाने वन्दनवारको क्षमा करनेके लिये विवशकर दिया। उसके मनकी खिन्नता तत्क्षण दूर हो गयी और वह विहसती हुई बाईके पाससे चली गयी। जगतके लोग जिसे जड़ कहते हैं, अचेतन कहते हैं, उन सभीके प्रति बाईकी दृष्टि दिव्य हो गयी जड़त्व-बोध समाप्त हो गया था। जड़ कहलाने वाली वस्तुओंमें भी सजीव प्राणियोंकी तरह सचेतनता अनुभूत होती थी। रस्सीमें बँधे हुए आमके पत्ते ही बन्दनवार कहलाते हैं और उन्हें हम जड़ समझते हैं, पर उस बन्दनवारका भी बाईसे सम्भाषण होता था। कहाँतक बतलायें? मन्दिरके धातु निर्मित पूजा-पात्रोंकी भी बाईसे बातचीत होती थी। बाईकी भावनाके अनुसार वे लीला-राज्यके नित्य पार्षद है। यदि दो बर्तन आपसमें टकरा जाते अथवा हाथसे छूटकर भूमिपर गिर जाते, तो उन्हें चोट लगती थी और वे चोटकी फरियाद लेकर बाईके पास पहुँचते थे। पूछताछ करनेपर घटनाकी सत्यता सामने आ जाती थी, फिर उन धातु पात्रोंसे वैसी ही विनम्र प्रार्थना होती थी, जैसी बाईने बन्दनवारसे की थी।

कठोर नियमोंका कड़ाईसे पालन करते-करते और अहर्निश भावोदधिमें निमग्न रहते-रहते बाईका गौर वपु अत्यधिक संवेदनशील हो गया था। मानसिक धरातल पर असात्त्विकताका कणांश भी नही था और वही अनुमानातीत सात्त्विकता बाईके गौर वपुके कण-कणमें व्याप्त थी। तनिक-सी असात्त्विकता कुप्रभाव बाईके सात्त्विक वपुपर प्रतिफलित हो उठता था।

पुष्पाञ्जलिका एक प्रसंग है। अपने नित्य नियमके अनुसार बाई स्नानोपरान्त श्रीबरसानेवालीके मन्दिरमें दर्शन करनेके लिये नीचे आया करती थीं और दर्शन करके पुष्पाञ्जलि समर्पित करती थीं। पुष्पाञ्जलि हेतु बाईके लिये एक डिब्बेमें अलगसे पुष्प और तुलसीदल रख दिये जाते थे। इन्हीं पुष्प और तुलसी दलसे बाई पुष्पाञ्जलि देती थीं। एक दिन पुष्पाञ्जलि देते ही हाथमें बहुत जलन होने लगी। बाईके मनमें बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि आज तुलसीदलके स्पर्शसे शीतलताकी जगह अत्यधिक जलन क्यों हो रही है? बाईने नर्मदा बाईसे पूछा—माँ! यह तुलसी कहीं बाहरसे आयी थी क्या? नर्मदा बाईने कहा—एक बहिन हरी-हरी और बड़ी-बड़ी पत्तोंवाली तुलसी लायी थी। मुझे बहुत अच्छी लगी तो उसीको मैंने इस डिब्बेमें रख दिया।

बाईने कहा—माँ आप पता लगाइये कि वह तुलसी क्यों लायी?

बाईके कथनानुसार नर्मदा बाई पूछताछ करने लगीं और अन्तमें पता यह चला कि तुलसीका वह लाना और देना अत्यन्त साधारण स्तरके सकाम भावसे अनुप्रेरित था। उस दिनसे यह नियम बन गया कि बाईको पूजाके लिये तुलसी श्रीमहिला संघके तुलसी वृक्षसे चयन करके दी जायेगी।

ऐसी ही एक घटना कलकत्तेकी है। बाई गंगा-स्नान करनेके लिये गयीं, साथमें कई बहिनें थीं। हर बहिन चाहती थी कि बाईका हाथ पकड़ कर गंगाजीकी पावन धारामें डुबकी लगाये। सबका मन रखनेवाली बाई एक-एक बहिनका हाथ पकड़कर डुबकी लगाने लगीं। क्या ही संयोग की बात है, अन्तिम बहिनका हाथ पकड़कर डुबकी लगाते ही बाईके बायें हाथमें भीषण दर्द होने लगा। बाई विचार करने लगीं यह क्यों हुआ? उन्होंने अपनी पीड़ाकी बात नर्मदा बाईसे कही। नर्मदा बाईको छटपटी लग गयी कि कारणका पता लगाना चाहिये। पूछताछ करते-करते ज्ञात हुआ कि उस बहिनका जीवन निर्दोष नहीं था और उसीका यह कुपरिणाम था।

इन तथ्योंको वर्णन करनेका एकमात्र उद्देश्य यही है कि बाईका दिव्य गौर वपु महासत्त्वमय हो गया था। केवल मन ही नहीं, तन भी सीमातीत सात्त्विकताके कारण ऐसा परमोज्ज्वल दर्पण बन गया था कि सामने आनेवालेके भावोंकी सुन्दरता और असुन्दरता बाईके तन-मनपर तुरन्त प्रतिबिम्बित हो उठतीं थीं।

* * * * *

ब्रजवासका संकल्प

बाईका दिव्य व्यक्तित्व सदा ही दिव्य भावसे आविष्ट रहा करता था, अत: सांसारिक और साधारण स्तरकी माताओं-बहिनोंसे दैनन्दिन जीवनमें उनका सामञ्जस्य नहीं बैठ पा रहा था। इन्हीं दिनों श्रीमहिला संघके भवनमें कुछ सुधार और कुछ निर्माण आवश्यक था तथा विस्तारकी दृष्टिसे एक स्वतन्त्र भवनका निर्माण कराना भी आवश्यक था। बाईका चिन्तन श्रीप्रिया-प्रियतमके दिव्यभाव राज्यकी नीति-रीतिसे प्रभावित रहनेके कारण इतना अधिक सैद्धान्तिक था कि उस सैद्धान्तिक आदर्शके अनुरूप कार्य करनेसे यथार्थके धरातलपर सत्य यह है कि अत्यधिक विलम्ब तो होता ही, इसके अतिरिक्त सीमातीत व्यय होता, जिसको वहन करनेकी क्षमता श्रीमहिला संघमें नहीं थी। अत: भवन निर्माण कार्यको सम्पन्न करनेकी दृष्टिसे यह सोचा गया कि जबतक निर्माण कार्य हो तबतक बाई वृन्दावनमें रहें। वृन्दावनमें रहना एक बार इसलिये भी आवश्यक सोचा गया कि जगतके लोगोंसे बाईकी रहनीका सामञ्जस्य नहीं बैठ पा रहा था। इन दो कारणोंसे बाईको भाभीजीने कुछ दिनोंके लिये वृन्दावन भेज दिया।

वृन्दावनमें बाईका निवास छ: या सात मास होगा कि एक दिन बाईके चिन्तनमें और उसके फलस्वरूप बाईके व्यवहारमें अद्भुत परिवर्तन आया। बाईने ब्रजवासिनी स्वरूपमें रहनेका संकल्प कर लिया और तदनुरूप अपना वेश भी बना लिया। ब्रजवासी माताएँ-बहिनें घाघरा पहनती हैं और सिरपर चूनर ओढ़े रहती है। बाईका लँहगा ही घाघरा बन गया और बाईने अपनी श्वेत साड़ी ही चूनर रूपमें ओढ़ ली और कहने लगीं—मैं ब्रजवासिनी हूँ। वृन्दावनमें ही नित्य वास करूँगी। और भिक्षा वृत्तिसे जीवन निर्वाह करूँगी। ब्रजवासियोंके द्वार-द्वारसे टूक माँगकर लाया करूँगी, वही जीवनका आधार होगा।

इस अचानक परिवर्तनका एक भावात्मक कारण है। बाईने कह रखा था कि मेरी आयु अड़तालीस वर्षकी है। अड़तालीस वर्षके बाद मैं 'अपने घर' चली जाऊँगी। बाईकी आयु अड़तालीस हो ही रही थी। ज्यों ही यह समाचार भागलपुर पहुँचा, भाभीजी बहुत चिन्तित हो उठीं। बाईकी आयु सीमाका

ज्ञान होना, वेश परिवर्तन करना, द्वार-द्वार भिक्षाके लिये जानेका आग्रह करना, इन सब समाचारोंने भाभीजीको इतना अधिक आकुल बना दिया कि उनके लिये असह्य हो गया और भाभीजी बीमार पड़ गयीं। भाभीजीकी रुग्णताका समाचार देनेके लिये और भागलपुर वापस आ जानेका अनुरोध करनेके लिये एक व्यक्ति भागलपुरसे वृन्दावन गया। उस व्यक्तिसे भाभीजीकी रुग्णताका समाचार सुनते ही बाईपर प्रतिकूल प्रतिक्रिया हुई और बाईकी छातीमें दर्द उभर आया। दर्द तो उभर आया, परन्तु बाई भागलपुर जानेके लिये राजी हुई ही नहीं। वह व्यक्ति भागलपुर चलनेके लिये बाईसे बार-बार अनुरोध करता, तब बाई यही कहतीं—मैंने तो ब्रजवासका संकल्प ले लिया है।

वह व्यक्ति निराश होकर वृन्दावनसे भागलपुर लौट आया। उस व्यक्तिसे वृन्दावनके सारे समाचार जान लेनेके बाद भाभीजीने मीराको वृन्दावन भेजा, जिससे वह किसी प्रकार मना करके बाईको भागलपुर ले आये। मीराने बड़ा प्रयत्न किया, परन्तु उसका हर प्रयत्न असफल हो रहा था। बार-बार असफल होनेपर मीराने एक अन्तिम उपायका आश्रय लिया। मीराको बाईके जीवनके एक मृदुल और स्नेहिल बिन्दुकी जानकारी थी। मीरा जानती थी कि यमुना स्नानके उपरान्त और देवाराधनके पूर्व बाईके जीवनमें भावोंकी नितान्त कोमलता और स्निग्धता रहा करती है, बस इसी क्षणका मीराने आश्रय लिया। जब बाई यमुनाजीमें स्नान कर रही थीं, साथमें मीरा भी नहा रही थी। बाई स्नान कर चुकीं थी और यमुनाजीमें खड़े-खड़े ही पूजा प्रारम्भ करनेवाली थीं, बस! उसी क्षण मीराने जलमें हाथ डालकर बाईके पैर पकड़ लिये और बड़े ही करुण स्वरमें अनुरोध किया—बाई! आपको भागलपुर अवश्य चलना है।

इस बार बाई प्रतिरोध नहीं कर पायीं। यमुना जलमें दो-तीन मिनट मौन और शान्त खड़ी रहीं, फिर बाईने झुककर यमुनाजीकी रज हाथमें उठा ली और वह रज मीराके हाथमें देकर कहा—यह मेरी यात्रा है। इसे मेरे निवास स्थानपर मत ले जाना। इसे ऐसे स्थानपर रखना, जो यात्राके मार्गपर पड़ता हो और जहाँसे आगेकी यात्राकी जा सके।

बाईने पुनः स्नान करके पूजा की और मीराने वह पावन यमुना-रज लोटेमें रखकर श्याम निवासपर रख दी। यह श्याम निवास विद्यापीठ चौराहासे

आगे मथुरा मार्गपर स्थित है। मीराको अब पूर्ण विश्वास था कि बाई शीघ्र ही भागलपुरके लिये यात्रा करेंगी।

मीरा अब उस दिवसकी, दिवसकी कौन कहे उस क्षणकी प्रतीक्षा कर रही थी, जब बाई वृन्दावनसे भागलपुरके लिये प्रस्थान करेंगी। वह संयोगसे अगले दिन ही आ गया। अगले दिन प्रातःकाल पूज्य श्रीलक्ष्मीनारायणजी वैद्य बाईके मिलनेके लिये श्रीकृष्ण कुञ्ज आये। इनके आनेकी सूचना मिलते ही बाई अपने कक्षामें नीचे आयीं और बहुत देरतक परस्पर बातचीत होती रही। श्रीवैद्यजी बाईके प्रति अत्यधिक भाव रखते थे। वे प्रायः कहा करते थे—बाई! मैं तो आपकी छोटी-सी बच्ची हूँ। आप मुझे अँगुली पकड़कर श्रीजीके धाममें पहुँचा दीजियेगा।

बाई भी इनसे मिलनेके लिये कई बार इनके निवास स्थानपर जाया करती थीं और इनके प्रति पूज्य भाव रखती थीं। लगभग तीन घण्टे बाद श्रीवैद्यजी जब जानेको उद्यत हुए तो बाई भी उनके साथ चल पड़ीं और चलती-चलती श्रीराधावल्लभजीके मंदिरके समीप आ गयीं। श्रीवैद्यजी तो अपने निवास स्थानकी ओर चले गये और बाई श्रीराधावल्लभजीके दर्शनार्थ मन्दिरमें चली गयीं। बाईको जाते देखकर मीरा भी साथ हो ली थी। थोड़ी देरतक भावभीने नेत्रोंसे बाई श्रीराधावल्लभजीके दर्शन करती रहीं। तभी अचानक मंदिरके गोसाँईजीने श्रीराधावल्लभजीकी प्रसादी माला और प्रसाद लाकर बाईको दिया। वहाँसे बाई सीधे श्रीबिहारीजीके मंदिर आ गयीं। वे अपलक श्रीबिहारीजीको निहार रही थीं। इतनेमें वहाँ भी श्रीगोसाईंजीने प्रसादी माला लाकर बाईके आंचलमें दे दिया। श्रीबिहारीजीके मंदिरके बाहर आकर बाईने घरका मार्ग छोड़कर वह मार्ग पकड़ लिया, जो मथुराकी ओर जाता था। मीराको आश्चर्य हुआ कि बाई कहाँ जा रही हैं? मीराने पूछा—बाई! आप कहाँ जा रही हैं? किसके घर जाना है?

बाईने कहा—मीरा! मुझे तो श्रीबिहारीजी और श्रीराधावल्लभजी दोनोंने विदाई दे दी है, अब मैं जा रही हूँ।

मात्र इतना बतानेसे मीराको सन्तोष नहीं हुआ। मन मारकर मीरा भी चुपचाप बाईके साथ चल रही थी। मीराने फिर एक-दो बार प्रयास किया, किन्तु बाईकी ओरसे कोई समुचित उत्तर नहीं मिला। क्या ही संयोगकी बात

है और इसे आश्चर्यकी बात भी कह सकते हैं कि बाई वहीं आकर रूक गयीं, जहाँ श्रीयमुना-रजसे भरा हुआ लोटा मीराने रखा था। यह वही श्याम निवास था, जहाँ बाईके पैर ठहर गये और बाईने कहा—मैं भागलपुर जा रही हूँ।

इतना सुनते ही मीराने बाईको वहींपर कुछ देरके लिये बैठा दिया। मीरा समझ गयी कि अब बाई भागलपुरकी यात्राके लिये प्रस्तुत है। मीरा घर आयी, बाईके कुछ वस्त्र लिये, नर्मदा बाईको साथ लिया और फिर टैक्सी करके बाईको दिल्ली ले आयी। दिल्लीमें बाई और नर्मदा बाईके लिये ट्रेन छूटनेसे पूर्व दो बर्थका आरक्षण मिल जाना भी एक आश्चर्य कहा जा सकता है। मीराको तो एक बार वृन्दावन वापस जाना आवश्यक था, जिससे पीछे छूटी हुई वस्तुओंकी और घरकी सँभाल कर सके, अतः बाई तथा नर्मदा बाईको दरबानके साथ भागलपुर भेज दिया। कुछ दिनों बाद मीरा भी भागलपुर पहुँच गयीं। बाईको भागलपुरमें देखकर भाभीजीकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी।

इस बार बाई वृन्दावनमें लगभग आठ मास रहीं। इस आठ मासकी अवधिमें भागलपुरमें श्रीमहिला संघके भीतर अनेक प्रकारके निर्माण कार्य हुए। मन्दिरका ढाँचा बदल गया, कीर्तन करनेवाली बहिनोंके लिये स्वतन्त्र कक्षका निर्माण हो गया। चौका एवं भण्डार घरको नये ढंगसे बनाया गया। इस प्रकार अनेक निर्माण कार्य हुए। बाईके आनेपर उनके द्वारा श्रीराधानाम संकीर्तनकी विधिवत् प्रतिष्ठा-पूजा हुई, जो प्रातःकाल पाँच बजेसे लेकर रात्रिके आठ बजेतक होता है। कीर्तन करनेवाली बहिनोंका भी बाईने विधिवत् पूजन और सत्कार किया। एक तथ्य और उल्लेखनीय है। बाईने अट्ठारह-उन्नीस वर्ष पहले कीर्तन-मण्डलीकी स्थापना की थी, जिनमें अट्ठारह सदस्याएँ थीं। उन सदस्या बहिनोंके लिये आवश्यक था कि वे श्रीमहिला संघके हॉलमें नित्य कीर्तन किया करें। अब इस नियममें परिवर्तन हो गया, वह कीर्तन-मण्डली अब इस कीर्तन-कक्षमें ही कीर्तन किया करें। कीर्तन-मण्डलीकी सदस्याओं तथा इनसे अन्य कीर्तन करनेवाली बहिनोंके प्रति बाईकी आदर भावना बहुत अधिक बढ़ गयी और इन दोनोंके मध्य बाईकी दृष्टिमें कोई भेद रह ही नहीं गया था। आदर बोधकी भावना होनेसे सारे अन्तराय और

अन्तर समाप्त हो गये थे तथा प्रत्येक कीर्तन करनेवाली बहिनके प्रति बाई नत मस्तक थीं। बाई कहती थीं—वे बहिनें कीर्तन करके भगवन्नामका वितरण करती है, भगवद्भावका प्रसार करती हैं, वातावरणको भगवदीय बनाती हैं। इस महान् कार्यका मूल्य चुकाया ही नहीं जा सकता। कीर्तन करनेवाली बहिनोंको जितना भी दिया जाय, वह कम ही है। इनकी चरणधूलि भी जन-जनको पवित्र करनेवाली है।

कीर्तन करनेवाली बहिनोंके प्रति बाईकी आत्मीयता इतनी अधिक बढ़ गयी कि वे जनी-जनीसे मिलतीं, उनकी समस्याओंको सुनतीं और द्रवित हृदय होकर उन समस्याओंको दूर करनेका भरपूर प्रयत्न करतीं। उनके कीर्तनोल्लासको क्षणे-क्षणे वर्धनशील बनाये रखनेके लिये बाई जब चाहे तब इनके बीचमें आ जातीं। यह कीर्तन बाईके कमरेके पास ही होता था, अतः जब-तब अपने कमरेसे कीर्तनके मध्य आकर कीर्तन करने लगतीं। वे नामोल्लासमें अनेक बार नृत्य भी करने लगतीं। सारी बहनें जानती थीं कि बाईका स्वास्थ्य नाजुक है, अतः ऐसी नृत्योमंग सराहनीय होकर भी अनुमोदनीय नहीं थी, किन्तु बाईको जो दिव्य रस मिलता था, उस रसावेशमें उन्हें कौन मना कर सकता था।

पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजकी कथासे श्रीमहिला संघको जो अर्थ लाभ हुआ, उसीसे श्रीमहिला संघमें वह कीर्तन स्थायी रूपसे चलने लगा, जो प्रातःकालसे रात्रितक होता है। इसी अर्थ-लाभसे श्रीमहिला संघके लिये एक भूमि-खण्ड भी खरीदा गया। कार्य विस्तारको देखते हुए भूमिका खरीदना आवश्यक था। बाई जब वृन्दावनमें थीं, तभी श्रीमहिला संघके लिये यह भूमि खरीद ली गयी। वृन्दावनसे आनेके बाद खरीदी हुई भूमिपर बाई पहले-पहल जब आयीं, उस भूमिपर चरण रखते ही उन्होंने बड़े भाव भरे उद्गार व्यक्त करते हुए कहा—यह भूमि परम शुभ है, परम पवित्र है। इस भूमिपर कभी किसी महान् संतका निवास रहा है। वे संत मुझे टहलते हुए दिखलायी दे रहे हैं। उनके श्रीअंगपर श्वेत वस्त्र हैं। वृद्धावस्थाके कारण उनके केश श्वेत हो गये हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि वे यहाँ कब रहते थे। हो सकता है उनका यहाँ निवास तीन-चार सौ वर्ष पहले रहा हो, पर वे रहे हैं और उनकी साधना-स्थली रहनेसे यह भूमि बड़ी पवित्र है। यहाँ जो

भवन निर्माण होगा, उसमें कोई साधना परायण प्राणी ही रह सकेगा।

उसी दिन बाईने उस भूमिपर बननेवाले भवनका नामकरण कर दिया 'श्रीकृष्ण सदन'। उस भूमि खण्डपर पहलेसे पुराने ढंगके दो कमरे बने हुए थे। एक दिन बाई हवेलीमें गयीं। भाभीजीके कमरेमें एक विशाल चित्र था, जिसमें रणभूमिके मध्य रथपर बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्ण पार्थ अर्जुनको गीताका उपदेश दे रहे हैं। बाईने भाभीजीसे कहा—यह चित्र आप मुझे दे देंगी क्या?

हाँ कहनेके स्थानपर भाभीजीने वह चित्र ही उतार कर बाईको दे दिया। उस चित्रको लेकर बाई उस भूमि-खण्डके पुराने वाले कमरेमें आयीं। साथमें एक कर्मकाण्डी पण्डितको भी बुला लिया। उस पुराने दो कमरोंमेंसे एक कमरेमें चित्रकी विधिवत् प्रतिष्ठा पूज्य पण्डितजी द्वारा करवा दी और वहाँ पाठ का, फिर सत्संगका बन्धान चल पड़ा। धीरे-धीरे उस भूमि-खण्डपर श्रीकृष्ण सदनके निर्माणका कार्य आरम्भ हुआ। आरम्भ करनेके पूर्व बाईके द्वारा भूमि पूजन करवाया गया। बाईके निर्देशानुसार वास्तु देवताको इक्यावन रसगुल्लोंका भोग लगाया गया। ये रसगुल्ले एक हँडियामें थे। पूजनके उपरान्त बाईने कहा—हँडियाका मुँह स्वच्छ वस्त्रसे कस करके बाँध दीयिजे। यह हँडिया यहाँपर रात भर रहेगी। प्रातःकाल जब मजदूर काम करें, तब इन रसगुल्लोंको बाँट देना चाहिये।

जैसा बाईने कहा था, वैसा ही किया गया। रात्रिभर वस्त्रसे बन्द वह हँडिया उसी स्थानपर पड़ी रही। सुबह मजदूरोंमें बाँटनेके लिये सुमित्रा बाईने हँडियाका मुँह खोला। क्या ही विस्मयकी बात है कि हँडियामें रसगुल्ले थे ही नहीं। मुँहका ज्यों-का-त्यों बँधा हुआ था। फिर वे रसगुल्ले कहाँ चले गये? सुमित्रा बाई भागी-भागी बाईके पास गयीं और सारी बात बतलाकर पूछने लगीं—यह क्या हुआ?

बाईने कहा—जिसको भोग लगाया था, उन्होंने उस स्वीकार कर लिया।

सुमित्रा बाईने मन-ही-मन मान लिया—यह तो बड़े ही शुभका सूचक है और इस श्रीकृष्ण सदनका निर्माण श्रीमहिला संघके उत्कर्षमें सहयोग ही देगा।

बाई वृन्दावनसे आकर श्रीमहिला संघमें रह रही थीं और उनके द्वारा कुछ मांगलिक कार्योंका शुभारम्भ भी हुआ, परन्तु उनका मन यहाँ नहीं लग रहा

था। अस्वस्थता नित्य बनी रहती थी। छातीमें दर्द कभी-कभी भीषण रूप ले लेता था। भाभीजीने एक लेडी डॉक्टरको दिखलाया। उसने देखकर बतलाया कि बाईके पेटमें ट्यूमर है। उसकी बातपर भाभीजीको विश्वास हुआ ही नहीं। ट्यूमरका पेटमें होना और दर्द छातीमें होना, यह भला कैसी बेतुकी बात है। भाभीजी लेडी डॉक्टरके कथनसे सर्वथा असहमत थीं। रुग्ण बाईकी थोड़ी बहुत होमियोपैथिक चिकित्साका क्रम चलता रहता था।

बाईकी रुग्णताका रूप विचित्र था। जिसे बाईके व्यक्तित्वकी वास्तविक जानकारी नहीं होगी, वह रुग्णताको नाटकीय अभिनय ही बतलायेगा। प्रात:काल जब भी बाई अपने कमरेसे निकलकर नीचे आती थीं, श्रीमहिला संघके विभिन्न कार्योंमें सोत्साह जुट जाया करती थीं। स्वच्छता-सुन्दरता-सुव्यवस्था-सेवा-पूजा-सुस्वादु भोग-सरस चर्चा-संकीर्तन, इस प्रकारके विचित्र कार्योंमें सारे दिन लगी रहतीं। उनकी तत्परता प्रफुल्लता-विनम्रता-प्रबन्धकुशलता आदि-आदिको देखकर कोई अनुमान भी नहीं कर सकता था कि बाई रुग्ण हैं, किन्तु रात्रिमें ज्यों ही भोजनके लिये थाली बाईके सामने रखी जाती, मानो रुग्णता साकार रूप धारण कर लेती। सामने थाली रखी है, फिर भी बाई कहतीं—भाभीजी! छातीमें बहुत दर्द हो रहा है। कौर लेना भी मेरे लिये कठिन है। बोलनेमें भी कष्ट हो रहा है। माथा एकदम भारी लग रहा है। देह गिरी-गिरी जा रही है। मेरी पीड़ाका आप अनुमान कर ही नहीं सकतीं।

कष्टाक्रान्त बाईके इन उद्गारोंको सुनकर कोई भी बहिन यह सोच सकती थी और कह सकती थी—यह बाई वही दिनवाली बाई है क्या? वह तत्परता-सरलता-प्रसन्नता अब कहाँ गयी?

बाईके व्यक्तित्वमें ऐसे-ऐसे विरोधाभास दिखलायी देते थे, जो जगतके लोगोंको भ्रमित कर देते थे और बाईका व्यक्तित्व जगतके लिये आलोच्य बन जाता था। यह आलोचना भाभीजीके लिये असह्य होती और वे यहाँतक सोच लेतीं कि बाईको श्रीमहिला संघके दैनन्दिन कार्यक्रमोंसे और विभिन्न दायित्वोंसे सिमट कर एकान्त जीवन व्यतीत करना चाहिये।

* * * * *

विचारोंका असामञ्जस्य

त्रिदोष-त्रस्त सांसारिक प्राणी जड़-चेतनमय त्रिगुणात्मक जगतमें रचे-पचे रहते हैं, किन्तु उन रोते-कलपते हुए त्रस्त प्राणियोंसे भरा हुआ यह गुण-अवगुणात्मक जगत उस संतके रहने योग्य नहीं रह जाता, जिसका तन-मन-जीवन आत्यन्तिकी सात्त्विकताका स्वरूप हो गया हो। मम-पर, सुख-दु:ख, लाभ-हानि आदि द्वन्द्वोंसे ग्रस्त साधारण सांसारिक प्राणियोंमें शौच-अशौचका, शुद्धता-अशुद्धताका, शुचिता-अशुचिताका, स्वच्छता-अस्वच्छता आदिका वह विचार नहीं रहता, जैसा महासत्त्व सम्पन्न परम संतके जीवनमें होता है। संत और सांसारिककी चिन्तन शैलीमें जमीन आसमानका-सा अन्तर हुआ करता है। शौचाचारिता-शुद्धता-शुचिता-स्वच्छता आदिका जो माप-दण्ड संतके चिन्तनमें रहता है, उसकी कल्पना सांसारिकके लिये असम्भव है। अपने स्वीकृत माप-दण्डके अनुसार संतकी जीवनचर्याका जो स्वरूप संसारके सामने आता है, वह यदि एक ओर सांसारिकके लिये आदर्श है तो दूसरी ओर आश्चर्यका विषय भी है। यही बात बाईके जीवनमें दिखलायी देती है। बाईकी शुद्धता-स्वच्छता पवित्रता-शुचिताकी कसौटी जगतसे सर्वथा न्यारी ही कही जानी चाहिये। जिस स्थानपर वे रहती थीं, वे न केवल कमरेकी भूमिको धुलवाती थीं, अपितु कमरेमें दरवाजे, खिड़की आदिको भी धुलवाती थीं। उनका गौर कलेवर बहुत अधिक सत्त्वसम्पन्न हो गया था।

जिस प्रकार ध्वनिकी प्रतिध्वनि और बिम्बका प्रतिबिम्ब होता है, इसी प्रकार कष्टका प्रतिकष्ट बाईके निर्मल वपुमें परिलक्षित होने लगता था। सामने बैठी हुई बहिनके सिरमें दर्द हो रहा हो तो उस दर्दके प्रतिदर्दका उद्भव बाईके सिरमें हो जाया करता था। बाईके शरीरकी निर्मलताकी कल्पना भी दुरूह है। उस असाधारण निर्मलताके कारण साधारण सांसारिक प्राणीके शरीरसे छिटकनेवाले त्रिगुणात्मक परमाणु बाईके लिये सहन करना कठिन हो गया। जिनसे भी बाई बात करतीं, उनको दो-तीन फीटके अन्तरपर बैठातीं। अपनेसे दूर इसलिये बैठातीं कि अन्योंके स्पर्शसे बचाव हो सके। पुरुष और द्रव्यसे सर्वथा अस्पर्शित रहनेका कठोर नियम बाईके जीवनमें रहा है। पुरुष स्पर्शकी कल्पनाके लिये तो स्थान ही नहीं था। बाईका ऐसा कठोर व्रत था कि यदि भूलसे भी पुरूष या द्रव्यका स्पर्श हो जाय तो वह छत्तीस

घण्टेका कठोर निर्जल उपवास करती थीं। पुरुष स्पर्शसे बाई कितना अधिक दूर रहती थीं, इस बातको भली प्रकारसे हृदयंगम करा देनेके लिये प्रसंगानुरोधसे एक तथ्यका उल्लेख किया जा रहा है। इस उल्लेखसे विषयान्तर अवश्य होगा, किन्तु उससे नियम की कठोरताकी वास्तविकता ध्यानमें आ सकती है।

यह तथ्य महाप्रस्थानके समयका है। अपने महाप्रस्थानके पूर्व बाईने समीपस्थ सेवापरायणा सावित्री बाईसे अपवादरहित आदेशात्मक स्वरमें कह दिया था कि कोई भी पुरुष न तो मेरे प्राणरहित पाञ्चभौतिक कलेवरका और न उस निष्प्राण कलेवरको वहन करनेवाली अर्थीका स्पर्श करे। उनके उस अत्यन्त कठोर आदेशका अक्षरशः पालन किया गया और उस अर्थीको अपने कंधोंपर लिया केवल माताओं-बहिनोंने। श्मशान घाटकी यात्राका वह दृश्य वृन्दावनके सभी संतों-महात्माओं-भक्तोंको आश्चर्यमें डुबा रहा था तथा सभीको बाईकी जय-जयकार करनेके लिये बाध्य कर रहा था। ऐसा कठोर नियम था पुरुषसे अस्पर्शित रहनेका। जो कलेवर कभी निष्प्राण होगा ही, उस शवको भी कोई पुरूष स्पर्श करे ही नहीं, ऐसा जिनका कठोर आदेश रहा हो, उनका सप्राण कलेवर कितना परम पवित्र रहा होगा, यह मात्र अनुभवका विषय है।

अब पुनः अपने प्रस्तुत विषयपर आ जाना उचित रहेगा। पुरुष स्पर्शकी तो कल्पना ही नहीं, बाई तो नारी स्पर्शसे भी भरसक बचना चाहती थीं। समाजके मध्य रहनेके कारण भाई-बहनोंसे बात करनेका प्रसंग तो आता ही था, किन्तु वे विवश थीं उनको कुछ दूर बैठा करके बात करनेके लिये। जिससे बात करती थीं, उन भाई या बहिनका जीवन यदि निर्दोष न हो तो उनके परमाणुओंका संस्पशर्म बाईके शरीरमें जलन उत्पन्न कर देता था। यदि उनका जीवन निर्दोष हो तो भी बाई उनसे बात करते समय प्रायः अपने आँचलका छोर अपनी नासिकाके अग्र भागपर रखती ही थीं। उन भाई बहिनोंका श्वास-प्रश्वास अनेक बार बाईके परम सात्त्विक कलेवरको अन्यथा रीतिसे प्रभावित करता था। सावधानी यहाँ तक बरती जाती थी कि बाईके कमरेमें जगतके त्रिगुणात्मक परमाणु प्रवेश न करने पायें। इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये बाईके रहनेवाले कमरेमें मात्र पाँच बहिनें जा सकती थीं, भाभीजी, नर्मदा बाई, सावित्री बाई, मीरा और एक सेवा परायणा साधिका।

बाईके बिस्तरकी चादर और तकियेकी खोल प्रतिदिन बदल देना आवश्यक था। वे वस्त्र, जिनको वे स्नानोपरान्त धारण किया करती थीं, उनका स्पर्श भी अन्योंके लिये वर्जित था। बाईकी शुचिता-स्वच्छता-भावमयता आदिका स्तर इतना समुन्नत हो गया था कि उनकी जीवन शैलीसे जगतका और जागतिक लोगोंका तालमेल बैठानेमें प्रतिदिन अत्यधिक कठिनाई आती थी। सत्त्वाधिक्यने उनको जागतिकतासे ऊपर उठा दिया था, अतः जगतसे वे दूर हो गयी थीं और यह दूरी क्रमशः बढ़ती ही चली जा रही थीं।

बाईके जीवनमें परम सात्त्विकता एवं चरम भावमयताकी नितान्ताधिकता होनेसे बाईको अनेक प्रकारकी विपरीतताओंका सामना करना पड़ता था। बाईका अपना एक मानसिक भावराज्य था और उस राज्यमें स्वछता-पवित्रता-शुद्धता-सुन्दरता-भावमयताका एक विशेष स्तर और स्वरूप था। बाई इस स्तर और स्वरूपको श्रीमहिला संघमें मूर्तिमान देखना चाहती थीं। एक तथ्य और है, बाईको श्रीप्रिया-प्रियतमका प्रत्यक्ष दर्शन होता रहता था। श्रीप्रिया-प्रियतमका लीला राज्य उनके नेत्रोंके सामने रहता था। श्रीप्रिया-प्रियतमकी सखी-सहचरी-मञ्जरी-अनुचरी आदिसे सदा संलाप भी होता रहता था और वे यह भी देखती रहती थीं कि उस त्रिगुणातीत निकुञ्ज-देशमें सखियाँ-सहचरियाँ-मञ्जरियाँ-अनुचरियाँ किस उत्साहसे, किस शुचितासे, किस कलात्मकतासे, किस सुन्दरतासे, किस विनम्रतासे, किस प्रियतासे, किस तत्सुखसुखी भावमयतासे अनवरत सेवा करती रहती हैं। अपनी सिद्ध स्थितिमें प्रत्यक्ष देखे-सुने हुए उस लीला-राज्यको बाई श्रीमहिला संघमें ज्यों-का-त्यों अवतरित कर देनेकी महत्त्वाकांक्षा लिये रहती थीं और इस महत्त्वाकांक्षासे अनुप्राणित रहनेके कारण वे समय-समयपर तदनुरूप आदेश-निर्देश-सुझाव-प्रेरणा आश्रमवासिनी बहिनोंको अथवा श्रीमहिला संघमें आने-जानेवाली बहिनोंको देती रहती थीं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनके सुझाव और निर्देश उनके भावराज्यके अनुरूप हुआ करते थे, किन्तु अल्पमति-अल्पगति-अल्परति-अल्पथिति वाली साधारण सांसारिक बहिनोंके लिये उसका अक्षरशः पालन कर पाना अथवा पूर्णतः मर्मार्थ समझ लेना सम्भव था ही नहीं। इस तथ्यकी किञ्चित् जानकारी हो जानेके लिये कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे।

बाई जब-तब अर्चनोत्साहमें धूपबत्ती जलवा देती थीं और जलायी जानेवाली धूपबत्तियोंकी संख्या भी कभी-कभी अधिक रहा करती थी। एक

बार बाई भागलपुरसे वृन्दावन गयीं और इस बाइस घण्टे वाली ट्रेन यात्रामें आरम्भ-से-अन्ततक अखण्ड रूपसे धूपबत्ती जलवाती रहीं। धूपबत्तीका इतना प्रयोग और इस प्रयोगपर होनेवाला व्यय अनेकोंको व्यर्थ लगता था। धूपबत्तीपर होनेवाले व्ययकी आलोचना करनेवालोंको समझा सकना कठिन है कि बाईके अर्चनाका स्तर कितना लोकोत्तर रहा है।

सांसारिक जीवनमें चढ़ावसे संत्रस्त साधारण प्राणी और भागवत जीवनके अभिलाषी अध्यात्म-पथारूढ़ साधकजन तो बाईके पास आते ही रहते थे, किन्तु लोक समादृत संत-महात्माओंके अन्तरमें भी बाईसे मिलने और सम्भाषण करनेकी चाह रहा करती थी। जो भी बाईके पास आता था या आती थी वे सभी बाईके लिये प्रणम्य होते थे। गुरूजनोंको प्रणाम करना तो समझमें आता है और उचित भी है, किन्तु छोटोंको भी प्रणाम करनेकी क्रिया, पर अनेक जन अनुचित कहकर टिप्पणी किया करते थे। 'जित देखूँ तित श्याममयी है', ऐसी स्थिति जिन बाईकी हो, उनके लिये छोटे-बड़े, बालक-वृद्ध, नौकर-मालिक, धनी-गरीब, पण्डित-मूर्ख, सभी प्रणम्य हैं और प्रणम्यताका यह गम्भीर रहस्य टिप्पणी करनेवालोंको समझा सकना वस्तुतः कठिन है। बाई अनेक बार ऐसे शब्द बोल जाया करती थीं, जिसे कोई भी सांसारिक प्राणी सत्य मान ही नहीं सकता और बाईपर मिथ्या-भाषणका दोष लगा ही देगा। यह तो एक तथ्य है ही कि बाईके गौर कलेवरमें कभी किसी सखीका और कभी किसी मञ्जरीका भावावेश होता ही रहता था। उस भााविष्ट बाईमें वह समाविष्ट सखी या मञ्जरी बाईके मुखसे बोलने लगती और बोलकर आत्म परिचय देते हुए कहने लगती कि मैं मात्र चौदह वर्षीया हूँ। जिन बाईके गौर कलेवरका जन्म हुए इक्यावन-बावन वर्ष हो गया हो, वह अपने मुखसे बोलकर स्वयंको चौदह वर्षीया बताये, यह सांसारिक दृष्टिसे सर्वथा असत्य भाषण है, परन्तु इस असत्य भाषणमें निहित वह गम्भीर सत्य सांसारिक प्राणीको समझा सकना सर्वथा-सर्वथा कठिन है।

गीतावाटिकाके भाई जयरामजी चौधरीकी बाईके प्रति सहज श्रद्धा थी और बाईका उनके प्रति सहज वात्सल्य था। गोरखपुरकी गीतावाटिकामें जब बाई तीन साल रही थीं, तब जयरामजीने बाईकी समय-समयपर जो सेवाकी, वह सदैव सराहनीय रहेगी। बिजली सम्बन्धी किसी भी परेशानीके सामने आते ही तत्क्षण जयरामजीकी याद होती और उस परेशानीको दूर करनेमें वे

जुट जाया करते थे। इतना ही नहीं, आवश्यकता पड़नेपर कूप-जल लाना, पूजा-पात्रोंका माँजना, बाजारसे सामान लाना ऐसी अनेक सेवाएँ वे बड़ी लगनसे किया करते थे। जयरामजीपर बाई बहुत प्रसन्न थीं और अनेक बार अपने मनकी बातें भी कह दिया करती थीं। अब इसे मात्र संयोग कहना चाहिये कि एक बार जयरामजी बाईके पास गये तब वे किसी अन्तरंगा सखीके भावसे आविष्ट थी। उस भावाविष्ट दशामें दिव्य लीलाराज्यके अनेक सरस भावोंका वर्णन करते हुए तथा गम्भीर सत्योंका उद्घाटन करते हुए बाईने यह भी कह दिया कि मैं अयोनिजा हूँ। जयरामजीने यह वाक्य सुन लिया और अचानक प्राप्त इस अलभ्योक्तिको एक संग्रहणीय एवं उल्लेखनीय तथ्य मानकर अपने मानस पटलपर चुपचाप लिख लिया। इस मर्म भरे तथ्योद्घाटनपर भाई जयरामजीका मन रीझ गया और वे अपने सौभाग्यकी सराहना करने लगे कि दिव्यभावस्वरूपा बाईका मुझ अकिञ्चनके प्रति ऐसा अनोखा वात्सल्य है। उल्लास-तिरेकमें भाई जयरामजीने यही बात अपने कुछ साथियोंको बतलायी। यह तथ्य कुछ साथियोंके लिये हास्यास्पद और कुछके लिये उपहासास्पद बन गया। उस अलभ्योक्तिमें गर्भित तथ्यको हृदयंगम करनेके लिये साथियोंके पास अपेक्षित मानसिक धरातल था ही नहीं!

यह सत्य है कि बाईका गौर कलेवर तो माता-पिताकी देन है और उस देनको अयोनिजा बतलाना ऐसा ही है, मानो सत्यकी आँखमें धूल झोंकना है। योनिजा होकर अयोनिजा बतलाना एक ऐसा गम्भीर और अटपटा सत्य है, जिसका सही रूपमें उद्घाटन एवं प्रतिपादन अत्यन्त कठिन है। तथ्यकी आवृत्ति तो होगी, परन्तु आवश्यकतानुसार आवृत्ति करनी पड़ रही है कि भावाविष्ट बाईमें निकुञ्ज-देशकी जो अन्तरंगा सखी समाविष्ट थीं, वह समाविष्ट सखी ही बाईके गौर कलेवरके माध्यमसे आत्मपरिचय देते हुए बोल रही थी कि मैं अयोनिजा हूँ। अब भावावेशकी दशामें योनिजा होकर भी स्वयंको अयोनिजा घोषित करनेवाली बाईकी इस अलभ्योक्तिका वह रहस्य भरा सत्य उन साथियोंको, केवल उन साथियोंको ही नहीं, अपितु किसी भी सांसारिक प्राणीको समझा सकना नितान्त कठिन है, बल्कि यह कहना चाहिये कि समझाया ही नहीं जा सकता है।

इस अध्यायके आरम्भमें सांकेतिक रूपमें कुछ बतलाया जा चुका है कि बाईके जीवनमें शौचाचारिकता-शुद्धता-शुचिता-स्वच्छता आदिका अपना जो

एक विशिष्ट माप-दण्ड था, उसके कारण लोकालयके मध्य व्यावहारिक जीवनमें प्रायः तालमेल नहीं बैठ पाता था। तालमेल न बैठनेसे उत्पन्न होनेवाला गतिरोध समीपस्थ भाई-बहिनोंमें झुँझलाहट और चिड़चिड़ापन पैदा कर देता था। लोकालयकी कौन कहे, अब श्रीमहिला संघके दैनन्दिन कार्यक्रमोंमें भी यह गतिरोध दिखलायी देने लगा और इस गतिरोधका हेतु था बाईकी भावमयताका नितान्ताधिक्य। अपने भावोदधिकी लहरोंपर कभी लहराती हुई और कभी उसमें डूबी हुई बाई कब क्या बोलेंगी, कब क्या करेंगी, कब क्या निर्देश देगी, यह सदा अनिश्चित रहता था और यह अनिश्चितता श्रीमहिला संघमें अनेक बार अव्यवस्थाका वातावरण बना दिया करती थी। श्रीमहिला संघमें मंगला आरती पाँच बजकर पचपन मिनटपर हो जानी चाहिये और होती थी बाईके आनेपर। अपने भावोदधिमें डूबी हुई बाईके न आनेके कारण मंगलावाला कार्यक्रम कभी कभी प्रातःकाल नौ बजेतक नहीं हो पाता था। इसी प्रकार कभी शृंगार आरती, कभी भोग पधराना, कभी नैवेद्य निर्माण इत्यादि निर्धारित कार्यक्रम प्रायः उपेक्षित हो जाया करते थे।

निर्धारित और नियमित कार्यक्रमोंमें अनियमितता श्रीमहिला संघके आध्यात्मिक वातावरणको अन्यथा रीतिसे प्रभावित कर रहा था। नित्य भावमयी स्थितिमें रहनेके कारण बाईका जीवन नियमिततातीत हो गया था। श्रीनारदभक्ति सूत्रमें लिखा है—'निस्त्रैगुण्यो भवति, वेदानपि संन्यस्यति, केवलमविच्छिन्नानुरागं लभते' अर्थात् पराभक्तिको प्राप्त करके व्यक्ति वेदमार्गसे ऊपर उठकर त्रिगुणातीत हो जाता है और अखण्ड असीम भगवत्प्रेममें निमग्न रहता है। भगवत्प्रेममें सतत निमग्ना बाईके ऊपरसे वेद मर्यादाने अपना अनुशासन हटा लिया था। विधि-निषेधके नियमोंके पालनकी बाध्यता तो उन साधक-साधिकाओंके लिये है, जो अभी माया-राज्यके मम-पर वाले दलदलसे उभर नहीं पाये है। किन्तु बाईका परम प्रेमरूपा-अमृतस्वरूपा भक्तिमें निमग्न जीवन इतना दिव्य और लोकोत्तर था कि उनकी छायाको भी माया देवी स्पर्श कर ही नहीं सकती थी। विधि-निषेधके नियमोंने बाईके ऊपरसे अपनी परिधि उठाकर और नियमातीत बनाकर उनको सर्वथा उन्मुक्त कर दिया था। बाईका जीवन नियमातीत था और वह नियमातीतता श्रीमहिला संघके प्रतिदिन होनेवाले नियमित कार्यक्रमोंमें जिस नियम-शून्यताको उत्पन्न कर रही थी, वह श्रीमहिला संघके लिये और श्रीमहिला संघमें रहनेवाली

तथा आनेवाली माताओं-बहिनोंके लिये हानिकारक थी। इस हानिके अवश्यम्भावी दुष्परिणाम दूर-दृष्टि रखनेवाली भाभीजीको दिखलायी दे रहे थे। बाईने ही यह नियम बलाया था कि मंगला पाँच बजकर पचपन मिनटपर हो जानी चाहिये और अब बाईके कारण ही उसी मंगला आरतीमें दो-दो, तीन-तीन घण्टेकी देर होने लगी। इस विलम्बको देखकर साथ ही बहिनें-माताएँ ही बाईकी आलोचना करने लगीं कि यह नियमातिक्रमण कहाँ तक उचित है मंगला आरतीमें जो नियमोल्लंघन हो रहा था, यह तो वस्तु-स्थितिको समझानेके लिये एक उदाहरण मात्र है। अब तो नियमोल्लंघनके अनेक प्रसंग आते ही रहते थे। नियमोल्लंघनके अनेक प्रसंगोंको देखकर माताएँ-बहिनें आलोचना करने लगीं। आलोचना करनेवाली माताओं-बहिनोंकी लौकिक दृष्टिकी सीमामें बाईका अलौकिक-असीम भावराज्य समा ही नहीं रहा था।

बाईकी अनुमानातीत स्थितिका अनुमान न लगा पानेके कारण ही साथकी बहिनें बाईमें दोष-दर्शन करने लगीं। ऐसे क्षण भी कभी-कभी आ ही जाते थे कि यह दोष-दर्शन उपेक्षा और तिरस्कारका रूप ले लेता था। बाईकी उपेक्षा या तिरस्कार भाभीजीके लिये सर्वथा असहनीय था। श्रीभाईजीने बाईके रूपमें जो परम भगवदीय धरोहर सौंपी थी, वह भाभीजीके जीवनकी निरूपमेय दिव्य निधि थी। उस दिव्य निधिकी सुरक्षा और सँभालके लिये भाभीजीके युगल नयनोंकी पलकें प्रतिक्षण सावधान और तत्पर रहा करती थीं। भाभीजीके मनमें बड़ी व्यथा होती थी कि इन नासमझ भाई-बहिनोंके द्वारा अनजानमें एक भगवदापराध ही घटित हो रहा है। भाभीजी यह भी भली प्रकार समझ रही थीं कि ये उपेक्षा करनेवाली अथवा दोष देखनेवाली माताएँ-बहिनें बाईकी गरिमाको समझ ही नहीं रही हैं। बाईकी गरिमातक चढ़कर पहुँचनेके बजाय वे सब बाईको अपने निम्न स्तरपर उतार लाना चाहती हैं। ना समझीसे उत्पन्न यह उपेक्षा भरी स्थिति भाभीजी न देख सकती थीं और न आलोचना सुन सकती थीं। भाभीजी बाईको और बाईके मानसको भली प्रकार पहचानती थीं। वे अच्छी तरह समझ रही थीं कि बाई उस त्रिगुणातीत भावराज्यको इस त्रिगुणात्मक जगतमें उतार देना चाहती हैं, परन्तु यह सम्भव था कि नहीं। संत कहा करते हैं कि जगतकी चाल कुत्तेकी पूँछकी तरह है, जो कभी सीधी होगी ही नहीं। जिस तरह सीमित गागरमें असीम सागरको भरा ही नहीं जा सकता, उसी प्रकार यह सम्भव ही नहीं है कि श्रीप्रिया-प्रियतमके

त्रिगुणातीत लीलाराज्यको इस त्रिगुणात्मक मर्त्यधर्मा संसारमें मूर्त्त कर देना। यह था चिन्तन भाभीजीका, श्रीमहिला संघके आध्यात्मिक वातावरणके सम्बन्धमें, श्रीमहिला संघमें रहने तथा आने जानेवाली माताओं और बहिनोंके व्यवहारके सम्बन्धमें और बाईके द्वारा होनेवाले अथक-अनवरत दिव्य प्रयासके सम्बन्धमें।

श्रीमहिला संघकी परम हितैषिणी भाभीजीका चिन्तन यदि व्यावहारिक स्तरको लेकर था तो इससे सर्वथा भिन्न चिन्तन था बाईका आध्यात्मिक उद्देश्यको लेकर। बाईकी महत्त्वाकांक्षा थी कि मैं जन-जनको श्रीप्रिया-प्रियतमका नित्य पार्षदत्व प्रदान करवा दूँ और सबके हृदयमें भगवत्प्रेमका सागर लहरा उठे। इसी उद्देश्यकी सिद्धिके लिये बाईने लोगोंको भिन्न-भिन्न लीला-राज्य-परक नाम दिये और भाव-सम्बन्ध स्थापित करवाये। इतना होकर भी बाईकी महत्त्वाकांक्षा एक स्वप्न ही बनी रही। महत्त्वाकांक्षाकी चरितार्थता न देखकर बाईके मनमें कम कष्ट नहीं होता था और वे अपनी व्यथाकी अभिव्यक्ति कभी-कभी भाभीजीके सामने करती थीं। यही व्यथा तो भाभीजीके मनमें भी थी। भाभीजी और बाईकी व्यथाके कारण भले भिन्न-भिन्न हों, परन्तु बाईकी व्यथासे और अधिक व्यथित होकर भाभीजीने बाईसे कहा—बाई! तू तो चाहती है कि तेरा भावराज्य श्रीमहिला संघमें उतर आये और यहाँ रहनेवाली और सेवा करनेवाली एक-एक बहिनमें श्रीप्रिया-प्रियतमके निकुञ्ज-देशकी किसी सखी-मञ्जरी-अनुचरीका अवतरण हो जाय। तेरी यह चाहना हर प्रकारसे सराहनीय है, परन्तु जगतके लोग अपनी चालसे ही चलते रहते हैं और चलेंगे। तुम जनी-जनीसे इतनी अधिक माथापच्ची करती हो, पर क्या मनचाहा फल सामने आ रहा है? इसके अलावा तुम्हारा शरीर इतनी माथापच्ची सहन नहीं कर पा रहा है। तू अपनी ओर एक बार देख तो सही। चौदह-चौदह घण्टे बैठकर समझानेसे तेरे शरीरकी क्या हालत हो गयी। पता नहीं किस-किसकी बीमारी लेकर तो पहले ही तूने इस शरीरको रोगोंका घर बना दिया है, ऊपरसे जलकी बूँद पिये बिना रातके एक-दो बजते हैं। श्रीभाईजी और पूज्य बाबाने अपनी अमूल्य निधि मुझे इसलिये थोड़े ही सौंपी थी कि तेरे शरीरकी दुर्दशा हो। तेरेसे हाथ जोड़कर मेरी प्रार्थना है कि तू व्यावहारिक जगतसे सर्वथा हट जा। अब व्यावहारिक जगतकी सेवा-पूजा सम्बन्धी सारी व्यवस्था हमलोगके हाथमें सौंप दे। तेरे बताये अनुसार करवानेकी हमलोग पूरी चेष्टा करेंगी।

भाभीजीकी दर्द भरी पुकार, यह पागल पुकार, अपितु कहना चाहिये ममता भरी मनुहारका बाईके मनपर असर हुआ। बाईने भाभीजीसे कहा—भाभीजी! मैं आपकी बात समझ रही हूँ। आप यह न सोचें कि मेरे मनमें आपके प्रति किसी प्रकारका उपेक्षा भाव है, परन्तु मैं क्या करूँ? मैं लाचार हूँ। मैं मेरे अधीन नहीं हूँ। आप जानती हैं, मेरा जीवन 'उनके' हाथमें है। जैसा वे चलाते हैं, मुझे वैसे ही चलना पड़ रहा है।

भाभीजी भी बाईकी विवशताको समझ रही थीं और बाईके कथनकी सत्यताको प्रमाणित करनेके लिये श्रीभाईजीके शब्दोंको दोहराते हुए भाभीजीने कहा—भाईजीने तो तेरे बारेमें मुझे पहले ही कह दिया था कि आगे चलकर इसके भावोंकी विचित्रता जगत समझ ही नहीं सकेगा। श्रीप्रिया-प्रियतमसे होनेवाली परम प्रियता जगतके लिये समझमें न आनेवाली बात बनकर टिप्पणी और अपचर्चाका विषय बन जायेगी। यहाँतक कि नासमझीके कारण लोग इसमें दोष देखने लगेंगे। इसलिये चन्दा! जहाँतक हो सके, इसे गुप्त-से-गुप्त रखना।

भाभीजीकी बात सुनकर बाईने विनम्र सुझाव दिया—भाभीजी! जिस समय ठाकुर मेरे सामने आकर खड़े हो जाते हैं, मैं सब कुछ भूल जाती हूँ। आपकी यह चाह तभी पूरी हो सकती है, जब आप मुझे यहाँसे अलग कर दीजिये। वास्तवमें अब मैं जगतमें रहने लायक नहीं रह गयी हूँ। अब आप मेरे रहनेकी व्यवस्था कहीं अन्यत्र कर दीजिये।

भाभीजीकी यह मान्यता क्रमशः बद्धमूल होती जा रही थी कि बाई अब जगतके योग्य नहीं रह गयी है और जगत बाईके योग्य नहीं रह गया है। अतः भाभीजी सोचने लगीं कि वृन्दावनमें बाईके ऐकान्तिक आवासका कोई प्रबन्ध अवश्य करना चाहिये। भाभीजीके मनमें बड़ी प्रसन्नता थी कि बाई ऐकान्तिक आवासके लिये राजी हो गयी है। उन्होंने तत्काल मीराको उचित स्थान देखनेके लिये वृन्दावन भेज दिया।

* * * * *

गोरखपुर-प्रवास

बाईके परम पवित्र त्रिगुणातीत जीवनमें भावमयता उत्तरोत्तर अधिकाधिक सघन होती जा रही थी और भावमयताकी सघनताकी गहरायीको हृदयंगम न कर सकनेके कारण श्रीमहिला संघके भीतर दैनन्दिन कार्यक्रमोंमें और बाहर व्यावहारिक जीवनमें गतिरोध उत्पन्न हो जाता था। इस गतिरोधसे भाभीजी प्रायः सचिन्त रहती थीं और उन्हें इससे बड़ी प्रसन्नता हुई कि बाई वृन्दावनमें ऐकान्तिक जीवन व्यतीत करनेके लिये राजी हो गयी हैं। वृन्दावनमें उचित आवास स्थानकी व्यवस्था करनेके लिये उन्होंने मीराको भेज भी दिया। मीराने वृन्दावनमें रहकर एक मासतक बहुत खोजबीन की, किन्तु बाईकी जीवन-शैलीको देखते हुए कोई भी सही ढंगका निवास स्थान नहीं मिल पाया, अतः मीरा अनिर्णीत मनोदशामें भागलपुर वापस लौट आयी।

भले मीराको समुचित निवास स्थान खोजनेमें सफलता नहीं मिली, परन्तु इतना तो निश्चित हो ही चुका था कि वृन्दावनमें ही निवास करते हुए ऐकान्तिक जीवन व्यतीत करना है। बाई भी भली प्रकार जान रही थीं कि इसके लिये भाभीजीकी ओरसे भरपूर प्रयास हो रहा है। बाईने भी सोच लिया कि अब मुझे भागलपुर छोड़कर वृन्दावनमें सदाके लिये रहना है।

एक दिन बाईने भाभीजीसे कहा—भाभीजी! आप मुझे वृन्दावन ले जाना चाहती हैं, पर मेरी यह लालसा है कि एक बार बाबाके दर्शन कर लूँ। गोरखपुरकी यात्राके बाद ही वृन्दावन जानेका कार्यक्रम बनाइयेगा।

बाईकी इस रुचिको रखनेके लिये भाभीजी तत्क्षण सहमत हो यगीं और चाह रही थीं कि बाईका स्वास्थ्य गोरखपुरकी यात्राको झेल सकने योग्य हो जाये तो गोरखपुर चला जाय। इन दिनों बाई प्रायः अस्वस्थ रहा करती थीं; कभी-कभी अस्वस्थता गम्भीर रूप ले लेती थीं। बाईके स्वास्थ्यकी स्थिति सभीको चिन्ता ग्रस्त बना रही थी, तभी बाईको मातृ-आवेश हुआ और उस मातृ-आवेशकी दशामें भगवती ताराकी ओरसे यह संकेत मिल गया कि तुम्हारा शरीर अधिक दिन नहीं रहेगा। मातृ-आवेशकी भावाविष्ट दशासे जब बाई अपने सहज रूपमें आयीं, तब उन्होंने भाभीजीको वह सब बतला दिया, जो भावावेशकी दशामें अनुभूत हुआ था। बाईकी उस अनुभूतिको सुनकर सबके मनकी चिन्ता और अधिक बढ़ गयी।

बाईकी रुग्णता और अनुभूति, इस दोनोंके कारण भाभीजी घबरा गयीं

और उनका तो एक ही आश्रय था पूज्य बाबा। उन्होंने पत्रमें सारी बात लिखकर गोरखपुर, पूज्य बाबाके पास सूचनार्थ भेज दी और वे उनके आदेशकी प्रतीक्षा करने लगीं।

श्रीबाबाके आदेशकी प्रतीक्षामें दिन बीत रहे थे कि कुछ ही दिनोंके बादकी घटना है। एक दिन रात्रिके लगभग नौ बजे थे। पासमें मीरा बैठी हुई थी। बात करते-करते बाईने अपनी आँखें बन्द कर ली। इस भाँति अचानक आँख बन्द करने और मौन हो जानेका कारण मीराको समझमें नहीं आया। उसने तुरन्त भाभीजीको बुला लिया। भाभीजी बाईके समीप बैठ गयीं। यह बैठकी लगातार ढ़ाई घण्टेतक बनी रही। ढ़ाई घण्टेतक बाई तनिक भी हिली-डुली नहीं। ऐसा तो कभी नहीं होता था। वे एक ही करवट लगातार लेटी रहीं। ढ़ाई घण्टेके बाद बाईने अपनी आँखें खोलीं।

बाईके नेत्र सजल थे और गला अवरुद्ध था। वे उठकर बैठीं और भाभीजीसे बोलीं—भाभीजी! आज शरीरमें भयंकार पीड़ा हो रही थी। कष्ट असहनीय हो रहा था। ऐसा भान हो रहा था कि आजकी रात्रि जीवनकी अन्तिम रात्रि है। उसी समय मुझे जो दिखलायी दिया वह बतला रही हूँ। आगे-आगे बालकृष्ण चल रहे हैं और उनके पीछे-पीछे भाईजी और बाबा चल रहे हैं। ये सभी लोग मेरे पास आये। भाईजी और बाबा मेरी दायीं-बायीं ओर बैठ गये तथा मेरे रोगका कुछ उपचार किया।

बाईके मुखसे इस विशिष्ट वर्णनको सुनकर भाभीजी बोलीं—बाई! तुम्हारा इलाज तो अन्तर्जगत ही कर सकता है। वही तुमको सँभालता है। हमलोग तो तुम्हारे लिये कुछ भी नहीं कर सकतीं। इस वर्णनको सुनकर मेरे मनमें ऐसा विश्वास जमता जा रहा है कि पूज्य बाबा तुम्हारी चिकित्साके लिये स्वयं सक्रिय हैं।

भाभीजीको सन्तोष था कि क्रमशः बाईके स्वास्थ्यमें सुधार आयेगा ही। दो दिन बाद ही भीमसेनजी चोपड़ा गोरखपुरसे बाबाका संदेश लेकर आ गये। चोपड़ाजीने बतलाया—बाबाने कहलवाया है कि रुक्मिणी बहिनको गोरखपुर ले आओ, मैं उसका इलाज करवाऊँगा।

बाबाके आदेशकी अवहेलनाका कोई प्रश्न था ही नहीं। तुरन्त दो दिन बाद ही १६ अप्रैल, १९८८ के दिन बाईको साथ लेकर भाभीजी, नर्मदा बाई, मीरा, शशी और चोपड़ाजी गोरखपुर चले आये। गीतावाटिका आनेके बाद बाबाने बाईकी चिकित्साकी ओर ध्यान दिया। तीन-तीन, चार-चार

डॉक्टरोंको बुलाकर दिखलाते। चिकित्सा चल भी पड़ी, पर स्वास्थ्य कभी कुछ सुधरता और कभी ज्यादा बिगड़ जाता। पच्चीस दिन बाद भाभीजीके मनमें आया कि अपने सभी लोगोंको भागलपुर वापस चलना चाहिये। भाभीजीने बाईसे वापस चलनेके लिये कहा तो उन्होंने स्पष्ट रूपसे इंकार कर दिया। भाभीजीने ऐसा मान लिया, यदि बाबा जानेके लिये आज्ञा दे देंगे, तब बाईको वह आदेश मान्य ही होगा। ऐसा सोचकर भाभीजीने वापस जानेकी बात बाबाके सामने धीरेसे सरका दी।

बातको सुनना था कि बाबा बुरी तरह बिगड़ पड़े और तीव्र स्वरमें भाभीजीसे कहने लगे—तुम रुक्मिणीको मारनेके लिये भागलपुर ले जाना चाहती हो क्या?

भाभीजी अब क्या बोलतीं? उन्होंने विनम्र स्वरमें निवेदन किया—बाबा! आपकी आज्ञा ही मेरे लिये सब कुछ है। आपकी आज्ञा मिलनेपर ही बाईको भागलपुर ले जाती। अब बाई तबतक यहाँ रहेगी, जबतक आप आज्ञा नहीं देते।

भागलपुर जानेकी बात टल गयी और यह तो बाईके लिये मनचाही स्थिति थी। चिकित्साके उपरान्त भी बाईके स्वास्थ्यमें अपेक्षित सुधार दिखलायी नहीं दे रहा था। बाईका बिगड़ता हुआ स्वास्थ्य भाभीजीको चिन्ताकुल बना रहा था। एक दिन प्रातःकाल भाभीजी बाबाको प्रणाम करने गयीं। बाबाने पूछा—चन्दा बहिन! रुक्मिणी कैसी है?

भाभीजीने कहा—बाबा! आज रातको वह बहुत तकलीफ पायी है। यदि आप कहें तो एक बार लेडी डॉक्टर रमा माँको दिखला दिया जाय।

पूज्य बाबाने झट कहा—चन्दा बहिन! आज मैं चार अच्छे डॉक्टरोंको बुलाकर शामको साढ़े चार बजे रुक्मिणीको दिखाऊँगा। उनकी राय लूँगा। उनकी बात सुनकर ही मैं निर्णय करूँगा कि क्या करना है? तुम थोड़े ही उसको ठीक कर लोगी। किसी भी काममें जल्दी नहीं करनी चाहिये। कौन-सी बीमारी क्या रूप धारण कर लेती है, मैं जानता हूँ। इसके बाद तुम चाहो तो रमा माँको दिखा देना। अभी वह देखकर क्या करेगी? मैं सबसे बड़ा डाक्टर हूँ। क्या मैं इलाज नहीं जानता? उसे तो मैं ही संभालूँगा।

बाबाके मुखसे इन उद्गारोंको सुनकर भाभीजीकी भावनाओंको बड़ा चैन मिला। क्या ही आश्चर्यकी बात है, न तो राय लेनेके लिये बाबाने चार

डॉक्टर बुलावाये और न चिकित्साका कोई क्रम बैठाया, परन्तु उसी दिन बाईके स्वास्थ्यमें आशातीत सुधार आया। भाभीजीने मान लिया कि बाबाने चुपचाप कोई कार्य किया है और उसीका यह परिणाम है कि बाईके स्वास्थ्यमें सुधार आया है।

बाईके स्वास्थ्यमें जो सुधार आया वह बहुत दिनोंतक टिक नहीं पाया। भावमयताकी स्थितिमें अधिक देर रहना, कठोर नियमोंके पालनमें स्वयंको झोकतें रहना, फलस्वरूप खान-पान, शयन-विश्राममें अत्यधिक अनिश्चितताका रहना, आदि-आदि कारणोंसे स्वास्थ्य गिरता ही चला गया। भाभीजी जब-जब अवसर देखकर लेडी डॉ. रमा माँको बुलवाती और बाईको दिखलाती थीं। रमा माँने बताया—बाईके पेटमें ट्यूमर है। यदि ऑपरेशन नहीं हुआ तो जीवनके लिये विघातक है।

रमा माँकी रिपोर्टने नर्मदा बाईको चौंका दिया और उन्हें एक पुरानी बात याद आ गयी कि बाईने संकल्प करके भाभीजीके उदरकी कष्ट प्रदायिनी गाँठको अपने ऊपर कुछ साल पहले ही ले लिया था। उस समय इस गाँठके कारण भाभीजीके जीवनके अस्तित्वपर बन आयी थी और चिकित्साके लिये बहुत दौड़ धूप हो रही थी। भाभीजीके जीवनके सम्बन्धके जो कुशंका उभर रही थी, उसको बाईने अपनी भीतरी आँखेंसे देख लिया था और भाभीजीके सुदीर्घ जीवनकी मंगल कामनासे प्रेरित होकर उसे अपने ऊपर ले लिया था। वही गाँठ अब ट्यूमरके रूपमें विकसित होकर प्रकुपित हो रही थी।

स्मृतिके उभारसे ट्यूमरके इतिहासकी जो रुपरेखा सामने आयी, उसने नर्मदा बाईको न केवल चौंकाया अपितु भयभीत भी बना दिया। भयभीत भाभीजी भी बहुत अधिक हो गयी थीं। बाईके पेटमें ट्यूमर होनेकी जानकारी होते ही भाभीजीका मन बहुत आतंकित हो उठा। मन तो आतंकित था ही, बाईकी एक बातने भाभीजीको और डरा दिया। जब पीड़ा बहुत बढ़ गयी, तब एक दिन बाईने कह ही दिया—भाभीजी! यह ट्यूमर मेरा काल है, पर अभी मैं जाऊँगी नहीं।

ऊपरी तौरपर भाभीजीने संतोष व्यक्त कर दिया, किन्तु भीतर-ही-भीतर भाभीजीका मन बड़ा संत्रस्त रहने लगा। बाबाको बाईकी बीमारीका विवरण बतलाना और गोरखपुरके चिकित्सकोंकी सलाह और दवाके अनुसार बाईकी सेवा करना यही भाभीजी कार्य था। भाभीजीके लिये गोरखपुर सदा रहना सम्भव नहीं था। उनके ऊपर श्रीमहिला संघका और अपने परिवारका भी

दायित्व था, अतः भाभीजीका भागलपुर आना-जाना बना ही रहता था।

बाई गीतावाटिकाके अतिथिशालामें रह रही थीं। साथमें थीं भाभीजी, नर्मदा बाई, शशी और कमल बाई। सभीका ध्यान बाईके स्वास्थ्यपर और इसीके साथ उनकी भावमयताके चढ़ाव-उतार पर बना रहता था। एक दिन प्रातःकाल छः बजे बाईके पेटमें भयंकर पीड़ा हुई। भाभीजीने अनुमान लगा लिया कि यह भयंकर पीड़ा उस ट्यूमरके कारण है। बात भी यही थी। समय-समयपर ट्यूमरके कारण बाईको ऐसी पीड़ा होती थी कि मानो कालका बुलावा आ गया हो। पीड़ा देखकर भाभीजी, नर्मदा बाई तथा अन्य बहिनें बहुत घबरा गयीं। भाभीजीने कमलजी और मुन्नीजीको बुलानेके लिये शशीको भेज दिया। कमलजी और मुन्नीजी तो बाईकी परम अन्तरंगा सहेली रही हैं। बाई उनके साथ बैठकर घण्टों-घण्टों बात किया करती थी और श्रीप्रिया-प्रियतमके लीला-राज्यकी अनोखी-से-अनोखी लीलाएँ सुनाया करती थीं।

भावकी दृष्टिसे बहिन कमलजीको बाई भी अपनी बहिन मानती थीं और सदैव आन्तरिक सम्मान दिया करती थीं। कमलजी और मुन्नीजीका भी बाईके प्रति गहरा लगाव था। शशीके साथ कमलजी और मुन्नीजी तुरन्त बाईके पास आयीं। बाईकी पीड़ा देखकर वे भी चिन्ताकुल हो गयीं। 'हारेको हरिनाम'। कमलजी और मुन्नीजी राधानामका संकीर्तन करने लगीं। संकीर्तनमें समीपस्थ सभी बहिनें सहयोग दे रही थीं। तभी अचानक बाई बिल्कुल निश्चेष्ट हो गयीं। भाभीजीने तथा नर्मदा बाईने यह अनुमान लगा लिया कि बाई बेहोश हो गयी हैं और पीड़ाको असहनीय दशामें बेहोशी हुई है। बेहोशीमें जब एक घण्टा बीत गया, तब भाभीजी दौड़कर बाबाके पास गयीं और बाईकी बेहोशीकी सूचना दीं। सुन करके भी बाबा शान्त बैठे रहे। बाबाके मौनका रहस्य बाबा ही जानें। भाभीजीकी बाईके प्रति जो ममता थी, उसके कारण मनमें भाभीजीने ऐसा ही मान लिया कि बाबा चुपचाप बैठे हुए बाईके लिये भीतर-भीतर कुछ कर रहे होंगे। सूचना देना मेरा कार्य था, वह मैंने कर दिया। थोड़ी देर बाद भाभीजी बाबाके पाससे चली आयीं।

भाभीजी फिर बाईके पास आयीं, पर बाई तो उसी प्रकार निस्पन्द लेटी हुई थीं। जीवनका यही लक्षण शेष था कि श्वास चल रहा है। कमलजी और मुन्नीजीके लिये भी लगातार बैठे रहना सम्भव नहीं था। वे भी अपने कमरेमें कभी चली जातीं और कभी वहाँसे बाईके पास चली आती थीं। वे

भी बड़ी चिन्तित थीं, परन्तु कोई उपाय नहीं था। बस, राधानाम संकीर्तन और श्रीराधा-कृपा-कटाक्ष-स्तोत्र, श्रीरामरक्षास्तोत्र तथा गजेन्द्रमोक्षका पाठ हो रहा था। ज्यों-ज्यों समय बीत रहा था, चिन्ताकी स्थिति गहरा रही थी। प्रत्येक क्षण प्रतीक्षामें बीत रहा था कि बाई कब उठेंगी। सुबह छः बजे बाई बेहोश हुई थीं और शाम छः बज गये थे। यह तो बड़ी ही दर्द भरी भयप्रद स्थिति थी। यदि स्वस्थ दशामें निस्पन्दता आयी होती तो यह मान लिया जाता कि बाई अपने भावोदधिमें निमग्न हैं, परन्तु निस्पन्दताके रूपमें यह बेहाशी भयंकर उदरशूलका परिणाम थी और इतनी देर बेहोश रहना तो लगता है मानो खतरेकी कोई घण्टी हो। अब तो रातके नौ बजने लगे। चिन्ताने डरावना रूप धारण कर लिया।

रात नौ बजे बाबाकी भिक्षाका कार्य पूरा हुआ और तभी कमलजी और मुन्नीमें एक अनोखी तरंग उठी। वे ढोलक और झाँझ लेकर बाईके पास आ गयीं और रासके पद गा-गा करके नाचने लगीं। नर्तन-गायनका क्रम दस बजेतक चला होगा कि बाई अचानक उठ बैठीं। उठकर बाईने बिस्तरकी चादर अपने हाथमें ले ली और फिर जमीनपर रखकर उसीपर बैठ गयीं। बैठते समय बाईके मुखमण्डलपर ऐसी प्रसन्नता छायी हुई थी जिसको शब्दोंमें व्यक्त कर पाना कठिन है। बाईकी मुखाकृतिपर अथवा शरीरके किसी भी अंगपर भुक्त कष्टके किसी भी लक्षणका आभास नहीं मिल रहा था। उनकी प्रसन्न मुख मुद्रा और तरंगायमान चेष्टाओंको देखकर ऐसा लगता था मानो बाई स्नानोपरान्त पूजा करके और भोजन करके अति तृप्तावस्थामें बात कर रही हैं। बाईकी इस प्रसन्नतापूर्ण स्थितिको देखकर सभीको परमाश्चर्य हो रहा था। गत पन्द्रह घण्टोंमें बाईके मुखमें आहारकी कौन कहे, जलकी एक बूँद भी नहीं गयी थी। पन्द्रह घण्टे निस्पन्द लेटे रहनेपर किसी भी मानवके शरीरमें अकड़न आ ही जाती है किन्तु ऐसा कुछ भी चिह्न बाईके शरीरपर दिखलायी नहीं दे रहा था।

मातृहृदया नर्मदा बाईने उनको कुछ खिला-पिला देना चाहा, तब बाईने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—माँ! मैं आपको भूखी लग रही हूँ क्या?

बाई फिर कमलजी और मुन्नीजीकी ओर उन्मुख होकर कहने लगीं—मुझे रञ्चमात्र प्यास नहीं है, भूख नहीं हैं। मेरा पेट भरा हुआ है। मैं तो उस राज्यमें उन्मुक्त विहार कर रही थी। वहाँ विहार करनेवालोंको श्रीप्रिया-प्रियतम भूखे और प्यासे रखेंगे क्या? वहाँका उल्लास ही तो मेरे ऊपर छाया हुआ है। वही आपलोग देख रही हैं। वहाँके उल्लास और आनन्दकी

सीमा नहीं।

बाईने फिर वहाँके लीला-विहारका वर्णन आरम्भ कर दिया। बाई मुस्कुरा-मुस्कुरा कर, विलक्षण भंगिमाएँ दिखा-दिखाकर श्रीप्रिया-प्रियतमके विहारकी बातें बतला रही थीं और इस वर्णनमें तीन घण्टे कब निकल गये, किसीको भी पता ही नहीं चला। अब रात्रिके एक बज रहे थे। बहुत आग्रह करनेपर बाई उठ सकीं। बाईकी यह लोकोत्तर स्थिति देखकर आश्चर्यमें डूबी हुई सभी अपने सौभाग्यकी सराहना कर रही थीं।

बाई अस्वस्थ थीं, पर उनमें यह भी क्षमता थी कि रुग्णतासे ऊपर उठकर आवश्यक कर्त्तव्यके पालनमें पूर्णतः संलग्न हो जाना। इन दिनों बाबाका भी स्वास्थ्य गड़बड़ ही रहता था। जब बाबा अधिक बीमार पड़ जाते थे, तब उनके स्वास्थ्य-लाभके लिये बाई देवाराधन करवाया करती थीं। बाईका सबसे अधिक विश्वास बहिन विमलाजी भारद्वाजपर था, जो सात्त्विकता और सेवा-परायणताकी साकार प्रतिमा है। उसे नख-शिख श्रद्धा और सेवा ही कहना चाहिये। बाबाके प्रति उनकी श्रद्धा और सेवाका जो रूप रहा है, वह अत्यन्त ही सराहनीय है। विमलाजीकी सेवा इसी स्तरकी रही है बाईके प्रति भी। विमलाजीसे बाईका मन इतना अधिक मिला हुआ था कि जो काम बाई अन्य किसीसे नहीं करवाती थीं, वह विमलाजीसे सहज करवा लेती थीं। एक बार बाईने विमलाजीसे श्रीबाबाके स्वास्थ्य-लाभार्थ इक्कीस दिनका एक अनुष्ठान करवाया। यह अनुष्ठान विमलाजीने स्वयं किया। वे बाईके द्वारा बतलाये गये कठोर नियमोंका अक्षरशः पालन करती हुई श्रद्धा-भक्ति सहित अनुष्ठान कर रही थीं। बीचमें अशुचिताके कारण तीन दिन अनुष्ठानमें बाधा आ गयी, अतः उन्हें किसी अन्य बहिनका सहारा लेना पड़ा और इस प्रकार अनुष्ठानका क्रम अखण्ड रूपसे चलता रहा। क्रमशः अनुष्ठानके बीस दिन बीत गये। केवल एक दिन शेष था। बहिन विमला बाईके पास गयीं और कहा—बाई! कल अनुष्ठान पूर्ण हो जायेगा। पूर्णताके अवसरपर मुझे क्या करना चाहिये?

बाईने कहा—पूर्ण होनेपर पञ्चोपचारसे देवाराधन करके तीन ब्राह्मणोंको भोजन करवा देना, फिर वस्त्रसहित दक्षिणा देकर प्रणाम कर लेना और मन-ही-मन श्रीबाबाके स्वास्थ्यकी याचना करना।

आवश्यक निर्देश प्राप्त करके बहिन विमला अपने घर आ गयीं और अनुष्ठानकी पूर्णतासे सम्बन्धित कार्यमें संलग्न हो गयीं। इधर रात्रिके समय बालकृष्णने आकर बाईको बतलाया—बाई! विमलाजी वाला अनुष्ठान अभी अपूर्ण

है। उसने तीन दिन अनुष्ठान नहीं किया है। उसे तीन दिन और करना चाहिये तभी अनुष्ठान पूर्ण होगा।

प्रात:काल बाईने तुरन्त विमलाजीको बुलवा लिया और कहा—मुझे रात्रिके समय यह बतलाया गया है कि अनुष्ठानमें अपूर्णता है। तीन दिन और करनेसे अनुष्ठान पूर्ण होगा।

विमलाजीके आश्चर्यकी सीमा नहीं थी कि क्या अनुष्ठानकी सांगोपांगतापर इतना अधिक ध्यान अन्तर्जगत द्वारा दिया जा रहा है। विमलाजीने तीन दिनतक जिस बहिनसे सहारा लिया था, वह बात बतला दी और तुरन्त बाईके सामने निश्चय किया—बाई! मैं तीन दिन और अनुष्ठान करूँगी, तभी इस अनुष्ठानकी विधिवत् पूर्णता समझी जायेगी।

तीन दिन बाद अनुष्ठानकी विधिपूर्वक सम्पन्नता हुई और उसका परिणाम भी सामने दिखलायी दिया कि बाबाके स्वास्थ्यमें पर्याप्त सुधार आया है। बाबाके स्वास्थ्यमें सुधारका समाचार सुनकर बाईकी आँखोंमें जो उल्लास छा जाता था, उसका वर्णन तो वही कर सकता है जिसने देखा हो।

बाई अपने पास आनेवाली माताओं और बहिनोंसे श्रीभाईजी और श्रीबाबाके दिव्यस्वरूपकी चर्चा किया करती थीं, जिससे वाटिकाकी इन युगल महाविभूतियोंके प्रति वे श्रद्धान्वित हो सकें। इतना ही नहीं पासमें आनेवाली बहिनों-भाइयोंको भजन परायण जीवन व्यतीत करनेके लिये प्रेरणा देतीं। देवरियाकी बीस-पच्चीस बहिनोंमें-से कभी कोइ, कभी कोई प्राय: आती ही रहती थीं और उनका जमघट बाईके पास बना रहता था। इसी प्रकारसे जमघट रहता था गोरखपुरकी बहिनोंका। यहाँ एक-दो विशेष बातें बतानी जरूरी है। जमघटका यह अर्थ नहीं लेना चाहिये कि बाई सबसे सदा सब समय उन्मुक्त मिलती रहती थीं। मिलनेवालोंको कई बार घण्टों-घण्टों प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। बाई अपनी एकान्तिक भावमयतासे जब सहज धरातलपर आती थीं, तब भाई-बहिनोंसे मिलन हो पाता था। मिलन होते ही बाईका पहला प्रश्न होता था—क्या आपलोग बाबाको प्रणाम करके आये हैं? क्या आपने भाईजीकी समाधिको प्रणाम किया है? यदि नहीं किया है तो पहले प्रणाम करके आइये, तब बातचीत हो पायेगी।

जिन-जिनको यह मालूम था, वे तो समाधिको और श्रीबाबाको तथा गिरिराज भगवान्को प्रणाम करके आते थे अत: उन्हें जाना नहीं पड़ता था, अन्यथा इस आदेशका पालन करनेके लिये वे भाई-बहिन जाते थे और तब बाईसे मिल पाते थे। बाईसे मिलनेका जिनको-जिनको भी सौभाग्य मिला

था वे सब जानते और जानती थीं कि उन सबको साधनामें संलग्न हो जानेकी प्रेरणा मिला करती थी। इस बार बाई गीतावाटिकामें लगभग तीन वर्ष रहीं और इस अवधिमें अनेकों भाई-बहिनोंके जीवनमें सराहनीय मोड़ आया और अनेकोंके पारिवारिक वातावरणमें प्रियताकी सुगन्ध फैल गयी।

आदरणीय भाई राधेश्यामजी बंका श्रीभाईजी एवं श्रीबाबाके प्रति समर्पित हैं। वे स्थायी रूपसे गीतावाटिकामें ही निवास करते हैं। उन दिनों बंकाजी श्रीभाईजी एवं श्रीबाबाके संस्मरणोंका लेखन कार्य कर रहे थे। बाई उनके इस कार्यको एक महान कार्य मानती थीं और उनके लेखनको मन-ही-मन वन्दन करती थीं। वे चाहती थीं कि बंकाजीके लेखन कार्यमें अधिक-से-अधिक सहयोग देकर इस कार्यको पूरा करवाना चाहिये। बाई अपनी स्मृतिके आधारपर उन्हें श्रीभाईजीसे सम्बन्धित घटनायें भी बतलाया करतीं और उनके लिखे हुए लेखोंमें उन्हें जहाँ शंका होती, उसका समाधान भी कर दिया करती थीं।

उनके द्वारा लिखी हुई 'परम भागवत श्रीपोद्दारजी', 'संत हृदय श्रीपोद्दारजी', और 'महाभावोदधि श्रीपोद्दारजी' इन तीन पुस्तकोंको सन् १९९१ के नवम्बर मासमें तत्कालीन उपराष्ट्रपति श्रीशंकरदयालजी शर्माने प्रभुके श्रीचरणोंपर समर्पित करके श्रद्धालु भक्तोंके लिये सुलभ बना दिया। बाईके सहयोगसे ही इन तीन पुस्तकोंका कार्य पूर्ण हो सका।

कभी पास आनेवाली माताओं-बहिनोंको साधन-भजनके लिये प्रोत्साहन देना, कभी श्रीभाईजी एवं श्रीबाबासे सम्बन्धित लेखन कार्यमें सहयोग देना, कभी विभिन्न देवाराधनोंके कार्यक्रममें तत्पर रहना, इस प्रकार अनेक कार्योंको करते हुए भी बाईका अधिकांश समय कमरेके एकान्तमें ही व्यतीत होता था। उस एकान्तमें वे घण्टों-घण्टों अपने भावोदधिमें निमग्न रहा करती थीं। अवश्य ही उन अनुभूत लीलाओंकी चर्चा कमलजी, मुन्नीजी और विमलाजीसे कभी-कभी किया करती थीं। जब भी ऐसी चर्चा होती थी, समयका भान नहीं रहता था, न कहनेवालीको न सुननेवालीको।

गीतावाटिकामें श्रीकृष्ण जन्माष्टमीका उत्सव उत्साहपूर्वक मनाया गया। श्रीकृष्ण जन्माष्टमीके अवसरपर बाई सदा ही विशेष रूपसे उत्फुल्ल और उत्साहित हो जाया करती थीं। छः दिन बाद षष्ठीका उत्सव होनेवाला था। बाईके हृदयका अमिताह्लाद उनके अधरों और नयनोंपर क्षणे-क्षणे छलक रहा था। उनकी अति प्रसन्न मुखाकृतिको देखकर कमलजीने कहा—आज किस

आनन्दमें आप लहरा रही हैं?

बाईने कहा—आइये! इसका आस्वादन आप भी कीजिये। कमलजी! बालकृष्णकी आज जो लीला होनेवाली है, उसका आभास मुझे तो मिल गया है, किन्तु उस होनेवाली लीलाके लिये आप एक निमन्त्रण पत्र बालकृष्णके नाम लिख दीजिये।

कमलजीने कहा—बाई! मेरी इतनी पहुँच कहाँ, जो मैं इस प्रकारके पत्रको लिख सकूँ और पत्र द्वारा आमन्त्रित कर सकूँ।

उमंग भरे स्वरमें बाईने कहा—पत्रमें लिखवा तो दूँगी, परन्तु आप अपने हाथमें कागज, कलम तो लीजिये।

कमलजीने तुरन्त अपने हाथमें कागज कलम ले लिया और पत्र लिखनेके लिये तैयार हो गयीं। बाई वह पत्र बोलतीं जा रही थीं और कमलजी लिखती जा रही थीं, वह पत्र इस प्रकार है—

श्रीकृष्ण

प्रिय बालकृष्ण श्रीचरणोंमें,

सप्रेम प्यार लिये चन्दन वन्दन। उत्फुल्ल कमल दल-लोचन रसवारिधि नित्य नव मधुर गोपीजन वल्लभ राधिका हृदय भूषण, व्रज जीवन-धन, मैया जसोदा नन्दबाबाके कुलदीपक, तुम सदैव प्रसन्न रहना। आज महा मधुर षष्ठी पूजन है। रसलुब्ध भ्रमरियाँ तुम्हारे दर्शनके लिये हे नील कमल-दल-लोचन झुण्ड-की-झुण्ड आयेंगी। उसमें तुम पहचान लेना अपने हृदय-धन रस सरिता गौरांगी प्रेयसी को। चन्द्रवदनी, निरुपमा, छबीली, रससिक्ता, मधुरा, दिव्याभा, मृगलोचनी, (चन्द्रवदनी) कुञ्ज गामिनी, प्रतिभा, शैवालिनी सुन्दरी इत्यादि हम सभी रहेंगी। देखो! मधुर प्रिय तुम सचेत रहना। अदृश्य शक्तिके द्वारा अलक्षित क्रिया होगी, तुम स्वीकार करना।

प्रिय नन्दनन्दन! सहास्य विनोद मैं भूलकर भी नहीं करती। तुम जानते हो मेरा सतत प्रयास केवल तुम दोनोंको सुखी देखनेका तुम्हारा सुख सौभाग्य संयुक्त करना ही है। यह अधिकार भी तो तुम्हींने दिया है न! मैं मुख्य द्वारपर किशोरीको लिये खड़ी रहूँगी। तुम अलक्षित शक्तिके द्वारा अदृष्टभूत महाशक्तिके द्वारा प्रेरित करके मुझे बुला लेना।

सतत सावधान

अपने ही दिये हुए अधिकारका खेल देखो।

कुञ्ज गामिनी, अनुगामिनी, मधुर भामिनी, रसमयी स्वामिनी, निकुञ्ज स्वामिनी, अभिरामिनी, श्यामानुरागिनी सभी सुमध्य द्वार पे रहेंगी उनको तो मैं लेती आऊँगी।

प्रिय भामिनी, अनुतापिनी, लालित्य तारुनी, मनोहारिनी इनको तुम बुला लेना। यह कनिष्ठ द्वार पे रहेंगी।

बालशिशु! अब तुम छः दिनके हो गये। इस व्रज वृन्दावनमें आविर्भूत होनेका अर्थ कुछ करना है। मैं तुम्हें अनन्त रससिन्धुमें अवगाहन करते हुए हृदयसे शुभाशीर्वाद दे रही हूँ। तुम नित्य-नव-मधुर, मधुरातिमधुर, चन्द्र वंश अवतंस, लीलानायक नित्यनिकुञ्जेश्वरी, प्राणेश्वरी श्रीराधाके वक्षस्थलपर नित्य विहार करो। हम सभी तुमको चारों ओरसे सदैव घेरे रहेंगी। सेवा उपकरण मधुर सुनयन हम स्वयं बन जायेंगी। बंसीका स्वर निनादित हो चुका है। वह बेचारी तुम्हारे बिना अपना अल्हड़ जीवन व्यतीत कर रही है। इसके विषयमें भी मुझे उसी समय संकेत कर देना। मैं उसका शृंगार करके ले आऊँगी।

छैल छबीले! जसुमति लाडले! अब हमलोगोंके साथ हिलमिल कर कुछ करना है। अब पालनेमें सोनेसे काम नहीं चलेगा। ललित लीलास्थली भी तैयार कर चुकी हूँ। आवरण भंग लीला भी मध्यरात्रि तक हो जाना चाहिये। भ्रू भंग भृंग रसलोलुप चन्द्रोदय कैतव! चलो-चलो हम सब आ रही हैं।

रस कल्पलता।

मधुप रस प्रलुब्धकारीकी जय हो!

इस पत्रकी बहुत-सी बातें समझके परेकी हैं। इस पत्रमें कुछ ऐसी लीलाका संकेत किया गया है, जो सर्वथा अन्तरंग है। इस अन्तरंग लीलाका मात्र संकेत है, परन्तु यह संकेत इतना तो बोध करा ही देता है कि बाईकी श्रीप्रिया-प्रियतमके लीलाराज्यमें कितनी अधिक पहुँच है। इसी प्रकार भावोंके सागरकी लहरोंपर लहराती-डूबती हुई बाईके तीन वर्ष गीतावाटिकामें तीन दिनकी तरह बीत गये।

* * * * *

भावाविष्ट व्यक्तित्वकी विशिष्टता

फरवरपुर वाली मैया अचानक बहुत बीमार पड़ गयी। इन मैयाके प्रति बाईकी श्रद्धा-भावना बहुत अधिक थी। इनकी रुग्णताका समाचार सुनते ही बाई उनकी सँभालके लिये बेचैन हो उठीं। अवसर देखकर बाई भाभीजी और नर्मदा बाईके साथ बाबाके पास गयीं और प्रणाम करके विनम्र स्वरमें अनुरोध किया—बाबा! मेरी अपनी एक भाभीजी हैं। वे अत्यधिक रुग्ण हैं। उनको सँभालना मेरा कर्त्तव्य है। उनकी चिकित्सा और सेवाचर्याके लिये पटना जाना आवश्यक है। यदि आप आज्ञा दें, तो मैं पटना चली जाऊँ?

बाबाने जानेके लिये अपनी आज्ञा प्रदान कर दी। अब बाई गीतावाटिकामें सभी स्नेहीजनोंसे जानेके लिये विदा लेने लगीं। कोई पूछता कि बाई आप कबतक लौटकर आयेंगी, तो बाई यही कहतीं—मैं पटना केवल चार दिनके लिये जा रही हूँ।

सभीके लिये बाईका यही उत्तर था। जब बाई गीतावाटिकासे विदा लेकर मुख्य प्रवेश-द्वारपर आ गयीं तो मुन्नीजीने हाथ पकड़ लिया और प्रीति सनी वाणीमें अधिकार जमाते हुए कहा—मैं आपको यहाँसे तब जाने दूँगी, जब आप यह वचन देंगी कि मैं पटना चार दिन रह करके वापस गोरखपुर आ जाऊँगी।

मुन्नीजीकी बात सुनकर बाई कुछ गम्भीर हो गयीं और कुछ क्षण मौन रहनेके लिये बोलीं—मुन्नीजी! यह वचन मैं नहीं दे सकती। मैं तो 'उनके' आधीन हूँ। मुझे तो वे देश-देशान्तरमें जहाँ ले जायेंगे, वहीं चली जाऊँगी।

इस उत्तरको सुनकर मुन्नीजीके मनमें भावोंका चढ़ाव-उतार थोड़ा बहुत आया ही, परन्तु उत्तरका मर्म समझमें तब आया, जब बाईने इस जगतसे महाप्रस्थान किया। उनके उत्तरमें 'देश' शब्द संकेत कर रहा था, पटना, भागलपुर, वृन्दावनकी ओर और 'देशान्तर' शब्द संकेत कर रहा था, श्रीप्रिया प्रियतमके देशातीत नित्य-निकुञ्ज धामकी ओर। बाईके मुखसे शब्दोंका प्रयोग ऐसा कौशल पूर्ण था कि उस समय उसका मर्म केवल बाईके अन्तरतक ही सीमित रहा।

गीतावाटिकासे विदाई लेकर बाई अपने परिकरों सहित गोरखपुरसे पटना

आ गयीं। पटना जाकर बाई उनकी चिकित्सा और सेवाका प्रबन्ध करानेमें तत्पर हो गयीं। इस कार्यमें उनको वहाँ चार-पाँच दिन लग गये। फिर वे पटनासे भागलपुर आ गयीं। बाई भागलपुर आ तो गयीं पर रहनेकी मन:स्थिति नहीं थी। बार-बार वृन्दावन जानेके लिये कह रही थीं। भाभीजी भी उनको अनेक कारणोंसे वृन्दावन ही रखना आवश्यक समझ रही थीं। अनेक कारणोंमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारण था बाईकी अति विलक्षण मानसिक स्थिति और अति विचित्र शारीरिक चेष्टाएँ। इस विलक्षणता और विचित्रताका दर्शन एक ही दिनमें कई बार हो जाया करता था और यह विलक्षणता-विचित्रता प्रस्फुटित होती थी उस भावात्मक परिवर्तनसे, जो बाईके भीतर ही भीतर परोक्ष रूपसे समय-समयपर होता रहता था। विभिन्न श्रेणियोंके भावोंका और उन श्रेणियोंमें विविध स्तरके भावोंका बाईमें आवेश होना तथा भावावेशकी स्थितिका सघन होना एवं उस सघनताका कभी अल्प और कभी दीर्घ अवधि तक बने रहना, वे सब कुछ ऐसी अत्यधिक अटपटी और अनोखी बातें थीं, जिनके फलस्वरूप बाई साधारण सांसारिक प्राणियोंके मध्य रहने लायक नहीं रह गयी थीं।

बाईकी स्थितिको समझाया ही नहीं जा सकता और यदि समझानेका कुछ प्रयास भी किया जाय तो सांसारिक प्राणीकी कौन कहे, उच्च स्तरके साधक भी शायद ही समझ पायें। बाईकी नितान्त लोकोत्तर स्थितिको समझा सकना अथवा शब्दोंमें व्यक्त कर सकना सर्वथा-सर्वथा कठिन है। शाखाचन्द्र न्यायसे संकेत करनेका प्रयास किया जा सकता है, किन्तु प्रयासकी सफलताके आगे प्रश्न वाचक चिह्न लग ही जायेगा। किसी अतिथिशालाके एक कमरेमें समय-समयपर आ-आ करके ठहरनेवाले अतिथियोंका उदाहरण देकर इस तथ्यको समझानेका प्रयास किया जा रहा है।

अनुमान करिये कि अतिथिशालाका कमरा है। उस कमरेमें आज एक अतिथि है, दूसरे दिन दूसरा, तीसरे दिन तीसरा, चौथे दिन चौथा आता है। कभी-कभी एक ही दिनमें उस कमरेमें अन्दर बारी-बारीसे सात-आठ अतिथि आते और जाते हैं। मास भरमें और इस प्रकार वर्ष भरमें उस कमरेमें न जाने कितने अतिथि आ-आ करके चले गये होंगे। उन आने और चले जानेवाले अथवा बार-बार आनेवाले अतिथियोंकी गणना कर सकना

सम्भव नहीं है, इसी प्रकार सर्वथा असम्भव है बाईके परम सात्त्विक, परम पवित्र, परम निर्मल, परम सुकुमार कलेवरमें आने-जाने वाली सखियों-मञ्जरियों-सहेलियों-अनुचरियों आदिकी गणना।

केवल इन सखियों-सहचरियों-मञ्जरियों-अनुचरियोंकी ही बात नहीं, भगवानके जो दशावतार हुए हैं, उनका भी अनेक बार बाईके शरीरमें भावावेश हुआ है। जगज्जननी पराम्बाका भी बाईके कलेवरमें सात बार आवेश हुआ है और उनके नाम भी भिन्न-भिन्न हैं। इन्हें मातृ आवेश कहा जाता है। जब कोई सखी या मञ्जरीका भावावेश होता था तो उसके आविष्ट होनेकी क्रियाको बाई 'परिधि लेना' कहती थीं। यह शब्दावली बाईकी अपनी निजी थी। अपने भावोंके आवेशको समीपस्थ बहिनोंको समझानेके लिये यही शब्द बाई बार-बार प्रयोग करती थीं कि अमुक सखीने परिधि ले ली है।

बाई अनेक बार कहती थीं—मैं जब चुपचाप सोयी रहूँ तब कोई भी मेरा स्पर्श न करे। इसका एक विशेष कारण था कि जो सखी आयी थी, उसके चले जानेके बाद जो आनेवाली है, उसने परिधि ली नहीं है। इस मध्यान्तरमें यदि कोई इस शरीरका स्पर्श कर लेगा तो हो सकता है कि आनेवाली सखी या मञ्जरी अपनी परिधि ले ही नहीं और फिर यह शरीर सदाके लिये प्राणहीन रह जायेगा, अतः किसीको भी मेरा स्पर्श नहीं करना चाहिये।

एक बार अज्ञानमें यह खतरा मीराके हाथों हो गया। श्रीमहिला संघके ऊपरवाले कमरेमें बाई सोयी हुई थीं। पड़ोसके घरमें चोर उतर आये और कुछ शोरगुल-सा होने लगा। मीराको ऐसा लगा कि वे चोर श्रीमहिला संघमें भी आ सकते हैं। मनकी भयभीतावस्थामें मीराने बाईको आवाज लगायी। बाईकी ओरसे कोई उत्तर नहीं मिलनेपर मीराने यही सोचा कि बाई गहरी नींदमें हैं। अपनी और श्रीमहिला संघकी सुरक्षाकी भावनासे प्रेरित होकर बाईको मीरा अपने हाथोंमें उठाकर कमरेसे बाहर ले आयी और बरामदेकी खिड़कीके सामने खड़ा कर दिया। बाई पाषाणवत् खड़ी रहीं और उनकी सँभालके लिये मीरा भी पार्श्वमें खड़ी रही। जब पड़ोसके घरका शोर-गुल समाप्त हो गया तो मीराने बाईको बरामदेसे कमरेमें लाकर पूर्ववत् सुला दिया। सबेरे जब बाई उठीं तो मीराने उसकी चर्चा बाईसे की।

बाईने मीरासे कहा—मुझे बिल्कुल ज्ञान नहीं कि तुमने मुझको आवाज

दी, मुझको कमरेसे उठाया, बाहर बरामदेमें खड़ा किया, बाहर बहुत देरतक खड़ी रहीं, फिर तुमने लाकर सुला दिया। इन सबका रञ्चमात्र आभास नहीं। आभास न होनेका एक गुप्त और अन्तरंग हेतु है, जो सखी आयी थी उसके चले जानेके बाद जो आनेवाली थी, उसने अपनी परिधि ली नहीं थी, उसीके बीचमें तुम्हारे द्वारा ये सारी क्रिया हुई। यदि कहीं आनेवाली सखीको तुम्हारे द्वारा हुई छेड़-छाड़की गन्ध भी मिल जाती तो फिर वह परिधि नहीं लेती और परिणामस्वरूप यह निष्प्राण कलेवर ही तुमलोगोंके पास रह जाता। भविष्यमें ध्यान रखना कि जब मैं चुपचाप सोयी रहूँ, तब भूलकर भी मेरा स्पर्श मत करना।

मीराके द्वारा अज्ञानमें जो क्रिया हो गयी थी, वह कितनी हानिकारक थी, उसका हल्का-सा दिग्दर्शन करानेके लिये ऊपरवाली घटनाका उल्लेख किया गया। परिधि लेना अर्थात् समय-समयपर भिन्न-भिन्न सखियों-मञ्जरियों-सहचरियों-अनुचरियोंका बाईके शरीरमें अवतरित होना और उन-उनके भावसे बाईका आविष्ट हो जाना, ये तो बाईके दिव्य व्यक्तित्वकी ऐसी कल्पनातीत और अनोखी स्थिति है जिसके बारेमें आजतक न कहीं सुना गया और न कहीं पढ़ा गया। यह भी एक अन्तरंग सत्य है कि बाईका वह परम पवित्र कलेवर इतना अधिक दिव्य था कि दिव्यराज्यकी वे सखियाँ-सहचरियाँ-मञ्जरियाँ-अनुचरियाँ अवतरित हो जानेके लिये उत्सुक रहा करती थीं। सचमुच बाईकी यह दिव्य भाव-विभुता ऐसी अद्वितीय है, जिसके समानान्तर कोई उदाहरण दिखलायी नहीं दे रहा है। भाव वैभवकी गरिमा प्रस्तुत करनेवाला बाईका जीवन वस्तुतः निरुपमेय है।

परिधिको लेकर जो सखियाँ-मञ्जरियाँ आविष्ट होती थीं, उनमें भावकी प्रभावकी स्वभावकी जो भिन्नता होती, वह भिन्नता ज्यों-की-त्यों बाईके आचार-विचार-व्यवहारमें सहज ही अभिव्यक्त हो उठती थी। जिस सखीके व्यक्तित्वमें व्यवस्था-कौशल होता, वह सखी जब परिधि लेती, तब श्रीमहिला संघकी व्यवस्थाके सम्बन्धमें अथवा सम्पर्कमें आनेवाली बहिनोंकी घर-गृहस्थीकी सुचारुताके सम्बन्धमें बाई जो राय या सुझाव देतीं, वे सब इतने सुन्दर और सटीक होते कि उसकी हमलोग कल्पना भी नहीं कर सकते। व्यवस्था-कुशल सखीके चले जानेके बाद उस सखीने परिधि ली, जो वर्णन-

कौशलकी मर्मज्ञा थी। अब उसने श्रीप्रिया-प्रियतमकी सुन्दर-सुन्दर लीलाएँ सुनानी आरम्भ कर दी। वर्णन-कौशलने सब बहिनोंको मन्त्रमुग्ध बना लिया। समयका भान न बोलनेवालीको था और न सुनने वालीको। इसी बीच एक बहिनने व्यवस्था सम्बन्धी बतलाये गये सुझावका बाईसे स्पष्टीकरण करवाना चाहा। उसने तो इसी आशासे पूछा था कि मुझे समुचित समाधान मिलेगा, परन्तु बाई बोल पड़ी—मैंने तो कोई सुझाव दिया ही नहीं, मैं क्या जानूँ क्या व्यवस्था करनी चाहिये। प्रबन्धके प्रपञ्चसे मुझे क्या प्रयोजन? जो आपकी समझमें आये और आपको उचित लगे, वैसे ही कर लीजिये। मैंने न कोई सुझाव दिया, और न मैं इस सम्बन्धमें कुछ जानती हूँ।

इस उत्तरको सुनकर प्रश्न करनेवाली बहिन हतप्रभ होकर सोचने लगी—बाई ये क्या बोल रही हैं? अभी थोड़ी देर पहले इन्हीं बाईने हमारी उलझनोंको सुना और उनके निवारणके लिये तथा परिस्थितिको सुधारनेके लिये अनेक सुन्दर-सुन्दर सही-सही सुझाव दिये। अब उन्हीं सुझावोंको देनेवाली बाई कह रही हैं कि मैंने कोई सुझाव दिया ही नहीं, ये कैसी अटपटी बात है?

जिस बहिनने प्रश्न किया था और उसे जो उत्तर मिला, उसके लिये यह सोच लेना स्वाभाविक है कि बाईके द्वारा मिथ्या भाषण हो रहा है। उस बहिनने मन-ही-मन निर्णय ले लिया कि बाई झंझटसे कतरानेके लिये अब मिथ्या भाषण कर रही हैं। भाभीजीको उसकी विचार धाराका परिज्ञान हो गया और भाभीजीने उसे बतलाना चाहा कि यह कथन मिथ्या भाषण न होकर भीतर-ही-भीतर परोक्ष रूपसे होनेवाले भावान्तरका परिणाम है। अब भाभीजीने उसे बहुत प्रकारसे समझाना-बतलाना चाहा कि इस बीचमें बाईके उस दिव्य कलेवरमें जो भावात्मक परिवर्तन परिधि बदलनेके कारण हो गया है, उसी भावात्मक परिवर्तनके फलस्वरूप ही इस प्रकारका अटपटा उत्तर है, किन्तु यह सब उस बहिनकी समझमें आ ही नहीं रहा था। बहिनकी समझका स्तर नितान्त सांसारिक और साधारण था, अतः भाभीजी कितना ही प्रयत्न करें, वह परोक्ष भावात्मक तथ्य उसकी समझमें न उतर पा रहा था और न उतर पाना सम्भव था, यह एक समान्य उदाहरण है।

इसी प्रकार बाई कहतीं कि वह भोजन करनेवाली आयेगी तभी भोजन

हो पायेगा, वह स्नान करनेवाली आयेगी तभी स्नान हो पायेगा। वह पूजन करनेवाली आयेगी तभी पूजन हो पायेगा।

बाईके व्यवहारमें कभी-कभी चौंका देनेवाला विरोधाभास मिला करता था। कुछ क्षण पहले वह बाई जो हँस-हँस करके बात करती हुई परस्परमें विनोद कर रही थीं, वह तत्क्षण अत्यधिक गम्भीर हो गयीं और इतनी अधिक गम्भीर हो गयीं कि उनसे विनोद करना तो दूर रहा, बात करनेका भी साहस नहीं हो सकता था। बाईके स्वभावमें यह आकस्मिक आमूल परिवर्तन जगतके लिये रहस्य तो था ही, हल्की अपचर्चा और टीका-टिप्पणीका विषय बन जाया करता था। जगतके लोग इस रहस्यको न समझकर ही बाईके आचार-व्यवहारकी आलोचना करते थे।

बाईके जीवनके ये रहस्य भरे तथ्य सर्वथा लोकोत्तर थे और इसीलिये बाई लोकालयमें रहने लायक नहीं रह गयी थीं। अब बाईके लिये नितान्त एकान्त जीवन अत्यधिक अनिवार्य था। इसीलिये भाभीजी चाह रही थीं कि इस दिव्यभावस्वरूपा रुक्मिणी बाईको अब वृन्दावनमें वास करना चाहिये। भाभीजीने एक दिन एकान्तमें मीरासे इस बारेमें विशेष और विशद रूपसे चर्चा की। भाभीजीकी बात सुनकर भी मीरा उनसे पूर्णतः सहमत नहीं थी। भागलपुर रहते हुए दैनन्दिनी जीवनमें जिस अटपटेपनका आये दिन सामना करना पड़ता था, उसे देखकर मीरा भी ऐसा सोच रही थी कि बाईको वृन्दावन भेज देना चाहिये, किन्तु मीरा यह भी जानती थी कि वृन्दावन जानेके बाद बाई लौटकर नहीं आयेंगी। बाई कई बार कह चुकी थीं कि अब मुझे 'अपने घर' जाना है बाई तो ब्रजवासका संकल्प लेकर वृन्दावनमें रह ही रही थीं। यह मात्र संयोग था कि किसी प्रकार मनाकर मीरा उन्हें भागलपुर ले आयी थी। मीराके मनमें दोनों प्रकारकी विचार धाराएँ थी और सदा एक अन्तर्द्वन्द्व-सा मचा रहता था। इसीलिये भाभीजीने जब बाईको वृन्दावन भेजनेका सुझाव दिया, तब मीरा उनसे सहमत नहीं हुई। इसी विचार-वैभिन्न्यमें कुछ दिन और निकल गये।

एक दिन बाईने मीरासे एकान्तमें कह दिया मेरे 'जाने' का समय आ गया है। अब जीवनके कुछ ही दिन शेष हैं और ये दिन मैं वृन्दावनमें व्यतीत करना चाहती हूँ। वृन्दावन जाकर फिर मैं लौटकर भागलपुर नहीं आऊँगी।

बाईके इन उद्गारोंसे मीराकी तथा कुछ अन्तरंग बहिनोंको भावनाएँ बड़ी व्यथित-थकित-मथित हो रही थीं। उधर वृन्दावनमें आवासकी व्यवस्था नहीं हो रही थी और इधर बाईके वापस न आनेके निश्चयसे श्रद्धालु बहिनें बाईको भागलपुरमें ही अटकाये रखना चाहती थीं। अटकाये रखनेके लिये बहाना मिल गया कि वृन्दावनमें आवासकी समुचित व्यवस्था नहीं हो पा रही है। मीरा, सावित्री बाई आदि भले ही बहाना बताकर बाईको अटकाये रख रही थीं, किन्तु बाईका मन वृन्दावनके लिये ललकता ही रहता था। हर तीसरे-चौथे दिन यह दृश्य देखनेको मिल जाता था कि बाईने कुछ कपड़े एक डलियामें डाल लिये हैं और उस डलियाको हाथमें लेकर बाई कहतीं—हम तो वृन्दावनके यात्री हैं। मुझे वृन्दावन जाना है।

बाईके मनकी ऐसी आतुरता और अस्थिरताको देखकर भाभीजीने मीरासे कहा—तुम इस प्रकार बाईको कितने दिन अटकाये रख सकोगी? इसके मनमें वृन्दावनके लिये आतुरता बनी रहती है। तुम इसे जाने दो। यदि यह यहाँ प्रसन्नतापूर्वक रहती तो हमें भी प्रसन्नता होती। इसका स्वास्थ्य बिगड़ता ही जा रहा है, अतः इसे रोकना नहीं चाहिये।

मीरासे इतना कहनेके बाद भाभीजीने अगले दिन बाईसे कहा—बाई! पितृपक्षमें तो मैं तुम्हें भेज नहीं सकती। नवरात्रमें जाना बन नहीं सकेगा। छः दिन बादकी शरद पूर्णिमा आ जायेगी। तुम शरद पूर्णिमाका उत्सव श्रीमहिला संघमें मनाकर फिर वृन्दावन चली जाना।

बाई इससे सहमत हो गयीं। इस निश्चयके अनुसार शरद पूर्णिमाके अगले दिन २४ अक्टूबर, १९९१ को बाई भागलपुरसे वृन्दावनके लिये चल पड़ीं और अगले दिन वृन्दावन पहुँच गयीं।

* * * * *

ब्रजमें उन्मुक्त विहरण

वृन्दावनमें बाईके रहनेके लिये जो मकान निश्चित किया गया था, वह युगल घाटपर था। उस मकानका नाम था और है 'श्रीकृष्ण कुञ्ज'। ज्यों ही यह तय हुआ था कि बाईको वृन्दावन भेज दिया जाना चाहिये, त्यों ही भाभीजीने मीराको वृन्दावन भेज दिया, जिससे वह बाईके रहनेकी दृष्टिसे श्रीकृष्ण कुञ्जमें आवश्यक सुधार और निर्माण करवा सके। बाई वृन्दावन पहुँचीं और श्रीकृष्ण कुञ्जमें रहने लगीं। बाईके साथ नर्मदा बाई, पुष्पा बाई, शशी तो थी हीं, इनके अलावा भाभीजीने एक दरवान और एक नौकर भी भेज दिया था, जिससे बाईको किसी प्रकारकी कठिनाईका सामना न करना पड़े। भाभीजीके आदेशसे श्रीराधानाम संकीर्तनकी व्यवस्था हुई। बाईका सदैव आग्रह रहा है कि जहाँ भी मेरा निवास हो, वहाँ श्रीराधानाम संकीर्तन होना ही चाहिये। श्रीकृष्ण कुञ्जके एक कमरेमें ठाकुरजीको पधराया गया और उनके सामने प्रातःकाल छः बजेसे लेकर मध्याह्नके एक बजेतक श्रीराधानामका संकीर्तन होता था। संकीर्तन करनेके लिये बारह ब्रजवासिनी माताएँ समय-समयपर आती थीं। श्रीराधानाम संकीर्तन तो बाईका प्राण था।

वृन्दावन वासका प्रथम वर्ष ब्रजमें उन्मुक्त विहरणका रहा है। उनकी कोई निश्चित दिनचर्या नहीं थी। जब जैसी स्फुरणा होती तदनुसार वृन्दावनमें यहाँ-वहाँ निज जनोंसे मिलनेके लिये चली जातीं और श्रीकृष्ण कुञ्जमें आनेवाले भाई और बहिनोंसे मिलती रहतीं। समीपमें आनेवाले सभीसे बाई गोवर्धन-बरसाना आदि पावन स्थलियोंकी यात्राके लिये प्रेरणा दिया करती थीं और कभी-कभी उनके साथ यात्रापर चली भी जाया करती थीं। कभी-कभी बाई वृन्दावनमें मन्दिरोंके दर्शनके लिये चल पड़तीं। साथमें कभी सावित्री बाई, कभी साबो बाई, ऐसे कभी एक, कभी दो कभी तीन और कभी अन्य बहुत सी बहिनें भी साथ रहती थीं। बहिनोंको साथ लेकर बाई कभी श्रीगोपीश्वरजी, कभी श्रीकात्यायनी पीठ, कभी श्रीराधा टीला, कभी श्रीबिहारीजी, कभी श्रीराधावल्लभजी और कभी-कभी एक बार निकलनेमें तीन-चार जगह भी चली जाती थीं।

और भी अनेक स्थान हैं, जहाँ बाई कभी-कभी जाया करती थीं। इनमें विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं, पूज्य श्रीलक्ष्मीनारायणजी वैद्य, वेणु-विनोद कुञ्ज, मानव-सेवा संघ, धानुका मैया, श्रीपुरुषोत्तमलालजी धानुका। बाईका विहरण इतना स्वच्छन्द था कि वे कब किसके यहाँ पहुँच जायेंगी, कहा ही नहीं जा सकता। वे तो भाभीजीसे यहाँतक कह बैठती थीं—भाभीजी! यहाँ आपका अनुशासन या प्रतिबन्ध मुझपर लागू नहीं होगा। यह वृन्दावन और ब्रज-मण्डल मेरा अपना घर है। कब जाऊँगी, कहाँ जाऊँगी, किसके साथ जाऊँगी, क्यों जाऊँगी यह सब 'उनका' विषय है। मैं उनकी हूँ और 'वे' मुझे नियन्त्रित-संचालित-प्रेरित करते हैं और अपनी ही लीला-भूमिके विचित्र-विचित्र दृश्य दिखलाते हैं और अपने अन्तरंग निज-जनोंसे मिलाते हैं।

बाई अपनेको कितना ही स्वच्छन्द माने अथवा बतलाये, किन्तु उनके द्वारा भाभीजी अथवा नर्मदा बाईकी उपेक्षा हो ही नहीं सकती थी। भाभीजी और नर्मदा बाई भी हर क्षण सेवा और सँभालके लिये तत्पर रहा करती थीं। बाईके पेटमें ट्यूमर है, इसकी जानकारी गोरखपुरमें ही हो गयी थी और बाईने वहाँ कह भी दिया था कि यह ट्यूमर मेरा काल है। कालका संदेश देनेवाले इस ट्यूमरकी जब-जब स्मृति भाभीजी और नर्मदा बाईको होती, तब वे मन-ही-मन बहुत चिन्ता किया करतीं। यह ट्यूमर भी अपने कई रंग दिखा रहा था, अपितु इस तथ्यको सही ढंगसे इस रूपमें बतलाना चाहिये कि ट्यूमरके बहाने बाईके आध्यात्मिक जीवनके अनेक हल्के-गहरे रंग देखनेको मिलते। वृन्दावन आते ही वह ट्यूमर लगभग चार-पाँच इंच व्यास वाला हो गया और ऐसे विशाल ट्यूमरको देखकर सम्पर्कमें आनेवाले डॉक्टरोंने कहना आरम्भ कर दिया कि यह ट्यूमर भीषण कैंसरका रूप ले सकता है। यह तो बड़ी ही भयावनी डॉक्टरी रिपोर्ट थी।

जब भाभीजी अथवा नर्मदा बाई अत्यधिक व्याकुल हो उठतीं, तब बाई उन्हें अपना पेट दिखला कर कहतीं—भाभीजी! देखिये ट्यूमर कहाँ है?

यमुनाजीसे आयी हुई बाईको भाभीजी कहतीं—पहले तू बैठ जा, फिर देखूँगी। बाईके बैठ जानेपर भाभीजी उदरको छू-छू करके देखतीं, किन्तु कहीं भी ट्यूमर जनित कठोरताका लेश मात्र स्पर्श-ज्ञान नहीं मिलता। उदरका वह भाग, जहाँ एक दिन पहले चार-पाँच इंच व्यासवाला ट्यूमर सबको भयानक रूपसे आतंकित कर रहा था, आज वह पूर्णतः नदारद था। ट्यूमरको

गायब देखकर भाभीजीको बड़ी प्रसन्नता होती और वे यही समझतीं, मेरी बाई खतरेके बाहर है।

इससे नर्मदा बाईको तथा अन्य बहिनोंको भी बड़ी प्रसन्नता होती, परन्तु यह प्रसन्नता कितने दिन टिक पाती? तेरह-चौदह दिन बीतते ही ट्यूमर उसी रूपमें उभरकर दिखलायी देने लगता और फिर उसे दिखलाकर बाई कहती—भाभीजी! बढ़ा हुआ यह ट्यूमर तो मेरा काल है।

उस ट्यूमरका कभी गायब हो जाना और कभी प्रकट हो जाना यदि बाईके लिये एक खेल था तो वही भाभीजी और नर्मदा बाईके लिये एक आतंक था। इस प्रकारके खेल बाईके जीवनमें अनेक बार अनोखे रूपसे प्रकट होते रहते थे। प्रातःकाल देखनेपर यही लगता कि बाई पूर्णतः स्वस्थ है और सारे दिन अत्यधिक मुस्कुराते हुए या हँसते हुए बात कर रही हैं, किन्तु रात्रिके समय बाईका वही स्वस्थ कलेवर बीमारियोंका अड्डा दीखने लगता। समझमें नहीं आता कि उस स्वस्थताको सत्य मानें या इस रुग्णताको? बाईकी स्वस्थता और रुग्णता सभीके लिये सदैव एक ऐसी रहस्यात्मक पहेली रही, जो प्रतिक्षण अनेक प्रश्नों और चिन्ताओंकी जननी बनकर सभीको आकुल-व्याकुल बनाये रहती।

एक दिन सूर्योदयके समय ही बाई अपना कमरा खोलकर यमुनाजीकी ओर जानेवाली राह पकड़ लीं। श्रीकृष्ण कुञ्जमें साथ रहनेवाली बहिनोंको इस बातकी तनिक भी भनक नहीं। वे सब बहिनें तो अपने दैनन्दिनी सेवा-पूजाके कार्योंमें संलग्न थीं। श्रीकृष्ण कुञ्जसे निकलकर बाई यह सोचकर जा रही थी कि मैं यमुनाजीकी ओर जा रही हूँ, पर सत्य यह था कि किसी अन्य दिशाकी ओर जानेवाले मार्गपर उनके पैर आगे बढ़ रहे थे। उन्होंने गलत मार्ग पकड़ लिया था। उसी समय सात-आठ सालका एक छोरा आया और बाईसे पूछा—बाई! तुम कहाँ जा रही हो?

बाईने उलटकर प्रश्न किया—इससे तुम्हें क्या मतलब?

वह भी साधारण छोरा नहीं था। बाईकी बातको अनसुनी करके पुनः अपना सवाल दोहरा दिया—तुम बताओ ना! कहाँ जा रही हो?

बाई उससे मुँह लगाना नहीं चाहती थीं। ये ब्रजवासी छोरे टोककर सगुन बिगाड़ते हैं, अतः उस छोरेकी जिज्ञासाकी उपेक्षा करते हुए बाईने फिर कहा—मैं कहीं भी जाऊँ, तुम्हें क्या? तुम रास्तेसे हटकर चलो।

वह छोरा भी अड़ा रहा और फिर पूछा—तुम बताती क्यों नहीं कि कहाँ जा रही हो?

तब बाईने बतला दिया—यमुनाजी।

इसपर छोरेने लटकती भाषामें कहा—यह यमुनाजीका रास्ता है क्या? यह तो गलत रास्ता है। देखो! वह रहा यमुनाजीका रास्ता।

रास्ता दिखला कर वह छोरा उसी समय अदृश्य हो गया। बाईने चारों तरफ नजर दौड़ायी, पर कहीं भी वह छोरा दिखलायी नहीं पड़ा। बाईने तुरन्त समझ लिया, वह बालकृष्ण ही तो आया था रास्ता बतलानेके लिये और मेरी सँभाल करनेके लिये। अब सही रास्ता पकड़कर बाई यमुना तटतक पहुँच पायी।

* * * *

एक बार एक व्यक्ति श्रीकृष्ण कुञ्जके सामनेसे जा रहे थे। वे प्रौढ़ आयुके थे। प्रातःकालका समय था, शायद यमुनाजी जा रहे होंगे। ज्यों ही श्रीकृष्ण कुञ्जके सामने आये, उनके कानोंमें राधानाम संकीर्तनकी ध्वनि पड़ी। बड़ा सुमधुर गायन हो रहा है। सुनकर उनको बड़ा सुख मिल रहा था। राहमें खड़े-खड़े संकीर्तन सुनते रहे। सुन भी रहे थे और सोच भी रहे थे कि यह कौन सा स्थान है, जहाँ इतना सुन्दर कीर्तन हो रहा है। वे सुनते हुए प्रतीक्षा कर रहे थे कि कोई भाई या बहिन मिल जाये तो उनसे इस स्थानके बारेमें जानकारी प्राप्त करूँ। कुछ देर बाद उन्होंने देखा कि एक माताजी श्रीकृष्ण कुञ्जमें प्रवेश कर रही हैं। उन्होंने माताजीसे पूछा—मैया! यह कौन सा मन्दिर है, जहाँ इतना सुन्दर राधानाम कीर्तन हो रहा है।

उन माताजीने कहा—यह मन्दिर नहीं है। यह तो रहनेका मकान है। यहाँ एक भक्त बहिन रहती है, उनका नाम रुक्मिणी बाई है। उन्हें सब बाई ही कहते हैं। ये भागलपुरकी रहनेवाली हैं। ये कुछ दिनोंसे यहाँ आकर रह रही हैं। इन्हें राधानाम संकीर्तन अत्यधिक प्रिय है। जहाँ भी रहती है, वहाँ कीर्तन होता ही है।

इस परिचयात्मक सरस वर्णनसे प्रभावित होकर उस भक्त सज्जनने प्रश्न किया—मैया! मुझे भी उनके दर्शन करवा दीजियेगा क्या?

माताजीने कहा—दर्शनकी बात दूर रही, उनसे मिल सकना ही कठिन है। घण्टों-घण्टों बैठे रहनेके बाद सौभाग्यसे दर्शन हो पाते है। घण्टों-घण्टों

बैठनेके बाद भी यह सौभाग्य मिलेगा, ऐसा निश्चित नहीं। पुरुषोंसे तो वह मिलना ही नहीं चाहतीं। यदि किसी पुरुषको मिलनेके लिये अनुमति मिल जाती है तो उनके आवासमें वहीं प्रवेश कर पाते हैं, जिनका वेश भारतीय हो।

उस सज्जनने कहा—मैं कई वर्षोंसे वृन्दावन आता रहा हूँ। व्रजकी चौरासी कोसकी यात्रा दो बार कर आया हूँ, परन्तु कहीं भी राधानामकी ध्वनि सुननेको नहीं मिली। इतने गुप्त रूपमें रहनेवाली यह महिला संत ही राधानामकी परम गुप्त निधि प्रकट कर सकती हैं। मैं तो आपके मुखसे यह वर्णन सुनकर इसीमें अपना सौभाग्य समझता हूँ कि उनके द्वारा संस्थापित राधानाम कीर्तनकी ध्वनिको सुननेका अवसर मुझ तुच्छ व्यक्तिको मिल सका।

इतना कहकर उन्होंने द्वारको और फिर उन माताजीकी प्रणाम किया और वे चले गये।

* * * *

बाई कई बार गोवर्धन-बरसाना-ऊँचा गाँव भी गयीं। एक बार बाई बरसानेमें पन्द्रह दिन तक रहीं। उस अवधिमें उनकी अलमस्त रहनी तो बाईके उन्मुक्त जीवनकी एक सरस झाँकी है। इस बार वृन्दावनसे बरसाने आनेका एक सरस कारण भी था। किसी बातपर बाईकी भाभीजीसे नोंक-झोंक हो गयी। उस नोंक-झोंकमें बाईने अपनी मस्तीमें कह दिया—भाभीजी! मैं अपने पीहर बरसाने जा रही हूँ और वहीं रहूँगी।

प्रणयरोषसे अभिभूत भाभीजीने भी रोका नहीं। जाड़ेके दिन थे, अतः बाईने एक कम्बल और एक शाल ले लिया और वृन्दावनसे बरसानेके लिये चल पड़ीं। वृन्दावनसे बाईके साथ नर्मदा बाई उनकी सँभालके लिये आयीं और नर्मदा बाईकी सहायताके लिये कुम्हारिन मैया भी आयी। कुम्हारिन मैया सरल हृदयकी ब्रजवासिनी थी और बाईकी सेवामें उत्साह पूर्वक लगी रहा करती थी। जीवन साधारण स्तरका होकर भी यह बहुत समझदार और अत्यधिक श्रद्धालु थी।

बरसाना पहुँचकर नर्मदा बाईने अपना डेरा श्रीयुगलजी पण्डाके घर रखा, परन्तु बाई तो बगीचीमें ही रहती थीं। यह बगीची श्रीराधा-बागके नामसे विख्यात है, जो बरसाना और ऊँचा गाँवके बीचमें पड़ती है। यदि बरसाना वृषभानुनन्दिनी श्रीराधारानीका निज घर है, तो बरसानासे लगभग एक कोसकी दूरीपर बसा हुआ ऊँचा गाँव श्रीराधारानीकी अन्तरंग और अनन्य

सखी श्रीललिताजीका निज स्थान है।

बाईकी सँभालकी पूरी चिन्ता तो नर्मदा बाईके चित्तमें रहा ही करती थी, परन्तु वार्धक्यके कारण उनके द्वारा बहुत अधिक घूमना-फिरना सम्भव नहीं था, अतः नर्मदा बाई कुम्हारिन मैयाको बाईकी सेवा-सँभालके लिये उनके साथ-साथ भेज दिया करती थीं। बाई जब मन होता श्रीजीके मन्दिर आ जातीं, जब मन होता पीली पोखर चली जातीं, इसी प्रकार बरसानेके आसपास यत्र-तत्र स्वच्छन्द विहरण करती रहतीं। जब मन्दिरेमें आतीं तो घण्टों बैठी रहतीं। मन्दिरमें बाईके आसपास ब्रजवासिनी माताएँ बहिनें और उने बच्चे आ-आ करके बैठ जाते। उनमेंसे कोई रसिया सुनाता, कोई लीला सुनाता, कोई हँसी-विनोद करता। ब्रजवासी लोग भी बाईसे कुछ हटकर बैठ जाते और तरह-तरहकी चर्चाएँ करते। उन चर्चाओंका विषय रहता, ब्रज और बरसानेकी महिमा तथा ब्रज और बरसानेके भक्तोंके चरित्रका वर्णन। इन ब्रजवासी माताओं-बहिनों भाइयों बच्चोंके साथ बैठकर बात करनेमें बाईको बड़ा सुख मिलता। भीतरी सुखकी लहरें बाईके मुख मण्डलपर लहकती रहतीं। बाई मन्दिरसे ही प्रसाद मँगवा लेतीं और वहीं बैठे-बैठे पा लेंती। जब बाई बगीचीमें रहतीं तो मन्दिरके गोसाँईजी शयन आरतीके बाद प्रसाद लेकर बगीचीमें पहुँच जाते और बाईको स्नेहपूर्वक देते। बाई भी उस प्रसादको पाकर स्वयंको धन्य मानतीं। रात होनेपर बाई साथ लाये हुए उस कम्बलको बिछा लेतीं और शालको ओढ़ लेतीं।

एक दिन बाई कुम्हारिन मैयाको साथ लेकर पीली पोखर चली गयीं। वहाँ मज्ञन करके लेट गयीं। थोड़ी देर बाद कुम्हारिन मैयासे बोलीं—मैं यहाँ बैठी हूँ। तू जाकर नहानेके कपड़े ले आ।

इधर कुम्हारिन मैया कपड़े लेनेके लिये पण्डाजीके घर आ गयी और उधर बाई अपनी चप्पल पीली पोखरपर छोड़कर नंगे पैर प्रेम सरोवर चली गयीं। कुम्हारिन मैया जब कपड़े लेकर आयी तो वहाँ बाई थी ही नहीं। बस, बाईके स्थानपर बाईकी चप्पल थी। कुम्हारिन मैयाने आस पास लोगोंसे पूछताछ की। किसीने भी सही उत्तर नहीं दिया। किसीने कहा कि हमने देखा ही नहीं और कोई बोला कि चप्पल है तो वह यहीं कही होगी। चप्पलको पड़ी देखकर कुम्हारिन मैयाने यह अनुमान लगा लिया कि बाई स्नान करनेके लिये पीली पोखर गयी होगीं? पर बाई तो वहाँ भी नहीं

है। क्या इसका अर्थ यह लगाया जाय कि स्नान करते-करते बाई डूब गयीं, पर यह तो हो ही नहीं सकता। कुम्हारिन मैयाने इधर-उधर बहुत खोजबीन की और जने-जनेसे पूछताछ की, परन्तु उसे कोई भी ऐसा सूत्र नहीं मिला, जिसके सहारे उसे बाईकी उपस्थितिका भान हो सके। खोजते-खोजते रातके आठ बजे गये, पर बाई नहीं मिलीं। ज्यों-ज्यों समय बीत रहा था, कुम्हारिन मैयाकी चिन्ता बढ़ती चली जा रही थी। पीली पोखरसे पण्डाजीके घर-आकर उनके लड़के नारायणजीको सारी बात बतला दी। नारायणजी भी बाईकी खोजमें प्रवृत्त हो गये। कुम्हारिन मैया पुनः पीली पोखर आ गयी और मन-ही-मन भगवान्‌से प्रार्थना करने लगी। उसे एक साधु बाबा दिखलायी पड़ गये। उन बाबासे कुम्हारिन मैया पूछ बैठी—बाबा! आपने सफेद साड़ी पहने हुए किसी बाईको इधर आसपाससे जाते देखा है क्या?

बाबा बोले—मैया! बहुत देर पहले खेतकी पगडंडीके रास्ते उस ओर सफेद साड़ी वाली एक बाई गयी तो थी, फिर आगे जाकर वह किधर गयी, यह मैं नहीं बतला सकता।

साधु बाबाने जो दिशा बतलायी थी, उस ओर कुम्हारिन मैया चल पड़ी। आगे जानेपर उसने देखा कि एक पहाड़ीपर बाई अकेली बैठी हैं। बाईके समीप कोई भी नहीं है, न कोई बालक, न कोई वृद्ध, न कोई माता, न कोई बहिन! अब रातके नौ बज रहे थे। अँधेरी रातमें वहाँ भला रहता भी कौन? कुम्हारिन मैया बाईके पास गयी और बाईको आवाज लगायी। आवाजका कोई उत्तर बाईकी ओरसे नहीं मिला। बाईको यह भी ज्ञात नहीं हो पाया कि कुम्हारिन मैया मेरे पास आयी है। कुम्हारिन मैयाने अनुमान लगा लिया कि भावनिमग्न बाईको अपने शरीरकी सुध-बुध नहीं है। जाड़ेके दिन थे। रातके नौ बज चुके थे। बाईको चेत करवाना आवश्यक था, अतः कुम्हारिन मैयाने बाईके शरीरपर की शाल उतारनी चाही। जैसे ही कुम्हारिन मैयाने शाल छुआ, बाई पीछे लुढ़क गयीं। कुम्हारिन मैयाने झटसे बाईको सँभाल लिया और अपनी गोदमें लिटा लिया। बाई तो बाह्यज्ञान शून्य थीं, अतः कुम्हारिन मैया जोर-जोरसे राधे-राधे करने लगी। इसी समय बाईको ढूँढ़ता हुआ श्रीनारायण पण्डा भी वहाँ आ गया। कुम्हारिन मैयाके बहुत प्रयास करनेके बाद बाई सचेत हो पायीं और रात्रिके लगभग ग्यारह बजे लौटकर आ पायीं।

बरसानेकी रजका और ब्रजवासी बहिनों-माताओंके संगका सुख लेते हुए पन्द्रह दिन देखते-देखते बीत गये। भले भाभीजीने प्रणयरोषमें बाईको रोका नहीं था, पर वह प्रणयरोष कितने क्षणोंका था? यह प्रणयरोष तो पानीपरकी लकीर था, जो कुछ ही क्षणोंमें मिट गया और उस प्रणयरोषने आत्मदोषका रूप ले लिया। भाभीजी स्वयंको दोषी मानती हुई सोचती लगीं कि मैंने बाईको बरसाने जानेसे क्यों नहीं रोका। भाभीजीको बाईके स्वास्थ्यकी और सँभालकी निरन्तर चिन्ता बनी रहती थी, अत: पाँच दिन बाद ही वे भी वृन्दवनसे बरसाना आ गयीं और समय-समयपर वृन्दावन चलनेके लिये मनुहार करती रहती थीं। पन्द्रह दिन बाद बाईने वृन्दावन चलनेकी स्वीकृति प्रदान कर दी। स्वीकृति मिलते ही भाभीजीने वृन्दावनसे मोटर गाड़ी मँगवा ली। जिस दिन वृन्दावन जानेकी बात थी, उस दिन सुबह-सुबह ही बाई ऊँचा गाँव चली गयीं। ऊँचा गाँवमें श्रीललिताजीके मन्दिरमें कुछ देर बैठनेके बाद कुम्हारिन मैयासे बाई बोलीं—मैया! बरसाने जाकर मेरे कपड़े ले आ और भाभीजीको भी बुला ला।

कुम्हारिन मैया भाभीजीके पास पहुँची और बोली—भाभीजी! आपको बाईने बुलाया है।

भाभीजी बोलीं—मैया! तू जल्दीसे बाईको ऊँचा गाँवसे यहाँ ले आ। मैं वृन्दावन चलनेकी तैयारी कर रही हूँ।

भाभीजीके आदेशानुसार बाईको बुला लानेके लिये कुम्हारिन मैया बरसानेसे ऊँचा गाँव आयी। वह बाईको मन्दिरमें जहाँ बैठाकर गयी थी, वहाँ बाईको न पाकर मन्दिरके पुजारीजीसे पूछने लगी—बाईको मैं आपकी देख-रेखमें छोड़कर गयी थी, अब वह बाई कहाँ हैं?

मन्दिरके पुजारीजीने कहा—मैया! बाई तो बहुत देरतक बैठी हती। नैक सी चाय पिला दूँ। याही सोचकर मैं चाय बनायबेके तॉई भीतर गयो, लौटकर आयो तो बाई हती ही नाय।

कुम्हारिन मैया पुजारीजीको उलाहना देते हुए बहुत बड़बड़ाने लगी, फिर निकल पड़ी बाईको खोजनेके लिये। ऊँचा गाँवमें बसे हुए ब्रजवासियोंके मकान छोटी पहाड़ीपर बने होनेसे कोई नीचे कोई ऊपर थे। एक घरसे दूसरे घर जानेके लिये चढ़ना-उतरना पड़ता था, इस सारी परेशानीको मोल लेते हुए कुम्हारिन मैया जल्दी-जल्दी चलकर बाईको खोज रही थी। खोजते-खोजते कुम्हारिन मैया परेशान हो गयी। यहाँ वहाँ बाईकी खोज करनेवाली कुम्हारिन मैयाको भला बाई

कैसे मिलती जो किसीके घरमें घुसकर बैठी हुई थीं।

बाईके निर्देशपर कुम्हारिन मैया जब कपड़ा लानेके लिये और भाभीजीको बुलानेके लिये ऊँचा गाँवसे बरसाना गयी, तभी बाई मन्दिरसे नीचे उतरकर छोटीसी पहाड़ीपर बने हुए एक घरमें प्रवेश कर गयी थीं। घरमें घुसते ही उन्हें एक वृद्धा माता मिलीं। उनकी आयु नब्बे वर्षके आसपास होनी चाहिये। उनके सात बेटे थे। सात बेटेकी बहुएँ थीं। पोता-पोती थे। अनुमानतः लगभग चालीस-बयालीस व्यक्तियोंका भरा-पूरा परिवार था। अपने हाथमें आँचल लेकर बाईने वृद्धा मैयाको माथा टेककर प्रणाम किया और बड़ी सरल रीतिसे निवेदन किया—मैया! मैं कुछ दिन एकान्तमें रहकर भजन करना चाहती हूँ। क्या तू मुझे अपने घरमें रख लेगी? मैया यदि रख लेगी तो बड़ा भला होगा।

वह वृद्धा माता भी बड़ी सरला, बड़ी भोली थी। बाईकी मिठास भरी विनम्रतापर वह रीझ गयी और ये ब्रजवासी लोग तो उस व्यक्तिको हर रीतिसे सहायता करना चाहते हैं, जो भजनकी चाह रखता हो। वृद्धा माताने तुरन्त बाईसे कहा—मेरी लाडिली बेटी! तू मेरे घरमें रह। मेरे घरमें श्रीजीकी कृपासे किसी भी चीजकी कमी नहीं है। मेरे घरके ऊपर एक कमरा है, उसीमें रहकर भजन कर। जब तू कमरा खोलेगी, तब तुझे खानेको दे दिया करूँगी। मेरी बहू-बेटियाँ तुझे सँभाल लिया करेंगी। तू जो खोयेगी, वही मेरी बहुएँ तुझे दे दिया करेंगी। मेरे घरमें दूध-दही-घी-मक्खन-छाछ-छेनाकी कमी नहीं है। श्रीजीकी अपार कृपा है।

बाईको यही तो चाहिये था। वृद्धा माताके आदेशपर एक छोरी उनको ऊपरके कमरेमें ले गयी और एक खटियापर बाईको बैठा दिया। ऊपर बैठी-बैठी बाई मैयासे बोलीं—मैया! मेरे मनमें नाच देखनेकी चाह हो रही है। नैक नृत्य दिखाय दे।

इन ब्रजवासी बहू-बेटियोंको तो कोई रसीला ग्राहक चाहिये। ग्राहक मिलते ही उनका रस उमड़-उमड़कर बहने लगता है। बाईके ऐसा कहते ही वह वृद्धा माता तीन-चार बहू-बेटियोंको साथ लेकर ठुमुक-ठुमुक कर नाचने लगीं और इसके साथ रसिया गाने लगीं। बाई ऊपर खटियापर बैठी-बैठी नृत्य देख रही थीं। जिन दो लड़कियोंने बाईको ऊपरका कमरा दिखाया था और खाटपर बैठाया था वे दोनों लड़कियाँ बाईके बगलमें ही थीं। बाईने

उनके कानमें कहा—मन्दिरमें चली जा। वहाँ मेरे घरवाले आयेंगे। उनको अपने साथ यहाँ ले आ।

उन लड़कियोंसे बाईने क्या कहा, नीचे किसीको पता नहीं। बाईके घरवालोंको लानेके लिये वे दोनों लड़कियाँ मन्दिरकी ओर चली गयीं। मन्दिरके रास्तेमें ही इनको कुम्हारिन मैयाके साथ भाभीजी मिल गयीं। बात यह हुई कि जब बुलानेपर भी बाई ऊँचा गाँवसे बरसाना नहीं आयीं तो भाभीजी स्वयं ही बरसानेसे ऊँचे गाँव चली आयीं। उनको वृन्दावन शीघ्र जाना था। भाभीजी समझ रही थीं कि बाई कुम्हारिन मैयाकी बातको टाल सकती है, अतः मुझे जाना ही चाहिये और इसीलिये भाभीजी बरसानेसे ऊँचा गाँव आयीं। मन्दिरमें बाईको न पाकर वे खोजनेके लिये चल ही रही थीं कि वे दोनों लड़कियाँ रास्तेमें मिल गयीं। उन लड़कियोंने भी अनुमान लगा लिया कि यही उन बाईकी घरवाली होंगी, जिनको बुलानेके लिये उन्होंने कहा है। वे लड़कियाँ भाभीजीको घरमें पहुँचाकर फिर पड़ोसमें खेलनेके लिये चली गयीं। भाभीजीने घरमें ज्यों ही प्रवेश किया, उनको तो अलग ही दृश्य नजर आने लगा। बाई छतपर चढ़ी हुई और वही पड़ी हुई खाटपर बैठी हैं और आँगनकी ओर मुँह करके ब्रजवासिनी वृद्धा मैया और बहिनोंका नृत्य देख रही हैं। उन ब्रजवासिनी बहिनोंने घाघरा पहन रखा है। पूरी बाँहके ब्लाउज हैं। शीशपर चूनर है और सब उल्लासपूर्वक नृत्य कर रही है। उनके नृत्यको देखकर बाईके चेहरेपर प्रसन्नता छायी हुई है। घरके आँगनमें आनन्द उमड़ रहा था। वृद्धा मैयाका नृत्य तो कमालका था। भाभीजी मन-ही-मन कह रही थीं कि नाचना-गाना तो विधाताने इन ब्रजवासियोंके भाग्यमें लिख रखा है। तभी भाभीजीको रसियाकी एक पंक्तिकी भाव छाया याद हो आयी—'बूढ़ी देह जवानी छलकै, छायो मोद अपार।'

ज्यों ही भाभीजी आँगनमें खड़ी हुईं, वह ब्रजवासी परिवार सहम गया और नृत्य गानके आनन्दका विराम आ गया। विराम आते ही बाईकी ओर उन्मुख होकर भाभीजी बोलीं—घर चल।

इस वाक्यको सुनते ही वह बूढ़ी मैया तमक कर बोली—यह तो मेरी बेटी है। यह नहीं जायेगी। यहीं रहेगी। यह यहाँ रहकर भजन करना चाहती है। यह कैसे जायेगी?

भाभीजी बोलीं—मैया! इसे मैं यहाँ कैसे छोड़ दूँगी?

अब तो बूढ़ी मैयाकी बहू-बेटियाँ भी नाच-गान छोड़कर आँगनमें खड़ी होकर भौंहोंको कुछ तानकर भाभीजीके पीछे ही पड़ गयीं और वृद्धा मैयाके स्वर-में-स्वर मिलाकर एक-से-एक बढ़कर कहने लगीं—यह तो हमारे यहाँ ही रहेगी। यहीं भजन करेगी। हमारे घरमें किसी चीजकी कमी नहीं है। जितना चाहे उतना दूध-दही-घी-मक्खन-छाछ खायेगी।

भाभीजीके पीछे पड़ी हुई बहू-बेटियोंकी लाग-डाँट बाई खटियापर बैठी-बैठी चुपचाप देख रही थीं। हथेलीपर ठुड्डी रखे हुए मन्द-मन्द मुलक रही थीं और लाग-डाँटका रस ले रही थीं। उचित तो यह था कि बाई भाभीजीका पक्ष लेकर बोलतीं, परन्तु इसके विपरीत यह हुआ कि बाईने इशारेसे बहू-बेटियोंको और उकसा दिया। अब क्या था? वृद्धा मैयासे भी बढ़-बढ़कर उसकी बेटी कहने लगी—मैया! यह तो जानेके लिये तैयार ही नहीं। इसके आँखके इशारे कुछ और ही बात कह रहे हैं। मुझे तो सन्देह होता है कि तुम्हारा मन साफ नहीं है। ये तुम्हारी नहीं है, तभी तो ये यहींपर रहनेके लिये चुपचाप बार-बार इशारा कर रही है।

भाभीजी मन-ही-मन कहने लगीं—यह नाटक तो बड़ा महँगा पड़ा। बाईका यह खेल कहीं परिस्थिति बिगाड़ न दे।

भाभीजीके साथ कुम्हारिन मैया भी थी। उसने ज्यों ही कुछ बोलनेकी कोशिश की, वे बहू-बेटियाँ उससे भी चिपट गयीं। घरके आँगनमें जो खेल बाईने रचा, उससे भाभीजी बहुत घबरा गयीं। मन एकदम कातर हो गया। वे निरुपाय हो गयीं और असहाय होकर मन-ही-मन बाईसे कहने लगीं—यह तेरा कैसा खेल है? कहीं ऐसा भी किया जाता है कि अपनोंकी हाँसी लोगोंके सामने परायेके रूपमें होने लगे? यह तेरे लिये उचित नहीं है।

भाभीजीकी भावनाएँ ज्यों ही बाईके हृदयसे टकरायीं, बाई छतसे नीचे उतर आयीं और वृद्धा मैयाको प्रणाम करके बोलीं—मैया! मुझे जाने दे। ये साथ ले जाये बिना मानेगी नहीं।

मैया बोली—नहीं लाली, नहीं! तू मत जा; तू यहीं रह। यहीं रहकर भजन कर।

बाईने कहा—मैया! ये जब लेने आ गयी हैं, तो मुझे जाना ही पड़ेगा।

बाईके व्यवहारमें और बोलनमें इतनी मधुरता थी कि वृद्धा मैया और उसके परिवारके सभी लोग बाईको अपनेसे अधिक अपना मानने लगे थे।

वे यह चाह ही नहीं रहे थे कि बाई हमारे घरसे जाएँ। किसी प्रकार बाईने समझा-बुझाकर विदा ली और चलते समय यह भी कहा—मैया! मैं वृन्दावनमें युगल घाटके श्रीकृष्ण कुञ्जमें रहती हूँ, वहाँ आना। जरूर आना।

सबको प्रणाम करके बाई भाभीजी, नर्मदा बाई और कुम्हारिन मैयाके साथ वहाँसे बरसाना आ गयीं। बरसानेसे प्रस्थान करनेका दृश्य भी बड़ा ही भाव भरा था, मानों सचमुच बेटी पीहरसे विदा हो रही हो। भाभीजी बाईको लेकर श्रीयुगलजी पण्डाके घर आयीं। कुछ देर विश्राम करनेके बाद अब वृन्दावन जानेके लिये मोटर गाड़ीमें बैठना था। विदाईके समय नारायणकी मैया अर्थात् श्रीयुगल पण्डाजीकी धर्मांगिनीसे लिपटकर बुरी तरह रोने लगी। बाईके रोदनसे एक करुण दृश्य उपस्थित हो गया। बाई मैयाकी छातीसे लगकर रो-रो करके कहने लगीं—मैया! मुझे जल्दी बुला लेना। बुलाना भूलना नहीं।

ध्वनिकी प्रतिध्वनि होती है बाईके अन्तरकी सच्चाईसे मैयाके अन्तरमें भी अपार वात्सल्य उमड़ आया। मैया रोने लगी और बोली—मैं जल्दी ही नारायणको तेरे पास भेज दूँगी। तुम्हें जल्दी ही बुला लूँगी। तू नारायणके साथ चली आना।

घरसे विदा होनेके पहले नारायणकी ओर उन्मुख होकर बाईने कहा— नारायण भैया! मुझे लेनेके लिये जल्दी आ जाना।

नारायणने कहा—मैं जल्दी ही आऊँगा। तुम मेरे साथ बरसाना चली आना।

विदाईका यह अनोखा भावभरा दृश्य था। बड़े भाव भरे मनसे श्रीयुगलजी पण्डाके परिवारके लोगोंने बाईको विदाई दी। बाई मोटर गाड़ीमें बैठ गयीं। साथमें भाभीजी, नर्मदा बाई और कुम्हारिन मैया बैठ गयीं। कार वृन्दावनकी ओर चल पड़ी। बरसानासे वृन्दावन पहुँचनेमें सवा या डेढ़ घण्टा लग जाया करता था कुछ समय तो विदाईके करुण भावके प्रभावमें मोटरके अन्दर गम्भीरता छायी रही। उस गम्भीरताके शमित होनेपर भाभीजीने उपालम्भ देना शुरू कर दिया। ऊँचा गाँवके अद्भुत खेलकी चर्चा चलाकर अनेक खाटे-मीठे उलाहने सुनाये यह तूने कैसा खेल ऊँचा गाँवमें रच डाला। तू तो उनसे ऐसे घुलमिल गयी कि तेरे लिये हम सब पराये हो गये।

वृन्दावन आनेके बाद ऊँचा गाँववाली वे बहू-बेटिया बाईसे मिलनेके लिये कुछ एक बार वृन्दावन आयीं। बाईने उनका भरपूर स्वागत-सत्कार किया।

इतना लाड़ किया, इतना प्यार दिया कि उनके मनपर बाईकी स्थायी छाप पड़ गयी।

* * * *

श्रीकृष्ण कुञ्जमें मकानके अन्दर एक बहुत पुराना पीपलका विशाल वृक्ष था। उसमेंसे सर्प निकलते ही रहते थे। कभी दिनमें, कभी रातमें, किसी भी समय सर्प निकला करते थे। इससे बाईके पास रहनेवाली सभी माताएँ-बहिनें भयभीत हो जाया करती थीं। सभीको सर्पसे भयाक्रान्त देखकर एक दिन भाभीजीने बाईसे कहा—बाई! सपेरेको बुलावाकर साँप निकलवा दें तो कैसे रहेगा? इस उपायसे सर्प मरेंगे भी नहीं और यहाँसे चले भी जायेंगे। फिर यह स्थान निरापद हो जायेगा।

बाईने सरलतासे उत्तर दे दिया—भाभीजी! आप जैसा उचित समझें, वैसा कर लीजिये। भाभीजीको यह उत्तर देकर बाई रात्रिमें भोजन करने बैठ गयीं। भोजन करते-करते बाईको किसीके आनेकी आहटका आभास हुआ, परन्तु वहाँ कोई दिखलायी नहीं दिया। आहटके आधारपर पता लगानेके लिये बाईने दो-तीन बार आवाज भी लगायी, परन्तु किसी भी दिशासे कोई भी जवाब नहीं मिला। भोजन कर चुकनेके बाद बाई अपने कमरेमें सोनेके लिये चली गयीं। कमरेका द्वार बन्द करनेके बाद लगभग दस पन्द्रह मिनट व्यतीत हुए होंगे कि बाईने बन्द कमरेमेंसे ही पुष्पा बाईको पुकार करके कहा—पुष्पा! प्रातःकाल भाभीजीसे कह देना कि सपेरेको साँप पकड़नेके लिये नहीं बुलायेंगी।

पुष्पा बाईने बाईकी बात प्रातःकाल भाभीजीसे कह दी। मध्याह्नकालमें जब बाई अपने कमरेसे निकल करके बाहर आयीं, तब भाभीजी, नर्मदा बाई, सावित्री बाई आदि सबको बुलाकर कहने लगीं—कल रात्रिमें एक अद्भुत प्राणी मेरे पास आया था, जिसका ऊपरका शरीर मनुष्यका था तथा कमरसे नीचेका भाग सर्पका था। उसके सिरपर चमचमाता हुआ मुकुट था। मेरे सामने आकर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। उसे देखकर मैंने भी हाथ जोड़े तथा पूछा—प्रभु! आप कौन हैं? मुझपर कैसे कृपा की?

उन्होंने नतमस्तक होकर कहा—मैं सर्पोंका राजा हूँ। यहाँ इस पेड़में मै अपने परिवारके साथ निवास करता हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिये। मैं आपको वचन देता हूँ कि मेरे परिवारका कोई भी सदस्य सर्प आपके किसी

भी व्यक्तिको किसी प्रकारकी भी हानि नहीं पहुँचायेगा। मुझे घरसे मत निकलवाइये।

मैंने उन्हें सान्त्वना देनेके लिये कह दिया—ठीक है, अब आप निर्भय होकर सपरिवार यहाँ वास करें।

बाई पुनः भाभीजी, नर्मदा बाई सावित्री बाईसे कहने लगीं—अब आपलोग बताइये कि शरणमें आये हुए किसी भी प्राणीकी रक्षा करना अपना कर्त्तव्य है या नहीं। उन्होंने हमलोगोंको अभयका दान दे दिया है। जब हमलोगोंको कोई भय है ही नहीं, तब उन्हें रहने देनेमें हमलोगोंको कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

सब आश्चर्य चकित होकर बाईको बात चुपचाप सुन रही थीं। भाभीजीने कहा—ठीक है बाई! तुम्हारी स्वीकृतिके बिना तो कुछ करना ही नहीं है। तुमने उन्हें निर्भय कर दिया है तो उन्हें सानन्द सपरिवार रहने दो।

बाईके साथ शशी भी रहती थी और वह साँपसे बहुत डरती थी। संयोग कहें या दुर्भाग्य कहे, सबसे अधिक सर्प उसीको दिखलायी देते थे और भयभीत होकर वह इतना अधिक हो-हल्ला मचाती थी कि सबके मनमें शशीके प्रति सहानुभूति उमड़ पड़ती थी। सहानुभूतिसे भरी हुई भाभीजीने कुछ दिनोंके बाद फिर बाईसे कहा—बाई! इस पेड़के और सीढ़ीके बीचमें एक दीवार बनवा दें, जिससे सर्प पेड़में रहें, बाहर न निकल सकें। असमयमें उनके निकल जानेसे कभी-कभी रात्रिके अँधेरेमें उनपर पैर भी पड़ सकता है। पैर पड़नेसे प्रकुपित होकर वे कुछ हानि भी पहुँचा सकते हैं।

बाईने कहा—भाभीजी! इसमें क्या आपत्ति है। दीवाल बनवायी जा सकती है।

भाभीजीने राजमिस्त्रीको बुलवा करके दीवाल बनवानेकी बात तय कर ली। राजमिस्त्री प्रातःकाल आकर दीवाल बनानेकी कह करके अपने घर चला गया। दीवाल खड़ी करनेके लिये ईंटा, बालू, सिमेन्ट मँगवा लिया गया। दूसरे दिन प्रातःकाल राजमिस्त्री आया और उसने भाभीजीसे कहा—माताजी! मैं दीवाल नहीं बनाऊँगा।

भाभीजीने देखा मिस्त्री भयसे काँप रहा है। उसका चेहरा कान्तिहीन हो गया है वह रात भरमें ही अत्यधिक अस्वस्थ-सा लग रहा है। भाभीजीने मिस्त्रीसे पूछा—मिस्त्रीजी! बात क्या है? आपकी मजदूरीके पैसे यदि कम

लग रहे हों तो आप जितना कहेंगे, उतना ही दे दिया जायेगा।

भाभीजीकी स्नेहसनी वाणी सुनकर मिस्त्रीके धैर्यका बाँध टूट गया और वह रोने लगा। भाभीजी उसे ढाढस बँधाती हुई बोली—आप इतने अधीर क्यों हो रहे हैं? जो बात हो स्पष्ट बतलाइये।

इस बार मिस्त्रीने बताया—माताजी! मैं आपके यहाँसे जाकर रात्रिमें भोजन करके सो गया। अर्द्ध रात्रिके समय एक श्वेत वस्त्रधारी देवता मेरे पास आये। उन्होंने मुझे खटिया सहित उठाकर जमीनपर पटकना शुरू कर दिया। पाँच-सात बार इसी प्रकार पटकनेके बाद वे बोले कि तू वहाँ दीवाल बनाने जायेगा तो मैं तेरा वंश नष्ट कर दूँगा। मैं वहाँका देवता हूँ। उस वृक्षमें निवास करता हूँ। खबरदार! जो वहाँ दीवाल बनानेकी चेष्टा की। सावधान! सावधान! सावधान! इतना कहकर वे देवता चले गये।

माताजी! आप मुझे एक लाख रुपये देंगी, तब भी मैं दीवाल नहीं ही बनाऊँगा। मैं तो आपसे भी यही प्रार्थना करता हूँ कि आप दीवाल बनवानेका आग्रह मत करिये। वे देवता आपको भी बहुत बड़ी हानि पहुँचा सकते हैं। इसके बाद भी यदि आप दीवाल बनवाना ही चाहती हैं तो किसी अन्य मिस्त्रीको बुलवा लीजिये।

भाभीजीने कुछ प्रसाद और द्रव्य देकर उस मिस्त्रीको विदा कर दिया और विदाई दे दी दीवाल-निर्माणकी भावनाको भी। पीपलके पेड़के पास दीवाल नहीं बनी। श्रीकृष्ण कुञ्जमें बाई लगभग तीन वर्ष रहीं। तीन वर्षकी अवधिमें प्रायः कभी छोटे, कभी बड़े साँप निकलते ही रहते थे, पर एक बार भी किसी भी सर्पने किसी भी व्यक्तिको हानि नहीं पहुँचायी।

यह सही है कि साँपोंके राजाने निर्भयताका आश्वासन दे दिया था और तीन सालकी अवधिमें सर्पोंने किसीको हानि नहीं पहुँचायी थी, परन्तु यह भी सत्य है कि सर्पका दूसरा नाम काल है। जब-जब सर्प दिखलायी देते थे, आतंक तो छा ही जाता था। बाई सबको आश्वस्त करती रहती थीं, किन्तु बाईके मनका स्तर कुछ और ही था और साथ वाली बहिनोंका स्तर कुछ और ही था। इसी प्रकार श्रीकृष्ण कुञ्जमें दिन व्यतीत हो रहे थे। श्रीकृष्ण कुञ्जमें टेलीफोनकी व्यवस्था नहीं थी। फोन करनेके लिये अन्यत्र ही जाना पड़ता था। धानुका मैयाके यहाँ भागलपुरसे भाभीजीका फोन दिनमें आया था मैं रातमें फोन करूँगी। बाईसे बात करनी है, बाईको बुलाकर रखियेगा।

बाई यमुनाजीके तीरपर बैठी हुई थीं। भाभीजीके फोनकी सूचना पाकर बाईने साबो बाईसे कहा—साबो बाई! मैं यमुनाजीमें स्नान कर लेती हूँ। तुम मुझे श्रीबिहारीजीके दर्शन करवा करके धानुका मैयाके यहाँ ले चल।

साबो बाईने कहा—बाई! भाभीजीका फोन समयपर आ जायेगा। आप जल्दीसे स्नान कर लीजिये।

यमुना स्नान करके बाई श्रीबिहारीजीके मन्दिर आ गयीं। गोसाँईंजीने बिहारीजीके चढ़ी हुई प्रसादी माला और थोड़ा प्रसाद लाकर बाईको दिया। बाई मन्दिरसे बाहर आकर धानुका मैयाके घरकी ओर बढ़ने लगीं। रास्तेमें वे कहने लगीं—साबो बाई! मेरा श्रृंगार करो ना!

फिर कुम्हारिन मैयाकी ओर उन्मुख होकर कहने लगीं—ऐ मैया! मुझे सजाओ ना! मुझे माला पहनाओ! गहने पहनाओ। पटुका दो। पीताम्बर धारण कराओ। मुकुट लगाओ और मैया! कुछ खानेके लिये भी दे।

कुम्हारिन मैयासे श्रृंगार करनेके लिये बाई बार-बार कह रही थीं, उसी समय एक विशेष परिवर्तन दिखलायी देने लगा। बाईकी बोलनकी शैलीमें अन्तर आ गया। बोली बिल्कुल महीन हो गयी और वे बहुत धीरे-धीरे ठहर-ठहर कर बोल रही थीं। केवल बोलनमें ही नहीं, उनके शरीरका आकार भी कुछ छोटा लगने लगा और ऐसा प्रतीत होता था, मानो बहुत हल्का हो गया हो। परिवर्तन तो उनके चलनेकी शैलीमें भी दिखलायी दे रहा था। वे मार्गपर चल रही थीं, इसके बजाय यह कहना चाहिये कि वे थिरक-थिरककर नृत्यमयी गतिसे चल रही थीं। किसी प्रकार धानुका मैयाका घर आया। घरके भीतर प्रवेश करते ही बाई नृत्य करने लगीं। नृत्यकी वैसी भंगिमा पहले कभी दृष्टिगत नहीं हुई थी। वे बहुत देरतक नृत्य करती रहीं। बीच-बीचमें बोलतीं—मुझे माखन खिलाओ। पकौड़ी खिलाओ।

धानुका मैया कुछ-कुछ खानेके लिये देने लगीं। बाई बिना कुछ देखे या विचारे खाने लगीं। कभी-कभी बाई कहतीं—यह चीज ठीक नहीं है, यह चीज अच्छी नहीं है।

किसी चीजको बाई बड़े प्रेमसे खा लेतीं। धानुका मैया कभी कुछ, कभी कुछ ला-ला करके देने लगीं और बाई दी हुई सभी चीजें खातीं चली गयीं। बाईको इतना अधिक खा लेते हुए पहले कभी भी नहीं देखा गया था। बाईके द्वारा बहुत अधिक खा लिया जाना साथकी बहिनोंके और

धानुका मैयाके मनमें अनेक प्रकारकी शंका उत्पन्न करने लगा। एक तरफ चाव यह था कि बाई जो माँगे और जितना माँगे, सब दे देना चाहिये, परन्तु बाईके शरीरपर कुप्रभाव पड़नेकी आशंकासे माँगी हुई वस्तु देनेमें हिचक भी हो रही थी। सामग्री देनेमें हिचकते देखकर बाईने कहा—तुमलोग क्या यह समझती हो कि बाई अकेले खा रही है? बाई अकेली नहीं है। बाईके साथ सोलह हजार सखियाँ हैं। वे सब बारी-बारीसे बाईके मुखके माध्यमसे खा रही हैं।

इतना कहकर बाई खाते-खाते उठ करके नृत्य करने लगीं। उनके साथ वहाँ उपस्थित सात-आठ बहिनें भी नृत्य करने लगीं। सबसे अधिक आश्चर्य यह था कि स्थूल शरीर वाली और ढलती आयुवाली वृद्धा धानुका मैया भी नृत्य करने लगीं। नृत्यका समा बँध गया। उसी समय भाभीजीका फोन आ गया। भाभीजीको पन्द्रह मिनट बाद फोन करने कहा गया। पन्द्रह मिनट बाद भी बाई प्रकृतिस्थ नहीं हो सकी। पन्द्रह मिनट बाद फिर फोन आया। भाभीजीका नाम सुनकर बाई चौंकी। नृत्यको विराम देकर बाईने भाभीजीसे बात की और फिर श्रीकृष्ण कुञ्ज लौट आयीं।

* * * *

एक दिन बाई वेणु विनोद कुञ्ज गयीं। इन दिनों शीत ऋतु होनेसे कड़ाकेका जाड़ा पड़ रहा था, परन्तु न जाने बाईका शरीर किस मिट्टीका बना हुआ था कि उन्होंने कोई भी ऊनी वस्त्र अपने शरीरपर नहीं डाल रखा था। वे यमुना तटसे सीधे वेणु-विनोद कुञ्ज चली गयीं। वेणु-विनोद कुञ्ज जाकर पूज्य श्रीमहाराजजीसे मिलनेका उनका ढंग अनोखा ही था। यह ढंग बाईका अपना ही था। महाराजजी अपने कमरेमें पलंगपर बैठे रहते। बाई उनके सामने जाते ही हाथमें पल्ला लेकर प्रणाम करतीं और भूमिपर मस्तक नत किये हुए बैठ जातीं। कोई बात नहीं होती। एक-डेढ़ घण्टेकी बैठकमें शायद ही कभी दो-तीन मिनट कुछ शब्दोंका आदान-प्रदान हो पाता था। श्रीमहाराजजी पलंगपर बैठे हुए जब-तब बाईकी ओर देखते रहते और मन्द-मन्द मुस्कुराते रहते। बाईका नत-मस्तक होकर बैठना और श्रीमहाराजजी द्वारा मुस्कुराते हुए बाईको देखा जाना, इसमें एक या डेढ़ घण्टा कितना समय बीत जायेगा, कहा नहीं जा सकता। इस बार जब बाई आकर श्रीमहाराजजीके सामने बैंठीं, तो महाराजजी थोड़े संभ्रमित हुए और मन-ही-

मन सोचने लगे—ये कैसी बाई है, जिसने इस घोर शीतमें भी ऊनी वस्त्र धारण नहीं कर रखे हैं।

बाईके पार्श्वमें ही कमलजी बैठी हुई थीं। श्रीमहाराजजीने आँखके इशारेसे कुछ कहा, जिसे कमलजी नहीं समझ पायीं। इशारा पाकर ठाकुर घनश्यामजी एक नवीन शाल ले आये और उन्होंने वह शाल बहिन कुसुमजीको दे दी। कुसुमजीने वह शाल धीरेसे बाईको ओढ़ा दी। शरीरपर कुछ डाला गया है, ऐसा भान होते ही चौंकते हुए बाईने अपनी गर्दन ऊँची की और महाराजजीकी ओर देखा। श्रीमहाराजजी समझ गये कि शालका ओढ़ाया जाना बाईके विस्मयका हेतु बन रहा है कि 'यह क्या हुआ, क्यों हुआ और किसने किया?'

बाईके नेत्रोंमें झलक रही जिज्ञासाकी शान्तिके लिये श्रीमहाराजजी मुस्कुराते हुए ममत्व भरे स्वरमें बोल पड़े—इस ठण्डमें........।

महाराजजीको यह नितान्त अप्रिय लग रहा था कि रुक्मिणी बाई इस प्रकार शीतका कष्ट सहन करे। श्रीमहाराजजीकी आन्तरिक प्रीतिको शब्दोंमें बाँधकर व्यक्त कर सकना सम्भव ही नहीं है। उन तीन शब्दोंके अधूरे वाक्यको बोलकर महाराजजी कुछ क्षण मौन रहे और फिर बोले—यह मेरी प्यार भरी भेंट है।

बाई पुनः नतमस्तक थी और पुनः मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए श्रीमहाराजजी बाईकी ओर देख रहे थे। पास बैठी हुई कमलजी भी द्रवित हृदयसे और भीगी आँखोंसे कभी श्रीमहाराजजीको, कभी बाईको, कभी ठाकुरजीको, कभी कुसुमजीको और सबसे अधिक भूमिको देख रही थीं। बहुत देर बैठे रहनेके बाद बाई कमलजीके साथ श्रीकृष्ण कुञ्ज चली आयीं, श्रीकृष्ण कुञ्जमें रहते हुए और इस प्रकार ब्रजवासका सुख लेते हुए बाईके दिन परमानन्दमें व्यतीत हो रहे थे।

* * * * *

शोक समाचारसे विकलता

'दिवस जात नहीं लागहिं बारा।' सचमुच दिनोंका व्यतीत होते देर नहीं लगी। देखते-दिखाते, हँसते-हँसाते ब्रजवासके बारह मास पलक मारते-मारते व्यतीत हो गये। गत बारह मासकी अवधिमें प्रत्येक दिनका प्रत्येक प्रभात कभी मधुर चर्चा, कभी सरस गायन, कभी सुखद यात्रा, कभी संत दर्शन, कभी श्रीराधानाम संकीर्तन, कभी यमुना विहार आदि-आदिके रूपमें बाईका अभिनन्दन और अभिरञ्जन करता रहता और बाई दिन-प्रतिदिन कभी रसकी लहरोंपर लहराती रहतीं और कभी रस संसिक्त बाई आनन्दका वितरण करती रहतीं। बाईका प्रत्येक मास मधु मास था किन्तु एक दिन इस मधु मासकी वासन्ती प्रभाको एक हृदय विदारक शोक समाचारने डस लिया।

२६ सितम्बर, १९९२ के मध्याह्नके समय गोरखपुरकी गीतावाटिकासे बड़ा ही अशुभ समाचार आया कि पूज्या मैयाने अपने पावन कलेवरका परित्याग कर दिया है। श्रीभाईजीने सन् १९७१ में महाप्रस्थान किया था। उनकी कभी सुखद और कभी दुखद स्मृतिमें मैयाने येन-केन-प्रकारेण गत इक्कीस वर्ष व्यतीत किये और इस २६ सितम्बरको वे अपने 'परम जीवन धन' श्रीभाईजीके पास सदा-सदाके लिये चली गयीं। पूज्या माँके महाप्रस्थानका समाचार बाईकी आनन्दकी लतिकापर भीषण हिमपात था, जिसने बाईके सर्व-सुखको सर्वथा छिन्न-भिन्न कर दिया। समाचार पाते ही बाई फूट-फूट करके रोने लगीं। ऐसा रुदन तो कभी देखा नहीं गया।

पूज्या माँके निधनसे भाभीजी, नर्मदा बाई तथा साथकी सभी बहिनें बहुत व्यथित थीं, किन्तु बाईकी व्यथा तो उनकी अपेक्षा अनन्त गुनी थी। व्यथिता भाभीजी और नर्मदा बाईको क्षणे-क्षणे सँभाल रही थीं और सान्त्वना देकर शान्त करना चाह रही थीं, परन्तु उनकी सान्त्वनाके शब्द आगमें घीकी तरह काम कर रहे थे। सान्त्वना सुनकर बाईका रुदन और अधिक बढ़ गया। बढ़ते हुए रोदनको देखकर भाभीजीको भी विस्मय होने लगा। भाभीजी जानती थीं कि पूज्या मैयाके प्रति बाईकी बड़ी श्रद्धा है। बाई जब भी गोरखपुर जातीं, सदैव उनके श्रीचरणोंपर माथा टेककर प्रणाम करतीं, उनके आशीर्वादको

पाकर स्वयंको धन्य मानतीं, किन्तु माँके प्रति बाईका जो और जैसा लगाव था, उस लगावको देखकर इतना रोदन तो नहीं ही होना चाहिये था। आज बाई जितना रोदन कर रही है, वह न कभी देखा गया और न ही इसका हेतु समझमें आ रहा था। रोदन कम हो ही नहीं रहा था। बहुत देरतक भाभीजी और नर्वदा बाई ये दोनों बाईके समीप बैठी रहीं। रोदनमें ज्यों ही थोड़ी न्यूनता आयी, बाईसे भाभीजी पूछ बैठीं—आज तू इतना क्यों रो रही है? क्या बात है?

बाईने आँचलसे आँसुओंको पोंछते हुए और अरुद्ध कण्ठसे धीरे-धीरे बोलते हुए कहा—भाभीजी! अब बाबा नहीं रहेंगे। श्रीभाईजीने बाबाको मैयाकी सँभालका दायित्व सौंप रखा था। बाबाने भी श्रीभाईजीके संकेतको मनसे स्वीकार किया था। श्रीभाईजी द्वारा सौंपा गया दायित्व ही बाबाके जीवनका आधार था। बाबाने भली प्रकारसे अपने दायित्वका निर्वाह किया। आज पूज्य माँ नहीं रहीं, अतः मेरा मन अनिष्टकी कुशंकासे अत्यधिक भयाक्रान्त है और बार-बार यही कुशंका हो रही है कि कहीं अब बाबा शीघ्र ही अपनी लौकिक-लीलाका संवरण न कर लें। उनकी संवरण-लीलाकी आशंका आज मुझे अत्यधिक व्यथित कर रही है। पूज्या मैयाके जानेकी व्यथा तो है ही, परन्तु बाबासे सम्बन्धित कुशंका भीषण रूपसे मनकी सारी भावनाओंको संतप्त और संत्रस्त कर रही है। मैं नहीं चाहती कि मैं रोदन करूँ किन्तु मैं विवश हूँ। आप जानती हैं, मैंने भाईजीको श्रीकृष्णके रूपमें देखा है और बाबाको श्रीराधारानीके रूपमें केवल देखा ही नहीं है, अपितु यह मेरी आन्तरिक आस्था है। बाबाके रूपमें श्रीराधारानी द्वारा ही गीतावाटिकामें लीला-विहार हो रहा है। अब गीतावाटिकामें होनेवाले उस विहार-विलासपर शीघ्र ही परदा पड़ जानेका भय है। यह कुशंका रह-रह करके मनमें बुरी तरह घूम-घूम करके घुमड़ रही है। और क्या बताऊँ?

२७ सितम्बर, १९९२ को गीतावाटिकामें पूज्या माँके पावन कलेवरकी अन्त्य क्रिया सम्पन्न हुई। पूज्या माँके निधनसे बाईकी कोमल भावनाओंको बड़ा आघात लगा। आघात जनित घाव अभी भर भी नहीं पाया था कि इसके सत्रह दिन बाद श्रीबाबाके तिरोहित हो जानेके हृदय विदारक करुण समचारसे बाईके हृदयपर मानो वज्रपात हो गया हो। बाईका जो अनुमान था और अनुमानके आधारपर सत्रह दिन पहले बाईने भाभीजीसे जो कहा

था, वह एक यथार्थ सत्यके रूपमें घटित हो गया। श्रीबाबाके तिरोधान हो जानेसे बाईके शोकाकुल मनकी जैसी विकल और करुण स्थिति थी, उसका वर्णन सम्भव है ही नहीं। बाई फूट-फूटकर रो रही थीं और बाबाकी अनेक स्मृतियाँ रह-रह करके उनके मनको मथ रही थीं। स्मृतियोंका ताँता टूट ही नहीं रहा था। क्षणे-क्षणे स्मृतियाँ उभर-उभर करके मनको झकझोर रही थीं—यही बाबा हैं, जिन्होंने स्वर्गाश्रममें मुझको सहोदरा कहा था। यही बाबा हैं, जिन्होंने अपनी सहोदरा बहिनके सिरपर भाईजीका वरद हस्त रखवाया था। यही बाबा हैं, जिन्होंने अपनी निजी निधि सहोदरा बहिनको भाभीजीके हाथोंमें अमूल्य धरोहर बतला कर सौंपा था। यही बाबा हैं, जिन्होंने मुझ मरणासन्नको गीतावाटिकामें जीवन दान दिया था। यही बाबा हैं, जो समय-समयपर मुझे आवश्यक निर्देश दिया करते थे। यही बाबा हैं, जिनपर मैं अपना सारा भार सौंपकर निश्चिन्त हो जाया करती थीं। यही बाबा हैं, जिनके चरण-कमलोंपर समीपस्थ अथवा समागत माताओं-बहिनों-भाईयोंकी समस्याओंको चरणार्पित करवा करके मैं उन्हें चिन्ता मुक्त बना दिया करती थीं। यही बाबा हैं, जिनके प्यारके बलपर मैं किसीको कुछ भी आश्वासन दे दिया करती थी। यही बाबा हैं, जिन्होंने भागलपुरके श्रीमहिला संघको उजड़नेसे बचाया और उसकी सदैव मातृवत् सँभाल करते रहते थे। यही बाबा हैं, जिन्होंने कलकत्ता महानगरमें पूज्य श्रीडोंगरेजीकी भागवत कथा करवा करके श्रीमहिला संघको पच्चीस लाख रुपये दिलवाये। यही बाबा हैं, जिन्होंने मेरी अस्वस्थताका समाचार पाते ही मुझे गोरखपुर बुलवा लिया और मेरी चिकित्सा अपनी देखरेखमें करवाते रहे। इतना ही नहीं, यही बाबा हैं, जो जो मेरी चिकित्सा परोक्ष रूपसे सदैव किया करते थे।

अपार और अगणित स्मृतियोंकी ऊँची-नीचे लहरोंकी लपेटमें पड़कर कराहती हुई बाईको एक दृश्य बार-बार बुरी तरह याद आ रहा था। बाईके पास जो भी बहिन भगवद्भजनकी भावनासे साधननिष्ठ जीवन व्यतीत करनेके लिये आती थीं, बाई उन बहिनोंको लेकर बाबाके पास पहुँच जातीं। बाई उन बहिनोंका परिचय देकर उनका सराहनीय संकल्प बाबाको बतला देतीं। तब श्रीबाबा इन सत्प्रयासोंकी प्रशंसा करते हुए अपने गैरिक वस्त्रको फैलाकर कहते हैं कि मेरी बहिनी! इन सबको मेरी झोलीमें डाल दे। बाबाके चरणोंपर सौंपकर और उन बहिनोंके मंगल भविष्यको सोचकर मेरी प्रसन्नताकी सीमा

नहीं रहा करती थीं। बाईके मनमें बड़ा दर्द था कि झोली फैलानेवाला वह महान उदार, वह महान समर्थ, वह महान स्नेही तो अब भूतलपर रहा ही नहीं।

उन अपार और अगणित स्मृतियोंके निरन्तर उभार और भीषण ज्वारका वर्णन कहाँतक किया जाय! बाई लगातार तीन दिनतक बुरी तरह रोती रहीं। उठते-बैठते, चलते-फिरते, सोते-जागते आँसूकी धारा रुक ही नहीं रही थी। तीन दिनतक बाईने न अन्न और न जल ही ग्रहण किया। रातको कमरेके द्वार बन्द करके जब बाई सोती थीं, तब भी कमरेके बाहर मँडराती हुई बहिनोंको बाईकी हिचकियाँ सुनायी देती थी। तीन दिन, तीन रात बाईका आँचल निरन्तर आँसुओंसे भींगता ही रहा।

अब तीसरे दिन रात्रिके समयकी घटना है। बाई श्रीयमुनाजीके उस पार गुमसुम बैठी हुई आँसू बहा रही थीं। यद्यपि श्रीयमुनाजीमें उस समय कोई नौका नहीं थी, परन्तु बाईने खुली आँखों देखा कि बाबा अपने दिव्य स्वरूपसे नौकापर विराज रहे हैं और नौका यमुनाजीकी धाराके साथ बहती हुई बाईकी ओर चली आ रही है। नाव समीप आ करके फिर धाराके साथ कुछ आगे निकल गयी। पुनः नौका लौटी और धाराके विपरीत दिशामें बहुत दूर चली गयी। इस प्रकार नाव दस-पन्द्रह बार इधर-से-उधर और उधर-से-इधर यमुनाजीकी धारापर आती-जाती रही और उस नौकापर बैठे हुए बाबा बाईको स्पष्ट दिखलायी दे रहे थे। इसके बाद वह नौका तटके समीप आ गयी। नौकासे उतर कर पूज्य बाबा बाईके पास आये और समीप बैठकर बाईको सान्त्वना देने लगे। बाईके समीपमें बैठने तकका विवरण तो बाईने बतलाया, किन्तु बाबाने बाईसे क्या कहा, इस सम्बन्धमें बाई सदैव मौन ही रहीं। इतना अवश्य है कि इस प्रसंगके बादसे बाईके आँसुओंके प्रवाहमें विराम आ गया। बाईके आँसू सचमुच बन्द हो गये।

वे आँसू बन्द हुए और इसीके साथ यह भी कह देना आवश्यक है कि बाईने जगतसे स्वयंको बन्द कर लिया। बाईके जीवनमें अबतक जिस उन्मुक्त विहरणका, उन्मुक्त हास्यका, उन्मुक्त विनोदका, उन्मुक्त मिलन आदिका जो उन्मुक्त उल्लास रहा है, इन सभीपर ऐसा घना आवरण आ गया; मानो उल्लासने बाईसे विदाई ले ली हो। इन सभीसे बाईकी सहज ही उपरामता हो गयी। बाईके मनमें जो उपरामता अवतरित हुई, इस उपरामतासे

बाईका शेष जीवन सदैव आछन्न रहा। बाईकी रहनी बदल गयी, बाईकी दिनचर्या बदल गयी और बाई प्राय: भाभीजीसे यही कहतीं अब मुझे यहाँ नहीं रहना है। मुझको सहोदरा कहनेवाला मेरा भाई जब चला गया, तब मैं यहाँ रहकर क्या करूँगी। जिस कार्यके लिये मुझे उन्होंने रोका था, वह भी तो पूर्ण हो चुका है, अत: अब जाना ही है।

बाईकी यह नितान्त खिन्नता और अत्यधिक उपरामता भाभीजीको बहुत खल रही थी, परन्तु वे बाईकी मन:स्थितिको समझ भी रही थीं। आजतक भाभीजीने जितना स्नेह दिया, जितनी सँभाल रखी, वह स्नेह, वह सँभाल इस नवीन अनचाही परिस्थितिमें कई गुना बढ़ गयी। बाबासे यमुना तटपर मिलन होनेके बाद बाईने कुछ अन्न-जल ग्रहण किया। तीन दिन बाद बाई अन्न-जल ग्रहण कर रही थीं, अत: भाभीजीने अल्प मात्रामें ही देना चाहा।

अब बाईकी दिनचर्या पहलेवाली नहीं रह गयी। बाई या तो श्रीकृष्ण कुञ्जमें अपने कमरेके एकान्तमें रहतीं अथवा यमुना तटके एकान्तमें अकेली बैठी रहतीं। यहाँतक कि सूर्यास्तके बाद निशारम्भका अधिकांश समय उस पार यमुना तटपर ही व्यतीत होता। प्राय: रात्रिके दस-ग्यारह बज जाते थे जब बाई घरपर लौटकर आतीं। बाईके दैनन्दिन कार्यक्रममें सदैव ही अनिश्चितता रही। कभी-कभी यमुनाजीके उस पार रातके एक-दो भी बज जाते थे। गहरी उपरामता और गहरी भावमयतामें निमग्न वे वहीं यमुना तटपर पड़ी रहतीं थीं।

यमुना तटसे बाई जब भी आतीं, वे श्रीकृष्ण कुञ्ज आकर पुन: स्नान करतीं, पूजा करतीं और स्वल्पाहार करके अपने कमरेका द्वार बन्द कर लेतीं। फिर बाईके कमरेका द्वार दिनके साढ़े बारह-एक बजे ही खुलता। कमरेसे बाहर आते ही बाई सीधे यमुनाजीके तटपर चली जातीं। उस पार जा करके मंजन-स्नान करके बाई दिन भर वहीं यमुना तटपर पड़ी रहतीं।

मल्लाहोंका बाईसे बड़ा स्नेह हो गया था। भगवान सिंह नामक मल्लाहका नाम उल्लेख करना आवश्यक लग रहा है। उसने अपनी एक नाव सदा बाईके लिये निर्धारित कर रखी थी। वह स्वयं अथवा उसके परिवारका कोई-न-कोई एक व्यक्ति उस नावपर रहता ही था। पता नहीं बाई उस पारसे इस पार कब आयेंगी। जब भी आयेंगी, इस पार आनेके लिये नाव सदा तैयार रहे, इस सेवामें भगवान सिंहने कभी चूक नहीं होने दी। उनकी

यह सेवा अविस्मरणीय है।

बाईकी यह उपरामता दिन-प्रति दिन बढ़ती जा रही थी और यह कहना चाहिये कि इस उपरामताने एक स्थायी गम्भीरताका रूप ले लिया। बाईके व्यक्तित्वपर छायी हुई गम्भीरता, इतना ही नहीं भीतर-बाहर समायी हुई गम्भीरताको देखकर कोई भी बहिन अब विनोद करनेका साहस कर ही नहीं सकती थी। इस सघन गम्भीरतामें किञ्चित् शिथिलता आ पायी तीन-चार मास बाद। अब बाई मध्याह्न साढ़े बारह बजे जब अपना कमरा खोलतीं, सीधे यमुनाजी जानेके बजाय कभी-कभी श्रीराधानाम संकीर्तनमें भी बैठ जातीं, जो श्रीकृष्ण कुञ्जके भीतर मन्दिरके सामने ब्रजवासिनी माताओं-बहिनों द्वारा हुआ करता था। बाईके बैठते ही कीर्तन करनेवाली माताओं-बहिनोंका उल्लास कई गुना बढ़ जाता था। वे उच्च और ललित स्वरमें कीर्तन करने लगती थीं और इसका उद्देश्य होता था बाईको आनन्दित करना। वे बहिनें प्राय: ब्रज भक्तोंके पदोंका और रसियोंका गायन किया करती थीं। उल्लासातिरेकमें वे माताएँ नृत्य भी करने लगती थीं। यह कार्य क्रम जब भी एक या डेढ़ या दो बजे सम्पन्न होता, बाई उन सभी माताओं-बहिनोंको प्रसाद दिलवातीं। कभी-कभी वस्त्र भी दिलवातीं। एक बात और है, इस कीर्तनमें कभी-कभी ऐसी ब्रजवासिनी बहिनोंको भी आकर गाते हुए या नाचते हुए देखा गया, जो सर्वथा अपरिचित थीं। शशी बाईकी तो मान्यता यह थी कि अन्तर्जगतकी मञ्जरियाँ-अनुचरियाँ इस रूपमें बाईके प्रति अपनी सरस सेवा समर्पित करनेके लिये आया करती है।

धीरे-धीरे बाईकी ख्याति ब्रजवासी भाई-बहिनोंके मध्य फैलती जा रही थी। ठाकुरका खेल बड़ा विचित्र है। यदि बाई अधिकाधिक सिमटना चाह रही थीं तो इसके विपरीत बाईके प्रति ब्रजवासियोंका लगाव अधिकाधिक बढ़ता जा रहा था। इन दिनों ब्रजवासी माताओं-बहिनोंकी, इनमें भी अधिकांशत: अनपढ़-अनगढ़, किन्तु भोली-भाली, सीधी-साधी ग्रामीण माताओं-बहिनोंकी श्रद्धा भावना बाईके प्रति बहुत अधिक बढ़ती जा रही थी। वे समय-समयपर विपुल भेंट लेकर बाईके पास आया करती थीं। यमुनाजीके उस पार बाई एकान्तमें बैठी थी। वे ग्रामीण ब्रजवासिनी बहिनें सब्जी, तरबूज, ककड़ी, खरबूजा, गाजर आदिका टोकरा सिरपर लेकर बाजारमें बेचने जा रही थीं, पर इसके पहले वे सब आतीं बाईके पास और उनके सामने

सिरपरका टोकरा उतारकर उनसे कहतीं—बाई! जितना चाहो ले लो।

बाईको तो आवश्यकता थी नहीं, परन्तु उस प्यारका सम्मान करना ही था। यदि बाई थोड़ा लेतीं, तो वे ग्रामीण माताएँ-बहिनें कहाँ माननेवाली थीं। जितना बाई लेतीं, उससे कई गुना अधिक बाईके चरणोंके समीप रख देतीं। अब तो हाल ये था कि बिना माँगे केवल यमुना तटपर ही नहीं, श्रीकृष्ण कुञ्जमें भी ढेर-के-ढेर फल और सब्जियाँ वे माताएँ पहुँचा जातीं। उनका मूल्य यदि नर्मदा बाई देतीं, तो वे लेती ही नहीं। वे अपना आँचल फैलाकर उसे यही कहतीं—मेरा सौभाग्य है जो आप इतनी वस्तु ले रही हैं।

इस अवसरपर श्रीरामचरितमानसका वह प्रसंग याद आ रहा है, जब चित्रकूटमें कोल-किरात-भील-बनवासी लोगों द्वारा दिये गये कन्द-मूल-फल आदिका मूल्य यदि अयोध्यावासी उनको देना चाहते हैं तो वे सर्वथा अस्वीकार करके यही कहते हैं कि आपलोग संकोच छोड़कर और हमारा प्रेम देखकर कृपा कीजिये और हमको कृतार्थ करनेके लिये फल-तृण और अंकुर ले लीजिये।

यह जियँ जानि सँकोचु तजि करिअ छोह लखि नेह।
हमहि कृतारथ करन लगि फल तृन अंकुर लेहु॥

ब्रजवासी माताओं-बहिनोंके इस अकलुष और अपार प्यारपर बाईका मन बलिहार था। मनकी उस सघन गम्भीरावस्थामें भी बाई इन ब्रजवासी माताओं-बहिनोंका अभिनन्दन करना नहीं भूलती थीं। यमुना तटके मल्लाहोंकी दृष्टिमें बाई साक्षात् राधारानी थीं। तटके मल्लाह बाईके लिये कुछ भी करनेके लिये सदा तैयार रहा करते थे। उन्हीं मल्लाहोंने बाईके लिये उस पार फूसकी झोंपड़ी भी बना दी थी, जिससे बाईका गर्मीके दिनोंमें धूपमें कुछ बचाव हो सके। उस फूसकी झोपड़ीमें बाईका समय कैसे बीत जाता था, उसका भान उन्हें नहीं रहता था। बाईको शरीरका भान न रहे, यह तो उनकी दिव्य स्थिति देहातीत भावमयताका परिचय देता है, किन्तु बाईके पेटमें ट्यूमर तो था ही और उसका भीषण रूप कभी-कभी भीषण पीड़ा देता ही था। इसके आलावा बाईने न जाने कितने भाई-बहिनोंकी कर्मराशि अपने ऊपर ले रखी थी। उसका भी भोग बाईके शरीरको झेलना पड़ा था, अतः बाईका ह्रासोन्मुखी शरीर इन दिनों प्रायः रुग्ण रहता था। बाई कितनी ही रुग्ण हों, वे यमुना तटपर जाती ही थीं। यमुनाजीसे और यमुनाजीकी रजसे उनका लगाव अद्भुत था। वे कहती थीं और मानती थीं कि श्रीयमुनाजीकी रज

रोगोंकी अचूक औषधि है। यमुना-जल, यमुना-तट और यमुना-रज मेरे लिये कल्पवृक्ष है, कामधेनु है। बहुत कष्ट होनेपर वे रजमें लोटने लगती थी और इसका परिणाम यह होता था कि शरीरकी पीड़ा शान्त हो जाती थी। यमुना-तटकी रजको माथा टेककर प्रणाम करना, रजको शीशपर लगाना, रजको अधरोंमें रखना, रजमें लोटना तो उनके द्वारा होता ही था; सबसे बड़ी बात यह है कि वे अकेली बैठी-बैठी रज-कणोंसे बात करती रहती थीं। वे बात करती थीं अपनी अभिन्न-हृदया सहेली यमुनाजीसे, यमुनाजीकी धारासे, यमुनाजीके जलचरोंसे, आकाशमें उड़ते हुए पक्षियोंसे, तटके वृक्षोंसे और वृक्षोंसे लिपटी लताओंसे। उनका हृदय यमुनाजीके सहज सुन्दर प्राकृतिक वातावरणसे अधिकाधिक घुलता-मिलता चला जा रहा था।

तटपर जो बहिनें इनके साथ आती थीं, उनको भी वे अपने पास न बैठाकर किञ्चित् दूरीपर बैठा देती थीं, जिससे उनकी ऐकान्तिकतामें कोई बाधा न आये। दूर बैठी बहिनें जप-पाठ-ध्यान-चिन्तन चाहे जो करें, उन बहिनोंकी गति विधियोंसे पूर्णतः निरपेक्ष बाई अपने भावराज्यमें निमग्न रहा करती थीं। घण्टों-घण्टों यमुना रजमें अकेली बाई कभी बैठी रहतीं, कभी लेटी रहतीं।

जो भी इन दिनों बाईसे मिलनेकी इच्छा व्यक्त करता, उससे बाई यही कहा करती थीं कि यमुना तटपर मिलो। श्रीकृष्ण कुञ्जमें किसीसे मिलना बाईको रुचिकर नहीं था, अतः किसी व्यक्तिसे मिलन और सम्भाषणका प्रसंग क्वचित् ही श्रीकृष्ण कुञ्जमें घटित हो पाता था। बाईने जिसको यमुना तटपर मिलनेके लिये समय दिया था यदि वह आ गया है, अथवा कोई अकस्मात् मिलनेके लिये आ गया है या आ गयी है, तो वे यमुना तटपर बाईके पास आकर देखती थी कि बाई चुपचाप लेटी हुई थीं। वे बाईको पुकारती थीं, जिससे वे उठकर बातचीत कर सकें। अधिकांश बार यही होता था कि यमुना तटके उस एकान्तमें स्पष्ट रूपसे सुनायी देनेवाली पुकारका भी कोई उत्तर बाईकी ओरसे नहीं मिल रहा थी। इस परिस्थितिमें दूर बैठी हुई साथवाली बहिनको बतलाना पड़ता था—अरे! तुमलोग यह क्यों नहीं समझ लेते कि बाई इस समय अपने कलेवरमें नहीं हैं। बाईका कलेवर यहाँ है, किन्तु बाई अपने श्रीप्रिया-प्रियतमके लीलाराज्यमें हैं।

बात करनेकी इच्छा लेकर आनेवाले भाई-बहिनको यह दिखलायी

दे रहा था कि बाई यमुना रजपर अकेली बैठी हुई थीं, परन्तु यह दिखलायी देता था इन सांसारिक नेत्रोंको। वस्तुतः सत्य यह है कि बाई अकेली थी ही नहीं! वे अपने भावराज्यमें निमग्न थीं। और सहस्र-सहस्र सखियों-मञ्जरियोंके मध्य लीला-लोकमें विहार-विलास कर रही हैं।

जब बाई प्राकृत धरातलपर रहतीं और समागत भाई-बहिनोंसे बात करतीं, उस समय भी सम्भाषणके मध्य उपरामता स्पष्ट रूपसे परिलक्षित होती। श्रीमहिला संघसे तो पूर्ण विरक्ति हो ही गयी थी। श्रीमहिला संघकी व्यवस्था या उत्कर्षके लिये या उत्सवोंके लिये या किसी नवीन बहिनको प्रवेश देनेके लिये, इस प्रकारके जितने भी प्रश्न या जिज्ञासा भाभीजी द्वारा उठायी जाती, उनको सुनते ही बाई यही कहतीं—भाभीजी! आप जैसा उचित समझें करें। मैंने सारा दायित्व मीराको सौंप दिया है। आपको पता ही है, जब मैं भागलपुरसे अन्तिम विदाई ले रही थी, तब श्रीमहिला संघमें मेरे पास मीरा खड़ी हुई थी। उसने मुझको प्रणाम किया। वहीं मैंने श्रीमहिला संघकी भूमिसे रज उठायी और उस रजसे मीराका तिलक कर दिया। तिलकका प्रयोजन यही था कि अब श्रीमहिला संघके दायित्वसे मुक्त होकर मैं सारा भार मीराको सौंप रही हूँ। अतः श्रीमहिला संघकी उन्नतिके लिये जो भी करना उचित समझें, उसके बारेमें आप और मीरा विचार कर लीजिये। यह तो मैं आपके समक्ष कई बार कह चुकी हूँ कि अब तो मुझे जाना है, अतः इस सम्बन्धमें आपको स्वयं ही निर्णय कर लेना चाहिये।

श्रीमहिला संघसे तो बाई एक प्रकारसे सर्वथा उपराम हो गयी थीं, किन्तु समीपमें आनेवाले भाई-बहिनोंकी बातें सुनती थीं तथा उनको साधनामें जो विघ्न-बाधा आती थी, उनके निवारणके लिये वे समुचित सुझाव अवश्य दिया करती थीं। वे तो यही चाहती थीं कि सभी लोग श्रीप्रिया-प्रियतमके लीलारससे सदा सराबोर रहें। बाई सुझाव तो देती थीं, पर अब रीझ और खीझ दोनों ही समाप्त हो गयी थी। पहले भाई-बहिनोंको बाई रीझ-रीझकर सुझाव दिया करती थीं, जिससे उसका हित-सम्पादन हो सके और हित-सम्पादनार्थ बताये गये सुझावके अनुसार यदि उनके द्वारा कार्य नहीं होता था तो बाई उनपर खीझती थीं। अब यह रीझ-खीझ दोनों ही नहीं रही। सामान्य तौरपर पूछे जानेपर कुछ बतला देना तो बाईके स्वभावमें था, पर बतलाये गये सुझावोंके अनुसार आचरण उनलोगोंके द्वारा हो रहा है अथवा

नहीं, इस ओरसे बाई सर्वथा उपराम थीं।

इतना होनेके बाद भी बाईका पूर्ण लगाव था उन भाई-बहिनोंके प्रति, जो श्रीभाईजी एवं श्रीबाबाके चरणाश्रित थे। जो भी व्यक्ति श्रीभाईजी एवं श्रीबाबासे जुड़ा हुआ था, यदि वह मिलनेके लिये आता तो बाई उससे बहुत प्यारपूर्वक मिलतीं। ये आनेवाले चाहे गोरखपुरके हों, चाहे किसी अन्य स्थानके हों, उनके प्रति बाईका ममत्व उमड़ पड़ता था, यह देखकर कि ये मेरे जीवनाराध्यके निजजन हैं। भले अन्य लोगोंसे बात करनेमें कुछ संकोच हो, पर बाई इनके साथ उमंग भरे मनसे बात करतीं। बाई उनसे भरे-भरे मनसे बात इसलिये भी करती थीं कि वे जन बैठकर श्रीभाईजी एवं श्रीबाबाकी चर्चा करते, उनके जीवनके प्रसंग सुनाते, उनकी महिमाका गान करते। श्रीभाईजी एवं श्रीबाबाकी प्रीति पगी बातोंको सुन-सुन करके बाईका हृदय द्रवित हो उठता और अनेक बार युगल नेत्र छलछला आते।

गीतावाटिकाके प्रति बाईके इस लगावको देखकर बाईकी अपनी कहलानेवाली और बाईकी मुँह लगी मीराने बाईके मुखपर ही इतनी टिप्पणी तो कर ही दी—क्या बताऊँ! आपके मनसे अब भागलपुर तो हट गया और गोरखपुर बस गया। आप तो भागलपुरके नामसे ही कतराती हैं।

मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए बाईने इतना ही कहा—मीरा! इतना तो तू समझ ही सकती है कि ये गोरखपुरवाले मेरे जीवानाराध्यके निजजन हैं और मुझे उनकी वार्ता सुनाते हैं।

इस प्रकार बाईके दिन धीरे-धीरे व्यतीत हो रहे थे और या तो बाईपर छायी रहती थी श्रीप्रिया-प्रियतमके विहार-विलासकी दिव्य लीलाएँ अथवा श्रीभाईजी एवं श्रीबाबाकी दिव्य चर्चाएँ। इसीके मध्य कमलजीका वृन्दावन आगमन हुआ। वे बाईसे मिलनेके लिये यमुनाजीके उस पार गयी। कमलजीको देखते ही बाईके अन्तरका प्यार उभर पड़ा; नहीं, नहीं, उमड़ पड़ा और छलक पड़ा नेत्रों और अधरोंके माध्यमसे। बाबाकी परम निजजन होनेसे कमलजीकी उपस्थितिने बाबाकी स्मृतिको सीमातीत रूपसे उभार दिया। कमलजीके द्वारा बाबाकी जैसी-जैसी और जितनी-जितनी सेवाएँ हुई हैं, उनको याद करके बाई मन-ही-मन कमलजीको बहुत प्रकारसे धन्य-धन्य कह रही थीं। कमलजीसे मिलते ही एक बार फिर बाईका रोदन फूट पड़ा। कमलजी भी अपने आँसुओंको रोक नहीं पायीं। भावोंके कुछ शमित होनेपर

बाईके मनमें यह अभिलाषा जग उठी कि कमलजी बाबाकी बात सुनायें। बाबाकी तिरोधान-लीलाके बाद कमलजीसे यह प्रथम मिलन था। बाईने भाव भरे मनसे वह सारा विवरण बतलानेके लिये कहा, जिस प्रकार बाबाने अपनी इह लीला संवरण की थी।

कमलजीने बतलाना आरम्भ किया—बाई! घटनाओंके विकासपर बाबाका कमालका अंकुश था। जैसे घोड़ोंकी लगाम सवारके हाथमें होती है, वैसे ही परिस्थितियोंमें चढ़ाव-उतार ऐसा लगता है, बाबाकी आँखोंके इशारेपर हो रहा था। बाई! बाबाकी संवरण लीला स्वयंमें एक महान आश्चर्य है। पूज्य बाबूजी (भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ने बाबाको पूज्या माँका दायित्व सौंप रखा था। बाबूजीने अपनी इहलीलाका संवरण सन् १९७१ में किया था और सन् १९७१ से लेकर १९९२ तक माँकी हर रीतिसे सँभाल बाबा कर रहे थे। अन्तिम दिनोंमें माँ प्राय: अधिक रुग्ण रहने लगीं। सन् १९९२ में बाबूजीके जन्मके सौ वर्ष पूरे हो रहे थे, अत: बाबूजीका शताब्दी उत्सव ५ अक्टूबर, १९९१ से लेकर २३ सितम्बर, १९९२ तक सारे भारतमें क्रम-क्रमसे मनाया जा रहा था। इसके लिये सर्वाधिक सक्रिय थे भाई चोपड़ाजी। एतदर्थ वे वर्ष भर भारतके विभिन्न नगरोंमें भ्रमण करते रहे। भिन्न-भिन्न नगरोंमें भिन्न-भिन्न तिथियोंपर यह सांवत्सरिक उत्सव वर्ष भर मनाया गया। तत्तस्थानीय संतों-भक्तों-नागरिकोंके सहयोगसे क्रमश: मनाये जानेवाले सभी उत्सव सर्वत्र बड़े सफल रहे। अन्तिम उत्सव वाराणसीमें आदरणीया गायत्रीबाई बाजोरिया द्वारा दुर्गा कुण्ड स्थित श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार अन्ध विद्यालयमें २४ सितम्बर, १९९२ को मनाया जानेवाला था।

इस तिथिसे लगभग नौ-दस दिन पहलेकी बात है। माँकी तबीयत बहुत खराब चल रही थी। अंग-अंगमें कष्ट असह्य था। बाबा अपने नित्य नियमके अनुसार माँसे मिलनेके लिये गये। बाबाको देखते ही माँने कहा—बाबा! अब कष्ट सहा नहीं जाता। पीड़ा असह्य हो रही है। अब मुझे 'भेज' दीजिये।

बाबाने कहा—मैया! केवल कुछ दिनोंका खेल और है। तुम अपने 'कन्हैया' के पास ही जाओगी और तुमको भेजकर ही मैं जाऊँगा।

बाबा इतना कहकर चले आये, किन्तु माँ असह्य पीड़ा किसी प्रकार झेल पा रही थी। बाबा समझ रहे थे कि वह सांवत्सरिक उत्सव, जो पोद्दार

महाराजकी विशद गुण-गरिमाको प्रख्यापित करनेके लिये सारे देशमें मनाया जा रहा था; उस उत्सवके रंगमें भंग पड़ जायेगा, यदि माँका निधन उस एक वर्षकी अवधिके भीतर हो जाता है। यह उत्सव तो जीवन सर्वस्व पोद्दार महाराजकी गुण गरिमाके गायनका था, अतः उत्सव सानन्द सम्पन्न होना ही चाहिये। बाबाकी इस नितान्त सुगुप्त योजनाको कोई भाँप ही नहीं पाया, किन्तु जब अन्तिम पटाक्षेप सामने आया तब व्यक्ति-व्यक्ति बाबाके चिन्तन और सामर्थ्य पर आश्चर्य कर रहा था। सांवत्सरिक उत्सव शृंखलाका अन्तिम उत्सव वाराणसीमें २४ सितम्बर, १९९२ को मनाया गया। २५ सितम्बरको माँकी तबीयतमें ज्यादा गिरावट आ गयी और २६ सितम्बरको माँने महाप्रस्थान कर दिया।

२७ सितम्बरको शव दाह हुआ। आगामी बारह दिनोंमें पूज्या माँके सारे श्राद्ध कार्य सभक्ति और सविधि पूर्ण हुए। पूर्ण होते ही ९ अक्टूबरको बाबाकी तबियतमें गिरावट आयी और १३ अक्टूबर, १९९२ के प्रातःकाल लगभग साढ़े आठ बजे बाबा सदाके लिये ओझल हो गये। सारी वाटिका शोकाछन्न हो गयी। भारतके कोने-कोनेसे श्रद्धालुजन आये, कोई ट्रेनसे, कोई कारसे, कोई हवाई जहाजसे। वृन्दावनसे पूज्य श्रीमहाराजजी और ठाकुरजी भी पहुँचे। परमादरणीया बाई (सावित्री बाई फोगला) तथा समस्त श्रद्धालु भक्तोंकी उपस्थितिमें बाबाके पावन कलेवरको भूमिस्थ कर दिया गया। भूमिस्थ किया गया उसी स्थानपर, जहाँ सन् १९७१ में निर्मित उनकी टिन शेड थी।

बाई क्या बताऊँ! सोच-सोच करके बहुत ही आश्चर्य हो रहा है कि घटनाओंके क्रमिक विकासपर बाबाका कितना अधिक नियन्त्रण और शासन था। बाबाकी रुग्णताने अनेक बार गम्भीर रूप धारण किया, किन्तु जीवन सर्वस्व पोद्दार महाराज द्वारा प्रदत्त कार्यके दायित्वका सर्वांशमें निर्वाह करनेके लिये वे इस धराधामपर बने रहे और ज्यों ही पूज्या माँने अन्तिम श्वास ली और उनका श्राद्ध-कर्म अन्तिम रूपसे सम्पन्न हुआ, त्यों ही बाबाने महाप्रस्थान कर दिया। स्वीकृत दायित्वका ऐसा निर्वाह भला कहाँ सुनने-देखनेको मिलता है?

इस विवरणका प्रत्येक वाक्य, अपितु यह कहना चाहिये कि प्रत्येक शब्द बाईके अन्तरको शोक-समुद्रमें डुबा रहा था। करुणार्द्र बाईके नेत्रोंसे झर-झर आँसू बह रहे थे। शोकाकुला बाई थोड़ी देरतक बोल नहीं पायीं।

बाई भी चुप और कमलजी भी चुप, दोनों चुपचाप बैठे थे। दोनों एकटक भूमिको देख रहे थे। कमलजी चाहकर भी समझ नहीं पा रही थी कि बाईको किस प्रकारसे सान्त्वना दूँ। इसी चिन्तनमें कुछ क्षण निकले, तभी बाईने कुछ बोलनेका, कुछ कहनेका प्रयास किया। बाईको पता था कि कमलजीके पास बाबाकी चरण-पादुका है और वे इन चरण-पादुकाकी नित्य पूजा किया करती हैं। उन चरण-पादुकाओंकी स्मृति आते ही स्खलित वाणीमें बाईने कमलजीसे पूछा—कमलजी! आप अपने साथ बाबाकी चरण-पादुकाका यहाँ वृन्दावन लायी है क्या?

कमलजीने कहा—बाई! वही तो मेरा परम धन है। मेरी आराधनाकी दिव्यतम वस्तु है। मैं जहाँ भी जाती हूँ, साथ लेकर चलती हूँ।

इतना सुनते ही बाईने कहा—कल आप उन चरण-पादुकाओंको लेकर यहाँ आइयेगा और मुझे दर्शन करवाइयेगा।

बाईके आदेशानुसार अगले दिन कमलजी चरण पादुकाकी पेटी लेकर यमुनाजीके उस पार गयीं। पेटीको देखते ही बाईने भूमिपर माथा टेककर प्रणाम किया। पेटीसे युगल चरण पादुकाओंको कमलजीने ज्यों ही बाहर निकाला, उनका दर्शन करते ही बाईने पुनः भूमिमें माथा टेककर प्रणाम किया। कमलजीने वे चरण पादुकाएँ बाईके फैले हुए युगल कर-पल्लव पर रख दी। बाईने उन्हें अपने मस्तकसे लगाया और फिर छातीसे चिपका लिया। छातीसे लगाते ही वे फूट-फूटकर रोने लगीं। बाईकी स्पष्ट और सुदृढ़ मान्यता थी कि पूज्य बाबा राधारानी हैं और पूज्य भाईजी प्रियतम श्रीकृष्ण हैं। श्रीभाईजीके प्रति बाईका भगवद्भाव इतना अधिक परिपुष्ट हो गया था कि वे अपने जीवनके अन्तिम दिनोंमें उन्हें भाईजी न कहकर सदा 'ठाकुर' कहा करती थीं। बाईके लिये सदा ही ये युगल विभूति राधा-कृष्णके प्रत्यक्ष विग्रह थे।

श्रीराधारानी स्वरूप बाबाकी उन पादुकाओंको वक्षस्थलसे चिपकाकर बाईने जो करुण क्रन्दन किया, उसे देखकर कमलजी स्वयंकी स्वयं ही भर्त्सना करने लगीं। सच्चा प्रेम तो बाईका है। हमलोग तो प्रेम तो दिखावटी है। बाबासे हमलोग अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहती हैं, भले वह स्वार्थ सात्त्विक अथवा आध्यात्मिक कहलाये, परन्तु स्वार्थकी रंचमात्र गन्धसे सर्वथा शून्य सच्चा प्रेम तो बाईका है, जिसकी अगाधता और अपारता सर्वथा-सर्वथा अनुमानातीत है। फूट-फूटकर क्रन्दन करते हुए काफी समय निकल

गया, फिर बाईने उन युगल चरण-पादुकाको यमुनाजीकी परम निर्मल, परम पावन रेतीपर पधराया। कमलजीकी उस पेटीमें इत्रकी एक शीशी भी थी। बाईने शीशीका वह सारा इत्र चरण-पादुकापर उड़ेल दिया, इत्रसे युगल-चरण-पादुकाओंको नहला दिया। इत्रकी सुगन्धसे समिश्रित होकर चरण-पादुकाकी दिव्य सुगन्ध वातावरणमें फैल गयी। अगली क्रिया कमलजीको रहस्यमयी लगी। इत्रसे संसिक्त करना तो सभीकी समझमें आ सकता है, परन्तु इसके बाद बाईने यह किया कि यमुना तटकी पावन रजसे उन चरणपादुकाको ढक दिया। अगल-बगलसे रज उठाना और उन पादुकाओंपर समर्पित करना; रजसे पादुकाएँ पूर्णतः ढक गयीं। कमलजीके नेत्रोंमें आश्चर्य भरा हुआ था, अपितु नेत्रोंसे आश्चर्य झर रहा था कि बाईके द्वारा यह क्या हो रहा है?

बाईने कमलजीकी आँखोंकी भाषाको पढ़ लिया और बोलीं—कमलजी! यह मैं किसी विशेष कारणसे कर रही हूँ।

बाईके जीवनमें यमुना तटकी रजका सीमातीत महत्त्व था। रज ही चन्दनके कण थे, रज ही पुष्पके पराग थे, रज ही धूपकी गन्ध थी, रज-कान्ति ही दीपकी ज्योति थी और रज ही नैवेद्यकी सामग्री थी। अपने परमाराध्य, परम गुप्त धन बाबाकी चरण-पादुकाका रजके द्वारा ही बाईने पञ्चोपचार पूजन किया। थोड़ी देर बाद रजको अपसारित करके बाईने वह पादुकाएँ पुनः मस्तकसे लगायीं, और कमलजीको देती हुई बोलीं—कमलजी! कल आप जब यमुना स्नान करें, तब इन पादुकाओंको अपने साथ लेते जाइयेगा और अपनी छातीसे चिपकाकर यमुनाजीमें स्नान करियेगा।

कमलजीने उस आदेशको अपने मस्तकपर धारण किया और फिर उन पादुकाओंको पेटीमें पधरा दिया गया। अब बाई कमलजीको भाईजी और बाबाके जीवनकी अनेक बातें बतलाने लगीं। इसी चर्चामें पदे-पदे श्रीप्रिया-प्रियतमके लीला विहारकी भी चर्चा आती थी, जो उन्होंने कभी भाईजी अथवा बाबासे सुनी थी अथवा स्वयं अपने अनुभवमें आयी थी।

बाईकी सन्निधिमें बैठी हुई कमलजीका रोम-रोम दिव्य प्रीतिकी स्निग्धतासे संसिक्त हो रहा था। न चाहते हुए भी अति काल होनेके कारण उनको यमुना तटसे वापस जाना पड़ा।

* * * * *

यमुना तटपर एकान्त वास

पूज्या माँ और फिर पूज्य बाबाके महाप्रस्थानके शोक समाचारसे बाईका मन बहुत खिन्न, खिन्न नहीं अवसन्न, अत्यधिक अवसन्न रहता था। जगतसे सर्वथा अनमनी बाई यमुना तटपर प्रायः एकान्तमें पड़ी रहती थीं। किसीसे मिलना-जुलना भी अप्रिय लगता था। इन दिनों वे यही चाहती थीं कि किसीसे मिलने और बात करनेका प्रसंग आये ही नहीं। यमुना तटपर रहते हुए जानकारीके अभावमें बाई द्वारा एक भूल हो रही थी। खेती-बारी करनेवाले लोग यमुनाजीके किनारे बालूके विस्तृत मैदानमें ककड़ी, खरबूजा आदिके बीज बो दिया करते हैं। ये बीज क्यारी बनाकर बोये जाते हैं। क्यारी चौकोर न हो करके लम्बी हुआ करती है। क्यारीके बचावके लिये क्यारीके दोनों ओर पुआल बिछा दी जाती है। बिछायी गयी पुआलको वे लोग स्थानीय भाषामें 'शिवजीकी बिछायत' कहते हैं। इस बिछायतपर पैर पड़ना स्थानीय लोग बहुत अशुभ मानते हैं। यदि भूलसे किसीका पैर पड़ता है, तो वे किसी भावी अनिष्टकी आशंका करने लगते हैं।

बाईको वृन्दावनकी इस नितान्त स्थानीय परम्पराकी तनिक भी जानकारी नहीं थी और उनसे अनेक बार यह भूल हो जाती थी कि आते-जाते उनके पैर इस बिछायतपर पड़ जाते। वह तैंतीस एकड़ खेतका मालिक, जिनके खेतमें ये बीज बोये गये थे, मन-ही-मन आग बबूला हो उठा। उसने मन-ही-मन यह भी निश्चय कर लिया कि इस बाईकी जीवन-लीला समाप्त कर देनी है। वह जानता था कि बाई कई बार आधी राततक यमुना तटपर रहा करती है और यमुना तटके घोर एकान्तमें यह घोर कृत्य आसानीसे किया जा सकता है। उस मालिकने मन-ही-मन सारी योजना बना ली और एक दिन रिवाल्वर लेकर रात्रिके समय बाईकी फूस वाली कुटियाके सामने आ गया। इस कुटियामें आगे और पीछे दोनों ओर द्वार बना हुआ था। ज्यों ही खेतका वह मालिक कुटियामें एक ओरसे घुसा, त्यों ही बाई पीछेके द्वारसे निकलकर बाहर खड़ी हो गयीं। उनको बाहर खड़ी देखकर उस मालिकने पूछा—बाहर कैसे चली गयी?

बाईने भूमिपर माथा टेककर प्रणाम करते हुए कहा—पिताजी! मेरे

साथवाली बहिन जल लानेके लिये यमुनाजीके किनारे गयी है। मैं अपने नियमके अनुसार किसी पुरुषसे अकेलेमें बात नहीं करती। साथमें कोई एक स्त्री होनी चाहिये, तभी मैं बात करती हूँ। उस बहिनको आने दीजिये फिर मैं आपसे बात करूँगीं।

इतनी बात परस्परमें होते-होते यमुना तटसे जल लेकर श्यामा बाई वहाँ आ गयीं। तीनों कुटियाके बाहर यमुनाजीकी रजमें बैठ गये। बाईने बहुत श्रद्धापूर्वक उस मालिकको पिताजी कहकर सम्बोधित किया था। इस सम्बोधनको सुनते ही गर्हित उद्देश्यको लेकर आये हुए वह मालिक पानी-पानी हो गया।

बाईके प्रति सचमुच उनके मनमें वात्सल्य उमड़ आया और वे सही बात बतलानेके लिये कहने लगे—बेटी! तेरे सम्बोधनने मुझे गला दिया। यमुनाजीके किनारे तैंतीस एकड़ तक फैले हुए ये सारे खेत मेरे हैं। खेतमें जो बिछायत है, उसपर पैर पड़ना हमलोग बुरा मानते हैं और यह चीज तुम्हारे द्वारा हो रही है। इससे मेरा मन बड़ा क्षुब्ध था और तुमको समाप्त कर देनेके उद्देश्यसे मैं यहाँ रिवाल्वर लेकर आया था, पर अब तो बात दूसरी है। मेरी समझमें आ गया कि यह भूल तेरेसे अनजानेमें हो रही है, आगेसे ऐसा मत करना!

तूने मुझको पिता कहा है, अतः इस मौकेपर एक भली सलाह दे रहा हूँ, सुन ले! ये मल्लाह बड़े कातिल है। पता नहीं कब क्या कर दें। मैं तो यहींका रहनेवाला हूँ और इनके कुकृत्योंके किस्से आये दिन सुननेको मिलते रहते हैं; इसलिये इन मल्लाहोंसे तुमको सावधान रहना चाहिये। तुमको इतनी राततक यमुना तटके एकान्तमें नहीं रहना चाहिये।

वे जो कुछ भी कहते जा रहे थे, बाई नतमस्तक होकर सुनती जा रही थीं। वे जब अपनी बात कह चुके तब बाई बड़े मधुर स्वरमें कहने लगीं—पिजाजी! मैं तो आपकी लाडिली बेटी हूँ। हर ब्रजवासी मेरा पिता या भाई है। यहाँकी हर बहिन मेरी बहिन है, हर माता मेरी माँ है। आपने जो सलाह दी, वह मेरे सिर माथे है; परन्तु ये मल्लाह भी तो मेरे भाई हैं, मेरे पिता हैं। वे सदैव परम मंगल ही करेंगे। जिन ठाकुरने आपके मनमें कोमल भावनाओंका सञ्चार सहज ही कर दिया, वे ठाकुर सर्वत्र हैं और सदैव-सर्वत्र मेरी सँभाल करते रहते हैं। मेरेसे अनजानेमें जो भूल हुई,

उसके लिये मैं माथा टेककर क्षमा माँगती हूँ। मुझे बिल्कुल पता नहीं था। यदि पता होता तो मैं उस बिछायतपर पैर रखती ही नहीं! मैं यहींसे उस बिछायतको भी प्रणाम कर रही हूँ और उससे भी क्षमा याचना कर रही हूँ।

बाईकी बातोंसे उन मालिकको बड़ा सन्तोष हुआ। बाईसे मिलकर बात करना उन्हें बहुत भाया। वे बार-बार साधुवाद देते हुए चले गये। बाईसे मिलकर खेतके वे मालिक मल्लाह भगवान सिंहजीसे मिले और उनसे कहने लगे—अरे भगवान्! सफेद साड़ीवाली इन बाईके भीतर तो कोई महान् शक्ति है। अवश्य ही यह कोई देवी है। मैं तो क्षुब्ध मनसे अपनी रिवाल्वरकी गोलीका शिकार बनानेके लिये आया था, परन्तु इससे दो क्षण बात करते ही मेरा मन पानी-पानी हो गया। ऐसा तो कभी नहीं हुआ था। मैं तो जगतका एक साधारण गृहस्थ प्राणी हूँ। अवश्य ही इन देवीके प्रतापसे मेरे मनके भाव बदल गये।

उनकी बात सुनकर हाँ-में-हाँ मिलाते हुए मल्लाह भगवान सिंहजी कहने लगा—आप बिल्कुल ठीक सोच रहे हैं। हमलोग तो उन्हें साक्षात् राधारानी ही मानते हैं। उनके कारण, उनकी कृपासे हमारे परिवारके न जाने कितने कष्ट देखते-देखते दूर हो गये। उन्होंने तो मेरी मरणासन्ना बेटीको जीवन-दान दिया है। घाटका हर मल्लाह उनको प्रणाम करता है और उनकी सेवा मिलनेपर अपना सौभाग्य मानता है।

भगवान सिंहजीकी बात सुनकर खेतके मालिकके मनमें भी आदर भाव बढ़ आया और वे अब कभी-कभी बाईके पास मिलनेके लिये आया भी करते थे। खेतके मालिक जिस गर्हित उद्देश्यको लेकर आये थे उसकी गन्ध बाईके साथवाली बहिनोंको मिल गयी। रञ्चमात्र जानकारी होते ही सभी बाईकी सुरक्षाके लिये अत्यधिक चिन्तित हो उठीं और सबसे अधिक सचिन्त थीं नर्मदा बाई। आकुल मनसे साथवाली बहिनें मनुहार करती हुई बाईसे कहने लगीं—बाई! आपको सूर्यास्त होते-होते श्रीकृष्ण कुञ्ज लौट आना चाहिये। वृन्दावनका व्यक्ति-व्यक्ति जानता है कि रात्रिके समय यमुना-तट खतरेसे खाली नहीं है। रात्रिके समय यमुना-तट डकैतों और दुष्टोंका अड्डा बना रहता है। दो-तीन दिन पहले प्रभु कृपासे आपके प्राणोंकी रक्षा हो गयी। हमलोगोंकी बार-बार यही प्रार्थना है कि रात्रिके समय आपको यमुना तटपर नहीं रहना चाहिये।

बहिनोंकी बातें सुनकर बाईके अधरोंपर हल्की-सी मुस्कान बिखर जाती और उनकी अनास्था भरी बातोंको सुनकर समझाने लगतीं—तुमलोगोंके लिये यमुनाजीकी धारा मात्र जलका प्रवाह है, परन्तु मेरे लिये यमुनाजी अपनी बहिन हैं। उनके तटपर रहकर मैं यह अनुभव करती हूँ कि मैं अपने घरमें हूँ। तटपर बैठी मुझ अकेलीकी मेरी बहिन यमुनाजी सदैव सँभाल करती है। उनके किनारेमें अपनेको पूर्ण सुरक्षित अनुभव करती हूँ। धाराजीकी एक-एक लहरी सजला जलोद्भवा अनुचरी है, जो मेरी सँभालकी कामना करती है, मेरे साथ खेलती है और मेरे हितमें लगी रहती है। यही कारण है कि मैं निर्भय मनसे यमुना किनारे रातके एक-एक बजेतक भी पड़ी रहती हूँ।

साथ ही बहिनोंने यह मान लिया कि हमलोग बाईकी आस्थाकी छायाको छू भी नहीं सकतीं और बाई जैसा चाहती हैं, वैसा करने दिया जाय, उसमें हमलोगोंको अपनी ओरसे कोई रुकावट नहीं डालनी चाहिये।

एक बार बाई काफी राततक श्रीयमुनाजीके किनारे रहीं। उनके साथ सावित्री बाई सुन्दरका थीं। मध्य रात्रिके समय वे लोग यमुना तटसे श्रीकृष्ण कुञ्ज आ रही थीं। रात अँधेरी थी। रास्ता सूझ नहीं रहा था। अन्धकारका घनापन देखकर सावित्री बाई बोल उठीं—यह बड़ी भूल हुई कि मैं अपने साथ टार्च लेकर नहीं आयी। यदि टार्च लायी होती तो आज चलनेमें परेशानी नहीं होती।

बाईने सहज रुपसे कहा—कहाँ परेशानी हो रही है? रास्ता दीख तो रहा है। रजकणोंसे प्रकाशकी किरणें फूट रही हैं। रजकणकी कान्तिसे राहमें उजियाला हो रहा है। तुमको नहीं दिखता क्या? मुझे तो स्पष्ट दीख रहा है। मार्गमें प्रकाश होनेसे मुझे तो कोई परेशानी नहीं हो रही है।

सावित्री बाईने दीनतापूर्वक कहा—बाई! आपवाली आँख मेरे पास नहीं है। जिन यमुना-रजमें आप बैठी-बैठी बातें करती हैं, वे यमुना-रज आपके मार्गको प्रकाशित करें तो कोई आश्चर्य नहीं। हमारी जड़मति और जागतिक आँखें आपके भावराज्यसे बहुत नीचे है।

जब-जब बाई यमुना तटपर रहतीं, बाईके अन्तरकी निर्भयता संक्रमित होकर तटके सारे वातावरणमें व्याप्त हो जाती थी और संगकी सभी बहिनों और भाइयोंके मनको पूर्णत: निर्भय बना देती थी। बाईकी उपस्थितिमें किसीके

भी मनमें भयका सञ्चार होता ही नहीं था, किन्तु इसके समानान्तर एक तथ्य और है जो सकारण है। बाई दोपहरके समय ही श्रीकृष्ण कुञ्जसे यमुना तटपर चली आया करती थीं। मीरा वृन्दावन आयी हुई थी। वह बाईसे कुछ बात करना चाहती थी। बाईने उससे कहा तुम रातको आठ बजे श्रीयमुनाजीके उस पार चली आना। बाईके निर्देशानुसार मीरा उनसे मिलनेके लिये गयी। श्रीयमुनाजीके उस पार जाना तो दूर रहा, इस पार वाले तटपर पहुँचते-पहुँचते मीराके मनमें भीषण रूपसे भयका सञ्चार हुआ। वह इतनी भयाक्रान्त हो उठी कि पार जानेकी हिम्मत खो बैठी। भले बाईने बुलाया था, पर वह तुरन्त श्रीकृष्ण कुञ्ज वापस लौट आयी। वापस लौट आनेपर उसे पता चला कि बाई तो किसी विशेष कारणसे सूर्यास्तके समय ही यमुना तटसे इधर आ गयी थीं। अब मीराको भय सञ्चारके हेतुका परिज्ञान हुआ। मीराने मान लिया—वहाँ यमुना तटपर और तटीय वातावरणमें निर्भयता तभीतक है, जबतक वहाँपर बाईकी उपस्थिति है। उनकी अनुपस्थितिकी कारण ही तटका वातावरण भयावना लगा। यह भी पता चला कि मीरा जैसी बात अनेकोंके सामने आयी है। जब-जब वे लोग रात्रिके एकान्तमें यमुना तटपर गये हैं, तब-तब बाईकी अनुपस्थिति होनेसे उन सभीको तटका वातावरण बड़ा ही डरावना लगा था।

अन्योंको यमुना तटका एकान्त वातावरण भले डरावना लगे, पर बाईके भीतर कभी भी ऐसी स्फुरणाका उदय ही नहीं हुआ। बाईने सावित्री बाईसे जैसा कहा था, उसके अनुसार बाईको यमुना तट अपना घर लगता था और वे निर्भय और निर्भ्रान्त होकर यमुना तटपर एकान्त वास करती रहती थी।

अब बाबाके अन्तर्हित होनेके लगभग पन्द्रह मास बाद जनवरी, १९९४ की घटना है। बाई सूर्यास्तके बाद रात्रिके अँधेरेमें यमुनाजीके उस पार चुपचाप बैठी हुई थीं। साथमें कानपुरवाली श्यामाजी भी थी, किन्तु वे कुछ दूरपर बैठी हुई श्रीराधा-कृपाकटाक्ष-स्तोत्रका पाठ कर रही थीं। वह पाठ अत्यधिक मन्द स्वरमें कर रही थीं। बाई एक प्रकारसे अकेली ही थीं। अकेली बैठी हुई यमुनाजीकी परम-पावन, परम-निर्मल धाराको एकटक निहार रही थीं। बाई अपने भावोंमें खोयी हुई शरीरसे बेभान हो रही थीं, तभी उनको एक विचित्र दृश्य दिखलायी दिया। बाबा यमुनाजीकी लहरोंपर चलते हुए उस पारसे इस पार आ रहे हैं। इस पार आकर पुनः लहरोंपर चलते हुए उस पार जा रहे हैं। बाबाके हाथमें एक बड़ी लाठी थी। उस प्रकार बाबा दस-

बारह बार यमुनाजीकी धारापर आर-पार चलते हुए दिखलायी दिये। फिर बाईके पास आकर उन्होंने कहा—यह हाट अब उठने ही वाली है।

इतना कहकर बाबा अदृश्य हो गये और इस वाक्यने बाईको चौंका दिया। वे मन-ही-मन सोचने लगीं—हाट उठनेवाली है, इसका अर्थ क्या? क्या अब जीवनके इने-गिने दिन रह गये हैं? शरीर भी अत्यधिक रुग्ण हो चला है। सचमुच ही अब तो यहाँसे जाना ही है। अब यह संकेत भी बाबा द्वारा मिल ही गया।

जब बाई यमुना तटसे श्रीकृष्ण कुञ्ज आयीं, तब उन्होंने यमुना तटकी यह घटना भाभीजीको बतला दी। इस प्रसंगने भाभीजीकी भावनाको बहुत अधिक आन्दोलित कर दिया। एक-दो दिन बाद बाईने पुनः भाभीजीसे कहा—भाभीजी! दिनमें कई बार यह वाक्य मुझे सुनायी देता है। एक बार तो यह वाक्य मुझे तीस-पैंतीस बार सुनायी दिया। इस वाक्यका बार-बार ध्वनित और प्रतिध्वनित होना स्पष्ट संकेत दे रहा है कि जीवनके दिन इने-गिने हैं।

बाईके इन शब्दोंसे भाभीजीका मन बड़ा ही विचलित और विकलित हो रहा था। उन्होंने ११ जनवरी, १९९४ को एक पत्र वृन्दावनसे मीराके पास भागलपुर भेजा। उस पत्रमें इस घटनाका और बार-बार सुनायी देनेवाले वाक्यका उल्लेख करके भाभीजीने यह भी लिखा—तुमलोग तथा श्रीमहिला संघकी सभी बहिनें नित्याराध्या श्रीबरसानेवालीसे एवं श्रीगिरिराजजीसे प्रार्थना करो कि बाई हमलोगोंके बीचमें बनी रहें।

बाबाके ऐसे निर्देशके पश्चात् बाईको यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि अब मेरी जीवन लीलाके पटाक्षेपका समय समीप आ गया है। इस बातका संकेत वे बीच-बीचमें निकटस्थ बहिनोंको देती रहती थीं कि अब यह हाट उठने ही वाली है।

बाबाकी ओरसे हाटके उठनेका संकेत पाकर यदि एक ओर अपने जीवनकी धाराके अस्तित्वके प्रति नितान्त उपरामताका उद्भव हो गया, तो इसीके साथ दूसरी ओर बाबाके और बाबाके जीवन सर्वस्व भाईजीके चरणाश्रित लोगोंके प्रति सीमातीत प्यार भी उमड़ पड़ा। बाई यह तो जान ही रही थीं कि मुझे तो अब जाना ही है, किन्तु वे यह भी सोच रही थी—जाते-जाते जीवनके अन्तिम क्षण तक उन सभीको अधिक-से-अधिक प्यार देती रहूँ

जो गीतावाटिकाकी उन युगल भाव विभूतियोंसे जुड़े हुए हैं। श्रीभाईजी एवं श्रीबाबासे जुड़ा हुआ हर व्यक्ति मेरा निजजन है।

इस चिन्तनका एक परिणाम यह भी हुआ कि बाईके वाह्य नियमोंमें पर्याप्त शिथिलता आ गयी। पहले बाईका आग्रह था कि भारतीय वेश धारण किये हुए व्यक्तिसे ही बात करनी है, अब ऐसा नहीं रहा। पैण्ट या पायजामा पहने हुए व्यक्तिसे भी मिलकर बात कर लेतीं। पहले पुरुषोंसे मिलनेमें बहुत संकोच होता था, अब उसमें भी शिथिलता आ गयी। इस प्रकार अनेक शिथिलताओंका समावेश हो गया।

बाई यह भी कहा करती थीं—जिस तरह श्रीयमुनाजी सभीको सुलभ है, उसी प्रकार मेरे लिये भी उचित यह है कि मैं यमुना किनारे सभीके लिये सुलभ रहूँ। यमुना किनारे किसीसे मिलने और बात करनेमें भला क्या संकोच? एक लाभ और है, यमुना किनारे जो भी भाई या बहिन अपनी बात कहेंगी; उसको मेरी बहिन यमुनाजी भी सुनेंगी और उसका सहज लाभ यह होगा कि यमुनाजीकी धारामें उसके सारे दु:ख-दर्द, आधि-व्याधि, विघ्न-बाधा आदि सब बह जायेंगे और उसका सब प्रकारसे मंगल ही होगा।

इन दिनों बाई अनेक उन बहिनों और भाइयोंसे मिलती रहती थीं, जिनको श्रीभाईजी और श्रीबाबासे जीवन निर्माणकी प्रेरणा मिली थीं और जो यथाशक्ति साधन पथपर चलनेका प्रयास कर रहे थे। वृन्दावनमें नित्य वासका व्रत लेकर रहनेवाले साधन परायण भाई और बहिनें भी उनसे मिलनेका अवसर ढूँढ़ती रहती थीं। सभीको बाईके शब्दोंसे और शब्दोंसे अधिक जीवनसे प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला करता था। एक दिन डॉ. चन्द्रेश बाईसे मिले। डॉ. चन्द्रेशने बाबाके अन्तिम दिनोंमें उनकी बड़ी सेवा की थीं। उनकी श्रीबाबाके प्रति अगाध श्रद्धा थी। तब डॉ.चन्द्रेश गोरखपुरके मेडिकल कालेजके एक छात्र थे और वहाँकी पढ़ाई पूर्ण करनेके पश्चात अब वे वृन्दावनमें कार्यरत हैं। श्रीबाबाके न रहनेके बाद डॉ. चन्द्रेशको प्रेरणा मिलती थी बाइकी सानिध्यमें। एक दिन डॉ. चन्द्रेश भावाकुल होकर बाईसे कहने लगे—बाई! बाबा अब नहीं रहे। वे हमलोगोंको दिखलायी नहीं देते। अब तो एकमात्र आपका ही सहारा है।

डॉ. चन्द्रेशके विकल उद्गार सुनकर उनको समझाती हुई बाई बोलीं—भैया! मैं अब कितने दिनकी हूँ? मेरा समय पूरा हो चुका है। मेरी हाट

उठनेवाली है। हाट उठनेका संकेत बाबाकी ओरसे मिल चुका है। मैं तो अपने उस भाईके पास जानेवाली हूँ जो मुझे सहोदरा कहा करते थे। सहारा उन्हीं बाबाका रखो। विश्वास करो कि वे निरन्तर तुम्हारे साथ हैं और तुम्हारी सँभाल करते हैं। यदि तुम कल बाबाके सहारे रहे, उनके न रहनेपर आज मेरे सहारे रहे और मेरे न रहनेपर कल किसी तीसरेका सहारा लोगे, इस प्रकार सहारा ढूँढ़नेकी आदत बन जायेगी, जो आध्यात्म मार्गमें सर्वथा अशोभनीय है और इससे प्रगतिका मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। एक द्वारसे दूसरे द्वार जाते रहनेपर जीवनमें एक निष्ठा और अनन्यता पनप ही नहीं पायेगी। और आध्यात्म-पथमें प्रगतिके लिये एक निष्ठा और अनन्यता अपरिहार्य है। द्वार-द्वार भटकनेके स्थानपर मेरा कहना यह है कि सीधे मार्गपर सहज रूपसे चलो और मनसे बाबाके ही चरणाश्रित रहो। बाईकी यह अति नेक सलाह पाकर डॉ. चन्द्रेश बड़े प्रभावित हुए।

इसी तरह बाईने भरपूर प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया हमीरपुरके ओमनारायणजी दूबेको और वे बाईके निर्देशानुसार गुरुपूर्णिमा और राधाष्टमीके पावन अवसरपर तो गीतावाटिका जाते ही हैं, इसके अतिरिक्त भी सालमें और भी एक-दो बार श्रीबाबाकी लीला-स्थली गीतावाटिकाको प्रणाम करनेके लिये चले जाया करते हैं।

इन्हीं दिनों श्रीबाबा द्वारा लिखित 'जय जय प्रियतम' काव्यका प्रकाशन हुआ इस काव्यमें श्रीबाबाके काष्ठ-मौनकी परमैकान्तावधिमें तरंगित भावोदधिकी रस-उर्मियाँ हैं। काष्ठ-मौनकी अवधिमें श्रीबाबा जिन रसोर्मियोंपर लहराते या उनमें निमग्न रहते थे, उन्हींका इस काव्यमें वर्णन है। कानपुरवाली श्यामा बाईसे यह काव्य बाई यमुना-तटके एकान्तमें घण्टों-घण्टों दत्तचित्त होकर सुनती रहती थीं।

जैसे-जैसे यह समाचार फैलता गया कि बाईकी हाट उठनेवाली है, दर्शनार्थी भाई-बहिनोंका ताँता लग गया। वृन्दवनके अच्छे-अच्छे साधक और कुछ संत भी बाईसे मिलनेके लिये आते ही रहते थे। भागलपुर, गोरखपुर, कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, पटना इस प्रकार जगह-जगहसे श्रद्धालु लोगोंका आना हो रहा था और वे लोग उत्सुक रहा करते थे कि बाईसे बातचीत करनेका अवसर कुछ क्षणोंके लिये मिल जाये। बाई मिलनेवाले भाई-बहिनोंमें-से किसीसे कहती वृदावन वास करो, किसीसे कहती हरिनाम संकीर्तन करो,

कहतीं श्रीभाईजी और श्रीबाबाकी लीला-स्थली गीतावाटिका वर्षमें एक-दो बार जाया करो, किसीसे कहतीं श्रीमद्भागवत महापुराणका पाठ करो, किसीसे कहतीं हर तीसरे महीने श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा, श्रीबिहारीजीके दर्शन और श्रीबरसानेवालीके दर्शन किया करो। इस प्रकार मिलने आनेवाले प्रत्येक भाई-बहिनको कुछ-न-कुछ ऐसा निर्देश देतीं, जो उनके लोक-परलोक एवं परमार्थ तीनोंका सुधार करता। यहाँ इतना तो कह देना आवश्यक लग रहा है कि बाईकी पहुँच त्रिकालातीत थी और प्रश्न करनेवाले भाई या बहिनके भूतकाल और भविष्यकाल दोनोंको देखकर उसके हितमें जो होता था वही वर्तमान कालमें करनेके लिये निर्देश देतीं।

कमलजीका वृन्दावनसे बड़ा लगाव है। वे गोरखपुरकी गीतावाटिकामें रहकर भी सालमें एक-आध बार वृन्दावन आ जाया करती हैं और श्रीमहाराजजी (पूज्य श्रीबालकृष्णदासजी महाराज), गोवर्धन वाले पण्डितजी (पूज्य पण्डित श्रीगयाप्रसाद महाराज), सन्तोष बहिनजी, बहिन उषाजी, मानव सेवा संघकी बहिन देवकीजी और रुक्मिणी बाई आदिसे मिलनेमें ही इनका समय देखते-देखते बीत जाता था। वृन्दावनका कोना-कोना कमलजीका जाना-पहचाना है। यमुनाजीके किनारे ही कमलजीकी बहिनका घर है। अतः श्रीयमुनाजी तो उन्हें अपनी-से-अपनी लगती है। यमुनाजीके सुन्दर तटपर बैठनेका और निर्मल नीरमें नहानेका अनेकों बार अवसर मिला है।

एक दिन बाईसे मिलनेके लिये कमलजी यमुना तटपर आयीं। बाईसे मिलनेके लिये यमुनाजीके उस पार जाना आवश्यक था और पार जानेके लिये ज्यों ही वे नौकापर चढ़ीं, उन्हें विचित्र आह्लादका अनुभव होने लगा; ऐसा आह्लाद तो उन्हें पहले कभी नहीं हुआ था। यमुनाजी तो कई बार आना हुआ है, पर इस बारका आना तो कोई अनोखा ही रंग दिखला रहा है। कमलजीने मन-ही-मन समझ लिया कि यह तो बाईकी यमुना तटपर उपस्थितिका प्रभाव और उनके भावराज्यका प्रत्यक्ष विस्तार है।

उस पार जाकर कमलजी बाईके पास पहुँच गयीं। कमलजीको देखते ही बाईके चेहरेपर प्रसन्नता नृत्य करने लगी। अन्तरंगा सहेली कमलजीको देखकर मनकी उत्फुल्लताका नेत्रोंमें उतर आना स्वाभाविक था। अपने पास कमलजीको बैठाकर बाई रीझे-रीझे मनसे बात करने लगीं। बातोंका सिलसिला टूट ही नहीं रहा था। कितने घण्टे बीते, इसका भान दोनोंको नहीं। यमुनाजीके

नितान्त एकान्त तटपर बैठी हुई और अपने लीलाराज्यमें डूबी हुई बाईको जो-जो लीलाएँ अनुभूत होती, वे सुनाती जातीं। अन्तरंग होनेसे अन्तरंग बातोंको भी बतलानेमें कोई संकोच नहीं था।

यमुनाजीकी ओर हाथका इशारा करते हुए बाईने कहा—ये तो मेरी बहिन हैं। यहाँ आकर ऐसा लगता है मैं अपनी बहिनके समीप बैठी हूँ। यह बहिन भी कौन? जो प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्णकी नित्य रस-लीलामें अनवरत सहयोग देती रहती हैं। यहीं तो उनका रास-विहार चलता है, यहीं उनका नौका-विहार होता है, यहीं उनकी जल-केलि होती है और यहीं उनकी लुका-छिपी चलती है। मेरी बहिन यमुनाने उनकी जिन-जिन लीलाओंको देखा है, वे मुझे सुनाती हैं, कभी-कभी दिखाती हैं।

लोग कहते हैं और पूछते हैं तुम यमुना तटपर क्या करती हो? उन देखने और पूछनेवालोंको सर्वथा निष्क्रिय दिखलायी देनेवाली यह यमुना कितनी सक्रिय हैं, कितनी विभोरा हैं, कितनी सहयोगिनी हैं, कितनी उल्लासमयी हैं, कितनी तरंगायमान हैं, वे अनुमान ही नहीं लगा सकते। उन देखनेवालोंके सामने यमुनाजी तो मात्र जलकी धार है और वही धारा मेरे लिये नित्य कृष्ण प्रिया श्रीयमुना हैं। उनकी लहरें राधारानीके गीत गाती हैं, जिसके गायनका कभी अन्त नहीं आता। मैं ही भले उठकर चली जाऊँ, पर यह तो चाहती हैं मैं इसी तटपर बैठी रहूँ।

और सच बताऊँ कमलजी! मेरा भी मन यहाँसे उठनेका नहीं करता। लोग प्रश्न करते हैं, तुम कैसे रातके बारह-बजेतक तटके घोर एकान्तमें बैठी रहती हो? जिन्हें कुछ नहीं दिखलायी देता, वे तो इसे घोर एकान्त कहेंगे, पर मैं उन्हें कैसे बतलाऊँ कि यहाँ सहस्रों-सहस्रों सखियों-सहचरियों-मञ्जरियोंकी नित्य सेवा-चर्या चलती रहती है। श्रीप्रिया-प्रियतमका अनुगमन करती हुई, सहयोग देती हुई, हास्य-विनोद करती हुई, साज सजाती हुई लटकती-मटकती हुई वे लीला-सुखकी भूमिका बनाती हैं और लीलारसको प्रवाहित कर देती हैं।

कमलजी! यह अद्भुत स्थली है। यहाँके पक्षी आकर मुझसे बात करते है। उनकी जल केलि अपने ही ढंगकी होती है। रजरानीका यह सुन्दर-सुन्दर, कोमल-कोमल मखमली गद्दा भला कहाँ मिलेगा? यमुना तटकी अनन्त रसमयी, अनन्त स्नेहमयी रजरानीकी इस मखमली गोदमें, इस रजके गद्देको मैं

गोद ही कहती हूँ। इसमें बैठनेका, लेटनेका जो सुख है, वह जगतमें अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। इस सुखकी तुलनामें त्रिलोकीका सुख मुझे तुच्छ लगता है। रजके एक-एक कण श्रीराधारानीके श्रीचरणोंकी स्मृति दिलाते हैं।

कमलजी! क्षितिजपर नभका भूमिसे मिलन श्रीप्रिया-प्रियतमके आलिंगनका दृश्य उपस्थित कर देता है। क्षितिजके चारों-ओर वृक्षोंकी कतारें कुञ्जका वातावरण बना देती है।

कमलजी! वह देखिये, उधर देखिये! आपको ये मन्दिरोंके शिखर दीख रहे हैं ना! ऊँचे-ऊँचे दिखायी देनेवाले यह शिखर निकुञ्जके अनन्त सुन्दर कुञ्जोंकी याद दिलाते हैं। यमुनाके तटपर कितना आनन्द, कितना उल्लास, कितनी उमंग है, यह कोई मेरी आँखोंसे देखें।

कमलजीने कहा—बाई! मुझको तो आपसे ईर्ष्या हो रही है। मैं तो यहाँसे दूर गोरखपुरकी गीतावाटिकामें हूँ, जहाँ यह सब नहीं है।

बाईने तुरन्त कमलजीकी बात काटते हुए प्रतिवाद किया और कहा—कमलजी! ऐसा मत कहिये; भूलकर भी मत कहिये। आपके पास गीतावाटिकामें पूज्य भाईजी और बाबा हैं, जो नित्य व्रजमें ही वास करते हैं। बाबाके कथनानुसार और उन्हींके शब्दोंमें 'वृन्दावनमें रहनेवाला कोई व्यक्ति यदि कलकत्तेकी दुकानका चिन्तन करता है तो वह असलमें कलकत्तेमें ही है और इसी प्रकार यदि कलकत्तेमें रहनेवाला वृन्दावन धामकी लीलामें है तो वह वस्तुतः वृन्दावन धाममें है।'

यह तो बाबाकी अटूट मान्यता, सर्वथा-सर्वथा अकाट्य मान्यता है। आप गीतावाटिकामें रहकर भी वृन्दावनमें रह सकती हैं, और रहिये। वहाँ तो अपार आनन्द है, अनन्त लीला है, अपरिसीम शोभा है, जिसको शब्दोंमें कहा ही नहीं जा सकता।

इस प्रकार निजजनोंसे मिलते हुए यमुना तटपर बाईके दिन व्यतीत हो रहे थे और न चाहते हुए भी वह अनचाहा दिन जो सबको शोकके सागरमें डुबा देनेवाला था, धीरे-धीरे सरकता हुआ समीप आता जा रहा था।

* * * * *

अन्तिम विदाई

अपने समीप आनेवाले स्वजनोंसे बाई जब-तब कह दिया करती थीं कि हाट उठनेवाली है और बाईके ये शब्द सभीकी भावनाओंको बहुत अधिक मथ दिया करते थे। न चाहते हुए भी इन शब्दोंको सुनना ही पड़ता था। सुनकर बाईसे कुछ अनुरोध करनेका साहस भी नहीं होता था, बाईने जब-जब नर्मदा बाई, भाभीजी, सावित्री बाई, मीरा, महादेवी, शशी आदि बहिनोंके सामने जो उद्‌गार व्यक्त किये थे, उससे बहुत क्षीण-सा अनुमान होता था कि बाई आगामी बसन्त-पञ्चमीतक हमलोगोंके साथ हैं। यह बसन्त-पञ्चमी ४ फरवरी, १९९५ के दिन पड़ रही थी। आत्मीयजनोंका जैसा अनुमान था, उसके अनुसार बसन्त-पञ्चमीका दिन ज्यों-ज्यों निकट आ रहा था, त्यों-त्यों सबको भयान्वित भी बना रहा था।

बसन्त-पञ्चमीके दिन बाईने भाभीजीसे कहा—भाभीजी! किसी विशेष कारणसे अन्तर्जगतके द्वारा मुझे तीन महीनेके लिये इस धराधामपर रहनेका समय और मिला है। बाईके इन शब्दोंने समीपस्थ एवं अनुगत भाई-बहिनोंके मनकी भयान्वित भावनाओंको कुछ राहत दी, पर मन-ही-मन यह बात भी समझमें आ रही थी कि इस राहतका कोई स्थायी मूल्य नहीं है।

एक दिन बाई जब सावित्री बाईके साथ नावपर बैठी हुई यमुनाजीके उस पार जा रही थीं, तब बाईने सावित्री बाईसे कहा—आजकल बाजारमें आम मिलता है क्या?

सावित्री बाई बोलीं—बाई अभी तो जाड़ेके दिन हैं, आम मिलनेकी सम्भावना नहीं है। आम तो गर्मीके दिनोंमें आते हैं, फिर भी बाजारमें देखूँगी।

सावित्री बाईने सही उत्तर ही दिया था, उसे सुनकर थोड़ी देर बाद बाईने उनसे कहा—तुम ठीक कहती हो, अभी तो आम नहीं मिलेगा। अच्छा बतलाओ; जब आमका मौसम आयेगा, तब तुम अपनी इस बाईको दो सौ इक्यावन आम दे सकोगी क्या?

सावित्री बाईने मन्द-मन्द हँसते हुए कहा—हाँ बाई! जरूर दूँगी।

क्षितिजके फलकपर धुँधला-धुँधला एक चित्र, जो इस जगतके लिये संगीन और 'उस जगत' के लिये रंगीन था, ऐसे गमगीन बना देनेवाले किसी एक चित्रको देखकर बाईने सावित्री बाईसे कहा—गर्मीके मौसममें जब तुमको आम मिलेंगे, तब तुमको यह बाई मिल पायेगी क्या? तुम तो बस इतना

ही काम कर देना कि मेरी कही हुई बातको पूरा करनेके लिये दो सौ इक्यावन आम बाजारसे लाकर मेरे बदले मेरी बहिन यमुनाजीकी निर्मल लहरोंको दे देना। ये लहरें ही तो उनके कर पल्लव हैं। यदि किसी कारणसे दो सौ इक्यावन आम तुम यमुनाजीके निर्मल प्रवाहको समर्पित न कर सको, तो इक्यावन आम तो उन्हें समर्पित कर ही देना और शेष दो सौ आम ब्रजवासी भाई-बहिनोंके बीच बाँट देना।

सावित्री बाईने अपने मनकी विकल और कातर भावनाओंको छिपाते हुए हँसकर कहा—बाई! आप क्या कह रही हैं? आप तो हमारे साथ हैं और मैं आपको लाकर दो सौ इक्यावन आम दूँगी। आप उन्हें अपने हाथोंसे यमुनाजीकी निर्मल धारामें समर्पित कर दीजियेगा।

सावित्री बाईकी बातको सुनकर भी अनसुनी करती हुई अनमने भावसे बाईने उनसे कहा—सावित्री! उस समय बाईको तुम भला कहाँ पाओगी?

सावित्री बाईने यही उचित समझा कि इस चर्चाको तुरन्त विराम दे देना चाहिये, अतः उन्होंने श्रीकृष्ण कुञ्जकी कोई अन्य बात उठा करके विषयान्तर कर दिया और दोनों परस्परालाप करते हुए यमुनाजीके उस पार पहुँच गयीं।

इसके कुछ ही दिनोंके बादका एक गम्भीर प्रसंग है। बाईने सावित्री बाईको यमुनाजीके उस पार अपने पास बुलाया। समीपमें जो अन्य बहिनें थीं उनको काफी दूर बैठा दिया, जिससे होनेवाली बातकी भनक भी उनके कानमें न पड़ सके। जब वे बहिनें दूर चली गयीं तो सावित्री बाईको अपने समीप बैठाकर बाई उनसे कहने लगीं—सावित्री! तुम यह जानती हो कि बाबाकी ओरसे हाट उठनेका संकेत मिल चुका है। यह शरीर अब जायेगा ही। केवल तीन मासकी अवधि और प्रदानकी गयी है। तुमको मुझसे कोई आवश्यक बात पूछनी हो तो पूछ लो।

सावित्री बाईने कहा—बाई! आपने सदैव अपनी ओरसे ही हमलोगोंको सब बात बतलायी है। आज भी मेरे लिये जो उचित हो, वह आप स्वयं ही बतला दीजिये।

बाईने गम्भीर स्वरमें कहा—सावित्री! आज मैं तुमसे एक गम्भीर बात कह रही हूँ। तुम जानती हो मैंने कभी भी पुरुषका स्पर्श नहीं किया। प्रायः होता यह है कि प्राण पखेरूके उड़ जानेके बाद शवकी अन्तिम क्रिया पुरुषोंके द्वारा होती है। यह मुझे सर्वथा-सर्वथा अभीष्ट नहीं है कि मेरे निष्प्राण

कलेवरका और उसको वहन करनेवाली अर्थीका कोई भी पुरुष स्पर्श करे। यहाँतक कि दाह-क्रियाके कार्यमें आदि-से-अन्त तक पुरुषकी गन्ध भी मेरे पास न आये। यदि तुम मेरे कठोर व्रत और पवित्र भावोंके निर्वाहका वचन दो, तब तो मेरा प्राण रहित कलेवर तुमलोगोंको मिल पायेगा अन्यथा शरीरको ही अन्तर्हित कर दूँगीं। एक बात और विशेष रूपसे कह रही हूँ कि चितामें अग्नि भी तुम्हीं देना।

बाई जब सावित्री बाईसे अपने मनके परम ऐकान्तिक भावोंकी अभिव्यक्ति कर रही थी, उस समय तटका नितान्त निर्जन और नीरव वातावरण किन्हीं परम दिव्य लहरियोंसे परिव्याप्त हो उठा। यदि इधर बाईके श्रीमुखसे उस परम लोकोत्तर सामर्थ्यकी एक झलक मात्र प्रस्तुत कर देनेवाले शब्द ओज पूर्ण वाणीमें व्यक्त हो रहे थे, तो उसी समय उधर सावित्री बाईके मनमें उस परम लोकोत्तर सामर्थ्यके सम्बन्धमें सन्देहकी एक अत्यन्त क्षीण-सी लहर उठी। सावित्री बाईने सुन रखा था और जानती भी थी कि द्वारकापुरीमें मीराबाईने और जगन्नाथजीमें श्रीचैतन्य महाप्रभुने अपना पावन कलेवर सांसारिक लोगोंके हाथमें पड़ने ही नहीं दिया। क्या ऐसी क्षमता मेरी बाईमें भी है?

मनमें उठनेवाली सन्देहकी यह अत्यन्त क्षीण-सी लहर सावित्री बाईके दोनों नेत्रोंमें-से झाँककर बाईको देख रही थी। बाईने सावित्री बाईके दोनों नेत्रोंमें उभरे उस हल्केसे सन्देहको तत्क्षण पढ़ लिया। उस सन्देहको पढ़ लेते ही एक ऐसे अचिन्त्य दिव्यावेशका आविर्भाव बाईके कलेवरमें हो गया, जिसकी कल्पना नित्य साथ रहनेवाली सावित्री बाई कर ही नहीं सकती थीं। बाईका मुखमण्डल लोकोत्तर तेजस्विताकी दीप्तिसे अत्यधिक दैप्यिमान हो उठा। तत्क्षण बाईके भालकी भौहोंमें किञ्चित् वक्रताके कारण हल्की-सी सिहरन फैल गयी। भालपर कुछ सिकुड़न भी आ गयी। नेत्र विस्फारित हो उठे। दृष्टि सावित्री बाईपर गड़ गयी।

जीवन भरकी सम्पूर्ण सत्यनिष्ठा, सम्पूर्ण ध्येयवादिता, सम्पूर्ण नियमाचरण, सम्पूर्ण आत्माहुति, सम्पूर्ण तपस्विताका प्रखर तेज आँखोंमें चमक उठा और वह अदम्य चमक मानो सावित्री बाईके मनमें उद्भूत सन्देहको चुनौती देनेके लिये उद्यत हो रही हो। अननुभूत तेजस्वितासे जाज्वल्य शब्दोंमें चुनौती देते हुए बाईने सावित्री बाईसे कहा—सावित्री! तुम सोच रही हो कि क्या यह बाई ऐसा कर सकती हैं? तुम मेरे शब्दोंपर सन्देह कर रही हो? तुम कहो

तो इस शरीरको इसी क्षण अन्तर्हित कर दूँ। एक बार अजमा कर ही देख लो! बोलो, क्या इस शरीरको अन्तर्हित कर दूँ? यमुना मेरी बहिन है और उस बहिनके सामने मैंने जो कहा है, उसका एक-एक वाक्य, वाक्यका एक-एक शब्द, शब्दका एक-एक अक्षर त्रिकालाबाधित सत्यसे भरा हुआ है।

सावित्री बाईने अच्छी तरह समझ लिया कि बाईने मेरे मनमें छिपे हुए सन्देहको भाँप लिया है और इसी कारण ऐसी ओजस्वी शब्दावली बाईके अधरोंसे फूट पड़ी है। सावित्री बाई काँप उठी। बाईके शरीरके अन्तर्हित हो जानेकी कल्पना भी उनके लिये असह्य थी। सावित्री बाईने तुरन्त हाथ जोड़ लिये और सजल नेत्रोंसे दीन वाणीमें बाईसे प्रार्थना करने लगीं—नहीं बाई! आपके वचनोंपर मुझे पूर्ण विश्वास है। आप हमलोगोंको इससे भी क्यों वञ्चित करना चाह रही हैं। बाई! फिर हमारे हाथमें क्या रह जायेगा? अजमानेके बाद हम आपको कहाँ पायेंगी? मुझे आपके वचनोंपर पूरा विश्वास है। आप इस सौभाग्यसे हमलोगोंको वञ्चित मत कीजिये। इतना कहकर सावित्री बाई कुछ क्षणोंके लिये मौन हो गयीं।

बाईके मुख मुण्डलपर उभरी हुई तेजस्विता भी अपने प्रखर तेजको क्रमशः संकुचित करती जा रही थी। सावित्री बाईके मनमें भी भावोंका तूफान उठा हुआ था। बाईके ओजस्वी शब्दोंको सुनकर सावित्री बाईके मनकी जो दशा थी, उसका कोई भी साधारण प्राणी अनुमान लगा ही नहीं सकता। बाईने उन्हें परम अन्तरंग मानकर मनकी अन्तरंगतम बात उन्हें बतलायी और एक सुगुप्त आदेश भी दिया। यह सौभाग्य क्या कम है? इस सौभाग्य-बोधकी भावनासे सावित्री बाईके मनमें अपार सन्तोष था, किन्तु वह सन्तोष बहुत बड़ी कालिमासे आवृत्त था। बाईके मनमें उठे हुए भावोंकी प्रखरताका चढ़ाव जब कुछ उतार पर आया और बाई किञ्चित् सम दिखायी दीं, तब सावित्री बाईने बाईको वहींपर वचन दिया—बाई! मैं वचन देती हूँ कि मैं आपकी आज्ञाका अक्षरशः पालन करनेकी प्राण-पणसे चेष्टा करूँगी।

वचन तो दे दिया, परन्तु सावित्री बाईका मन बड़ा अकुला रहा था। धीरे-धीरे माघ मास बीत गया और फाल्गुन मास आ गया। रंग-बिरंगी होलीका स्वागत करनेके लिये ब्रजके बाल-वृद्ध, नर-नारी उत्सुक हो रहे थे। घर-घरमें राधा-कृष्णकी होलीके गीत गाये जा रहे थे। गोस्वामी बालक श्रीबिहारीजीको रात्रिके समय होलीका रसिया सुनाया करते थे। वृन्दावनकी सड़कोंपर बालक रंग और गुलाल उड़ाते और उछालते हुए दिखलायी देते

थे। तभी बरसानेकी लट्ठ-मार होलीका दिन आ गया।

बाई यमुनाजीके उस पार कुम्हारिन मैयाके साथ बैठी हुई थीं। कुम्हारिन मैयाने देखा बाई रजमें खूब लोटपोट हो रही है। यह कुम्हारिन मैयाके लिये अनोखा दृश्य था। रजमें बार-बार लोटपोट करती हुई बाईसे कुम्हारिन मैयाने पूछा—बाई! आप इस प्रकार रजमें क्यों लोट रही हो?

सहास्य अधरोंसे मधुर-मधुर स्वरमें बाईने कुम्हारिन मैयासे कहा—मैया! मैं बरसानेकी होली खेलने जा रही हूँ। देख! मेरा घेरदार लँहगा, मेरी जरीदार चूनरी, हीरा पन्ना जटित मेरी चूड़ी, पाँवकी मेरी सुनहरी पायजेब, यह सब देख! कितनी सुन्दर है। तू मेरी सुन्दर-सुन्दर चीजें चुरा मत लेना। मैं तुमपर विश्वास करती हूँ। तभी तुमको दिखाया है।

इतना कहते-कहते बाई भावाविष्ट होकर अपने शरीरकी सुध-बुध खो बैठीं और चेतना शून्य होकर यमुना-रजमें निस्पन्द पड़ रहीं। बाईको निश्चेष्ट पड़ी देख करके कुम्हारिन मैया श्रीराधानाम संकीर्तन करने लगी। वह न तो किसीको बुलानेकी स्थितिमें थी और न बाईको छोड़कर जानेकी स्थितिमें थी। बस, कुम्हारिन मैया लगातार दो घण्टेतक बाईको राधानाम संकीर्तन सुनाती रही। लगभग दो घण्टे बाद बाई प्रकृत धरातलपर आयीं और कुम्हारिन मैयासे बोली—मैया! देख मैं होली खेलकर आयी हूँ। देख! देख!! ये रंगके छींटे, जो मेरी साड़ीपर लगे हैं।

यह कहकर बाईने सचमुच रंगके वे वासन्ती छींटे दिखला दिये, जो यत्र-तत्र साड़ीपर लगे हुए थे। उन वासन्ती छींटोंको दिखलाते हुए बाईने पुनः कुम्हारिन मैयासे कहा—अब तो तुमको विश्वास हो गया ना कि मैं आज बरसाने गयी थी और बरसानेमें प्रियतम श्यामसुन्दरके साथ होली खेली थी। होली खेलकर ही अभी मैं लौटी हूँ।

कुम्हारिन मैयाने अपनी आँखोंसे देखा कि बाईकी सफेद साड़ीपर केशरिया रंगके छींटे है और उनसे केशरिया सुगन्ध भी आ रही है। कुम्हारिन मैया बाईसे बोली—बाई! मोकूँ पक्को विश्वास है कि आप होली खेलकर आयी हो। ये छींटे देखके तो मेरो विश्वास और पक्को हैगो। कुम्हारिन मैयाका सौभाग्य था, जिसे बाईकी साड़ीपर केशरिया रंगके छींटोंको देखनेका अवसर मिला।

इसके चार दिन बाद फाल्गुन शुक्ला त्रयोदशी, १५ मार्च, १९९५ की घटना है। साधना राज्यमें त्रयोदशी तिथिका बड़ा महत्त्व है। कार्तिक कृष्ण

त्रयोदशी; धनतेरस और कामेश्वरी जयन्तीका दिवस होनेसे इस दिन दीप-पूजन, लक्ष्मी-पूजन और पराम्बा-पूजन होता है। इसी प्रकार फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशीके दिन महाशिवरात्रि होनेसे भगवान शिवका सभक्ति पूजन किया जाता है। त्रयोदशी तिथिका बाईके जीवनमें भी बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान था।

महाशिवरात्रिके ठीक एक पक्ष बाद शुक्ला त्रयोदशीके मध्याह्न कालकी बात है। बाई अपने कमरेसे निकलकर भाभीजीसे लिपटकर रोने लगीं। भाभीजी अपनी समझसे बाईको पूर्ण सान्त्वना प्रदान कर रही थीं, पर बाईका रोदन कम हो ही नहीं रहा था। भाभीजीका बाईके प्रति जितना गहरा लगाव था, उसको समझकर बाईके मनमें बड़ी हिचक हो रही थी कि जो बात मैं कहने जा रही हूँ, वह कैसे कहूँ? कितनी ही हिचक हो, वह बात तो कहनी ही थी। रोदनके कुछ शान्त होनेपर बाईने भाभीजीको बताया—आज प्रात:काल मैने देखा कि मेरे बिस्तरके सिरहानेकी ओर श्रीमाँ (श्रीकाली माँ) खड़ी हैं। क्यों खड़ी हैं, यह मैं समझ नहीं पा रही थी। श्रीमाँ मेरे सिरहाने तीन-चार घण्टे खड़ी रहीं। फिर मेरे मनकी उलझनको दूर करनेके लिये उन्होंने मेरे इस शरीरकी ओर अपनी अँगुलीसे इशारा किया। इशारा करके मुझे दिखलाया और बताया गया कि किस कारणसे इस शरीरका जन्म हुआ। इस शरीरका जन्म मातृ-सन्धिको लेकर हुआ था। आज श्रीमाँने अपनी सन्धिकी परिधि उठा ली है। इसका अर्थ यह हुआ कि यह शरीर अब कभी भी निष्प्राण होकर गिर सकता है।

जिस समय बाई यह सारा वृत भाभीजीसे बतला रही थी वहाँ नर्मदा बाई, सावित्री बाई, मनोरमा बाई और मीरा भी थी। मातृ-सन्धिकी परिधि उठ गयी है, इस समाचारने पुन: याद दिला दिया कि बाबाके संकेतानुसार यह हाट उठनेवाली है। दूसरे शब्दोंमें बाबाके उस संकेतकी परिपुष्टि ही श्रीमाँने आज सबेरे कर दी है। निकट भविष्यमें हमारी बाई आँखोंसे ओझल हो जायेंगी, इस सम्भावनासे सभीका मन बड़ा अकुला रहा था और वह आकुलता नेत्रोंकी सजलताके रूपमें बरस पड़ी। बाईके वृत्तको सुनकर सभी बड़े गम्भीर थे।

काल-चक्र किसीकी प्रसन्नता या अवसन्नताकी अपेक्षा नहीं रखता। वह अपनी गतिसे सहज चलता रहता है। इस त्रयोदशीके एक दिन बाद चतुर्दशी तिथिका एक प्रसंग है। बाबाने हाटके उठ जानेका संकेत दिया और पराम्बा माँने भी यह बतला दिया कि उन्होंने अपनी सन्धिकी परिधि

उठा ली है। इन दोनों तथ्योंसे यदि समीपस्थ बहिन अत्यधिक अकुला रही थीं तो दूसरी ओर बाई विदाई लेनेकी तैयारी कर रही थीं। उन्होंने इस चतुर्दशी तिथिको श्रीबिहारीजीको अलगसे फगुआ देकर सर्वप्रथम परम वत्सला भाभीजीसे चुपचाप विदाई ले ली।

ये वे ही श्रीबाँकेबिहारीजी हैं, जो अनन्य रसिक शेखर स्वामी श्रीहरिदासजी महाराजके सेव्य रहे हैं। श्रीबाँकेबिहारीजीका मन्दिर वृन्दावनका एक प्रमुख देवालय है। प्रतिवर्ष श्रीबिहारीजीको फगुआ दिया जाता था। केशरिया दुपट्टेमें गुलाल बाँधकर गुलाल सहित दुपट्टा थालमें रख दिया जाता है और साथ ही पूजनकी अन्य सामग्रियाँ फल, इत्र, नैवेद्य, पुष्पमाला आदि भी सजा दी जाती हैं। यह सारी वस्तुएँ मन्दिरमें ठाकुरजीके श्रीचरणोंपर गोसाँईंजीके माध्यमसे सभक्ति समर्पित कर दी जाती है। इस प्रक्रियाको फगुआ देना कहते हैं। प्रतिवर्ष भाभीजी श्रीबाँके बिहारीजीको फगुआ दिया करती थीं। फगुआ भले भाभीजी देती थीं, किन्तु वास्तविकता यह है कि वह फगुआ बाईकी ओरसे ही दिया जाता था। इस वर्ष त्रयोदशीके एक दिन बाद ही फाल्गुन शुक्ला चतुर्दशीको जब भाभीजीने फगुआ दिया तो बाईने अपनी ओरसे अलग भी फगुआ दिलवाया। यह तो एक सर्वथा नवीन क्रिया थी। भाभीजीने पूछा—बाई! तू फगुआ अलगसे क्यों दे रही है?

बाईने मन्द-मन्द स्वरमें रहस्य भरी दृष्टिसे देखते हुए भाभीजीसे कहा—भाभीजी! आजसे आपकी और मेरी पूजा अलग-अलग हुआ करेगी।

इस वाक्यने भाभीजीको बहुत चौंका दिया। भाभीजीसे बाईकी घनिष्ठताका इतिहास गत तीस वर्षोंकी एक लम्बी गाथा है। सम्बन्धकी घनिष्ठता जबसे हुई, तबसे बाईने विशेष-विशेष अवसरोंपर कभी भी और कोई भी पूजनका स्वतन्त्र विधान स्वीकार किया ही नहीं। भाभीजीके द्वारा जब-जब और जो-जो अर्चनाएँ हुई, उन सभी अर्चनाओंके सम्बन्धमें आन्तरिक मान्यता यही थी कि ये अर्चनएँ भाभीजी और बाई दोनोंकी अर्चनाओंका सम्मिलित स्वरूप है और सम्मिलित रूपसे सम्पन्न हो रही है। बाईने कभी अलग अर्चना की ही नही। बाईकी अर्चना भाभीजीकी अर्चनामें ही समायी रहती थी। ज्यों ही बाईने कहा कि आजसे मेरी पूजाका विधान आपसे अलग होगा; बस, इस वाक्यने भाभीजीको बहुत अधिक चौंका दिया। ऐसा होकर भी भाभीजीमें न तो साहस हुआ स्पष्टीकरण करवा लेनेका, और न ही बाईने अपनी कही हुई बातका स्पष्टीकरण किया। पर ऐसा लगता है कि

दोनों पक्षोंमें यही बात रही होगी कि अब बाई श्रीबिहारीजीको फगुआ देनेके मिससे भाभीजीसे विदाई ले रही हैं। भाभीजीकी भावनाएँ अत्यधिक व्याकुल थीं, परन्तु उस आकुलताको व्यक्त करनेके लिये न शब्द थे और न साहस था।

बाईके द्वारा इन शब्दोंको सुननेके बाद भी भाभीजी द्वारा ऊपरी तौरपर अनेक जागतिक कार्य हो रहे थे, परन्तु वे सारे कार्य अनमनी रीतिसे हो रहे थे। अनमनी भाभीजी थीं, परन्तु बाई नहीं! बाईकी अनेक बातोंसे और उनकी गतिविधियोंसे यदि एक ओर भाभीजीका अनमनापन बहुत अधिक बढ़ रहा था तो इसीके विपरीत बाईकी सजगता बढ़ती चली जा रही थी। जितने मिलनेवाले थे, सभीसे अन्तिम विदाई लेनेके लिये बाईकी तैयारी भीतर-भीतर चल रही थी। इतना ही नहीं, वृन्दावनके जिन-जिन मन्दिरोंमें दर्शन और प्रणाम करने बाई प्रायः जाया करती थी, उनसे भी विदाई लेना चाह रही थीं। इसी भावनासे भावित होकर एक दिन बाई श्रीयमुनाजीसे श्रीकृष्ण कुञ्ज न आकर सीधे श्रीकात्ययनी पीठ जाने लगीं। अभी सूर्यास्तमें पर्याप्त विलम्ब था। बाईको अकेले जाते हुए देखकर कुम्हारिन मैया उनके साथ हो ली। रुग्णा बाई धीरे-धीरे चलती हुई किसी प्रकार कात्यायनी पीठ पहुँच गयीं। भगवती कात्यायनी देवीके समक्ष बाई लगभग दो घण्टे बैठी रहीं। दो घण्टे बैठकर बाईने प्रीति प्रदात्री श्रीमाँ कात्ययनीसे क्या-क्या बात की, यह वे ही जानें। दो घण्टे बाद बाईने कुम्हारिन मैयासे कहा—चलो अब यहाँसे चलें और अब मुझे गोपीश्वर महादेवजीके मन्दिर ले चलो।

इस समय भगवान् सूर्य अस्ताचलकी ओर जा रहे थे। बाईकी बातका तुरन्त ही प्रतिवाद करते हुए कुम्हारिन मैयाने कहा—बाई! तुम कैसी बात कह रही हो? तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है। थोड़ी दूर चलनेमें ही हाँफ जाती हो। छातीमें दर्द हो रहा है। रिक्शेपर आप बैठती नहीं। श्रीकृष्ण कुञ्जसे यमुनाजी तक जाना ही आपको भारी पड़ता है। ऐसा होनेके बाद भी आप यमुनाजीसे कात्यायनी पीठ आयीं, जो बहुत दूरीपर है। अब गोपीश्वर मन्दिर भी उतनी ही अधिक दूर है। आप कैसे चल पाओगी? जाड़ेकी रात है। रात भी अब ढलनेवाली है। मुझे फिर भाभीजी भी डाँटेंगी। मैं तो आपको लेकर गोपीश्वर मन्दिर नहीं जाऊँगी। मेरी बात मानकर आज तो आप सीधे घर चलें, कल गोपीश्वर मन्दिर चली चलियेगा।

कुम्हारिन मैयाने अपनी ओरसे कहनेमें कसर नहीं रखी। स्वास्थ्यका भय

दिखलाना, भाभीजीका भय दिखलाना, मार्गके अन्धकारका भय दिखलाना, अपनी दीनता दिखलाना, इस प्रकार हर रीतिसे कुम्हारिन मैयाका प्रयास यही था कि बाई अब सीधी अपने घर श्रीकृष्ण कुञ्ज चलें पर बाई भला कब माननेवाली थीं। कुम्हारिन मैयाकी बातोंका कुछ भी जवाब न देते हुए बाईने तो गोपीश्वर महादेवके मन्दिरका रास्ता पकड़ लिया। कुम्हारिन मैया साथ जानेके लिये लाचार थी। किसी प्रकार धीरे-धीरे चलते हुए बाई गोपीश्वर महादेवके मन्दिर पहुँचीं। पहुँच तो गयीं, परन्तु छातीके दर्दने भीषण रूप ले लिया। बाई उसी दर्दमें गोपीश्वर महादेवके गर्भ-गृहके द्वारतक किसी प्रकार पहुँच गयीं और माथा टेककर प्रणाम किया। प्रणाम तो कर लिया, पर फिर वहाँसे उठ नहीं पायीं। दर्दके मारे बैठी हुई बाईकी बेचैनी उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। शरीरसे पसीना छूटने लगा। जाड़ेके दिनोंमें पसीनेका छूटना देखकर कुम्हारिन मैया घबरा गयी। कुम्हारिन मैया अकेली थी, अतः छोड़कर जा भी नहीं सकती थी। वह किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो रही थी। गोपीश्वर महादेवके मन्दिरमें बैठे-बैठे ही रातके साढ़े नौ बजेका समय हो गया। गोपीश्वर महादेवके पुजारीजीने कहा—अब मन्दिरके पट बन्द करनेका समय हो गया है। आपलोगोंको यहाँसे घर चले जाना चाहिये।

बाई किसी प्रकार वहाँसे उठकर मन्दिरके बाहर आयीं और बाहर वाली सीढ़ियोंपर आकर बैठ गयीं। कुम्हारिन मैया बहुत देरतक चारों ओर नजर दौड़ाती रही, पर कोई भी ऐसा व्यक्ति या ऐसी सवारी नहीं मिल पायी, जिससे सहारा लिया जा सके। क्रमशः रातका अँधेरा भी बढ़ता जा रहा था। कुम्हारिन मैयाके मनका भय भी बढ़ता जा रहा था। कुम्हारिन मैयाने बाईसे कहा—बाई! रात होती जा रही है। किसी तरहसे घर तो चलना ही पड़ेगा, भले ही धीरे-धीरे चलना पड़े, पर चलो।

कभी उकसाते हुए, कभी फुसलाते हुए, कभी सहलाते हुए कुम्हारिन मैया बाईको साथ लेकर घरकी ओर चल रही थीं और बाईने कई जगह बैठते-उठते हुए घरतकका रास्ता तय किया। वे लगभग साढ़े ग्यारह बजे घर पहुँच गयीं।

घर पहुँचनेपर भाभीजीने देखा कि कुम्हारिन मैयाके चेहरेपर भावोंकी विकलता छायी हुई है। भाभीजी कुम्हारिन मैयासे कुछ प्रश्न करें और विकलताका कारण पूछें, इसके पहले ही घबराये स्वरमें कुम्हारिन मैयाने आजकी आपबीती घटना उगलते हुए शब्दोंमें सुनाना शुरु कर दिया। कुम्हारिन

मैयाके मुँहसे श्रीकात्ययनी पीठ और श्रीगोपीश्वर महादेवके मन्दिरकी बातें सुनकर भाभीजीका मन भी चिन्तासे विकल हो उठा और फिर बाईकी ओर उन्मुख होकर उलाहना देते हुए भाभीजी कहने लगीं—बाई! यमुनाजी जानेकी तो तुम्हारी शक्ति नहीं रही, तब तुम इतनी दूर कैसे चली गयी? अकेली कुम्हारिन मैयाके साथ चली जाती हो, यह ठीक नहीं लगता।

भाभीजीके उपालम्भको सुनकर उनको सन्तुष्ट करनेके लिये बाईने कहा—भाभीजी! मैं आज अन्तिम प्रणाम करने गयी थी। अब नहीं जाऊँगी।

जिन बातोंसे भाभीजीके मनका अनमनापन बढ़ रहा था, उसमें आज यह एक और बात जुड़ गयीं। भाभीजीने उलट कर बाईको कुछ कहा नहीं और फिर मीरा और शशीको बुलाकर कहा—जाकर बाईको सँभालो।

इन दिनों बाईकी गतिविधियोंपर गहरी नजर रखनेसे मीराके ध्यानमें एक बात यह आयी कि दोपहरको कमरेसे बाहर आनेके बाद और रात्रिमें भोजन करनेसे पहले बाई बड़ी प्रसन्न और बड़ी सक्रिय रहती है, किन्तु भोजनकी थालीपर बैठते ही उसके बाद शेष रात्रि भर बाईके कष्टकी सीमा नहीं। किसी भी रुग्ण व्यक्तिके जीवनमें स्वस्थता और अस्वस्थताका ऐसा विभाजन हो ही नहीं सकता कि दस-बारह घण्टे परम प्रसन्न रहे और शेष समय पीड़ासे छटपटाता रहे। यह तो बाईके जीवनकी बड़ी ही अटपटी और पहेलीनुमा स्थिति थी।

मीरा चाहती थी कि इस रहस्यके मर्म तक पहुँच जाऊँ, अत: उसने अपने ही ढंगका एक प्रश्न किया—बाई! आपके जीवनमें क्या अब भी ऐसी कोई अशुभ कर्म राशि शेष रह गयी है, जिसका फल-भोग अनिवार्य है? यदि है तो वह अशुभ कर्म-राशि आपके पास कहाँसे आयी?

मीरा जानती थी कि बाईका जन्म किसी शुभ या अशुभ कर्म-राशिका फल-भोग करनेके लिये नहीं हुआ है। वे तो प्रीति विग्रह प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-कृष्णके निज निकुञ्ज-धामकी नित्यानुगता अनुचरी है, जिनके हृदयमें इस मर्त्यलोकके तीन महान संतोंके दर्शनकी उत्कट लालसा जागृत हो गयी और इसीका यह मंगलमय परिणाम था कि वे बाईके रूपमें हमारे सामने हैं।

जिन बाईके आविर्भावका ऐसा परम पवित्र नित्य वन्दनीय हेतु हो, उन दिव्यात्माके आगे-पीछे, दायें-बायें, ऊपर नीचे किसी शुभ या अशुभ कर्म-राशिका अस्तित्व हो ही नहीं सकता, अत: अब यह रुग्णता बाईके परम पवित्र कलेवरको इतनी पीड़ा क्यों दे रही है। यही प्रश्न मीराके मनमें

बार-बार उठ रहा था और इसीलिये मीराने वह प्रश्न बाईसे किया।

मीराके प्रश्नको सुनकर बाईने धीरे-धीरे कहना आरम्भ किया—मीरा! तुमने जो पूछा है, यह प्रश्न तुम्हारे मनमें उठना स्वाभाविक है। जो बाई दिन भर हँसती हुई बात करती है, वह रातको इतनी रुग्ण कैसे हो जाती है? तुम्हें न बतलाने योग्य बात भी आज बतला रही हूँ। यह कुछ ऐसी भीतरी बातें हैं, जिनको छिपाकर रखना ही उचित है, किन्तु जीवनके अन्तिम दिनोंमें तुमसे भला क्या छिपाऊँ? मेरे साथ मेरी कोई भी शुभ या अशुभ कर्म राशि नहीं है। परन्तु जो बहिन या भाई मेरे सम्पर्कमें आये हैं, उनका कष्ट, उनकी पीड़ा मुझसे देखी नहीं जाती थी। जिस अशुभ कर्म राशिके फलस्वरूप उन्हें कष्ट-पीड़ाके रूपमें फल भोगना पड़ रहा था, वह अशुभ कर्म राशि समय-समयपर मैं अपने ऊपर लेती रही हूँ। जिनकी कर्म राशि मैंने ली, उनकी सुखी देखकर मुझे बड़ा सुख मिलता था। अब कर्म सिद्धान्तके अनुसार उस अशुभ कर्म राशिका फल-भोग किसीको तो भोगना ही पड़ता है और वह फल-भोग यहाँसे विदा होनेके पहले ही मुझे चुकती कर लेना है। यह बात दूसरी है कि अन्तर्जगतने मुझे बड़ी छूट दे रखी है। उस अशुभ कर्म राशिका किञ्चिदंश ही मुझे भोगना पड़ता है और हल्के रूपमें भोगना पड़ता है। जिसे मैं किञ्चिदंश और हल्की पीड़ा कहती हूँ, वही तुमलोगोंको बड़ी विकराल लग रही है। अब उस अशुभ कर्म राशिका फल-भोग कब हो? यह रात्रिके समय होता है। वे अशुभ कर्म राशियाँ मूर्तिमान होकर मेरे सामने आती हैं और हाथ जोड़कर विनम्र स्वरमें पूछती हैं कि कब हमारा निपटारा होगा? मैं उनका स्वागत करके उनको अवसर देती हूँ और यही कारण है कि सारी रात्रि मेरी कष्ट-भोगमें व्यतीत होती है।

जिस प्यारसे बाईने मीराको बतलाया, मीरा भीतर-भीतर गलती और बहती जा रही थी कि हमारी नित्य पूज्य बाईका आध्यात्मिक व्यक्तित्व कितना महान है। बाईके व्यक्तितत्वकी यह महानता जगतके लिये आज भी रहस्य है और शायद भविष्यमें भी रहस्य ही बना रहे।

अवसर देखकर बाईने एक और तथ्यका उद्घाटन कर दिया और मीरासे कहने लगीं—मीरा! यह कर्म सिद्धान्त तो हमलोगोंके द्वारा ही बनाया गया है। संत जगत ही स्वनिर्मित सिद्धान्तकी उपेक्षा या अवहेलना करे, यह कहाँतक उचित है? उपेक्षा और अवहेलना सर्वथा अशोभनीय हैं, अतः कर्म-सिद्धान्तके अनुसार अशुभ कर्म राशियोंका जो फल-भोग होना चाहिये,

वह मुझे सर्वथा स्वीकार है। फल-भोगकी दृष्टिसे यह तीन मासकी अवधि मेरी रुग्णताकी अवधि है। इस अवधिमें मेरे रुग्ण कलेवरको शय्यापर ही सर्वथा रहना चाहिये था, परन्तु कलेवरका रुग्ण रूपमें शय्यापर पड़ा रहना अन्तर्जगतको स्वीकार नहीं था।

तुम्हें भलीभाँति ज्ञात है कि इसी कलेवरमें न जाने कितनी-कितनी सखियों-सहेलियों-मञ्जरियों-अनुचरियोंका समय-समयपर अवतरण होता रहा है। इस तथ्यको दूसरे रूपमें ऐसे भी कहा जा सकता है कि यह कलेवर अन्तर्जगतके भाव-विलासका सदैव अद्भुत क्रीड़ा स्थल रहा है, अतः अन्तर्जगतको यह अभीष्ट नहीं है कि यह कलेवर सीमातीत कष्टसे तीन मासतक पीड़ित रहे। इसके अतिरिक्त निकटस्थ बहिनें भी इस कलेवरकी पीड़ाको देख ही नहीं पायेंगी, अतः अन्तजर्गतके निर्देशपर कर्म-सिद्धान्तके देवताने कष्टकी अवधि तीन मासके स्थानपर तीन दिनका कर दी है। मल-मूत्र शरीरके स्वाभाविक आवेग हैं। इन आवेगोंसे निवृत्त होनेके लिये मैं यमुनाजीके उस पार जाया करती हूँ। जब तुम्हें यह दिखलायी दे कि इन आवेगोंसे निवृत्ति इस श्रीकृष्ण कुञ्जमें ही हो रही है, तब यह समझ लेना कि बाई इस भूतलपर मात्र तीन दिन और है।

इन सब प्रसंगोंको सुनकर और देखकर भाभीजी, मीरा तथा अन्य सभी बहिनोंने समझ लिया और मान लिया कि बाई हमलोगोंके बीच अब मात्र तीन मास और है। आजकल जिनसे भी बाई मिलती, उनसे कहती रहती थीं कि तुम अक्षय तृतीया तक यहाँ रहो। किसीसे मिलनेकी इच्छा होती तो अक्षय तृतीयासे पहले मिलनेके लिये बुलवा लेतीं। बार-बार मुखसे अक्षय तृतीया शब्दका निकलना और तीन मासकी अवधिका अक्षय तृतीयाको पूर्ण होना, इस समय-सीमापर भाभीजी और मीराका मन बुरी तरह अटक गया। मीराने मन-ही-मन सोच लिया कि मुझे अक्षय तृतीया तक यहाँ रहना ही है। बाईने कोई बहाना बनाकर मीराको भागलपुर भेजना चाहा। इस समय भागलपुरका नाम ही मीराको नहीं सुहाता था और मीरा हठकर बैठी—बाई! मैं तो अभी भागलपुर जाऊँगी ही नहीं! मुझे अभी यहीं आपके पास रहना है।

बाईने समझाते हुए कहा—तुम तीन महीनेसे यहाँ ही हो, एक बार जाकर आश्रम सँभाल लो। अक्षय तृतीयाके बाद वृन्दावन आ जाना।

मीराने प्रतिवाद करते हुए कहा—मैं अक्षय तृतीयाके बाद जाकर आश्रम

सँभाल लूँगी। आप सभीसे अक्षय तृतीया तक रहनेको कह रहीं हैं, तो मुझे क्यों भेज रही हैं?

बाईने कहा—तुम बच्ची हो! वह करुण दृश्य तुम देख नहीं सकोगी, इसीलिये तुम्हें रखना उचित नहीं है।

मीराने बहुत हठ ठाना, तब बहुत आग्रह करनेपर बाईने इतना ही आश्वासन दिया कि समयपर जो उचित होगा, वह हो जायेगा और मीराको १८ अप्रैल सन् १९९५ के दिन वृन्दावनसे भागलपुरके लिये प्रस्थान करना पड़ा। बाईने भाभीजीको भी आग्रहपूर्वक अगले दिन वृन्दावनसे कलकत्तेके लिये भेज दिया और भेज दिया डॉक्टरको दिखलानेका बहाना बनाकर। जिन भाभीजीने और मीराने बाईकी आजीवन सेवा की, उन दोनोंको ही बाईने अपने पाससे हटाकर भागलपुर और कलकत्ते भेज दिया।

इन दोनोंको हटाते समय अवश्य ही बाईको अपना हृदय वज्रकी तरह कठोर बनाना पड़ा होगा। बाईको कठोर इसलिये बनाना पड़ा कि ये दोनों ही बाईकी उस पीड़ा ग्रस्त दारुण दशाको देख नहीं पायेंगी, जब वे इस जगतसे वहाँके लिये विदाई ले रही होगीं। ठीक ही कहा गया है कि भगवान्की तरह संत भी अवसर पर वज्रसे भी कठोर और फूलसे भी अधिक कोमल हुआ करते हैं। जो बाई सदैव ही भाभीजी और मीराके लिये फूलकी तरह कोमल थीं, वे ही आज वज्रकी तरह कठोर बन गयीं। विधाताने भी अपनी सुगुप्त योजनानुसार भाभीजी और मीराको बाईसे अलग कर दिया।

अलग करना सहैतुक था। भाभीजी और मीराने प्रहरीकी भाँति बाईको आजीवन उसी प्रकार सुरक्षा दी, जैसे दो पलकें आँखोंको देती हैं। इनकी सुरक्षामें रहनेवाली बाईको उनके पाससे 'बुला' लेना विधाताको भी कठिन लग रहा था। उस कठिन कार्यको सरल बनानेके लिये यह कठिन कृत्य उनको करना पड़ा और भाभीजी तथा मीराको बाईके पाससे हटाकर बहुत दूर कलकत्ता और भागलपुर भेज दिया। कभी-कभी विधाताको भी कठिन कृत्य करने अवश्य पड़ते हैं और उसका यह भी एक प्रमाण है।

* * * * *

लीला संवरण

विधाताके कठिन कृत्यके अनेक दृश्य सामने आते ही रहते हैं। श्रीकृष्ण कुञ्जमें अब जो भयानक दृश्य उभर-उभर कर क्रमश: सामने आ रहा था, उसका दोष विधाताके मत्थे मढ़ें अथवा कर्म राशियोंके समुदाय पर दोषरोपण करें। बहुत दिन पहले बाईने मीराको बतला दिया था कि अन्तर्जगतने बहुत छूट देकर गम्भीर रुग्णताकी अवधिको घटा दिया है और उसे तीन मासके स्थानपर तीन दिन कर दिया है। उस अवधिके आरम्भकी भूमिका विधाताने प्रस्तुत कर दी।

२५ अप्रैल, १९९५ (वैशाख कृष्ण एकादशी) मंगलवार, को अपने नित्य नियमानुसार दोपहरके समय बाई यमुनाजीके उस पार गयीं। जब स्नानोपरान्त वहाँसे लौटकर रात्रिमें घर आयीं उन्होंने बताया—मेरी बायीं पसली पर (बगलके नीचे) एक छोटी-सी फुंसी हो गयी है और उसमें भयंकर जलन है।

२५, २६, २७ और २८ अप्रैलतक इन चार दिनोंमें वह फुंसी उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी। पाँचवे दिन २९ अप्रैलको उसने एक बहुत बड़े फोड़ेका रूप धारण कर लिया, जिसका व्यास सात इंचसे कुछ अधिक ही था। छठवें दिन ३० अप्रैलको उसमें सात मुँह हो गये और वह फूट गया। साथ ही १०४-१०५ डिग्री ज्वर भी रहने लगा, परन्तु इस कष्टप्रद स्थितिमें भी शौच-स्नान हेतु श्रीयमुनाजी जानेका बाईका नित्य नियम अक्षुण्ण चलता रहा।

सातवें दिन सोमवार, १ मई (वैशाख शुक्ल द्वितीया) को उस फोड़ेने इतना भीषण रूप धारण कर लिया कि धीरे-धीरे चल पानेमें भी बाई अपनेको असमर्थ अनुभव करने लगीं। फिर भी जैसे-तैसे बाई यमुना तट तो पहुँच ही गयीं, परन्तु पीड़ाकी अधिकताके कारण अब शौच-स्नान कर पाना सम्भव नहीं था। वस्तुत: आज यमुना तटपर जानेका हेतु कुछ और ही था। अपनी अत्यन्त अन्तरंग लीला सहचरी बहिन श्रीयमुनाजीसे उस दिन अन्तिम विदाई लेने ही बाई वहाँ गयी थीं। श्रीयमुनाजीको प्रणाम करके फिर उन्हें सम्बोधित करके बाईने कहा—बहिन! मेरा अन्तिम प्रणाम स्वीकार करो।

जिस समय बाईने स्खलित वाणीमें अपना अन्तिम प्रणाम निवेदन किया,

उस समय उनकी मुखाकृतिकी विवर्णताके सम्बन्धमें कुछ न लिखा जाय, यही उत्तम होगा। बस, बाई वहाँसे धीरे-धीरे चलते हुए घर लौट आयीं और यह उनका पहला दिन था, जब वे घरपर ही शौच गयीं। बाई बहुत पहले ही मीराको यह संकेत दे चुकी थीं कि जिस दिनसे मैं घरपर शौच जाने लगूँ, तब तुमलोग समझ लेना कि मेरे जीवनके अब तीन दिन ही अवशेष हैं।

२ मईके दिन स्थिति काफी गम्भीर हो गयी। फोड़ेमें सीमातीत जलन थी, जिसे शान्त करनेके लिये गुलाब जलकी कई बोतलें उड़ेली गयीं, किन्तु उसके बाद भी जलनमें कोई अन्तर नहीं पड़ रहा था। साथ-साथ ज्वर भी अपनी सीमापर था। अब धीरे-धीरे बोल पानेमें भी बाई असमर्थ होती जा रही थीं।

अन्ततः वैशाख शुक्ल चतुर्थी, बुधवार, ३ मईका वह काला और क्रूर दिवस आ ही गया, जिस दिन भागलपुरके श्रीमहिला संघकी परम मधुर, गोरखपुरकी गीतावाटिकाकी परम सरस और वृन्दावनके यमुना तटकी परम दिव्य 'भाव निधि' सदाके लिये छिप जाने वाली थीं। सम्पूर्ण दिवस अत्यन्त गम्भीर स्थितिमें व्यतीत हुआ। बाईकी गम्भीर स्थितिको सूचना फोन द्वारा भाभीजीको कलकत्ता एवं मीराको भागलपुर बराबर दी जा रही थी। रात्रिके आठ बजेके बाद श्वासकी गति बढ़ गयी। नाड़ीकी गति भी क्रमशः विशृंखल होती जा रही थी। हृदयकी धड़कन मन्दसे मन्दतर होती जा रही थी। उनकी शय्याको चारों ओरसे घेरकर नर्मदा बाई, सावित्री बाई, साबो बाई, मनोरमा बाई, महादेवी और शशी बैठी थी। वे सब इस हृदय विदारक दृश्यको एकटक देख रही थीं।

रात्रिको एक बजकर बाइस मिनटपर उनके अर्द्ध-निमीलित युगल नेत्र सहसा खुल गये। वे पूर्णतः खुल गये अपने प्राणधन श्रीविहारिणी-विहारीकी ओर एकटक देखते रहनेके लिये। वे एकटक देख रही थीं अपने प्राणधन युगल-सरकारको; परन्तु निकटस्थ बहिनें सिसकती हुई एकटक देख रही थीं अपनी दिव्य भावनिधिको।

बाईके हलचल-रहित युगल नेत्र देख रहे थे अपने प्राणधनको, परन्तु घेरकर बैठी हुई बहिनोंके नेत्रोंकी प्रत्येक हलचलमें करुण क्रन्दन था। क्रन्दन था इसलिये कि इस दिव्यभावस्वरुपिणी निधिको क्रूर कालने सदाके लिये छीन

लिया। बाईने जिनको सदैव माँ कहकर पुकारा और अपनी जन्मदात्री मातासे भी अधिक महत्त्व दिया, उन नर्मदा बाईके अन्तरकी व्यथाको कोई भाँप ही नहीं सकता। वे नर्मदा बाई, जो प्रतिदिन क्षणे-क्षणे बाईके खाने, पीने, सोने, औषधिकी चिन्तामें डूबी रही थीं, जिनके लिये बाई अपनी आत्मजासे भी बढ़कर थीं, वे ही अपनी 'सोयी' बेटीको देखकर मुँह ढके हुए बुरी तरह विलाप कर रही थीं। वातावरणमें अब हा-हाकारके अतिरक्त बचा ही क्या था?

प्रातः होते-होते यह समाचार वृन्दावनमें चतुर्दिक फैल गया। दर्शनार्थी भक्तोंकी भीड़ उमड़ चली आ रही थी। श्रीराधानामका अखण्ड संकीर्तन तो चल ही रहा था। बाईके पावन 'कलेवर' को तमाल तरुके नीचे यमुनाजीकी रज बिछाकर लिटा दिया था। अब प्रतीक्षा थी भाभीजी एवं मीरा की। मीरा तो बीमारीका गम्भीर समाचार पाते ही भागलपुरसे चल पड़ी थी, जो मध्याह्न ग्यारह बजे वृन्दावन पहुँच गयी। भाभीजीको रात्रि ढ़ाई बजे फोन द्वारा सूचना दी गयी थी। वे भी प्रातः वायुयान द्वारा दिल्ली आकर टैक्सीसे डेढ़ बजे श्रीकृष्ण कुञ्ज पहुँच गयीं। अपनी अभिन्न हृदय प्राण सखीको 'सोते' हुए देखकर उनका हृदय विदीर्ण हो रहा था और वे परमार्त्त स्वरमें कह रही थीं—विधाताका विधान भी विचित्र ही है। जाना चाहिये था मुझ वृद्धाको, और चली गयी यह अर्द्ध वयसा।

वियोगकी परम आर्त्त और परम असह्य वेदनासे पछाड़ खाकर भाभीजी उनपर गिर पड़ीं और उस मीराके बारेमें क्या बतलाया जाय? मीराने आकर देखा तो वह दस मिनट तक स्तब्ध जड़वत् खड़ी रह गयी। वह निर्णय नहीं कर पा रही थी कि यह शयन है या 'गमन'। मातृ स्थानीया बाईके द्वारा बचपनसे ही उसने जो वात्सल्य पाया था, उसका वर्णन कर पाना असम्भव है। शून्य दृष्टिसे वह अपनी मातृ स्थानीया अनुपम जीवन-निधिको अपलक देख रही थी।

महाप्रयाणके कई दिन पहले भाभीजीसे बाईने कहा था—यदि अन्तर्जगत क्रियाशील और अनुकूल रहा, तो मैं 'चले' जानेके बाद भी मैं घण्टेके भीतर पाञ्चभौतिक कलेवरमें लौटकर आ सकती हूँ।

उनके इस कथनके आधारपर सभी भाई और बहिनें प्रतीक्षा कर रही थीं, पर सभी प्रतीक्षा करती ही रह गयीं। न तो लौटकर आयीं, न उनकी

पलकोंमें कोई स्पन्दन हुआ और न उनके नेत्रोंमें कोई हलचल उभरी। उनके नेत्र खुले ही रह गये और कुण्ठित मति, कुण्ठित गति मीरा भी खुले नेत्रसे एकटक अपनी 'सोई' हुई बाईको देख रही थी और सोच रही थी कि बाई लौटकर क्यों नहीं आतीं। सचमुच वह निर्णय नहीं कर पा रही थी कि यह मात्र शयन है या वस्तुतः गमन ही।

अचानक उस कुण्ठित मीराकी जड़तामें कुछ परिवर्तन दिखलायी दिया, कुछ नहीं, बहुत अधिक परिवर्तन। सच पूछा जाय तो बात यह थी कि वे 'सोयी' हुई बाई ही उस कुण्ठित मीराको अनुप्रेरित और अनुशासित करके संचालित कर रही थीं। अग्रिम कार्योंको सम्पन्न करनेके लिये यह संचालन जरूरी था। एकाएक उसमें अद्भुत शक्तिका संचार हुआ और वह समयोचित नितान्तासन्न कृत्योंको सम्पन्न करनेमें जुट गयी। अब तो अग्रिम कर्त्तव्य यही था कि बाईके जीवनके कठोर नियमोंकी रक्षा करते हुए आगेके सभी कृत्य किये जायँ। बाईके जीवनके नियम बड़े कठोर थे। किसी भी पुरुष या पैसाका स्पर्श जाने-अनजानेमें हो जानेपर वे छत्तीस घण्टेका उपवास किया करती थीं। पूज्या बाई द्वारा आजीवन स्वीकृत कठोर नियमोंकी परिधिको सावधानीपूर्वक दृष्टि-पथपर रखते हुए सभी कृत्य आरम्भ हुए। अब वह निर्णय लिया गया, जो विश्वके एक-एक हिन्दूको चौंका देनेवाला था और जो हिन्दू समाजके लिये एक अघटित प्रसंग था। आजतक कहीं भी और कभी भी ऐसा न सुना गया न देखा गया और न पढ़ा गया कि शवको वहन करनेवाले विमानको मात्र माताएँ-बहिनें अपने कन्धेपर ढोकर घरसे श्मसान भूमितक ले जायें और पूज्या श्रीबाईके कठोर नियमोंकी परिधिको देखते हुए ऐसा करना अनिवार्य था। यह महत्त्वपूर्ण कार्य ही तो एक ऐसा अघटित प्रसंग था और रहेगा, जिसने सभीको चमत्कृत कर दिया। अब यह तो निर्णय हो ही गया कि विमानको माताएँ और बहिनें अपने कन्धेपर ढोयेंगी।

इस निर्णयने सवार्धिक चमत्कृत किया सावित्री बाई सुन्दरकाको। इन सावित्री बाईके आश्चर्यकी सीमा नहीं थी। यमुना तटके एकान्तमें रात्रिके समय सावित्री बाईको बाई कह चुकी थी कि मेरे निष्प्राण कलेवरको और उसको वहन करनेवाली अर्थीको कोई भी पुरुष स्पर्श न करे। बाईके इस निर्देशकी तनिक सी भनक सावित्री बाईने किसीको भी, यहाँ तक कि भाभीजी, नर्मदा बाई, और मीराको भी इस क्षणतक नहीं दी थी। इसके बाद भी वे

देख रही थीं कि बिना संकेत दिये हुए ही वह कार्य अक्षरशः ज्यों-का-त्यों हो रहा है; जैसी बाईकी आन्तरिक अभिलाषा थी और कठोर निर्देश था। यह स्वयंमें एक प्रमाण है कि अन्त्य कृत्योंका संचालन-सूत्र उन 'सोयी' हुई बाईके हाथमें है।

निर्णयानुसार माताएँ-बहिनें विमानको अपने कन्धेपर ढोकर श्मसान घाटतक ले जायेंगी, परन्तु प्रश्न था उस श्मसान घाटकी दूरीका। वृन्दावनका श्मसान घाट यमुनाके किनारे पानी घाटका है और यह बहुत दूर है। इतनी दूरतक विमानको अपने कन्धेपर रखकर ले जाना माताओं-बहिनोंके लिये बड़ा कठिन पड़ेगा, अतः एक मध्यम उपाय सोच लिया गया। यही निर्णय लिया गया कि विमानको कन्धेपर लेकर माताएँ-बहिनें श्रीराधावल्लभजी और श्रीबिहारीजीको प्रणाम करते हुए विहार घाटतक ले जायेंगी और वहाँसे नौका द्वारा केशी घाटतक ले जायेंगी और फिर वहाँसे पानी घाटतक कन्धोंपर ले जाया जायेगा।

उपस्थित वृन्दवनवासी भाइयोंने एक स्वरमें यह बतलाया कि कोई भी मल्लाह शव-विमानको अपनी नौका द्वारा नहीं ले जायेगा। अब यह तो बड़ी ही कठिन समस्या थी। परामर्शके लिये भगवान सिंहजी मल्लाहको बुलाया गया। वह तो सदैव ही बाईको श्रीराधारानी मानते रहे हैं। उनका रोम-रोम बाईके प्रति प्रणत था। उन्होंने सजल नेत्र, श्रद्धापूरित वाणीसे कहा—नियमतः हमलोग किसी भी शवको नौकापर नहीं ले जाते, परन्तु पूज्या बाईके लिये यह नियम नहीं है। आपलोगोंको जितनी नाव चाहिये, हम तुरन्त ले आयेंगे।

इस समस्याके सरल होते ही एक अन्य प्रश्न सामने आ गया। नित्य श्रीराधानाम संकीर्तन करनेवाली बहिन श्यामलताजीने मीराको बताया—एक दिन मैं बाईके पास विहार घाटपर बैठी थी। जाड़ेके दिन थे। रात्रिका समय था। बाई गोयठा जलवा कर ताप रही थीं। बातचीतके मध्य उन्होंने कहा—श्यामलता! आज तो यहाँ गोयठा जल रहा है, परन्तु एक दिन मेरी चिता भी यहीं जलेगी।

यह सुनते ही मीरा तो अवाक् रह गयी। उसने मन-ही-मन बाईको इस वाणीको भी क्रियात्मक रूप देनेका निश्चय किया। उसको विश्वास था कि बाईने जब ऐसा कहा है तो सब बानक भी अपने आप ही बन

जायेगा। मीराने इस विषयमें जिस-जिसने भी बातचीत की, सभीने नकारात्मक उत्तर ही दिया—यह तो स्नान करनेका घाट है। आजतक यहाँ दाह-संस्कार तो कभी हुआ ही नहीं; और आज भी ऐसा होना असम्भव है।

यह सुनकर मीरा अत्यन्त चिन्तित एवं निराश हो गयी। उसे खिन्न-विपन्न स्थितिमें देखकर सम्मान्य पण्डित मधुरजी, जो अन्तिम संस्कार करवाने हेतु आये थे, उन्होंने कहा—मीरा! निराश होनेसे बात नहीं बनेगी। चलो, इस बारेमें एकबार आगे प्रयास तो करके देखें।

मीरा मधुरजीके साथ विहार घाटपर गयीं। बहुत पूछताछ करनेके उपरान्त पता चला कि शंकरजी पहलवान यमुनाजीके अनन्य भक्त हैं। यमुनाजीके किनारे ही उनकी कुटिया है। वे यमुनाजीका त्रिकाल पूजन करते हैं। यदि वे इस कार्यके लिये स्वीकृति दे देंगे, तो फिर कोई भी रोक-टोक नहीं कर सकता; परन्तु उनकी स्वीकृतिको असम्भव ही मानना चाहिये।

मीराने कहा—एक बार प्रयास तो करते हैं, फिर जैसी श्रीबिहारीजीकी इच्छा।

शंकरजी पहलवानके पास जाकर मीराने कहा—भैया! मैं आपसे एक प्रार्थना करने आयी हूँ।

उनके मुखसे एकाएक निकल पड़ा—तुम जो कहोगी, हो जायेगा।

मीराने विहार घाटपर बाईके अन्तिम संस्कार वाली बात बतायी तो वे एकदम चौंक गये और बोले—यह भला कैसे हो सकता है? यह तो स्नान घाट है। यहाँ आजतक कभी भी चिता जली ही नहीं है।

मीराने पुनः कहा—भैया! आप अपनी छोटी बहिनको एक बार वचन देकर अब मुकर रहे हैं?

यह सुनकर वे गम्भीर विचारमें पड़ गये और थोड़ी देर बाद बोले—अच्छा जाओ! जैसा मैं पहले वचन दे चुका हूँ, वैसा ही होगा। जाकर तैयारी करो।

उठते-उठते मीराने पुनः सविनय निवेदन किया—हमारा कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हो जाय, इसकी जिम्मेवारी आपपर है।

उन्होंने सिर हिलाकर स्वीकृति दे दी।

घर लौटकर मीरा अन्तिम यात्राकी तैयारीमें लग गयी। बाईको भाभीजी, नर्मदा बाई, सावित्री बाई, साबो बाई, मनोरमा बाई, मीरा और शशी, सबने मिलकर श्रीयमुना-जलसे स्नान कराया। पीली साड़ी पहनायी

गयी। श्रीअंगोंपर गोपी-चन्दन - ब्रजरजसे श्रीराधानाम लिखा गया। मुखका शृंगार किया गया। श्रीबिहारीजीकी प्रसादी चूनरी, जो बालूजी गोसाँई दे गये थे एवं राधावल्लभजीकी प्रसादी चूनरी, जो अक्षय कुमारजी गोसाँई दे गये थे, वह दोनों उढ़ा दी गयी। पुष्पोंके आभूषण गले-हाथ-पाँवमें पहनाये गये। इसके पश्चात् श्रीवृन्दावन धामके सिद्ध संत पूज्य श्रीबालकृष्णदासजी महाराजजीने पुष्प माला, पुष्प, इत्र अर्पण किया। उनके साथ परमादरणीय ठाकुर श्रीघनश्यामजी तथा परिकर वर्ग था, सभीने पुष्पार्चन किया। श्रीहरिदासजी नगरवाले पूज्य श्रीविश्वेशर शरण दासजी महाराज भी उपस्थित थे। दर्शनार्थियोंको अपार भीड़ एकत्रित थी, सबने प्रणाम किया और पुष्प चढ़ाये। बहिन श्रीद्रौपदी बाई रायजादाने पूज्या बाईके नित्य वन्द्य परम श्रीभाईजी और श्रीबाबाकी प्रसादी वस्तुएँ सादर-सस्नेह-साश्रु समर्पित की।

एक विशेष आश्चर्यजनक घटनाका उल्लेख करना आवश्यक है। यह बात बाईको स्नान करानेके पश्चात् बहिनोंकी दृष्टि-पथपर आयी। वह घटना यह थी कि नर्मदा बाईकी साड़ीके आँचलको बाईने दाहिने हाथकी अपनी दो अँगुलियों और अँगूठेसे कसकर पकड़ लिया था। आश्चर्य, परमाश्चर्य, परमाश्चर्यको भी महदाश्चर्यमें डुबा देनेवाली यह अद्भुत घटना थी। बाईको महाप्रयाण किये हुए उस समयतक पन्द्रह घण्टे हो चुके थे। और पन्द्रह घण्टे बाद विमानपर पधरानेके लिये स्नान करवाया जा चुका था। सबने मिलकर स्नान करवाया था। शृंगार किया गया था और उसके बाद यह घटना घटित हुई कि बाईने आँचलका छोर जोरसे पकड़ लिया था। वह विस्मयकारी चमत्कार देखकर सहसा नर्मदा बाईके विस्मित अधरोंसे विस्मय भरा स्वर फूट पड़ा—देख मीरा! मीरा देख!! बाईका अनोखा प्यार।

वहाँ उपस्थित सभी बहिनोंने अपनी आँखोंसे इस दृश्यको देखा और सब बहुत चकित बहुत विस्मित हो रही थीं। स्नेहाधिक्यमें आँखोंसे झर-झर आँसू बहाते हुए गहरा स्नेह भरा उपालम्भ देते हुए नर्मदा बाई एकदम फूट पड़ीं और कहने लगीं—बाई! जब तूँ म्हाने छोड़ ही दी, तो इन के पकड़ ह? (बाई! जब तू हमलोगोंको सदाके लिये छोड़कर चली ही गयी, तो अब आँचल क्या पकड़ती हो?)

बड़ी कठिनाईसे मीराने आँचलका वह छोर उन पावन अँगुलियोंसे अलग किया। आँगन स्थित तमाल वृक्षकी परिक्रमा करवाकर विमान यात्रा प्रारम्भ

हुई। विमान आरम्भसे अन्ततक बहिनोंके कन्धोंपर ही रहा। सर्वप्रथम श्रीराधावल्लभजीके द्वारपर प्रणाम कराया गया, फिर श्रीबिहारीजीकी पौरपर द्वितीय प्रणाम कराया गया। इसके पश्चात् यमुना स्नानके लिये जाते समय बाई जहाँ-जहाँ प्रणाम करती थीं, उन सभी पावन स्थलियोंपर विमानको क्रमशः विश्राम दिया गया। अन्तिम विश्राम विहार घाटपर ही होना था।

विहार घाटपर ही चिताका निर्माण हुआ था। पूज्या बाईके पावन कलेवरको चितापर विराजमान किया गया। चितामें अग्नि सावित्री बाई सुन्दरका एवं मीरा ने दी। इसके लिये तो बाईने उनको पहलेसे ही कह रखा था। ज्यों ही चिताकी लपटोंने उठना आरम्भ किया, उसी समय पूज्य बाबा श्रीविश्वेश्वरशरण दासजी एवं परमादरणीय ठाकुर श्रीघनश्यामजी, जो विमान यात्रामें साथ ही आये थे, उन्होंने 'बड़ों भाग वृन्दावन पायो' पद गाया। उपस्थित कई महिलाओंके द्वारा यह कहते हुए सुना गया कि चिताएँ तो बहुत जलती हुई देखी गयीं, परन्तु इस चिताकी बात तो कुछ विलक्षण ही है। चिताकी लपटें ऐसे ऊपर उठ रहीं थीं, मानों नृत्य करती हुई पुष्प-वृष्टि कर रही हों।

कोई विश्वास करे या न करे; किन्तु चिता-प्रज्ज्वलनके अगले विवरणका एक-एक वाक्य अक्षरशः सत्य है। लोगोंने जलका फव्वारा देखा है। फव्वारेके जलकी मोटी-पतली धारा नीचे पृथ्वीसे उठकर ऊपर नभकी ओर जाती है, फिर कुछ ऊपर जाकर वह धारा गोलाकार होते हुए नीचेकी ओर आती है। आती है चारों दिशाओंमें जलके कण बिखेरते हुए। ठीक यही स्थिति चितासे उठती हुई लपटोंकी थी। फव्वारेकी मोटी या पतली जल-धाराके समान वे लपटें ऊपर उठती थीं। ये लपटें लगभग दस-बारह फीटकी ऊँचाईतक जाती थीं और पुनः फव्वारेकी गिरती हुई जल-धाराके समान वे लपटें नृत्य करती हुई भूमिकी ओर आती थीं। उत्सवोंके अवसरपर अथवा दीपावलीके अवसरपर आतिशबाजी करते समय अनार नामकी एक फूलझड़ी छोड़ी जाती है, जिसकी रंगीन चिनगारियोंसे भरी हुई लपट भूमिसे पन्द्रह-बीस फीट ऊपर जाती है और फिर उसकी रंगीन चिनगारियाँ दर्शकोंकी आँखोंमें चकाचौंध पैदा करती हुई एक अनोखा नजारा दिखाती है। एक-एक व्यक्ति देख-देख करके आश्चर्य कर रहा था कि ऐसा चिता-प्रज्ज्वलन आजतक तो देखा नहीं गया, भविष्यकी कौन कहे?

इस चिता-प्रज्ज्वलनने जहाँ उपस्थित लोगोंकी आँखोंको चमत्कृत किया, वहीं सभीकी नासिकायें भी चमत्कृत हो रही थीं। ऐसी दिव्य सुगन्ध कहाँसे आ रही है? ऐसी सुगन्ध कभी भी अनुभवमें आयी ही नहीं। बाईकी चिताके प्रज्ज्वलनने विहार घाटपर उपस्थित जन-जनके अन्तरको विचित्र श्रद्धासे अभिभूत बना दिया और श्रद्धाधिक्यमें कोई बोलकर और कोई मन-ही-मन कर रहा था—परम आश्चर्य! परम आश्चर्य!! और परम विस्मय पूर्ण है बाईका सम्पूर्ण दिव्य भावमय व्यक्तित्व।

चितासे सम्बन्धित एक और तथ्यकी ओर संकेत करना आवश्यक लग रहा है। जिस समय बाईके निष्प्राण पावन कलेवरको चितापर लिटाया गया, आज श्मसान भूमिकी अधिष्ठात्री देवीको अपार प्रसन्नता हो रही थी। उसकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। आजतक न जाने कितने अगणित शव आये, जो पापी-तापी-शापीके थे, जो कामी-क्रोधी-लोभीके थे, जो क्रूर-कुटिल-कपटीके थे, जिनकी जीवात्माएँ चौरासीके चक्करमें फँसी हुई है और जो आवागमनके प्रवाहमें पड़े हुए हैं, पर आजकी बात तो निराली थी। यह कलेवर तो आवागमनके प्रवाहावर्त्तकी परिधिसे सर्वथा परे ऐसा पावन 'आवरण' है, जो दैवी जगत और संत जगतमें सदैव अभिनन्दनीय है और रहेगा। चिर प्रतीक्षाके उपरान्त, वस्तुतः अति सुदीर्घ कालीन प्रतीक्षाके उपरान्त क्वचित् ही कभी ऐसे पावन कलेवरका शुभागमन हुआ करता है।

आज उन अधिष्ठात्री देवीकी गोदमें वह परम पावन पाञ्चभौतिक कलेवर था जिसको बाईने अल्पकालिक अवधिके लिये केवल एक आवरणके रूपमें स्वीकार किया था। यह आवरण भी उनके द्वारा इसीलिये स्वीकार किया गया था कि निकुञ्ज धामसे भूतलपर उनका अवतरण हो सके। उनका अवतरण ऐसा प्रोज्ज्वल था कि उनके व्यक्तित्वसे प्रस्फुटित होनेवाले परम पावन प्रेमके दिव्य प्रकाशसे चारों दिशाएँ उद्भासित हो उठीं।

श्मसान भूमिकी अधिष्ठात्री देवी अंकस्थिता बाईको देखकर बार-बार यही सोच रही थीं कि यह परम पावन कलेवर उन प्रीति-प्रतिमा बाईका है, जिनके भावोंके प्रवाहको साधारण जगत जान न सका; जिनके अन्तरके सुगन्धको साधरण जगत पा न सका; जिनके हृदयकी सुहृदयताको साधारण जगत भाँप न सका और जिनके जीवनके स्वरूपको साधारण जगत आँक न सका। वे अधिष्ठात्री देवी देख-देखकर पुलकित हो रही थीं कि यह पावन

कलेवर उन महातपस्विनी बाईका है, जो मूक बलिदानकी साक्षात् प्रतिमा थीं, जो निर्मल नेहकी अविरल सरिता थीं, जो निस्वार्थ त्यागकी अश्रुत गाथा थीं और जो स्वयंकी महिमासे स्वयं ही महिमान्वित थीं। महाकालेश्वरकी नित्याराध्या उन देवीकी सदारसता बाईके सम्बन्धमें यही आस्था थी कि ये प्रीतिकी ऐसी प्रतिमा थी, जो जगतके लिये अनपहचानी रह गयीं; ये नेहकी ऐसी सरिता थीं, जो जगतके लिये अनदेखी रह गयीं; ये बलिदानकी ऐसी गाथा थीं, जो जगतके लिये अनगायी रह गयीं और ये लीलाकी ऐसी रसिका थीं, जो जगतके लिये अनजानी रह गयीं।

जब विमानको वहन करनेवाली सारी माताएँ–बहिनें और उनके साथ आये हुए स्वजन–परिजन चले गये, तब एकान्त अवसर पाकर वे देवी शून्यके पटलपर बाईका नाम स्वर्णाक्षरमें लिख रही थी और अपने नृत्यके प्रत्येक तालपर उन बाईकी गुण गाथा गा रही थीं। मध्य रात्रिके नितान्त एकान्तमें बाईकी चिता–भस्मको देखकर वे स्वयंके भाग्यकी सराहना कर रही थीं; उस चिता–भस्मको रह–रह करके प्रणाम कर रही थीं; उस चिता–भस्मकी जय–जयकार कर रही थीं और उस चिता–भस्मसे स्वयंका शृंगार कर रही थीं। वस्तुतः बाईकी महिमा अनिर्वचनीय है।

* * * *

अब तो अवशेष था मात्र भण्डारा और वह भी उन प्रेममूर्ति बाईका, जिनका जीवन ही था सबको खिला–पहना कर सुखी देखना था। वे कोई भी अच्छी चीज देखती थीं तो मन्दिरों, साधु–संतों, अतिथियोंके मध्य वितरण करवाये बिना स्वयं ग्रहण नहीं करती थीं। भले ही घोर शीतकाल हो, परन्तु किसी अभावग्रस्त व्यक्तिको सामने देखकर वे अपने तनके वस्त्रतक देनेमें संकोच नहीं करती थीं। उस शीत–ऋतुमें भी रातके समय वे यमुनाजीसे किसी गरम वस्त्रको धारण किये बिना ही घर आ जातीं तब उस समय उनके मुख–मण्डलकी प्रसन्नता देखते ही बनती थी। ऐसे ही अपने लिये आये हुए किसी विशेष भोग–प्रसादको पूरा–का–पूरा दूसरोंमें सहर्ष वितरित करवा देतीं। यह सब देखकर सेवा–परायणा बहिनें विकल होतीं थीं कि बाईने तो कण भी नहीं लिया। कभी–कभी वे बहिनें उसमेंसे कुछ सामग्री छिपाकर रख लेती थीं, किन्तु इस छिपावका उन्हें पता चल जानेपर वे सभी बहिनोंको क्षुद्र बुद्धिके लिये प्रताड़ित किये बिना नहीं मानती थीं। कभी–

कभी तो ऐसा अवसर भी आया है कि वे प्रायश्चित स्वरूप स्वयं चौबीस घण्टे बिना अन्न-जलके रह जातीं। बाई तो लोगोंको खिला-पिलाकर और पहना-ओढ़ा करके ही सुखी होती थीं।

वृन्दावनमें होनेवाले बड़े-बड़े भण्डारे, विशेषतया झरा भण्डारोंकी चर्चा जब वे सुनतीं, तब उनके मनमें निज सहज स्वभाव-वशात् यह बात उत्थित होती थी कि मीराके द्वारा भी ऐसा ही झरा भण्डारा कभी कराऊँ। झरा भण्डाराका अर्थ है साधु-संतों-महन्तों-ब्राह्मणों आदिको भोजन करानेका वह विशद आयोजन, जिसमें किसी भी समागतके लिये 'ना' का स्वर है ही नहीं। निमन्त्रित अथवा अनिमन्त्रित सभीका सहज स्वागत किया जाता है। झरा भण्डारोंकी चर्चा सुन करके वे पिछले लगभग आठ वर्षोंसे लगातार मीरासे इस विषयमें आग्रह भरा अनुरोध कर रही थीं—मीरा! तुम एक ऐसा विशाल झरा भण्डारा करवा दो, जिसमें श्रीवृन्दावन धामके सम्पूर्ण साधु-संत उन्मुक्त हृदयसे प्रसाद पायें और सभीको वस्त्र एवं दक्षिणा भी दी जाये।

ऐसे विशाल भण्डारेके लिये प्रचुर धन-राशिकी आवश्यकता होती है और धन-राशिके अभावमें मीरा बराबर अपनी असमर्थता प्रकट करती रही। १८ अप्रैल, १९९५ को मीरासे अन्तिम विदा लेनेके पूर्व भी बाईने आग्रहपूर्वक कहा था—देखो मीरा! तुम्हारे ऊपर झरा भण्डारेका ऋण है।

मीराने सहज रूपसे उत्तर दे दिया था—बाई! जब कभी आप आवश्यक धनकी व्यवस्था करवा देंगीं, तो हो जायेगा। परन्तु अब तो बाईके वे शब्द मीराके हृदयको बार-बार मथ रहे थे कि मैंने बाईकी इच्छा उनकी उपस्थितिमें ही क्यों नहीं पूरी कर दी। इस बातका उसे बहुत पश्चात्ताप था, परन्तु अब वह विवश थी। हो भी क्या सकता था? अवसर हाथसे निकल चुका था। पश्चात्ताप भरे मनसे उसने निश्चय किया कि सोलहवें दिन जो ब्राह्मण भोजन होता है, उसके दूसरे दिन ही झरा भण्डारा करना है।

यह अपनेमें एक बहुत विशाल कार्य था। इसके लिये बाईकी कृपासे सम्पूर्ण साधन-सामग्री एवं सहयोगी जन स्वत: ही जुटते चले गये और निश्चित समयपर विशाल झरा भण्डारेका आयोजन हो गया। हम सभी आश्चर्यसे देख रही थीं कि उस दिन सब मिलाकर लगभग पाँच हजार व्यक्तियोंने प्रसाद पाया होगा जिसमें साधु-संत, महन्त, गृहस्थ, विरक्त, कीतर्निया बहिनें, मल्लाह, अभ्यागत, दरिद्र-नारायण आदि सभी थे। लगभग ढ़ाई हजार संतों-

महन्तोंको तो अँचला और दक्षिणा भी दी गयी।

भण्डारेकी विशालता और व्यवस्थाको देखकर परोसनेवालोंको ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों बाई ही सहस्र हाथोंसे स्वयं परोस रही हैं और सँभाल भी वे ही कर रही हैं। प्रसाद पानेवाले साधु-संत भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कह रहे थे कि वृन्दावनमें झरा भण्डारे तो प्राय: होते ही रहते हैं, परन्तु ऐसा विलक्षण और भाव पूर्ण झरा भण्डारा आज ही देखनेमें आया।

श्रीधाम वृन्दावनके वेणु-विनोद कुञ्जकी परम सम्माननीया बहिन श्रीदेवीजीको झरा भण्डारा सम्पन्न होनेके बाद यह प्रत्यक्ष अनुभूति हुई कि एक बड़ी परातमें झरा भण्डाराके लिये बनी हुई सब सामग्री (गुलाब जामुन, बुँदिया, भुजिया, कचौड़ी, रायता, पूड़ी, सब्जी आदि) परोसी हुई है और बाई प्रसन्न मुद्रामें आरोग रही हैं। यह तो बाईका सदैवका सहज स्वभाव ही था कि वे सबको खिलाकर ही स्वयं खाया करती थीं। बहिन श्रीदेवीजीकी यह अनुभूति अपनेमें एक बहुत बड़ा प्रमाण है कि इस झरा भण्डारेसे उन्हें कितनी प्रसन्नता हुई थी और उन्होंने स्वयं उसे स्वीकार भी किया।

इसके पश्चात् बाईकी अत्यन्त प्रिय स्थलियोंपर भी भण्डारोंके आयोजन हुए, जिसमें वृन्दावनमें श्रीबाँकेबिहारीजी, श्रीराधावल्लभजी, श्रीहरिदास नगर, टाटिया स्थान, पिसी माँके मन्दिर, श्रीबरसाना धाम, श्रीगिरिराजजी, भागलपुरमें श्रीमहिला संघ, गोरखपुरमें श्रीगीतावाटिकाके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। श्रीराधावल्लभजीके भण्डारेमें सम्मिलित होनेवाले एक सम्माननीय गोस्वामी महाराजकी एक उक्ति थी—मैं कभी श्रीराधावल्लभजीके मन्दिरमें आकर प्रसाद नहीं पाता हूँ। मैं नहीं जानता कि वह कौन-सी दिव्य आत्मा थी, जो मुझे यहाँ बुला लायी।

वृन्दावनमें तथा भिन्न-भिन्न स्थानोंपर विशाल भण्डारोंका जो सुन्दर आयोजन हुआ, उनकी विशदता और श्रेष्ठताको देखकर मीराकी भावनाओंको बड़ा विश्राम मिला कि उन मातृ-हृदया बाईके द्वारा सौंपा हुआ यह दायित्व भी पूर्ण हुआ और पूर्ण सन्तोष मिला सदा समर्पिता भाभीजीकी विकल और कोमल भावनाओंको भी।

जिस समय झरा भण्डाराकी योजनाका प्रस्ताव मीराने भाभीजीके सामने रखा था, अर्थाभावके कारण उन्होंने एक बार सर्वथा अस्वीकार कर दिया था। भाभीजीकी अस्वीकृतिको सुनकर मीराने साहसपूर्वक एक निवेदन किया—

माँ! बाईके प्रति यह मेरे जीवनका अन्तिम कार्य है। बाईने मुझसे कह भी रखा था। अर्थाभाव तो है; परन्तु मेरा विश्वास है कि बाईकी कृपासे कोई भी अभाव इस कार्यकी पूर्णताके मार्गमें अवरोध उपस्थित नहीं करेगा। आप मनसे एक बार आशीर्वाद दे दें। बस, यही आपसे प्रार्थना है।

मीराके मनकी उमंग, मनका साहस, मनकी भावनाको मनकी आँखोंसे देखकर भाभीजीकी आँखें भर आयीं। वे चाहकर भी कुछ बोल नहीं पायीं, किन्तु प्रसन्न मनसे आज्ञा तो देनी ही थी और उसका प्रतीक बना उनका वरद हस्त कमल। उन्होंने वात्सल्य सना वरद हस्त कमल मीराके मस्तकपर रख दिया और सचमुच आश्चर्योंकी शृंखला लग गयी। जगह-जगहसे बैंक-ड्राफ्टोंके आनेका ताँता लग गया। सारा कार्य महदानन्द रीतिसे सम्पन्न हुआ। झरा भण्डारेकी परम सुन्दर सम्पन्नता और परम सुखद सफलता देखकर भाभीजी बार-बार उन्मुक्त मनसे कह रही थीं—देख मीरा! आज भी बाई परोक्ष रूपसे कैसे सारे काम सुन्दर रीतिसे करवा रही है।

एक-दो दिन बीत गये। बाईके तिरोभावसे सम्बन्धित विभिन्न दायित्वोंके सम्पन्न होनेपर अब भाभीजीके मनको फुरसत मिली एकान्तमें रोनेके लिये। कमरेके एकान्तमें चादर ओढ़कर लेटी हुई भाभीजीके मनमें जीवन भरकी बाईकी स्मृतियोंका तूफान उठ आया। स्मृतियोंका जो तूफान आया, उसका अनुमान कोई साधारण प्राणी कर ही नहीं सकता। भाभीजीके हृदयमें दु:ख-बोधकी भावनाका समुद्र भीषण रूपसे उछल रहा था—अब बाईका मुख देखनेका अवसर नहीं मिलेगा। अब बाईके पास नहीं बैठ पाऊँगी। अब बाईसे लीला-चर्चा सुननेको नहीं मिलेगी। मेरे मनमें आग्रह बना रहता था कि बाई यह खा ले, यह पीले, अब खाने-पीनेकी किससे कहूँगी? वर्षमें जब-जब उत्सवके अवसर आते थे, तब वह पदे-पदे बतलाया करती थी कि क्या करना है और कैसे करना है, अब यह सब बतलानेके लिये कौन आयेगा? उसे भावी विपत्तियोंका, आपत्तियोंका, आभास मिल जाया करता था। पूर्वाभास मिलते ही वह सावधान कर दिया करती थीं तथा निवारणका उपाय भी बतलाया करती थीं। अब तो उन सारी आपत्तियों-विपत्तियोंको प्रारब्धानुसार झेलना और भोगना ही पड़ेगा। उसकी उपस्थितिमें, उसकी सन्निधिमें जो संकीर्तन-रस बहा करता था, वह सदाके लिये सपना हो गया। और क्या कहा जाय; प्यारकी अधिकतामें रूठने और झगड़नेका प्रसंग अब

जीवनमें आयेगा ही नहीं! कभी मैं उसको मनाती थी और कभी वह मुझे मनाती थी। उसीने मेरा कष्ट अपने ऊपर लेकर मुझे जीवन दान दिया और स्वयं आजीवन कष्ट भोगती रही। वह कष्ट ही उसके महाप्रस्थानका कारण बना और मेरे कारण ही संघकी बहिनोंका आध्यात्मिक सुख छिन गया, वह सुख सदाके लिये छिप गया।

यदि भाभीजीके हृदयमें दु:ख-बोधका सागर बुरी तरह उछल रहा था, तो सुख-बोधकी आकाश-गंगा भी तन-मनपर अमृत-कणोंकी वर्षा कर रही थी। वे मन-ही-मन अपने सौभाग्यकी सराहना करते हुए कह रही थीं—बाईने मुझे जो सौभाग्य दिया, वह शायद किसी विरलेको ही मिलेगा। श्रीप्रिया-प्रियतमकी नित्य सेवामें रहनेवाली परम स्नेहास्पदा अनुचरी मानव-कलेवर स्वीकार करके सदा मेरे साथ रही, यह एक परम-परम दुर्लभ सौभाग्य है। श्रीभाईजी और श्रीबाबाके श्रीचरणोंमें बार-बार प्रणाम, अनन्त बार प्रणाम। जीवनके काल-प्रवाहमें जितने अनन्त क्षण हैं, उससे भी अनन्त गुना प्रणाम।

गीतावाटिकाकी उन दो महान आध्यात्मिक विभूतियोंने ही ऐसी दिव्य भाव-निधि मुझ अकिञ्चनाके पास धरोहरके रूपमें सौंपी थी। एक ओर श्रीभाईजी और श्रीबाबा जैसे परम रसिक संत और दूसरी ओर उनकी यह परम अनुपम भाव-निधि; यह कितना बड़ा सौभाग्य है कि उन दोनोंके मध्यकी एक श्रृंखला बननेका अवसर मुझ साधारण जीवात्माको मिला।

भाभीजीकी भावधाराको आज विराम मिल ही नहीं रहा था। चादर ओढ़े-ओढ़े भाभीजी न जाने कहाँ-कहाँ बहती हुई चली जा रही थीं। वे तनसे सोयी हुई थीं, परन्तु मनसे श्रीभाईजीके श्रीचरणोंपर मस्तक रखकर कातर निवेदन कर रही थीं—आपने अपनी दिव्य भाव-निधि मुझे सौंपी। जैसी बनी, वैसी सँभाल मैं अपनी अल्प क्षमताके अनुसार करती रही। मुझसे कोई भी भूल-चूक हुई हो, तो उसके लिये आप मुझे अपनी अबोध औार मूर्ख बहिन समझ कर क्षमा कर दीजियेगा। यही प्रार्थना रह-रह करके श्रीबाबाके श्रीचरणोंपर माथा टिकाये हुए कर रही थीं।

तभी उन आकुल स्मृतियोंके साथ-साथ एक चिन्ता उभर आयी, भागलपुरके श्रीमहिला संघके बारेमें और श्रीमहिला संघमें रहनेवाली माताओं-बहिनोंके बारेमें। चिन्ता करते-करते मन-ही-मन एक आश्वासन भी मिल गया। बाईने भाभीजीको बतला दिया था कि श्रीमहिला संघकी रज कणसे

मीरा तिलक करके मैंने उसका सारा दायित्व सौंप दिया है। अब बाईकी शक्ति ही मीरामें सक्रिय होकर सारा कार्य सँभालेगी। मनको यह बहुत बड़ा आश्वासन था।

इस आश्वासनसे प्राप्त होनेवाली जो सुखानुभूति थी, इन सुखानुभूतिसे कई गुना अपितु अनन्त गुना सुखानुभूति हो रही थी भाभीजीको बाईके जीवनकी सम्पूर्ण दिव्य-यात्राके दर्शन करके। यह दर्शन हो रहा था मनकी आँखोंसे और मनकी आँखें देख रही थीं वह क्षण, जब बाई सर्वप्रथम भाभीजीके पास भागलपुरमें आयी थीं और यह क्षण, जब बाई वृन्दावनमें उनसे सदाके लिये अलग हुईं।

भाभीजीको ज्ञात था बाईके भू-तलपर अवतरणका हेतु; वह था पूज्य श्रीसेठजी, पूज्य श्रीभाईजी एवं पूज्य श्रीबाबाके दर्शन करने का। भाभीजीको पूर्ण सुखानुभूति हो रही थी कि बाईकी वह एक परम दिव्य उत्कट लालसा भी पूर्ण हुई।

नित्य वन्दनीया दिव्य भावस्वरूपा रुक्मिणी बाईके रूपमें अवतरित उन परम स्नेहास्पदा महाभागा अनुचरीको संत दर्शनका न केवल दिव्य लाभ हुआ, अपितु उनका संरक्षण भी प्राप्त हुआ।

बाईका जीवन था दिव्य संतत्वका ऐसा मूर्तिमान स्वरूप, जो युग-युगके लिये स्मरणीय अनुकरणीय बन गया। जिन बाईके परम पावन कलेवरमें अगणित सखियाँ, सहेलियाँ, सहचरियाँ, मञ्जरियाँ, अनुचरियाँ आदि-आदि समय-समयपर आविष्ट होकर दिव्य-भावोंकी अनोखी लीलाओंका विस्तार करें, उन बाईकी परमादर्श जीवन-चरित्र तो संत-जगतका एक अद्वितीय और अनुपम उदाहरण है।

अपने भाव-वैभवके सौरभसे जन-जनको अनुप्रेरित और आनन्दित करती हुई वह परम स्नेहास्पदा महाभागा अनुचरी पुनः अपने परमाराध्य श्रीप्रिया-प्रियतमकी नित्य सन्निधिमें पहुँचकर नित्य सेवामें संलग्न हो गयीं।

परिशिष्ट

पूज्या बाई द्वारा निर्दिष्ट आशीर्वादके बोल

भाग सुहाग बन्यो रहे, श्रीवृषभानु दुलारी को।
प्रियतम सदा सुखी रहें, श्रीराधा प्यारी को॥
राधा-माधव की जोड़ी, जीओ जुग लाख करोड़ी।
दोनों हो सुखी महान, बोलो जय राधे-राधे॥
बोलो जय राधे-राधे बोलो जय राधे-राधे।
राधा माधव की प्राण, बोलो जय राधे-राधे॥
राधा मधुमयी महान, बोलो जय राधे-राधे।
दोनों दोनों के प्राण, बोलो जय राधे-राधे॥
दोनों ही मधुर महान, बोलो जय राधे-राधे।
दोनों सखियों के प्राण, बोलो जय राधे-राधे॥
दोनों ही एक भगवान, बोलो जय राधे-राधे।
बोलो जय राधे-राधे, बोलो जय राधे-राधे॥
राधा माधव की प्राण, बोलो जय राधे-राधे।
राधा मधुमयी महान, बोलो जय राधे-राधे॥
दोनों ही परम उदार, बोलो जय राधे-राधे।
दोनों ही रस भंडार, बोलो जय राधे-राधे॥
बोलो जय राधे-राधे, बोलो जय राधे-राधे।
राधा माधव की प्राण, बोलो जय राधे-राधे॥
राधा मधुमयी महान, बोलो जय राधे-राधे।

हमारी राधा बहिन की जय।
प्रियतम बाँके बिहारी लाल की जय।
प्रिय सखी श्रीललिता जी की जय।
श्री विशाखा जी की जय।
श्रीरंगदेवी जी की जय।
श्री सुदेवी जी की जय।

श्रीइन्दुलेखा जी की जय।
श्रीचित्रलेखा जी की जय।
श्री तुंग विद्याजी की जय।
श्रीचम्पकलता जी की जय।
सखी, सहेली, सहचरी, मंजरी,
प्यारी सखियों की जय।
श्री यमुना रानी की जय।
श्री वृन्दा रानी की जय।
हमारी राधा महारानी की जय।
महाभाव रसराज की जय।
श्री राधा-राधा नाम की जय।
श्री राधा-राधा धाम की जय।
श्री राधा-राधा भाव की जय।
श्री राधा राधिकेश्वर की जय।
कालिय दमन बिहारी लाल की जय।
बोल गिरिराज धरन की जय।
गिरिराज महाराज की जय।
महाभाव रसराज की जय।
गौरांग महाप्रभु की जय।
संकीर्तन मंडली की जय।
भक्त मंडली की जय।
परम पूज्य श्री सेठजी की जय।
परम पूज्य श्री भाईजी बाबा की जय।
हमारी राधा बहिन की जय।
प्रियतम नन्दनन्दन की जय।
श्री वृन्दावन अधिष्ठात्री देवी की जय।
बोलो सच्चे दरबार की जय।
श्री वृन्दावन वृजधाम की जय।
महा मधुर श्री राधा नाम की जय।

श्री वृन्दावन बिहारी लाल की जय।
श्री राधा वल्लभ की जय।
श्री राधा रमण की जय।
श्री राधा किशोरी की जय।
सुन्दर जोड़ी की जय।
नील गौर की जय।
गौर नील की जय।
मंजू श्यामा की जाय।
लड्डू गोपाल की जय।
जै जै श्री राधे।

अष्ट सखी करती सदा, सेवा परम अनन्य।
राधा-माधव युगल की, कर निज जीवन धन्य॥
इनके चरण सरोज में, बारम्बार प्रणाम।
करुणा कर दें श्रीयुगल, पद रज रति अविराम॥
करो कृपा श्री राधिका, बिनवौं बारम्बार।
बनी रहे स्मृति मधुर शुचि, मंगलमय सुखसार॥
श्रद्धा नित बढ़ती रहे, बढ़े नित्य विश्वास।
अर्पण हों अवशेष अब, जीवन के सब श्वास॥
बोलो ऊँचे बरसानेवाली की जय।
मैं बेटी वृषभानु बाबा की, लाड़ली कीरति मैया की।
बहिन छबीली श्री राधा की, प्यारी कृष्ण कन्हैया की॥
नन्द के लाला बोलो गौरांगी बाला की जय।
गौरांगी बाला बोलो नन्द के लाला की जय॥

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीरुक्मिणी बाई लीला-लहरियाँ

मनुहार

प्रीतम प्यारी बाई हमारी परम करुण सुखमूल।
बीन-बीन कर लाई हूँ कुछ भाव भक्ति के फूल।
पोई सरस यह सुरभित माला रूप सरूप अनुकूल।
पर अहंकार में मत्त जीव से हो ही जाती भूल।
सुमन ढेरी में दुबका हो यदि कोई काँटा कोई शूल।
अपनी दासी के प्रमाद को तनिक न देना तूल।
बना के रखना प्यारी अपने पद पंकज की धूल।
लेना स्वयं सुधार यदि हो रुचि-भाव प्रतिकूल।
दयामयी मुझको भी ले चल उस कालिन्दी कूल।
डार कदम्ब की दे गलबाँही जहाँ रही तुम झूला झूल।

आविर्भाव

सुन कर करुण पुकार आर्त की द्रवित प्रिया-प्रीतम हो जायें।
स्व-स्वरूप निज सहचरि के मन नव संकल्प जगायें।
क्रियाशील हो उठे प्रकृति सब लीला मंच सजायें।
तब नवीन रसमयी लीलायें दृष्टी-पथ में आये॥ १ ॥
दिव्य अवतरण पुनि आरोहण की सरस विचित्र कहानी।
जब कुंज-भवन की प्रिय सहचरि ने संत दरस की ठानी।
अपने भक्त उपासक पर थीं रीझीं मातु भवानी।
भाद्रपद कृष्णा चतुर्थी थी जब प्रकटीं सखी सयानी॥ २ ॥

थी रंगमंच की सूत्रधारिणी त्रिपुरसुन्दरी माई।
अपरापरा प्रकृति की संधी उसमें बनी सहाई।
दिव्य भावों के रस में सानकर सारी सौंज सजाई।
सखी रूप गुण हाव–भाव दे प्रतिमा एक बनाई॥ ३ ॥
अंतरवतनी हुई हिमाञ्चला दिव्य कांति तन छाई।
मंगलमय ग्रह लगन तिथी में जन्मी रुक्मिणी बाई।
शैशव बाल कैशोर अवस्था नियत समय पर आई।
विस्मृत करा स्वरूप को अपने लीला ललित कराई॥ ४ ॥
विक्रम सम्वत् दो हजार में वर्ष शेष थे चार।
चार ही दिन के अन्तर पर था श्रीकृष्ण जन्म त्योहार।
मीन राशि मध्याह्न बेला, रेवती नक्षत्र शनिवार।
जन्मी नाथनगर के छेदी शुक्ल घर बाई परम उदार॥ ५ ॥
सूत्रधार ने भावी प्रस्तुति की पटकथा सजायी।
साँवर और सखियों को उनकी भूमिका सब समझायी।
सभी दृश्य रसमयि लीला के देने लगे दिखायी।
सूत्रपात अति सुखद ही था पर पटाक्षेप दुखदायी॥ ६ ॥
प्रीतिविवश हो दिव्य युगल ने लीला माध्यम जिसे बनाया।
सूत्रधार ने उसी के हेतु नव लीला–मञ्च सजाया।
लीला अभिनय रूप भाव–गुण सभी के मन को भाया।
नित्यसखी परिकर की वह थी अपनी ही व्यूह काया॥ ७ ॥
कुञ्ज केलि की नित्य सहचरी है यह जीवन प्रान।
प्रीतम प्रेरित इस रसमयि ने ली संत दरस की ठान।
उसी के कारण भूतल पर यह चली आयी मतिमान।
उसके लीला सुखमें आवे अब न कोई व्यवधान॥ ८ ॥
था सभी को अतिशय प्यारा लगने लगा नवसखी शरीर।
सखियों से नित ना मलने की हृदय में थी ही पीर।
सदा हम साथ रहेंगी कह कर उसे बँधाई धीर।
प्यार देखकर उनका अतिशय झरा नयन से नीर॥ ९ ॥

अघटन घटना घटीयसी नित बुनती रहतीं जाल।
वर्ष चारिदस तक स्मृति-पथ पर झीनी यवनिका डाल।
निज स्वरूप कभी याद कराती भुलवाती तत्काल।
प्रियतम और सखी मण्डल नित करता रहा सँभाल॥ १० ॥

गोलोकमें प्रेम-कलह

दिया भेज उसको धरती पर सखियों को नहिं चैन।
प्यारी सखी मधुर मिलन हित आकुल सबके नैन।
उसे पुनः लौटा लाने को छटपटायें दिन रैन।
साँवर को भी सुनने पड़ते मृदुल अटपटे बैन॥ १ ॥

मञ्जरी सहचरि सखिजन-मण्डल आन जुटी एक ठाँई।
भावी सतत विछोह कल्पना से मन में थी अकुलाईं।
वाही थल पर प्रिय-प्रियतम को घेर घार कर लाईं।
युग-युग में जो की करतूतें श्याम को सभी बनाईं॥ २ ॥

हम तो यहाँ नित्य सुख भोगें वह है निपट अकेली।
भूल न पायें किसी तरह हम वह है प्राण-सहेली।
बिनु उसके सब नीरस लागें कुञ्ज-भवन बनकेली।
कुञ्जबिहारी! निकुञ्जनिधी यह भूतल पर क्यों ठेली?॥ ३ ॥

प्राणेश्वरी हृदयेश्वरी सखि कह जिस जिस को अपनाया।
अपनी निज अभिन्नरूपा कह जग में नाम कमाया।
निर्मोही! मनमोहन! तुमने हृदय से जिसे लगाया।
लीलाधारी! नरलीला में उन्हीं को बली चढ़ाया?॥ ४ ॥

रसमयि मीठी बातों में तेरी हम सरला आ जायें।
नित्य सुहाग और नित्य रास के हम सब स्वप्न सजायें।
रसिक-शिरोमणि! तेरे प्यार पर रीझ-रीझ इठलायें।
तभी तुम्हारी यशलिप्सा खड़ी कर देती बाधायें॥ ५ ॥

अब तक तुमने की मनमानी अब हम करेंगी शासन।
हम जो कहेंगी वही करोगे दो पक्का आश्वासन।
अखर न पाये मेरी सखी को कुञ्जभवन निष्कासन।
जब चाहें हम मिलें परस्पर है जब तक निर्वासन॥ ६॥
क्रूर कुटिल खल कुमति कलंकी कलियुग के नर-नारी।
निज स्वरूप की रक्षा कैसे करेगी सखी हमारी।
यह गौरांगी अति कोमलांगी है सरल स्वभाव की प्यारी।
उसके स्वत्व की सार सँभाल में है रहना तुम्हें बिहारी॥ ७॥
जहाँ सखी है रहोगी तुम भी हे बरसाने वारी।
नव-वृन्दावन बसे वहीं पर हे गोवर्धन धारी।
नित नव रस-विलास केलि सुख विलसो हे बनवारी।
लीला सुख से रहे न वञ्चित अपनी प्राण पियारी॥ ८॥
उसके दिव्य कलेवर को कोई पुरुष न छूने पाये।
शुद्ध सत्वमय निर्मल काया निर्मल ही रह जाये।
हमें धरा पर नित्यमिलन की भाव भूमि मिल जाये।
किसी लोक का कोई भी प्राणी उसे न कभी सताये॥ ९॥
राधा की यह कायव्यूह सखी है स्वरूप से राधा।
हमने तुमने सदा सभी ने राधा को अपराधा।
राधा-राधा नाम गान में है ही प्रीत अगाधा।
राधा नाम के गान श्रवण में उसे न आये बाधा॥ १०॥
पर दुःखकातर हृदय है उसका तुरत द्रवित हो जाये।
रोग शोक भय, दुःख अभाव वह किसी का सह नहीं पाये।
परम अकिंचन सखी हमारी द्रव्य स्पर्श से भी घबराये।
करुणामयी की दया दृष्टी से, विपदा सब मिट जाये॥ ११॥
सारी शर्तें मान श्याम ने करी न आनाकानी।
प्रेम कलह का निर्णय सुनकर सखियाँ सब हरषानी।
तिरछे नयन बिलोकि श्याम घन सूत्रधार मुस्कानी।
रही सशंक हृदय में सोचति नटवर चाल पुरानी॥ १२॥

अति प्रसन्न थीं सुख से फूली सखियाँ कर समझौता।
पर यह नयी व्यवस्था बन गयी दुर्गति ही का न्योता।
इस मधुर खेल में मात दे गया नन्द का वह इकलौता।
पर गया उनकी काट हेतु फिर अपने हाथ सरौता॥ १३॥

सतत सखी के संग रहने का मिलते ही अधिकार।
सब कुछ उनको देकर भी था श्याम में हर्ष अपार।
निर्विवाद प्रतिकार किये बिनु, हो गया वह तैयार।
वचन भी पूरे किये गये सब समय-समय अनुसार॥ १४॥

आयुकुल अनुरूप हुई सब लौकिक रसमयि लीला।
श्याम रसिक और प्रिय सहचरि का अद्‌भुत खेल रसीला।
एक बार वह रीझा जिस पर करे न बन्धन ढीला।
सदा संग-संग रहा डोलता लम्पट छैल छबीला॥ १५॥

बचपन में तो सखियाँ छिप-छिप उसको खेल खिलातीं।
स्वयम् नाचती गाती थीं और संग संग उसे नचातीं।
सो जाती तो सपनों में गोलोकधाम ले जातीं।
तुलसी चुनतीं बर्तन मलतीं हर काम में हाथ बँटाती॥ १६॥

पितृभवन में विग्रहरूप धन पूजित थे ही प्यारे।
समधुर व्यञ्जन भोग लगें तो करते इसे इशारे।
आवो संग-संग खायें प्यारी मेरा साथ निभा रे।
बाई को स्वयम् ही खाते लख कर भौचक्के थे सारे॥ १७॥

विवाह एवं बिछोह

वर्ष ग्यारहवें बहू बन गयी लोक रीति अनुसार।
बौसीं ग्राम मिश्र कुल शोभित मिले उसे भरतार।
प्रथम मिलन को मधुर बतकही का निकला यह सार।
दैव योग से इष्ट युगल के रहे युगल सरकार॥ १॥

भाव पूर्ण दोनों हृदयों में सरसी प्रेम हिलोर।
पग का घुँघरू बनूँ रसिक के ललक रहा मनमोर।
बन राधा उर हार मध्य मणि चमकूँगी चहूँ ओर।
युगल सरस लीला चर्चा में हुआ रैन से भोर॥ २॥
जो थी सब दिन यदुनन्दन की उसे कौन ले जाता।
द्वापर में तो थी ही उसकी पुनः जुड़ा वही नाता।
दिव्य श्याम चिन्मय वपु बिनु उसे कौन छू पाता।
तेरह वर्ष की अल्प वयस में हो गये वाम विधाता॥ ३॥
नाट्य मंच से कृष्ण वेष धरे घर लौटे यदुनन्दन।
बाई का अनुरोध यही था किया आरती वन्दन।
सुख रजनी भई काल रात्री मचा शोर अरु क्रन्दन।
भावी लीला में बाधक वह टूट गया दृढ़ बन्दन॥ ४॥
पति विछोह से मर्माहत हो निज स्वरूप गई भूल।
सती होने की उठी लालसा समुझि सुमंगल मूल।
करि षोडष श्रृंगार चिता पर हरषि चढ़ाये फूल।
विह्वल होकर चली सुहागन रही प्रीति रस फूल॥ ५॥
दे मुखाग्नि, करि परिकरमा, चिता चढ़न जब लागी।
सन्यासी तेही क्षण एक प्रगटे, कहा–रुको परम बड़भागी।
अभी तुम्हें इस जग में रहना तुम आयीं जेहिं लागी।
सुनत संत के वचन ठगी रही सती होन की त्यारी॥ ६॥
एक अपरिचित साँवर बालक ने पकड़ पिता का हाथ।
मेरी बात मान कर इसको रख लो अपने साथ।
यहाँ न इसका अपना कोई है यह यहाँ अनाथ।
यही करूँगा कथन तुम्हारा है मेरे सिर माथ॥ ७॥
दिया ससुर ने पूजित विग्रह और हृदय का प्यार।
यही है मेरा पुत्र यथार्थ में और तेरा भरतार।
नन्दोई गिरिराज शिला दी जीवन की आधार।
वस्त्र द्रव्य आभूषण देकर उस को किया दुलार॥ ८॥

पहुँची जब सुल्तानगंज तब किया गंगा स्नान।
सभी वस्त्र आभूषण बाँटे पहन श्वेत परिधान।
उतरे वस्त्र साँवरा लेकर हो गया अंतर ध्यान।
चीर हरण कर, भंग आवरण कर दिये कृपानिधान॥ ९॥

पिता गृह से महिला संघ तक

श्रद्धा रुचि उत्साह भरी लगी विग्रह सेवा करने।
ठाकुर सेवा निमित्त भोर में गयी कूप जल भरने।
लगा कूप का खस्ता पटरा चरमरम-चरमर करने।
टूटा पटरा गिरी, भुजा में थाम लिया गिरधन ने॥ १॥
चोट न लगी, वस्त्र नहीं भीजे, रही आलिंगन सुख लूट।
बिसरी प्रियतम अंक में सुख-दुःख, था सम्बन्ध अटूट।
सोच रही थी कहीं न जाये भुजबंधन यह छूट।
पर जन्म-जन्म की प्रीति पुरातन जाती कैसे टूट॥ २॥

कूप से बाई बोली

बाबूजी मेरे पूजित विग्रह दीजिये तो तत्काल।
यहीं करूँगी ठाकुर सेवा सुखी हूँ परम निहाल।
कूप से सुन बाई की वाणी उसे दिया तुरंत निकाल।
गहरे जल में रही सुरक्षित सभी चकित बेहाल॥ ३॥
पति मान कर विग्रह सेवा करे प्यार मनुहार।
घर के सभी लोग भी कहते हैं दूल्हा सरकार।
निर्गुणोपासक नारायण हरि उपदेश दिया एक बार।
छोड़ कृष्ण की अर्चा पूजा कर तू ब्रम्ह विचार॥ ४॥
नारायण हरि के विचार को किया नहीं स्वीकार।
आये परम दयालु सेठजी किया बहुत सत्कार।
तेरे पति का यही चित्रपट, यही हैं तारनहार।
नन्द सुवन ही तेरे पति हैं वही तेरे रखवार॥ ५॥

नाथ नगर की नर्मदाबाई ने माँ की पदवी पायी।
सत्संग भजन की रुचि बढ़ा कर अपने हृदय लगायी।
बनकर उस की छाया वह आजीवन रही छायी।
वही साथ ले जाकर उस को सेठजी से मिलवायी॥ ६॥

पसार के झोली, माँग पिता से ला महिला संघ बसाया।
भजन प्रणाली, सेवा पद्धति का भी पाठ पढ़ाया।
स्वप्न जगत में किसी संत ने इष्ट का मंत्र सुनाया।
निज स्वरूप का भान कराया, झीना पट सरकाया॥ ७॥

दिखा के झाँकी हो गये ओझल विरह से विकल बनाया।
कुँज भजन, सखियन की याद से मन उसका भर आया।
जिन के हित भूतल पर आयी उनका पता न पाया।
व्याकुल मन से विलख उठी क्या जीवन धन की माया॥ ८॥

अतिशय विरह विकल हो बाई छिप-छिप लिखती पाती।
अब प्यारी यह लुका छिपी की लीला नहीं सुहाती।
कुँज भवन के लीला सुख की मुझ को याद सताती।
होता हृदय अधीर नाथ जब सखियाँ देख न पाती॥ ९॥

संत मिलन

संत दरस सतसंग के मिस माँ ऋषिकेश ले आयी।
सुरसरी धारा, बन, समीर सब लगे सरस सुखदायी।
ब्रजलीला रस-रसिक अलि' गण मिलीं बहुत मन भायी।
स्वप्न की मंत्र प्रदाता आकृति दृष्टिपथ में आयी॥ १॥

'भाईजी' इस सुखद नाम से जाने दुनिया सारी।
उनके प्रेमिल सरस भाव पर जायें सब बलिहारी।
'कल्याण' पत्रिका की सेवा पर मुग्ध है जगती सारी।
इनके ही संग हिले मिले रहें राधा कुञ्जबिहारी॥ २॥

गोपी प्रेम विरह की चर्चा करती मीठी बानी।
प्राणों को झकझोर रही थी अमृत रस में सानी।
उसे लगा यह प्रियतम ने है पीर मेरी पहिचानी।
लगता है मुझे तारण के हित आ गये सदगुरु दानी॥ ३॥
इनकी महिमा जगत विदित है, ये अनन्त गुणखान।
कर्मी, ज्ञानी, प्रेमी, भक्त हैं, अतिशय महिमा वान।
इनकी रहनी, कथनी, करनी करे जगत कल्यान।
यही हैं मेरे सद्गुरु, ठाकुर, इष्टदेव भगवान्॥ ४॥
महिमा, गरिमा, गुण स्वाभाव सुन फूली नहीं समाती।
होता यदि एकान्त मिलन तो अपनी व्यथा सुनाती।
संत दरस होता अमोघ मैं सदा ही सुनती आती।
इनके परम निकट रह कर भी क्यों मैं नहीं मिल पाती॥ ५॥
करुण, प्रेममय, दिव्य दृष्टि के सम्मुख जब वह आयी।
सद्गुण कभी, कभी नन्द नन्दन देने लगे दिखायी।
भक्ति, भक्त, भगवंत, गुरु की एकता परी लखायी।
निज स्वरूप की सहज स्मृति से फूली नहीं समायी॥ ६॥
लुढ़क पड़ी पावन चरणों में चली नैन जल धारा।
प्रेम मगन बड़ भागिनी बाई देह का भान बिसारा।
धैर्य बँधाया दई सांत्वना, प्यार किया पुचकारा।
जीवन पथ हो गया प्रकाशित पाया सुदृढ़ सहारा॥ ७॥
रस की सरिता, भाव की प्रतिमा यह बाबा, सुन बाई।
रहा चक्रधर नाम प्रथम अब राधा बाबा पदवी पाई।
राधा भाव निमग्न संत ने देह-गेह की सुध बिसराई।
करुणा, कृपा, अनूठी महिमा लखि-लखि हिय हरषाई॥ ८॥
गैरिक वसन निमग्न सन्यासी उस को दिये दिखाई।
वर्जित किये चितारोहण से यही यती सुखदाई।
जीवन वृत्त आदि से अब तक बाबा को बतलाई।
सजल नयन कहे बहिन सहोदरा मैं हूँ तेरा भाई॥ ९॥

वर्ण, स्वभाव, रूप एक सम लखि मन-ही-मन हरषाई।
करनी, रहनी, वर्तनी, बोलनी से मन प्राण चुराई।
सद्गुरु, इष्ट, क्षेत्र, कुल एकहि अधिक प्रीत सरसाई।
मानो एक कोख से जन्मे जुड़वां भगनी भाई॥ १०॥

सब प्रकार सम्पन्न भक्त परिवार की चन्दा बाई।
स्नेहमयी गंभीर शांत थी सत्संग हेतु आई।
निज हृदयकी परमनिधि कह बाई की बाँह थमाई।
भाईजीने सदा साथ रखने की शपथ दिलाई॥ ११॥

श्रीकृष्ण तत्व परिनिष्ठ संत ने ऐसी सुघर सँवारी।
तन पर रही श्वेत सारी पर मन में कामर कारी।
कबहुँ न भये आँख से ओझल प्रियतम कुञ्जबिहारी।
पलट गयी सब विषम परिस्थिति दिव्य दृष्टि भयी न्यारी॥ १२॥

श्रीमहिला-संघ में स्वागत

बिरचो सुघर कदली के खंभनि नव नव तोरण द्वार।
मणिमय चौक पूरि बहु विधि सों मंगल कलश सुधार।
बन्दनवार, पताका, केतु सब मिलि करो तैयार।
सजो आरती बहुत भाँति सों आ रही प्राणाधार॥ १॥

सद्गुरु मिले, मिले प्रिय भैय्या, मिलीं सखियाँ नन्द कुमार।
अति प्रसन्न बाई ने पाया सभी का निर्मल प्यार।
पुलकित तन विगलित मन लौटी हृदय में हर्ष अपार।
पहुँची भागलपुर महिला संघ, था नाट्यमंच तैयार॥ २॥

लगी होने पायल के संग-संग घुँघरु की झनकार।
मन भर नाची नाच रही थी देख युगल सरकार।
नाची नटी, अभी नाच रही हैं नचा रही संसार।
हम भी नाचें तुम भी नाचों, नाचो भाव परिवार॥ ३॥

आज रैन-दिन नाचो-गाओ भूल के सब घरबार।
झाँझ मृदंग ढप ढोल के संग हो विजय घंट टनकार।
आज गुंजाओ मुक्त कंठ से प्यारी राधे की जयकार।
लड्डू, पेड़ा, बुँदिया, भुजिया बाँटो भर-भर थार॥ ४॥

आज नाचो बरसाने वारी, नाचो नन्द कुमार।
सखी तुम्हारी नाच रही है करे प्रेम मनुहार।
कहाँ है तुम सी रीझने वारी, कहाँ कोई रिझवार।
नव-वृन्दावन करे निहोरा, सुनो रसिक सरदार॥ ५॥

दिव्य लोक की सहचरी बाई, आयी परम उदार।
बरसी ऊपर भूमि सींचने शीतल सरस फुहार।
दोनों हाथ लुटा रही प्यारी स्नेह प्रेम भंडार।
शुष्क हृदय को सरस बनाती नामामृत की धार॥ ६॥

नव वृंदावन लीला मंच

एकांत मिलन का अवसर पा कर आ पहुँचे नन्दलाल।
कर प्रीति चिह्न अंकित सुभाल पर कंठ भुजा में डाल।
मुझसे बिछुड़े अब तक प्यारी निकल गये कई साल।
तू क्या समझे नित्य मिलन बिना था कितना बेहाल॥ १॥

प्रेम कलह की सारी चर्चा रस ले स्वयं सुनायी।
तुम्हरे अमल प्रेम के कारण डाँट बहुत ही खायी।
नित्य संग रहने के निर्णय की भी बात बतायी।
प्रेमाधीन की निरख रसिकता बाई अति हरषायी॥ २॥

तेरी प्राणप्रिय सखियों की मुँह माँगी माँग पुराऊँ।
कुँज निकुञ्ज लीला थल अरु यमुना श्रीगिरिराज बसाऊँ।
ब्रज भाव उपासक देव देवियाँ प्रेमी भक्त यहाँ पधराऊँ।
विग्रह रूप धर्म हम दोऊ तुम्हारे वृंदावन रम जाऊँ॥ ३॥

अब तक तो थी अल्हड़ बाला सरल शान्त और भोरी।
रही भूल तू निज स्वरूप को जब तक रही किशोरी।
तेरे पास मैं पहुँच गया अब बँधा प्रेम की डोरी।
लूटें रास विलास सरस सुख हिलमिल दोनों गोरी॥ ४॥
स्वत्व बोध के समय थी बाई नव तरुणी अलबेली।
रह रह कर के विकल बनाती निज निकुञ्ज बनकेली।
प्रिय सखियों औ प्रियतम के संग रसमय खेल थी खेली।
नव-वृन्दावन बस ही चुका था आती सखियाँ नित्य सहेली॥ ५॥
पूजन, भजन, शयन, मञ्जन मधि प्रायः छलिया आता।
अपनी मधुर रसीली चितवन से उसको तरसाता।
कभी खिझाता, कभी हँसाता, दूर खड़ा मुस्काता।
डाल ठगौरी करम धरम और ध्यान धैर्य छुड़वाता॥ ६॥
कभी कहीं भी किसी अवस्था में प्रियतम आ जाते।
करें मधुर संकेत उसे थे अपने संग ले जाते।
गिरि, वन, नदी, सरोवर तट पर मधुमय रास रचाते।
रह जाती वहाँ छूछी काया दोऊ हिलमिल रस ढरकाते॥ ७॥
नन्द सुवन की बान सदा की करे मसखरी आँख मिचोली।
छू कभी ठोड़ी करे निहोरा, पकड़ के चोटी करे ठिठोली।
छिप-छिप रंग में रंग दे बोले होली है जी होली।
नाच-गान कर निशा सिरायें संग सखियों की टोली॥ ८॥
सभी रसोंका राजा है यह उज्जवल रस श्रृंगार।
रसिक सिद्ध संतों को ही है कथन श्रवण अधिकार।
अपनी राख पे नाच सकें वही कर इस तन को छार।
सिद्ध देह बिनु मिले न यह रस, यह खांडै की धार॥ ९॥
हमें उचित यही मुख से निकलें मर्यादित उदगार।
सतत नाम रट, सेवा भार हो भाव-भजन से प्यार।
छूटे विषय वासना ममता राग-द्वेष अहंकार।
बाई की रुचि के सांचे में ढले जगत व्यवहार॥ १०॥

थी दिव्य लोक की सहचरी बाई आई परम उदार।
ऊसर धरती सींच रही थी शीतल सरस फुहार।
दोनों हाथ लुटा रही प्यारी स्नेह प्रेम भण्डार।
थी शुष्क हृदयों को रस बनती यह अमृत बौछार॥ ११॥
सरस मधुर ब्रजलीला रस के बानक सभी बनाये।
सुखद ललित लीला विलोकि के सबके मन हरषाये।
आनन्द मगन, मत्त सब परिकर फूले नहीं समाये।
ब्रज रस पोषक विविध भाँति के सब साधन अपनाये॥ १२॥
श्रीहरिनाम प्रचार हेतु संकीर्तन-मण्डली एक बनायी।
इक टोली बनी श्याम सुधर की दूजी कीर्ति कुँवरी सुहायी।
नील-पीत परिधान में फूली फिरतीं सब हरषायी।
नगर, ग्राम, घर, डगर-डगर में राधा नाम की धूम मचाई॥ १३॥
महाप्रभु के भाव से भावित उसके बदले ढंग।
उस की नृत्य ताल गति लखके रह जाते सब दंग।
हरि बोल के तुमुल नाद से जम जाता रस रंग।
उछल-उछल कर नृत्य करें बाजें मंजीर मृदंग॥ १४॥
श्री मधुर नाम संकीर्तन ने अपना प्रभाव दिखलाया।
प्रकट हुईं जमुना महारानी सखियों को नहलाया।
नाम सुना के मार्जरी शिशु ने त्यागी नश्वर काया।
अल्हड़ बाला के चरणों को कितने दिन थिरकाया॥ १५॥
जुगल अष्टमी के अवसर पर होता हर्ष अपार।
होते अन्नकूट होली दीवाली झूलन के त्योहार।
कंकण, किंकणी, नूपुर ध्वनि की हो जाती झनकार।
फल, मेवा, पकवान, मिठाई बाँटते भर-भर थार॥ १६॥
भोग-राग की पवित्रता में त्रुटि न रहने पाती।
चिन्मय विग्रह, जागृत स्थलियाँ जा-जा चुगली खाती।
भूल चूक और करवैया की सारी पोल बताती।
अपनी भूल छिपाने का कोई साहस जुटा न पाती॥ १७॥

चुगल खोरों की उस टोलीमें साँवर भी मिल जाते।
कमी, कृपणता अरु प्रसाद की चोरी सभी बताते।
रस बर्धन के लिये कभी-कभी अपना दुखड़ा गाते।
ये वाद्ययंत्र हैं पार्षद मेरे हैं पांव से छू जाते॥ १८॥
हैं तेरी यह सेविका प्यारी फूहड़ ढोल गँवार।
शुद्धि, अशुद्धि, स्वच्छता तक का करें न तनिक विचार।
झाड़ू पोंछा कछु न ठीक है, है कूड़े की भरमार।
भोग-राग में करें कटौती, छिपा भी दें बहु बार॥ १९॥
बड़ी हठीली सीधे से तो एक भी बात न माने।
भूखे रखो, ठण्ड में नहलाओ, आवे अकल ठिकाने।
हम सब का दुःख दूर करो तो भक्ति तुम्हारी जाने।
भाँति-भाँति की बात बनाकर मारें मीठे ताने॥ २०॥
बहुत प्रकार की कुटिल चाल से बाई को फुसलाते।
हो प्रविष्ट अंतर बाई के स्वयं डाँटते और डँटवाते।
प्रेम कलह के निर्णय का थे पूरा लाभ उठाते।
सखियाँ दिव्य लोक में पूछे समझौता दिखलाते॥ २१॥
दिन प्रति नव-नव दण्ड भोग से होतीं विकल विचारी।
यह लबार, लंगर, छलिया, बहकाता सखी हमारी।
मिल-जुल, छुप-छुप देती रहती नन्द नन्दन को गारी।
मन-ही-मन न्योछावर थीं चले चाल जो छैल बिहारी॥ २२॥
लाड़-चाव की भूखी जोड़ी माँग-चुरा के खायें।
भानु नन्दिनी एकादशी को कह चीला बनवायें।
ब्रज के माखन चोर नन्द सुत चुरा के पेड़ा खायें।
रुठें, खींझे, माँगें, झगड़ें, डाँटें कभी घिघियायें॥ २३॥
मूषक सेना हुई प्रबल जब अति उत्पात मचायी।
व्यंजन गटके, काटी ऊँगली, चोटी तक कुतरायी।
किया नाकों दम जब चूहों ने पत्री स्वयं पठायी।
दिवस दूसरे एक भी मूषक दिया नहीं दिखलायी॥ २४॥

नित नयी लीला ढंग अटपटे नव नव स्वांग रचाये।
परम हठीली कोई माँग रख लोह लाठ बन जाये।
लाख यत्न करो एक न माने नाक चने चबवाये।
सदा उसीकी माननी पड़ती साथ न छोड़ा जाये॥ २५॥

महिमाष्टक

उत्सव मयी लीला मयी करुणा कृपा निधान।
जड़मति जीव की दुर्दशा सह न सकी मतिमान।
संत और भगवन्त की महिमा का गुणमान।
करती सतत लगाये रखती निज परिकर का ध्यान॥ १॥

ठाकुर सेवा, भक्ति, नाम रति, मति-गति की दातार।
दुःख, रोग, भय, शोक, विपत्ति से लेती सदा उबार।
भगवद् उन्मुख कर के कर दिया भव से बेड़ा पार।
धन धाम दिया, भगवान दिया, दिया सदय हृदय का प्यार॥ २॥

दीन-हीन असहाय पंगु को पा कर गले लगाती।
करके विविध उपाय यत्न थी पीड़ा दुःख भगाती।
स्वारथ परमारथ सुधार में लगन से वह जुट जाती।
प्यार सने कर की छाया दे भक्ति भाव बढ़ाती॥ ३॥

विषम परिस्थिति में पड़ करके जब कभी भी मन हारा।
केवल बाई दिखायी देती अंतिम एक सहारा।
फँसी भँवर में जीवन नौका पाती तभी किनारा।
नयी आस विश्वास जगाती उसकी प्रीति की धारा॥ ४॥

भू पर मंगल वितरण करती अन्य लोकों में जाती।
निज जन की शुभ गति दुर्गति का पूरा हाल बताती।
सद्गति हेतु भागवत गीता अरु अनुष्ठान कराती।
दयामयी करके करुणा थी प्रेत योनि छुड़वाती॥ ५॥

सदा होते ही रहते बाई से नित नूतन आवेश।
अंतर जगत और सद्गुरुदेव से मिलते थे निर्देश।
अन्य और लोकों से भी आते रहते थे सन्देश।
स्वयं अलक्षित रह उर प्रेरक देती निज आदेश॥ ६॥

दे साहस सामर्थ्य, कृपाबल नारी में पुरषत्त्व जगाती।
बड़े-बड़े आयोजन करती, भव्य कार्य करवाती।
नारी का पुरुषार्थ देख के दुनिया समझ न पाती।
कौन है इसकी पीठ के पीछे नहीं यह क्यों घबराती॥ ७॥

द्रव्य, पुरुष स्पर्श से बाई आजीवन रही अछूती।
कितनी परम पवित्र यह देवी कैसी विमल विभूती।
जीवन मरण की दिव्य क्रिया लख जग में बोले तूती।
महिमा गरिमा उसकी अब तक नहीं किसी ने कूती॥ ८॥

भाव साधना स्वरुप स्थिति

शुचि शुभ्रवसन मन्दहसन उर में अमित अनुराग था।
मन प्राण इन्द्रिय पूर्ण संयत तीव्र विषय विराग था।
शील मर्यादा की सीमा, कैसा तप तितिक्षा त्याग था।
निकुञ्ज लीला में पगी उसका परम सौभाग्य था॥ १॥

उर्वरा भूमि में पुष्ट प्रेम के अंकुर दिये दिखायी।
सद्गुरु संत ने रक्षा के हित स्वयं ही बाड़ लगायी।
सींच-सींच कर स्नेह सलिल से भाव लता सरसायी।
प्रीति पगे सहचरी मण्डल को सब सेवा संभलायी॥ २॥

अँसुवन जल सों सिंची वल्लरी कई रंग पुष्प खिलाये।
शुद्ध सत्वमयी दिव्य देह पर भाव अनेकों छाये।
बरसनि, तरसनि, सरसनि, परसनि, कर्षनि चित्त लुभाये।
सुरभित प्रीति लता की सुषमा पर भँवरा मण्डराये॥ ३॥

प्रेमी संत सुदीक्षित तंतु ने भाव मधुर सरसाये।
राग मयी गोपी के लक्षण उभर के सन्मुख आये।
मंजरी, अनुचरी, सखी, सहचरी सभी रूप अपनाये।
प्रिय चिंतन में रत निरन्तर प्रियतम भी बन जाये॥ ४॥
विकट स्थिति में होती न विचलित न शांति भंग हो पाती।
अतिमान शून्य वैरागन कभी न क्षण भी व्यर्थ गंवाती।
नव मिलन आस से हो उत्कंठित नित अभिसार धराती।
रटते गाते प्रिय के नामगुण उसीके धाम चली जाती॥ ५॥
कभी शिशु, बाला, कभी प्रियतम, प्यारी सखी बन जाती।
वस्त्र खिलौने, माखन मिश्री भोग शृंगार मँगाती।
आकृति, प्रकृति, वयस, क्रिया उसी साँचे में ढ़ल जाती।
रुठे, मचले, थिरके, गाये नव-नव रस उपजाती॥ ६॥
कभी-कभी वृषभान सुता निज प्रियतम को ललचाती।
धर अलंकार शृंगार रंगीली प्रिय का चित्त चुराती।
कभी कभी तादात्म्य विमुग्धा अधर धराती।
लकुट मुरलिका लेकर बाई पिच्छधरा बन जाती॥ ७॥
प्रीति सरित की भाव तरंगें नव-नव रूप दिखातीं।
पुलकित तन, साश्रुनयन हो जड़ता भी छा जाती।
विरहाग्नि से तपती काया अविरल स्वेद बहाती।
मुख मण्डल होता विवर्ण वह मूर्छित हो हो जाती॥ ८॥
तनिक सा भी उद्दीपन पाकर भाव दशा गहराती।
स्वप्न, सन्देश, चित्रपट, चर्चा कहीं से कहीं ले जाती।
स्तंभित जड़, निश्चल देह वह अपना भान भुलाती।
कालगति भी अपनी चाल से आगे बढ़ती जाती॥ ९॥
कभी-कभी गंभीर भाव दशा, सभी को विकल बनाती।
विरह से व्याकुल हृदय की पीड़ा, घनीभूत हो जाती।
असह्य वेदना, अंतर की ज्वाला उससे सही न जाती।
मूर्छित दशा देख के मरण की आशंका हो जाती॥ १०॥

प्रगाढ़ भाव के मर्म रहस्य को साथ की समझ न पातीं।
चतुर सयानी विविध यत्न कर डाक्टर वैद्य बुलातीं।
सरला भोरी राधा बाबा को बहन की दशा बतातीं।
महाभाव निमग्न सिद्ध संत कृपा से बिगड़ी बात बनातीं॥ ११॥

ब्रज गमन

प्राणों के प्रिय संत भी तो निज-निज लोक सिधारे।
अब हो चुके संकल्प पूर्ण इस कथा के भी सारे।
भव सागर में फँसे जीव जिन्हें तार सकी सो तारे।
डांड चलाते भयी श्रमित अब ले चलूँ तरी किनारे॥ १॥

प्रेमी संतों के खिचाव से छूट गया गोलोक।
जीवन मधुमय सरस बनाता उनका प्रेम आलोक।
प्रीति सूर्य शशि अस्त हो गये तिमिर ग्रस्त अब लोक।
मैं भी गमन करूँ अपने घर कोई रोक न टोक॥ २॥

सुरसरि तीर और गोरखपुर अब तो नहीं लुभाते।
भागलपुर के नाच-गान सब जुड़े नेह और नाते।
कर पाती निर्वाह मात्र अब मन को नहीं रमाते।
नन्दगाँव, बरसाना, गिरिवर, वृन्दाविपिन बुलाते॥ ३॥

ब्रजभूमी के प्रबल प्रेम में बना न कोई रोड़ा।
लीला मञ्च, स्वजन परिकर सभी से था मुख मोड़ा।
निज जन का वह प्रीति बन्धन सहज भाव से तोड़ा।
भागलपुर का जन-जन व्याकुल जब बाई ने उसको छोड़ा॥ ४॥

यमुना तट के जुगल घाट पर डेरा आय जमाया।
कृष्ण कुञ्ज के तरु तमाल ने प्रेम भाव सरसाया।
श्री राधा के नाम गान ने अपना रंग दिखाया।
अति कठोर जीवन चर्या से जर्जर हो गयी काया॥ ५॥

श्रीविग्रह, संतो, समाधियों के दर्शन कर आती।
आ जाता कोई संत दृष्टि पथ श्रद्धा सुमन चढ़ाती।
बरसाना, नन्दगाँव, गोवर्धन कबहुँ कबहुँ चली जाती।
हर ऋतु में यमुनाजी जा कर बाई नित्य नहाती॥ ६॥

निज निकुञ्ज में रहूँगी मैं तो लीला सुख में लीन।
काल बली बरबस काया को लेगा तुम से छीन।
जीवन भर मेरी रुचि अभिलाषा तुम सब पूरन कीन।
आमि साध होय पूरी यह है तुम्हरे आधीन॥ ७॥

श्री राधा नाम के संकीर्तन को कभी बन्द मत करना।
राधा रानी रहेंगी इसी कुञ्ज में तुम जरा धीरज धरना।
यमुना पुलिन विहार घाट पर सजे चिता मत डरना।
मेरी इस भविष्य वाणी पर कभी न संशय करना॥ ८॥

सुन तो लिया था सभी ने पर था मन में कम विश्वास।
चिता जली हो उक्त घाट पर था न कोई इतिहास।
कृष्ण कुञ्ज के स्वामी कभी न छोड़ेंगे आवास।
इसे असम्भव मान सर्वथा परिकर हुआ उदास॥ ९॥

थी ललक झरे भण्डारे में ब्रज भक्त मैं न्योत जिमाऊँ।
साधु संत, विरक्त, यति सभी विप्र परिवार बुलाऊँ।
ठाकुर द्वारों, लीला स्थलियों में व्यंजन भोग लगाऊँ।
हाय! बीत गये दस वर्ष न जाने कब यह आस पुराऊँ॥ १०॥

बाई की मनोवांच्छित इच्छा सदा सत्य हो जाती।
अघटन घटना पटीयसी थी रुचि अपनी बतलाती।
उसकी छाया प्रकृति उसी क्षण पूर्ति में जुट जाती।
हो जाती अनुकूल परस्थिति बाधा सब हट जाती॥ ११॥

जमुना पुलिन पर

धीर समीरे यमुना तीरे आ विराजती आली।
चहूँ ओर मँडराती रहतीं प्रिय सखियाँ बनमाली।
सभी व्यवस्था निज अनुजा की रवि तनुजा ने सँभाली।
खेवन हार जीवन नौका के स्वयं करें रखवारी॥ १॥

त्याग, तितिक्षा, तप साधन ने सब पै मोहनी डाली।
तट के नाविक, बड़ी बूढ़ियाँ मानें अपनी लाली।
भाव मगन मन मोहक छवि को देख के नित्य निराली।
क्या विछुड़ के बैठी निज सखियों से है बरसानेवाली?॥ २॥

अर्ध निशा तक यमुना तट पर बैठी ही रह जाती।
प्यास न भूख, नींद नहिं नैननि, शीत न कभी सताती।
जमुन हिलोर निहारती निर्भय प्रीतम के गुण गाती।
लगता मधुर अधर स्पन्दन से है बहिन से कुछ बतराती॥ ३॥

यमुना बहती रहती अविरल।
मधुर स्वरों में करती कलकल।
सतत रिखती धारा निर्मल।
बीत रहा था जीवन पल-पल॥ ४॥

कभी पुलिन पर बैठी रहती।
शीत धाम बरषा सब सहती।
कभी नाव चढ़ मन की कहती।
सखी यमुना से बहती बहती॥ ५॥

उठ जातीं उस पार निगाहें।
कान्हर की लख फैली बाँहें।
भरने लगती ठण्डी आहें।
विकल नैन मन प्राण कराहें॥ ६॥

नयन बहाते अविरल धारा।
काया लगती दारुण कारा।
तम में डूबा तट जब सारा।
देखा करती नभ में तारा॥ ७॥
चल पड़ती थी खोयी-खोयी।
लगता यही कि कभी न सोयी।
जग-जग आँसू माला पोयी।
वह ही जाने कब तक रोयी॥ ८॥
गोलोक से आती पाती।
हिय लग आय जुड़ा दे छाती।
दरस हेतु जिनके अकुलाती।
यहीं बसे आ सभी संघाती॥ ९॥
तू निकुञ्ज की सखी सनातन।
क्या बिसर गई सम्बन्ध पुरातन।
भूतल पर बीता चिर जीवन।
अब न लगै तेरे बिन यह मन॥ १०॥
अब निज घर तू आ रही हेली।
भू पर बहुत दिनों तक खेली।
आजा-आजा रटें सहेली।
नहीं भावे तुझ बिन वन केली॥ ११॥
मावस की वह रैन अंधेरी।
छलिया छिप-छिप देता फेरी।
करे निहोरे, सुन ले मेरी।
घर चल, घर चल मत कर देरी॥ १२॥

मातृ सन्धि हुई भंग जान निज धाम गमन सुधि आई।
शील स्नेह नित्य परिकर के सहज छाड़ि नहीं जाई।
कबहुँ प्रेमी निजजन सों चर्चा देति चलाई।
उनकी दशा बिलोकि ये कैसे जियेंगे माई॥ १३॥

जुड़े प्यार ममता के नाते।
इच्छा मात्र से टूट न जाते।
कभी विलग जो नहीं रह पाते।
सह पायें लख मुझे को जाते?॥ १४॥

पहले इन को दूर पठाऊँ।
इनकी वेदना देख न पाऊँ।
भावी लीला तभी रचाऊँ।
करके तीज तुरत चली आऊँ॥ १५॥

बीता दो हजार इक्यावन का अक्षय तीज त्योहार।
वैशाख शुक्ल थी पञ्चमी अरु बार रहा गुरुवार।
बहुत विकल हो बिलख रहा था भाव भरा परिवार।
प्राणेश्वरी हृदयेश्वरी बाई गयी निज लोक सिधार॥ १६॥

कैसी दारुण थी यामिनी, नव वृंदावन स्वामिनी।
बन चपला सौदामिनी श्याम मेघ में समा गयी।
अति नयनाभिरामिनी, भाँवते की भामिनी।
श्रीकुञ्ज केलि कामिनी, निकुञ्ज को सिधा गयी॥ १७॥

निज नित्य निकुञ्ज की ओर

सुनके दारुण समाचार कोहराम मचा था भारी।
यत्र, तत्र, सर्वत्र से थीं आ पहुँचीं सखियाँ सारी।
लगी विमान सजाने, कर रहीं घाट की भी तैयारी।
पुरुष मात्र का स्पर्श था वर्जित, क्रियाशील थीं नारी॥ १॥

सखियों ने ही उठा रखी थी शिविका सजी सँवारी।
सावधानी से बदल रही थी कन्धा बारी बारी।
नव कौतुक को देख के ब्रज में चकित भए नर नारी।
सखी स्कन्ध पर बृन्दावन में यह ललना प्रथम पधारी॥ २॥

नख शिख सरस श्रृंगार किये थी लेटी परम दुलारी।
पाटल पंखुड़ियों पर पौढ़ी पी पौर पे पहुँची प्यारी।
पठा दी पचरंग चुनरी माला छिपे ओट में प्रेम पुजारी।
मन्द स्मित मुख कान्ति दिव्य थी आधी आँख उघारी॥३॥
मानो आँख चुरा निज प्रियतम खोजती लाज की मारी।
श्रीराधा वल्लभ को प्रणाम कर पुनः बढ़ चली सवारी।
साँवर, संत, सखी संयोग की चढ़ी थी प्रेम खुमारी।
पथ क्लान्त श्रान्त हो पुष्प सेज पर सो गई राज कुमारी॥ ४॥

अन्तिम विदाई एवं स्नेह आमंत्रण

विहार घाट के दबंग दादा पहलवान थे शंकर।
यह तपस्विनी यहीं जलेगी खड़े हो गये तन कर।
देखूँ कौन खड़ा होता है इसमें बाधा बन कर।
सभी जानते थे दादा को यह दूजा प्रलयंकर॥ १॥
धूप, अगरु, चन्दन, घृत, समिधा दे कर चिता सजाई।
विलग खड़े थे सुहृद भक्तजन साधक नाविक भाई।
मीरा ओर सावित्री ने मिल, मुख में अग्नि स्वयं लगाई।
वलो शिखाओं की नर्तन गति सब के मन को भाई॥ २॥
भक्त गोपी ग्वाल गैय्या की, प्राणधन कन्हैया की।
बहन प्यारी जमना मैय्या की, रज में रज मिला गई।
श्रद्धा विश्वास की, उमड़ते उल्लास की।
वृन्दावन वास की दिव्य महिमा बता गयी॥ ३॥
निज धाम भी बुलाओगी, कि यूं ही तड़पाओगी।
कब कान्हर से मिलाओगी नव वृंदावन स्वामिनी॥ ४॥
हुए अनेकों झरे भण्डारे इसे सर्वोत्तम कहि सराहें।
आरोगें, गठियायें, पुनि-पुनि पंगत में आ जायें।
सरस मधुर व्यंजन पकवानों को सुस्वादु बतायें।
पूज्या भाग्यवती बाई की महिमा के गुण गायें॥ ५॥

न्यौते संत, भक्त, सन्यासी विप्र सहित परिवारा।
बाई की सदिछा पूर्ण की मन का बोझ उतारा।
राग-भोग सन्मान भाव पर मुग्ध हुआ ब्रज सारा।
भक्तिमति देवी ने देखा बाई ने स्वयं प्रसाद स्वीकारा॥ ६॥
तू तो नित्य धाम की आली, तेरा क्या जीना क्या मरना।
तू अयोनिजा सर्व व्यापिनी, फिर क्यों विरह में आहें भरना।
हम सब भूल नहीं पाती हैं नित-नित तेरे संग विचरना।
समझातीं हम लाख रुके नहीं प्यासे नयनों का झरना॥ ७॥
गयी सो गयी पर सुख से रहियो।
हमरी सोच में जनि दुःख पैइयो।
जब प्रिय पूछें, सन्देसो कहियो।
मान जायें, दोऊ झूलन अइयो॥ ८॥
तीज त्योहार हमरि सुधि गहियो।
जब अइयो दोऊ हँसते अइयो।
न मन लगे, तुरत चली जइयो।
पर नव-वृन्दावन आवत रहियो॥ ९॥

--भीमसेन चोपड़ा

* * * * *

मेरी बाई रुक्मिणी

जिसकी लीला गान करते सतत शत शत शत फणी।
जो थी राघव के हृदय की, सतत चित्ताकर्षिणी॥
जो थी द्वापर में बनी श्रीकृष्ण की सहधर्मिणी।
वही कलियुग में प्रगट भई, मेरी बाई रुक्मिणी॥

--राधेश्याम मिश्र

श्रीमहिला संघके अन्य दो प्रकाशन—

१. वो कौन थी

२. श्रीरुक्मणी बाई संस्मरण

पुस्तक प्राप्ति के स्थान

भागलपुर :

१. श्रीमहिला संघ, रा. ब. देवीप्रसाद ढानढनियाँ लेन,
भागलपुर – ८१२००२२. मो. ०९४७२५०६०४२

गोरखपुर :

१. हरिकृष्ण दुजारी, पो. गीतावाटिका, गोरखपुर, फोनः ०५५१–२२८४७४२.

२. साहित्य मंदिर, हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समिति, पो०–गीतावाटिका, गोरखपुर–२७३००६. फोन : ०५५१–२२८३४६०.

३. योगेन्द्रनाथ बंका, गोरखपुर मशीनरी स्टोर, गोलघर, गोरखपुर–२७३००१. मो. ०९४१५८२३९५१.

कोलकाताः

१. कमलकुमार अग्रवाल, ४२, विवेकानन्द रोड, कोलकाता–७००००७. फोन : (०३३) २२७२८२०७.

वृन्दावनः

१. खण्डेलवाल एण्ड संस, अठखम्भा बाजार, वृन्दावन–२८११२१. फोन : (०५६५) २४४२१००/२४४३१०१.

जयपुर :

१. धार्मिक साहित्य सदन, बुलियन बिल्डिंगके अंदर, हल्दियोंका रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर (राजस्थान) ३०२००३. फोनः ०१४१–२५७०६०२.

स्वर्गआश्रम :

१. विष्णु पुस्तक भण्डार, पो. स्वर्गआश्रम,
ऋषिकेश – २४९३०४

मुंबई :

१. ओमप्रकाश सेकसरिया, न्यू जैक प्रिंटिंग प्रेस प्रा० लि०,
बिल्डिंग न. ५/बी, गाला न. १३०, मित्तल ईन्डस्ट्रियल स्टेट,
मरोल नाका, अँधेरी (पूर्व), मुंबई–४०० ०५९. फोन : ६७७२ १०००